श्रीकल्कि-पुराण



लेखक:

वेदमूर्ति तपोनिष्ठ

पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

चारो वेद, १०८ उपनिषद् षट्-दर्शन, २० स्मृतियों

एवं १८ पुराणों के प्रसिद्ध भाष्यकार



प्रकाशक:

संस्कृति संस्थान

ख्वाजा कुतुब (वेद नगर)

बरेली [उ०प्र०]

प्रकाशक.
डा० चमनलाल गौतम
सस्कृति सस्थान, ख्वाजा कुतुब,
बरेली ।

लेखक:
प० श्रीराम शर्मा आचार्य
श्री सत्यभक्त

प्रथम सस्करण:
१९७०

मुद्रक:
शेखर प्रिण्टलैंड,
वृन्दावन दर्वाजा,

मूल्य:
सात रुपए पिचहत्तर पैसे (रु० ७. ७५)

दो शब्द

'कल्किपुराण' का महत्व वर्तमान समय मे विशेष बढ गया है। यह मुख्यत 'युग-परिवर्तन' मेसम्बन्ध रखता है और इस समय परिवर्तन की भावना ससारव्यापी होरही है। लोग यह नही समझ पाते कि एक तरफ मनुष्य ज्ञान-विज्ञान मे आशातीत उन्नति करके प्रकृति का स्वामी बन रहा है और दूसरी तरफ वह जीवन-निर्वाह के साधनो को आपस मे आवश्कतानुसार बाँट कर व्यवहार में भी नही ला सकता। इस परस्पर विरोधी दृश्य को देख कर यही प्रतीत होता है कि हमारी 'सभ्यता' के जडमूल मे ही कोई खराबी है। यह तो सब कोई अच्छी तरह जानते हैं कि जब तक स सार मे न्याय और सत्य की स्थापना न होगी और प्रत्येक मनुष्य को उसका न्यायोचित भाग प्रदान न किया जायगा तब तक अस तोष और अशान्ति की अग्नि किसी रूप मे धधकती ही रहेगी।

'कल्कि' की विशेषता इसी बात मे है कि वे इस ज्वाला को शान्त करके ससार मे 'सत्युग' की स्थापना करेगे इसमे तो सन्देह नही कि दैवी-शक्ति के अतिरिक्त और किसी उपाय से काम लेकर वर्तमान भ्रष्ट और स्वार्थपरता की भावना से ओत-प्रोत दुनिया का सुधार नही किया जा सकता। क्योंकि इस समय स सार मे, राष्ट्रो मे, समाज मे, व्यक्ति में जो दोष उत्पन्न हो गये हैं, उनको कोई समझता न हो ऐसी बात नहीं है। इस समय विद्या, शिक्षा और प्रचार-कार्य की इतनी अधिकता हो गई है कि छोटी आयु के लडके भी सार्वजनिक-जीवन और स सारव्यापी परिवर्तनो की बातो को इतना जान लेते है जितना सौ, दोसौ पूर्व परिपक्व आयु के पढे-लिखे व्यक्ति भी नही जान पाते थे। इस समय समाचार पत्र रेडियो, टेली-विजन, दूरवर्ती देशों के भ्रमण की सुविधा आदि की इतनी भरमार हो गई है कि राह चलता व्यक्ति भी इधर-उधर से सुनकर स सार की राजनैतिक और सामाजिक प्रगति का सामान्य ज्ञान प्राप्त कर लेता है।

पर यह जान कर भी कि इस समय मनुष्य मात्र की एकता, पारस्परिक सहयोग और सामूहिक प्रयत्नो के बिना मनुष्य का जीवन

निर्वाह अच्छी तरह नहीं हो सकता अधिकांश व्यक्ति अपने संकीर्ण-स्वार्थ से ऊपर नहीं उठ पाते। हम मानते हैं, कि संसार के अधिकांश व्यक्ति अभी भारतीय ऋषि-मुनियों द्वारा निर्धारित त्याग-परमार्थ के आदर्श को नहीं अपना सकते, और न अभी पूर्ण साम्यवाद की परिस्थितियाँ ही परिपक्व हो चुकी हैं, तो भी अपने ही स्वार्थ की निगाह से भी मनुष्य को अपने लाभ के साथ दूसरों की हानि और अनहित का ध्यान रखना आवश्यक है। अगर वह ऐसा नहीं करता तो प्रत्येक मनुष्य एक दूसरे के साथ विपरीत व्यवहार करेगा और संसार की सुख-शान्ति स्वप्नवत् हो जायगी। भूखो मरता हुआ, निराश और हताश व्यक्ति चाहे स्वयं लाभ न उठा सके पर वह दूसरों के लिये बाधा-विघ्न स्वरूप तो बन ही सकता है। इस लिये जो व्यक्ति देश या समाज के कल्याण का ध्यान नहीं रखता वह दूसरों के साथ अपने लिये भी काँटे बोता है।

यदि गहराई के साथ विचार किया जाय तो वर्तमान पश्चिमी सभ्यता की सबसे बड़ी बुराई यही है कि उसने निजी स्वार्थ को बहुत अधिक प्रधानता दे डाली है और त्याग की भावना को नगण्य कर दिया है। वर्तमान समय में संसार भर में जो युद्ध की विभीषिका फैली हुई है उससे मानव सभ्यता के ही विध्वंस हो जाने का भय उत्पन्न हो गया है। इसका मूल कारण उपर्युक्त दूषित मनोवृत्ति ही है। जब मनुष्य अपने पड़ोसी के प्रति आत्मीयता का भाव रखने के बजाय उसको अपना भक्ष्य मानता है और जब मौका लगे तभी उसका सर्वस्व अपहरण करने को तैयार बैठा रहता है, तो सुरक्षा और स्थायी हित की बात ही खत्म हो जाती है तब दुनिया में जंगल का कानून प्रचलित हो जाता है कि जो कोई जबर्दस्त या चालाक हो वह अपने से कमजोर को खा जाये।

मानव का यह स्वभाव पशु-प्रकृति या 'पाशविकता' कही जाती है। विचार किया जाय तो यह उससे भी कहीं अधिक भयंकर और निकृष्ट है। इसमें ईर्षा, द्वेष, घृणा की मनोवृत्तियाँ सम्मिलित होकर मानव को दानव बना देती हैं और तब वह नाश और संहार के नये-

नये उपाय निकालने लगता है, जिनमे मे कुछ तो ऐसे क्रूरतापूर्ण होते है कि जिनका वर्णन कर सकना भी स भव नही।

'कल्कि' की वास्तविकता का आशय हम वतमान हिंसक-भावना युक्त मानवीय सभ्यता के स्थान पर एक ऐसी नई सभ्यता की स्थापना समझते है जिसमे मनुष्य किसी अन्य मनुष्य को मारने, काटने, लूटने का विचार भी मनमे न ला सकेगा। आज हम प्राय: 'आध्यात्मिकता' का नाम लेते है, पर वह कभी सार्वजनिक व्यवहार मे लाई गई या नही इसका कह सकना कठिन है। शायद प्राचीन ऋषि-मुनियोमें से थोडे बहुत ऐसे हुये हो कि जिन्होने ने हिंसा का सर्वथा त्याग कर प्रेम के सिद्धान्त के आधार पर व्यवहार किया हो। एतिहासिक युग मे महावीर, बुद्ध और ईसा ने इसका उदाहरण उपस्थित करके नई सभ्यता की स्थापना की चेष्टा की, पर उनको बहुत थोडी और अस्थायी सफलता ही मिली। आज ईसा और बुद्ध के 'अनुयायी' कहे जाने वाले ही हिंसा और युद्ध के सब से बडे समर्थक और स चालक बने हुये है।

'कल्कि' को यद्यपि हाथ मे तलवार लिये चित्रित किया गया है, पर उसका आशय 'ज्ञान की तलवार' से हैं। अनेक 'कल्कि-भक्तो' का अब भी यह मत है कि भावी अवतार को 'निष्कलक' नाम से पुकारने का कारण यही हैं कि वह ससार मे हिंसा, द्वेष, रक्तपात आदि का कोई ऐसा काम न करेगे, जिसमे किसी प्रकार का कलक लगने की स भावना हो। 'कल्कि पुराण' आदि मे भावी अवतार द्वारा समस्त दुष्टो के स हार का वर्णन है, पर वास्तव में वे आपस में ही लड-भिड कर नष्ट होगे। जब इस प्रकार 'हिंसा' की अति हो जायगी और मानव जाति अपने ही बनाये अस्त्र-शस्त्रो से अपना सर्वनाश करने को उद्यत होगी तब इस भयकर हत्या काण्ड को रोकने और हिंसा की मनोवृत्ति की हानि और अमानुषिकता को समझा कर मनुष्यो को सहयोग और प्रेम के मार्ग पर चलने की शिक्षा देने के लिये ही 'अवतार' का आविर्भाव होगा। वह 'अवतार' मनुष्य रूपमे होगा, या किसी सस्था या स गठन के रूप मे होगा या भाव रूप होगा, इस सम्बन्ध मे विवाद उठाना अनावश्यक है। वास्तव

में ऐसे सभी परिवर्तन आरम्भ में विचारमूलक और भाव रूप ही होते हैं पर आगे चल कर वे किसी व्यक्ति या संगठन मे 'मूर्त रूप' भी ग्रहण कर लेते हैं। सामान्य बुद्धि की जनता, जो विचार-शक्ति के स्वरूप और और प्रभाव को अनुभव करने मे असमर्थ होती है व्यक्ति को ही प्रधान रूप मे 'अवतार' मानने लग जाती है।

'कल्कि पुराण' मे भावी अवतार की जो कथा वर्णन की गई है और भावी अवतार को एक राजा के रूप में चित्रित करके उनकी बहु संख्यक रानियों और पुत्रो का वर्णन किया गया है, तथा अनेक युद्धों मे दोनो पक्षो की अद्भुत वीरता दिखलाई गई है, उसका मुख्य उद्देश्य इसको अन्य पुराणो के समान आकर्षक और 'पाँच अंगो' से युक्त बनाना ही है। पर सामान्य पाठकों मे उसे पढ कर प्राय. यही भावना उत्पन्न होता है कि 'कल्कि' कोई महा भीषण युद्ध प्रिय क्रूर योद्धा होगा जो अपना अधिकांश जीवन संसार मे रक्त की नदियों के बहाने मे ही व्यतीत करेगा। पर यह धारणा सर्वथा भ्रम है। जो व्यक्ति अवतारो के वास्तविक रहस्य को नही समझते और कवियो की रचना में से अलकार, रूपक, उपमा आदि को समझ कर, उसका वास्तविक आशय हृदयंगम करने में समर्थ नहीं होते वे ही ऐसे भ्रम मे पडते है।

शास्त्रो और अन्य महापुरुषो ने 'कल्कि' भगवान का क्या स्वरूप बतलाया है, उनकी लीलाओ (कार्यों) का वास्तविक अर्थ क्या है, और वे किस नवीन मार्ग का अनुसरण करके नये जगत का निर्माण करेंगे इन सब प्रश्नों का विवेचन और व्याख्या करने के लिये ग्रन्थ के आरम्भ में श्री सत्यभक्तजी द्वारा लिखित 'कल्कि अवतार रहस्य' शीर्षक निबन्ध दिया जा रहा है; जिससे पाठकों की सब शंकाओं का निराकरण हो जायगा और यह भी विदित हो जायगा कि 'अवतार' किन महान् उद्देश्यों की पूर्ति के लिये कैसे-कैसे रूप में प्रकट होते हैं।

—श्रीराम शर्मा आचार्य

कल्कि पुराण की विषय-सूची

(कल्कि अवतार-रहस्य)

कल्कि अवतार-रहस्य

प्रथम अध्याय

ईश्वरीय शक्ति का प्राकट्य

समस्त धर्मों का मूल ईश्वर की सत्ता मे विश्वास रखना है। यदि विचारपूर्वक देखा जाये तो 'धर्म' की भावना तभी जन्म लेती है, जब मनुष्य समग्र जगत की समस्या का मनन करते हुए उसके आदि स्रोत को ढूंढने का प्रयत्न करता है। यो खाना, पीना और प्रजनन सभी प्राणियो के लिये एक स्वाभाविक नियम है, पर मनुष्य जैसे विवेक-युक्त प्राणी का प्रधान लक्षण यही है कि वह जो कार्य करे, जिन नियमो और परम्पराओ को ग्रहण करे उनकी युक्तियुक्तता तथा मूल आधार पर भी विचार करले। इसी महान आवश्यकता की पूर्ति के लिये पिछले हजारो वर्षो से सब देशो और जातियो के विद्वान् ईश्वर के अस्तित्व और मानव-कर्तव्यो पर विचार-विमर्ष करते आये है। उनमे से किसी ने उसको आकाश स्थित किसी सर्वोच्च स्थान मे विराजमान, सर्वाधिक शक्तिशाली देवता के रूप मे माना और किसी ने समस्त विश्व मे व्याप्त एक महाशक्ति के रूप मे। ईश्वर सम्बन्धी यही विचारणा और उससे उत्पन्न होने वाले अन-गिनती प्रश्न तथा उनके समाधानो का सग्रह ही 'मजहब या धर्म' कहलाया। यो सामान्य दृष्टि से लोग सामाजिक रीति-रिवाजो परम्पराओ, आचार-विचार सम्बन्धी नियमो को भी 'धर्म' कहने लगते हैं, पर जब तक उनका सम्बन्ध ईश्वर से नही जोडा जाता है, उनको ईश्वरीय आदेश के अनुकूल सिद्ध नही किया जाता है, तब तक उनका महत्त्व सामयिक ही रहता है, उन्हे 'स्थायी धर्म' का दर्जा प्राप्त नहीं हो सकता।

ईश्वर और धर्म की दृष्टि से हमारे देश का स्थान विशिष्ट है। अन्य देश वालो ने तो इस सम्बन्ध मे थोडा-सा विचार करके ईश्वर को एक महान शासक की तरह दण्ड और पुरुस्कार का कर्ता मान लिया और अपने समाज मे प्रचलित नियमो तथा ईश–प्रार्थना के विधि-विधानो को ही 'धर्म' का नाम दे दिया। पर भारतीय मनीषियो ने अपना समस्त जीवन ही इस समस्या का निर्णय करने मे लगा दिया और इस सम्बन्ध मे सूक्ष्म से सूक्ष्म खोज करके धर्म-कलेवर को इतना विशाल रूप दे डाला कि ससार की कोई समस्या, जीवन का कोई क्षेत्र तथा समाज और व्यक्ति का कोई व्यवहार उससे पृथक न रह सका। यदि यह कहा जाता है कि 'एक हिन्दू का सारा जीवन ही धर्ममय है' तो इसमे कोई अत्युक्ति नही। यहाँ के अपढ से अपढ व्यक्ति भी प्रत्येक छोटे-बडे कार्य मे 'धर्म' का नाम ले लेते हैं और 'अधर्म' से सदा बचने की चेष्टा करते है। यह बात दूसरी है कि विद्या और ज्ञान के अभाव से अथवा समय के प्रभाव से वे धर्म के वास्तविक रूप को भूल गये हो और कितनी ही विपरीत बातो को भी भ्रमवश 'धर्म' मान बैठे हो।

ईश्वर का स्वरूप और उसके कार्य—

यद्यपि यहूदी, ईसाई, मुसलमान जैसे प्राचीन और प्रचलित धर्मों के अनुयायिओ ने ईश्वर को एक निश्चित साकार रूप देकर उसके आदेशो का पालन अपना कर्तव्य मान लिया है और अभी तक अधिकाँश मे वे तदनुसार आचरण भी करते आये है। उन्होने अपने धार्मिक नियम भी अपनी लौकिक परिस्थिति की दृष्टि से प्रत्यक्षत उपयोगी और लाभदायक निश्चित किये है, जिनमे शीघ्र ही अधिक मतभेद होने की गुजायश नही रहती। पर हिन्दू-धर्म की स्थिति इस सम्बन्ध मे बडी द्विविधापूर्ण है। यदि यह कहा जाय कि यहाँ के समाज मे जितने स्तर के व्यक्ति मिलते है, उनके लिये उसी स्तर की धर्म-प्रणाली का निर्माण कर दिया गया है, तो यह अधिकाश मे

सत्य ही ठहरेगा। यहाँ पर ऐसे भी व्यक्ति है जो सडक पर पडे पत्थर को सेदुर लगा कर देवता के रूप मे पूज लेते है और ऐसे 'ब्रह्मज्ञानी' भी मौजूद है जो समस्त धर्म व्यवहारो को 'माया' बतलाते है और ईश्वर को एक भाव-रूप शक्ति के अतिरिक्त और कुछ नही मानते। वे लोग निस्सकोच भाव से 'अह ब्रह्मास्मि' का उद्घोष करके स्वय ही 'ईश्वर' होने का दावा करते है और सब लोगो से उसी प्रकार का व्यवहार किये जाने की माँग करते है।

वास्तव मे हिन्दू-धर्म शास्त्रो का इतना अधिक विस्तार हो गया है कि उससे एक निश्चित मत या तथ्य का निकाल लेना और सब लोगो को तदनुसार आचरण-व्यवहार करने की प्रेरणा दे सकना बडा कठिन कार्य है। जब तक इस शास्त्र रूपी सागर का भली प्रकार मथन न किया जाय तब तक सत्य-तत्त्व रूपी नवनीत का प्राप्त हो सकना सभव नही हो सकता।

जहाँ ससार के प्राय सभी धर्मो ने ईश्वर के निराकार या साकार—दो रूपो मे से किसी एक को स्वीकार कर लिया है और उसी प्रकार वे उसकी पूजा उपासना करते रहते है, वहाँ हमारे शास्त्रो मे एक ही स्थान पर ईश्वर को "निर्गुण और सगुण" दोनो बतलाया गया है और कह दिया गया है कि—

सगुणहि अगुणहि नहि कछु भेदा।
गावहि मुनि पुरान बुध वेदा॥
अगुन अरूप अलख अज सोई।
भगत प्रेम बस सगुन सो होई॥

वास्तव मे जिसने धर्म-तत्त्व का गहन अध्ययन करके उसके सार-तत्त्व को ग्रहण किया है उसकी व्यापक दृष्टि मे साकार-निराकार या सगुण-निर्गुण का भेद अधिक देर तक नही ठहर सकता। वह जानता है कि स्थूल-जगत मे भी सब वस्तुये आद्यावस्था मे इतने छोटे रूप मे रहती है कि उनको किसी प्रकार नही देखा जा

सकता और फिर वे ही क्रमश. स्थूल बनते हुये दिखाई पडने योग्य हो जाती है। इसी प्रकार प्रत्येक प्रकार की शक्ति भी जब तक निष्क्रिय अवस्था मे रहती है तब तक ऐसी अव्यक्त होती है जिसका कोई प्रमाण नही दिया जा सकता। पर जब वही किसी व्यवहार मे आने लगती है जो उसका अस्तित्व सब पर प्रकट हो जाता है और सबको उस पर विश्वास करना पडता है।

अवतारवाद का सिद्धान्त—

सभी आस्तिक धर्मो के अनुयायी ईश्वर को जगत का कर्ता और सचालक मानते है और साथ ही यह भी स्वीकार करते है कि उसकी तरफ से समय-समय पर ऐसे दैवीदूत (पैगम्बर) या ज्ञानी-महात्मा (जीवन्मुक्त) भेजे जाते है, जो सर्वसाधारण का मार्ग-दर्शन करके समयानुकूल और यथार्थ धार्मिक नियमो के पालन की शिक्षा देते है। पर हिन्दू-धर्म मे इससे भी बढ कर यह प्रतिपादित किया गया है कि ससार मे व्यवस्था कायम रखने और विशेष विकृतियो को दूर करने के लिये भगवान स्वय मानव-रूप मे अवतीर्ण होते है। भगवान सर्व-शक्तिमान है और वे जैसी परिस्थिति देखते है वैसी ही व्यवस्था कर सकने मे समर्थ है। उनका उद्देश्य, जिसकी पूर्ति के लिये उन्होने सृष्टि-रचना करके जीवात्मा को ससार मे भेजा है, यही है कि उसका क्रमश: विकास और उत्थान हो और वह निरन्तर प्रगति करता हुआ ज्ञानपूर्वक उनका सान्निध्य प्राप्त कर ले। इस लिये ससार मे जब किन्ही मार्गच्युत व्यक्तियो या किसी समुदाय द्वारा इस प्रगति-पथ मे बाधा डाली जाने लगती है—विकास की गति मे रोडा अटकाया जाने लगता है, तभी वे उस अवरोध को मिटाने के लिये स्वय आते हैं अथवा प्रेरणा देकर किसी जीवनमुक्त महात्मा को इसकी पूर्ति मे लगा देते हैं। इसी भावना के आधार पर भारतवर्ष मे राम, कृष्ण, बुद्ध आदि को अवतार और विदेशो मे जरदुश्त, मूसा, ईसा, कनफ्युशस, मोहम्मद आदि को ईश्वर के प्रतिनिधि (पैगम्बर) माना गया है।

भारतीय धर्मशास्त्रो की मान्यता है कि सभी मुख्य अवतारो का एक विशेष उद्देश्य किसी ससार व्यापी आवश्यकता को पूरा करने का रहता है। अथवा गीता के शब्दो मे यो कहना चाहिये कि "जब ससार मे अधर्म की वृद्धि और धर्म की हानि होने लगती है और इस कारण मानव-प्रगति का मार्ग अवरुद्ध हो जाता है और दुष्ट स्वभाव के लोग उसे मनमाने ढग से चलाना चाहते है, तब भगवान उस गति-रोध को समाप्त करने के लिये और साथ ही मनुष्यो को यह शिक्षा देने के लिये आते है कि वे भविष्य मे वैसा अनुचित काम करके अपने और अन्य लोगो के ऊपर सकट न बुलाये।" हिन्दू शास्त्रो के अनुसार अब तक जो नौ अवतार हो चुके है उनमे से जन्तु-जगत से सम्बन्धित तीन—मत्स्य, कच्छप और बाराह को छोड कर शेष छ: विश्व की किसी महती आवश्यकता अथवा सकट के निवारणार्थ ही अवतरित हुए थे, उनके प्राकट्य का उद्देश्य क्या था इसकी जो व्याख्या विभिन्न दृष्टिकोणो से की जाती है उसमे कुछ अन्तर होने पर भी मूल तथ्य मे समता ही देखने मे आती है।

सबसे पहला स्थान हमारे पुराणो का है, क्योकि उन्होने अवतारो की जीवन-घटनाओ को अधिक से अधिक विस्तार देकर रोचक कथाओ की प्रणाली प्रचलित की है। उन कथानको का सकेत बगाल के महाकवि जयदेव ने अपने 'गीत गोविन्द' काव्य ग्रन्थ मे निम्न श्लोको मे दिया है—

तव कर कमल वरे नखमद्भुत शृङ्गम्
दलित हिरण्यकशिपु तनु भृङ्गम्।
केशव धृत नरहरि रूप जय जगदीश हरे ॥

"हे नृसिह देव! आपने अत्यन्त विशाल हाथो के तीव्र नखो से महादैत्य हिरण्यकशिपु के शरीर के टुकडे-टुकडे कर डाले। हे भगवान आपकी सदा जय हो।"

और अलकारिक भाषा मे उनकी महिमा और गुणो का गान किया है, जिससे सर्व साधारण मे आस्तिकता और भगवद्भक्ति की वृद्धि हो।

मनुष्य-जीवन की विभिन्न अवस्थाएँ और अवतार—

जिन विद्वानो ने अवतारो की कथाओ पर बुद्धिवाद की दृष्टि से विचार किया है उन्होने यह निष्कर्ष निकाला है कि इनका वास्तविक आशय मानव-जीवन की क्रमोन्नति से है। यह तो सभी मानते है कि मनुष्य के आविर्भाव से पहले 'जीव' की गति पशु-विभाग तक ही सीमित थी। पशु और मनुष्य मे मुख्य अन्तर यह है कि पशु मे 'अहकार' अर्थात् व्यक्तित्त्व का भाव नही होता। उनमे केवल समष्टि-भाव होता है जिससे सामूहिक भावना उन्हे जन्म से ही प्राप्त हो जाती है। साथ ही उनमे लघु मानसिक शरीर का भी विकास होता जाता है जिससे कुछ समय पश्चात् वह अह-भाव (व्यक्तिगत जीवात्मा) को ग्रहण करने योग्य बन जाता है। इसी के पश्चात् मानव-युग आरम्भ हो सकता है।

'धर्म ज्योति' के लेखक के मतानुसार मनुष्य का "यह जीवन-काल प्रधानत दो भागो मे बँटा हुआ है—प्रवृत्तिकाल और निवृत्ति-काल। प्रवृत्तिकाल मे मनुष्यो मे ग्रहण करने की भावना ही अधिक पाई जाती है। इस लिये वह अपने लिये तरह-तरह के कर्म बन्धन उत्पन्न कर लेता है। निवृत्ति-काल मे मनुष्य धीरे-धीरे प्रवृत्ति के ऋणो को कम करता हुआ, अन्य प्राणियो से लेने के बजाय उन्हे कुछ देने का प्रयत्न करता रहता है। इस प्रकार प्रवृत्ति-अवस्था का स्वाभाविक नियम ग्रहण करना और निवृत्ति अवस्था का स्वाभाविक नियम त्याग करना है। इन दोनो के बीच एक मध्यम अवस्था भी होती है, जिसमे मनुष्य कभी भोग की ओर ज्यादा झुक जाता है और कभी त्याग की ओर। उस अवस्था मे उसके भीतर दोनो वृत्तियों का झगडा होता रहता है। पर अन्त मे मनुय को ऊपर

ले जाने वाली शक्ति नीचे ले जाने वाली शक्ति को दबा देती है और तब मनुष्य निवृत्ति पथ पर आरूढ हो जाता है।"

इस वर्णन से यह कभी नही समझ लेना चाहिये कि तीनो प्रकार की अवस्थाओ का परिवर्तन एक ही सॉसारिक-जीवन मे हो जाता है। वास्तव मे इनमे से एक-एक अवस्था को पार करके दूसरी मे पहुँचने तक सैकडो हजारो वर्ष लग जाते है। इसमे कोई बात असम्भव या अस्वाभाविक भी नही है। आत्म-विकास के लिये जीवात्मा को प्रत्येक अवस्था मे से गुजर कर उसका अनुभव प्राप्त करना पडता है, तभी वह अग्रसर हो सकती है। ससार मे स्थूल, सूक्ष्म, छायामय वासना-मय अनेक क्षेत्र है, जिनमे मनुष्य को रहना पडता है। यदि वह इनकी क्रम से जानकारी प्राप्त नही करेगा तो उसकी जीवात्मा को बीच मे ही कही भी रुक जाना पडेगा और उसका बहुत समय के लिये पतन हो जायगा।

प्रवृति और निवृत्ति के दो विभागों के नियम का ही यह परिणाम होता है कि अभी जो मनुष्य प्रवृत्ति-मार्ग पर चल रहा है उस पर निवृत्ति की बाते प्रायः असर नही करती। पर इसका अर्थ यह भी नही समझ लेना चाहिये कि विषयो मे लिप्त रहना मनुष्य के लिये कोई श्रेष्ठ बात है। कुछ भी हो, है तो वह निम्न अवस्था ही। इस लिये हमको यही उचित है कि ईश्वरीय विधान को शिरोधार्य करते हुये प्रवृत्ति-मार्ग का अनुभव प्राप्त करके यथा सभव शीघ्र उससे छुटकारे की कोशिश करे। हाँ, ऐसी जल्दी भी काम की नही कि जिससे पुन वापस लौट कर नीचे की गति मे पडना हो। जैसे बहुत से व्यक्ति सामर्थ और योग्यता न होने पर भी किसी के बहकाने से अथवा स्वय ही किसी उमग मे आकर गृहस्थ को भोगे बिना ही युवावस्था मे साधु-सन्यासी बन जाते है, पर कुछ समय बाद प्रवृत्ति के सस्कार जोर मारते है और वे उसी वेश मे कचन और कामिनी के फेर मे पड कर गृहस्थो से भी निम्न दशा मे पहुँच जाते है। इस प्रकार के ढोग से उनका इतना आत्म-

पतन होता है कि उन्हे जो गति प्राप्त होती है, उसे नर्कवास के अति-रिक्त और कुछ नही कहा जा सकता ।

अवतारों का उदाहरण—

इस लिए जीवात्मा का क्रम-विकास होकर मुक्ति अवस्था तक पहुँचने के लिए यह आवश्यक है कि मनुष्य प्रवृत्ति और निवृत्ति की सभी अवस्थाओ को भोगता हुआ उनसे अनुभव और शिक्षा ग्रहण करे और आगे बढकर ऊँचे दर्जे मे प्रविष्ट हो। भगवान के जिन छ. अवतारो का मानव रूप मे होना वर्णन किया गया है उनका आशय उन छ. मुख्य अवस्थाओ से है जिनमे होकर वर्तमान मन्वन्तर की मानव जाति को गुजरना पडा है। इनका विवेचन करते हुए इस विषय के ज्ञाताओ ने जो मत प्रकट किया है उसका साराश नीचे दिया जाता है ।

मानव-अवस्थाओ की दृष्टि से पहला अवतार नरसिह भगवान का है। यह जीव की उस अवस्था का सूचक है जब यह पशु-विभाग को पार करके मानव विभाग मे प्रविष्ट ही हुआ था । पर मनुष्य होते हुये भी उसकी बहुत सी वृत्तियाँ और आचरण पशुओ जैसे ही थे । यह जगली अथवा आदिम मनुष्यो की अवस्था है। इस पाशविक अवस्था मे एक मनुष्य दूसरे को मार कर खा भी जाता था । पर धीरे-धीरे इस प्रवृत्ति का निरोध होने लगता है और वह अपनी जाति वालो अर्थात् मनुष्यो को छोडकर अन्य प्राणियो को ही मारने लगता है ऐसे जगली मनुष्यो की निन्दा करने या उनसे घृणा करने का कोई कारण नही। प्रत्येक मनुष्य को आरम्भिक-काल मे इसी अवस्था मे होकर गुजरना पडा था। इसको मानवता का शैशवकाल कह सकते हैं। इसको जीव की 'शूद्रावस्था' भी कहा जा सकता है ।

दूसरा वामन अवतार हुआ । यह उस अवस्था की सूचना देता है जब जीव जगली अवस्था से सुधर कर आगे बढता है और उसमे मानवता के कुछ लक्षण चाहे वे अपूर्ण ही हो—दिखलाई देने लगते है । इस अवस्था मे मनुष्य समाज मे रहने लगता है और सामाजिक नियमो

का कुछ पालन भी करने लगता है, तो भी उसमे आपाधापी की प्रवृत्ति ऐसी प्रबल होती है कि वह चाहता है कि ससार के समस्त पदार्थ उसी को मिल जाये। 'वामन भगवान' देखने मे तो छोटे से थे, पर दान मे पृथ्वी को नापा तो तीन ही चरणो मे तीनो लोको को ग्रहण कर लिया। इसे प्रवृत्ति-मार्ग का कुछ उन्नत रूप माना गया है। इसे जीव की 'वैश्यावस्था' भी कह सकते है।

तीसरा अवतार परशुराम जी का हुआ। यह जीव की उस अवस्था की सूचना देता है। जब मनुष्य स्थूल पदार्थो को जमा करते-करते उनसे थक जाता है, उसे मानसिक शॉति नही मिलती तो वह प्रवृत्ति-मार्ग से हटकर निवृत्ति की तरफ ध्यान देने लगता है। वह एक साथ तो प्रवृत्ति को नही त्याग सकता पर स्थूल पदार्थो के बजाय शक्ति और अधिकार की लालसा करने लगता है। परशुराम कुछ अशो मे त्यागी थे पर बडे क्रोधी और शक्ति के उपासक थे। यह जीव की मध्यम अवस्था (प्रवृत्ति-निवृत्ति का सयोग) का प्रथम स्वरूप है। इसे 'क्षत्रिय-अवस्था' का पूर्व भाग भी कह सकते है।

फिर रामावतार का वर्णन आता है। भगवान राम के जीवन मे प्रवृत्ति और निवृत्ति का काफी सघर्ष दिखलाई पडता है। चाहे उनके पारिवारिक जीवन को देखा जाय और चाहे राजनैतिक-जीवन पर दृष्टि डाली जाय उनको सदा दोनो ओर खीचने वाली शक्तियो के बीच मे चलकर प्रयत्नपूर्वक ही अपना मार्ग निकालना पडा। वन-गमन और सीता-परित्याग की घटनाये इसी की उदाहरण है। इस तरह का जीवन ऊपर से तो कठिनाइयो से भरा और कष्ट-पूर्ण जान पडता है, पर कर्तव्य-पालन की उच्च मनोवृत्ति का पालन करने से उसमे मनुष्य को बडा आन्तरिक आनन्द प्राप्त होता रहता है। यह जीव की 'क्षत्रिय अवस्था' का उच्च आदर्श-युक्त जीवन कहा जा सकता है।

कृष्णावतार मनुष्य की क्रमोन्नति मे उस अवस्था का सूचक है जब मनुष्य प्रवृत्ति और निवृत्ति के सघर्ष मे से गुजर कर निवृत्ति की

श्रेष्ठता को जान लेता है और उस मार्ग पर दृढता-पूर्वक चलने का प्रयत्न करने लगता है। इसमे स्वार्थ-भाव की कमी होने लगती है और मनुष्य दूसरो के साथ निःस्वार्थ भाव से प्रेम करना सीखने लगता है। बृन्दावन के बाल कृष्ण की वशी की ध्वनि किस प्रकार स्त्री-पुरुष, पशु, पक्षी, वृक्ष-लता, नदी, पर्वत आदि सबको मोह लेती थी, यह इस बात का सूचक है कि निवृत्ति मार्ग पर चलने वाला इसी प्रकार विश्व-व्यापी प्रेम का स्रोत बनने लग जाता है। इसमे व्यक्तिगत स्वार्थ बहुत कुछ जाता रहता है और वह सब प्राणियो के हित के लिये चेष्टा करने मे आनन्द अनुभव करने लगता है। इसको जीव की 'ब्राह्मण-अवस्था' का पूर्व भाग कहा जा सकता है।

बौद्धावतार मे जीव की जिस अवस्था का दिग्दर्शन कराया गया है उसे 'ब्राह्मण-अवस्था' का उत्तर भाग कह सकते है। पहले भाग मे जीवात्मा को सामाजिक प्रेम, सेवा, नि स्वार्थता आदि गुणो का अभ्यास हो जाता है। अब छठी अवस्था आने पर आत्मा गुप्त आभ्यन्तरिक शक्तियो को विकसित करके सामूहिक रूप से समस्त विश्व की कल्याण भावना को परिपक्व करने लगती है। इस जीवन मे भी मनुष्य को अनेक विघ्नो का सामना करना पडता है, तरह-तरह के आकर्षक प्रलोभनो से अपने को बचाना पडता है। जो जीव उनकी तरफ ध्यान न देकर आत्मोन्नति का लक्ष्य ही सम्मुख रखता है वह सब कष्टो और विपत्तियो को सह कर पूर्ण मनुष्यता प्राप्त करके महा-मानव की श्रेणी मे पदार्पण करता है। निवृत्ति की अवस्था का यह अन्तिम लक्ष्य होता है।

इस विवेचन से यह परिणाम नही निकालना चाहिये कि परशु-राम, भगवान राम, कृष्ण आदि केवल भावनात्मक या काल्पनिक ही है, वास्तविक रूप मे वे कभी नही हुए। वरन हम यह कह सकते है कि ये अवतार अपने समय के सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति—परमात्मा के अ श स्वरूप थे, इस लिए विद्वानो ने उस युग का आदर्श (युग-पुरुष) अथवा प्रतिनिधि

उन्ही को माना और उनके गुणो का वर्णन करके लोगो को उससे लाभ उठाने की प्रेरणा दी । यह तो प्रत्यक्ष ही है कि सब जीवात्मा एक साथ किसी भी नीच या उच्च अवस्था को प्राप्त नही हो सकते । यदि ऐसा हो तो भगवान की बनाई इस बहुरगी दुनिया की विशेषता और आकर्षण ही समाप्त हो जाय । इस लिए अब भी ससार मे जगली से लेकर योगियो और महात्माओ तक छ श्रेणियो मे से प्रत्येक के व्यक्ति मौजूद है । और सच पूछा जाय तो अभी नीची श्रेणी के व्यक्तियो की ही भरमार है । ऊँची श्रेणी के नि स्वार्थ भावना वाले तो सौ मे से दो-चार और विश्व-कल्याण के व्रतधारी हजारो-लाखो मे से एक मिल सकते है ।

इस लिये जब हम अवतारो की प्रत्यक्ष लीलाओ का वर्णन या अभिनय करते है और उनको भगवान के स्वरूप मे पूजते है तो साथ ही हमको उनकी आन्तरिक विशेषताओ पर भी ध्यान देना चाहिये । उनके उदाहरण से हमको समझना चाहिये कि ससार मे बाधाओं अथवा कठिनाइयो से घबराना और भागना ठीक नही, वरन् छोटा-बडा घटिया-बढिया जो कुछ दिखाईपडता है वह सब भगवानके विधानके अनुसार ही है भगवान ने जीव को प्रयत्न करने की शक्ति अवश्य दी है जिससे वह चाहे तो प्रयत्न करके किसी भी दर्जे को अन्य लोगो की अपेक्षा शीघ्र पार कर सकता है, पर नियमित विकास के लिए सब जीवात्माओ को उपरोक्त सभी अवस्थाओ मे से गुजर कर उनका अनुभव प्राप्त करना अनिवार्य है ।

अवतारो के जीवन पर विचार करने का यह एक बुद्धिसगत और लाभदायक तरीका है । इसको ठीक प्रकार समझ लेने से हम किसी भी अवस्था मे रहने पर उसका उत्तमता-पूर्वक उपयोग कर सकते है और क्रमानुसार आगे बढ़ते चले जा सकते है । अवतार एक प्रकार से हम सबके, मानव-जाति के आदर्श स्वरूप है और वे ही प्राचीन काल से हमारा मार्ग-दर्शन करते आये है । उनकी भक्ति और पूजा करने के लिये

आवश्यक है कि हम केवल उनकी मूर्तियो के आगे भेंट पूजा रख कर ही सतुष्ट न हो जाये वरन् उनको गुणो को भी अपने भीतर न्यूनाधिक परिमाण मे ग्रहण करने की चेष्टा कर। भगवान इन सब रूपो मे, मनुष्यो को अपना कर्तव्य-पालन करते हुए लौकिक और पारलौकिक क्षेत्र मे अग्रसर होने की शिक्षा देने के लिए ही अवतरित हुए थे।

भौतिकवादो दृष्टिकोण—

जो लोग धार्मिक प्रश्नो पर भौतिकवादी, सामाजिक या, राजनैतिक दृष्टिकोण से विचार करते है, उन्होने भी जीवन के भौतिक विकास तथा अवतार सिद्धान्त मे समन्वय ढ ढने की चेष्टा की है। उनका कहना है कि प्रथम चारो अवतार वैज्ञानिक विकास-सिद्धान्त के पूर्णतया अनुकूल है। वैज्ञानिक यह स्वीकार करते है कि पहले समस्त पृथ्वी जलमयी थी, इससे सबसे पहले जलचर जीव, जिनको सामान्य रूप से मछली ही कहा जा सकता है; उत्पन्न हुये। शास्त्रो ने भी जीव का प्रथम अवतार 'मत्स्य' ही बतलाया है। फिर कालक्रम से जब जल के भीतर से पृथ्वी के छोटे-छोटे टुकडे निकलने आरम्भ हो गये या वातावरण मे परिवर्तन होने के प्रभाव से 'कच्छप' (कछुआ) श्रेणी के जीवो का आविर्भाव हुआ जो इच्छानुसार जल-स्थल दोनो मे रह सकता है। शास्त्रकारो ने भी दूसरा अवतार 'कूर्म' या कछुआ को ही बतलाया है।

इसके पश्चात् जब भूमि के बडे-बडे टुकडे बाहर निकल आये और वातावरण मे परिवर्तन होने से उनमे कुछ वानस्पतिक खाद्य-सामग्री (घास-फूस झाडी आदि) उत्पन्न हो गई तो ऐसे जीवो की उत्पत्ति हुई, जो इन पदार्थों पर निर्वाह कर सकते है, पर जल और कीचड से भी नही डरते थे। क्योकि उस समय जल से निकली हुई पृथ्वी का पूर्ण रूप से शुष्क होना सम्भव न था, उसमे जगह-जगह जल से भरे गड्ढे और दल-दल का होना अनिवार्य था। ऐसे वातावरण

मे जिस पशु का निर्वाह होना सम्भव था वही उस समय उत्पन्न हुआ। अत. तीसरा अवतार 'वाराह' कहलाया इसमे कोई आश्चर्य नही। अन्य जीव जहाँ कीचड मे फँस जाने से घबडाते है, अधिक गहरे चले जाने पर मर भी जाते है, वहाँ 'बाराह' अपने शक्तिशाली दाँत के प्रहार से कीचड को दूर-दूर तक फेक कर उसे सुखा ही डालता है।

'नरसिह' 'भगवान' का वर्णन स्पष्ट रूप से प्राणी विकास के उस युग का सूचक है जब पशु-जगत मे हाथी, गैडे, सिह, शार्दूल जैसे पशु उत्पन्न होकर पृथ्वी तल को हलचल पूर्ण बना चुके थे, उनका लघु-मानसिक विकास भी एक विशेष सीमा तक हो चुका था, तब परिवर्तन-चक्र के अनुसार ऐसे जीवो का आविर्भाव हुआ जिनमे पाशविक वृत्तियो के साथ कुछ मानवीय गुणो का भी समावेश था। विज्ञान मे ऐसे जीवो को 'वनमानुष' कहा-गया है और भू-गर्भ मे से उनकी ठठरियाँ निकाल कर उनकी शारीरिक विशेषताओ का एक हद तक पता लगा लिया गया है। 'नरसिह' उसी युग के प्रतिनिधि है और एक दृष्टि से विचार किया जाय तो उनको पशु और मानव की शृ खलाओ को जोडने वाली कडी कहा जा सकता है।

'वामन-भगवान' से मानव-जाति का आरम्भ स्वीकार किया जा सकता है। उनका आविर्भाव उस समय हुआ जब वन-मानुष सैकडो पीढियो तक प्रगति करता हुआ सहयोग पूर्वक रहना सीख गया। उसे अनुभव हो गया कि वन्य-प्रदेश के अन्य विशाल-काय और शक्तिशाली जीवो के मुकाबले मे वह तभी ठहर सकता है जब सघबद्ध होकर कार्य करने की विधि से काम लेने लगे। पर उनकी यह सहयोग-भावना आत्मरक्षा और आक्रमण तक ही सीमित थी। जीवन-निर्वाह की सामग्रियो के लिये वे आपस मे लडने-झगडने लग जाते थे। धीरे-धीरे उनमे परिवारो और वर्गों का सगठन होने लगा और वे समझौते से काम करने के लाभ समझने लगे। वामन-भगवान का कथानक उसी युग के मानवो से सम्बन्ध रखता है जब कि उनमे मानवता की अनेक

प्रवृतियाँ उत्पन्न हो गई थी पर बौद्धिक दृष्टि से अभी उनका विकास बहुत कम हुआ था और इस लिए पूर्ण बुद्धिमान मनुष्य के मुकाबले मे वे वामन' या 'बौना' ही कहे जा सकते थे ।

मनुष्य का बौद्धिक और सामाजिक विकास आरम्भ मे धीरे-धीरे ही होता रहा, पर जब सगठित हो जाने से और कृषि कार्य आरम्भ कर देने से उनको जीवन-निर्वाह की सामग्री की सुविधा हो गई तो शारीरिक शक्ति की वृद्धि शीघ्रता पूर्वक होने लगी और उनमे से कितने ही व्यक्ति अपनी शक्ति के मद से कम शक्ति वालो के साथ अन्यायपूर्ण व्यवहार करने लगे । वे स्वय परिश्रम करके उपार्जन करने के बजाय दूसरो की सामग्री को लूट-मारकर अपहरण कर लेनेमे बडप्पन और लाभ अनुभव करने लगे जब यह प्रवृत्ति बहुत अधिक बढ गई और इसके कारण समाज का विघटन होने लग गया तब कुछ शक्ति और बुद्धि सम्पन्न पुरुषो ने इसका अन्त करने का निश्चय किया । इनमे श्री परशुराम जी अग्रगण्य थे और उन्होंने अपनी शक्ति की वृद्धि और सुदृढ सगठन करके लूटने की प्रवृत्ति वाले लोगो के मूलोच्छेद का अभियान आरम्भ किया और उनको दण्ड के रूप मे इतनी शिक्षा दी कि वे अनाचार और अत्याचार करना भूल गये । तब समाज मे एक नये युग का श्री गणेश हुआ ।

राम-चरित्र तो वर्तमान समय तक समाज के लिए एक आदर्श माना जाता है । यद्यपि उस समय व्यावसायिक अथवा औद्योगिक दृष्टि से समाज बहुत आरम्भिक दशा मे था और वर्तमान अर्थों मे सभ्यता का उद्भव भी बहुत कम हो पाया था, पर भगवान राम ने उस समय भी जिस सामाजिक-मर्यादा की स्थापना की वह न्याय, सरलता और सचाई के नियमो पर आधारित थी । इस लिए जीवन-निर्वाह की सामग्री बहुत सीमित और पुराने ढग की होने पर भी लोगो का जीवन सुखी बन गया था । भगवान राम के समय मे ही साम्राज्यवादी योजनाओ का प्रमुख प्रसारकर्ता रावण उत्पन्न हुआ जिसने अपनी सैनिक शक्ति

बढाकर समस्त आर्यावर्त पर एकतत्रीय अधिकार जमाने की चेष्टा की। पर भगवान राम ने उसे अपनी दृढता और त्याग-तपस्या के बल पर असफल कर दिया, जिसके उपलक्ष्य मे वे आज तक भारतवासियो की दृष्टि मे परमात्मा के एक विशेष अवतार के रूप मे पूज्य और उपास्य बने हुये है।

भगवान कृष्ण भी साम्राज्यो और साम्राज्याभिलापियो के विध्वसक थे। कस के साथ तो जन्मकाल से ही उनका विरोध था और युवावस्था मे पदार्पण करते ही जरासन्ध से भी-जो उस समय एक बडे भूभाग की सम्राट पदवी को प्राप्त कर चुका था—उनकी शत्रुता हो गई। इसके सिवाय उस समय दुर्योधन, शिशुपाल, पौण्ड्रक, हस-डिम्भक आदि और भी अनेक राजा सम्राट बनने की चिन्ता मे व्यस्त थे और अपनी प्रजा का शोषण करके सैन्य शक्ति को बढ़ाने मे जुटे हुये थे। भगवान कृष्ण ने अपनी नीतिज्ञता और दूरदर्शिता से इन स्वार्थपर एकतन्त्र शासको का अन्त करके ऐसी परिस्थिति लादी जिसमे हजारों वर्ष तक देश मे गण-तत्र शासन प्रचलित रह सका। देश की राजनैतिक स्थिति का परिवर्तन करने के साथ ही भगवान कृष्ण समाज मे सेवा, सहयोग, प्रेम-भाव और कला की प्रवृत्तियो के प्रवर्तक और वृद्धि करने वाले भी हुये। उन्होने लोगो को आत्म-भावना का उपदेश दिया और समाज तथा धर्म की रक्षा के लिये मनुष्य को किस प्रकार निःस्वार्थ और निर्भय भाव से उद्यत रहना चाहिये इसका सर्वश्रेष्ठ उपदेश गीता द्वारा उपस्थित किया। उनका यही एक महान दैवी कार्य ऐसा है जिससे आज हम भारतवासी ही नही ससार के अन्य देशों के भी बहुसख्यक व्यक्ति उनको ससार की सबसे महान ईश्वरीय विभूति स्वीकार करते हैं।

भगवान बुद्ध का आविर्भाव समाज में उत्पन्न हो गई कितनी ही भयंकर सामाजिक कुरीतियों के उन्मूलन के लिए हुआ। उस समय यज्ञों मे पशुहिंसा की अत्यधिक वृद्धि के कारण अनेक प्रकार

से समाज का पतन होता जा रहा था और व्यक्तियो मे दोष-दुर्गुण बढते जाते थे । बुद्ध ने स्वय त्याग और तपस्या का उत्कृष्ट उदाहरण उपस्थित करके लोगो को झूँठे अन्धविश्वासो को त्याग कर सत्य, अहिंसा, दया, क्षमा के मार्ग पर चलने की शिक्षा दी । इसका परिणाम यह हुआ कि धर्म मे से ढोग का बहुत कुछ निराकरण हो गया और शूद्र तथा स्त्रियो की स्थिति मे सुधार होकर वे समाज के उपयोगी अ ग बना लिये गये । इससे भारतीय समाज की शक्ति मे वृद्धि हुई और लगभग एक डेढ हजार वर्ष तक यहाँ काफी प्रगति-शील शासन-सस्थाये स्थित रह कर जनता मे सुख-सुविधा का वातावरण बनाये रही । भगवान बुद्धका समस्त समाजके लिये इतना प्रतिदान सामान्य बात नही थी उसने देश की काया पलट ही कर दी और आज २५०० वर्ष बीत जाने पर भी उनके कारण भारत का समस्त जगत मे सम्मान किया जाता है । ऐसी ही अलौकिक आत्माओ को जीवन्मुक्त अथवा अवतार कहा जाता है । चाहे भौतिकतावादी अलौकिकता पर विश्वास न करे, पर महात्मा बुद्ध की विशेषता और श्रेष्ठता के सम्मुख उनको भी नतमस्तक होना पडता है ।

इस बात का कोई महत्व नही कि ऐसे महामानवो को किस नाम से पुकारा जाय । अवतार, जीवन-मुक्त, पैगम्बर, जगत त्राता उद्धारकर्ता, अतिशानव आदि शब्द एक ही भाव को प्रकाशित करते है । जिस समय समस्त ससार अथवा कोई महा-जाति भीषण सकट मे ग्रस्त हो जाती है और उसे चारो ओर नाश-सर्वनाश की विभीषिका के दर्शन होने लगते हैं, जब सकट से बचने के लिये किये गये उनके समस्त प्रयत्न निष्फल सिद्ध होते है और अनुभव होता है कि कोई व्यक्ति परिस्थिति का सुधार नही कर सकता, तब छोटे-बडे सभी व्यक्तियो के हृदय मे यह भावना उठने लगती है कि कोई ऐसी अलौकिक शक्ति प्रकट हो जो इस 'असम्भव' जान पडने वाले कार्य को सम्भव कर दे । हमारे देश मे राम, कृष्ण, बुद्ध, शकर, चैतन्य और विदेशो

मे जरदुश्त, कनफ्यूशस, मूसा, ईसा, मुहम्मद आदि का आविर्भाव ऐसे ही अवसरो पर हुआ था। देखने मे वे भी अन्य लोगो की तरह चार हाथ-पॉव और पॉच इन्द्रियो से युक्त मनुष्य ही थे, पर उनके अन्तर मे विश्व-ब्रह्माण्ड का सचालन करने वाली उस महान चैतन्य-सत्ता का प्रकाश इस प्रकार जगमगा रहा था कि उनको उस निराशा के अन्धकार मे सत्य-मार्ग दिखलाई पड गया और उन्होने उसके द्वारा ससार मे एक नई क्राति उपस्थित करके मानव-समाज को नष्ट होने से बचा लिया। तब सर्व साधारण ने उनकी पूजा की और उनकी असाधारण शक्ति को देखकर उनको 'अलौकिक पुरुष' मान लिया। इसी भाव को हम 'अवतार' के द्वारा प्रकट करते है।

ऊार 'अवतार' का जो विवेचन मनुष्य के मानसिक-विकास और सामाजिक-विकास ही दृष्टि से किया गया है, उसका आशय यह नही कि 'भारत के अवतार' कल्पित है अथवा वे सामान्य व्यक्ति ही थे इस बात को सभी समझदार लोगभी स्वीकार करते है कि अवतारके रूप मे प्रसिद्ध ये महामानव, एक नवीन युग के स्थापनकर्ता हुएहै और उन्होने' किसी महासकट से मानवता की रक्षा करके उसे प्रगति मार्ग पर अग्रसर होने की शक्ति प्रदान की है। कुछ लोग, जिनको हम'ज्ञानमार्गी कह सकते है, इस युग-परिवर्तन' की घटना को प्रधान रूप से भावनात्मक मानने है और उसने किसी व्यक्ति विशेष के भाग को गौण ही बतलाते हे। दूसरे लोग जिनको 'भक्ति-मार्गी' कहा जा सकता है, इसमे भगवान के 'साकार अवतार' की महिमा का ही दर्शन करते है। इन दोनो विचार-धाराओ का विवेचन आगामी अध्याय मे किया जायगा।

दूसरा अध्याय

अवतार—भावनात्मक और मानव रूप में

बौद्ध-धर्म के अनुयाइयो मे, विशेपत तिब्बत के बौद्ध लामाओ और साधारण जनता मे भी यह किम्वदन्ती प्रचलित है कि 'यद्यपि गौतम बुद्ध' ने मानव शरीर को त्याग दिया और उनकी अस्थियाँ अभी तक स्मारक-स्वरूप रखी है, तो भी उन्होने वास्तव मे इस पृथ्वी का त्याग कभी नही किया।'' इससे हम यह तात्पर्य समझ सकते है कि यद्यपि बुद्ध भगवान का पार्थिव-शरीर नष्ट हो गया, पर उनका भावनात्मक देह निरन्तर पृथ्वी-मंडल मे विद्यमान रह कर अब भी अगणित मनुष्यो को प्रभावित कर रहा है।

अवतार के सम्बन्ध मे ये दोनो दृष्टिकोण प्राचीन काल से प्रचलित है। आधुनिक युग के विद्वान अधिकाँश मे भावनात्मक अवतार के समर्थक है, क्योकि किसी स्थूल-देहधारी व्यक्ति को ईश्वर मानकर उसकी बन्दना या उसके प्रति देव-भाव से श्रद्धा प्रकट करना उनकी रुचि के अनुकूल नही है। दूसरा कारण यह हो सकता है कि वर्तमान समय मे हमारे देश मे बहुसख्यक व्यक्तियो ने स्वयम् अवतार होने की घोषणा करना आरम्भ कर दिया है। अन्य देशो मे भी इस प्रकार के कुछ लोग पाये जाते है, जो दैवी-प्रतिनिधि होने का दावा करते हैं। इन लोगो की स्थिति और कार्यों को देखकर समझदार व्यक्तियो की अवतार-सम्बन्धी धारणा और भी खराब हो जाती है, और वे अवतार सिद्धान्त का ही विरोध करने लग जाते है। पहले हम पाठको के समक्ष भावनात्मक अवतार मे विश्वास रखने वाले सज्जनो का दृष्टिकोण उपस्थित करते हैं, जिससे विदित हो सकेगा कि वर्तमान समय के अधिकाश शिक्षित व्यक्ति अवतार को किस रूप मे मान रहे हैं।

भावनात्मक दृष्टिकोण--

इस दृष्टिकोण के धार्मिक व्यक्ति जो समार की वर्तमान दुर्दशा को ध्यानपूर्वक देख रहे है, उनको इसके सुधार और परिवर्तन की आवश्यकता अनुभव होती है। वे मानते है कि कपडा मैला हो जाता है तो उसे धोकर साफ करना पडता है। इमारत सडक, मशीन, मोटर सबको उपयुक्त दशा मे रखने के निमित्त समय-समय पर मरम्मत करनी पडती है। जराजीर्ण सामाजिक-व्यवस्था की सफाई और मरम्मत भी समयानुसार होती रहनी चाहिये। इसके लिये सुधारको का आना-जाना बना रहता है। धर्मोपदेशक, समाज-सुधरक, मार्गदर्शक, देवदूत, सन्त, ऋषि, मुनि समय-समय पर आते-जाते रहते है और अपने काल की सामाजिक परिस्थितियो को देखकर उन्हे सँभालने, सुधारने का अपने अपने ढग से प्रयत्न करते है।

"पर जब परिस्थिति अधिक विषम हो जाती है तो विश्व-सचालिका शक्ति- महाकाल' को अपने शस्त्र सँभालने पडते है। मामूली गडबडी का उपाय सामान्य सुधारको द्वारा सम्पन्न हो सकता है, पर जब पाप सीमा को उल्ल घन कर जाता है, मर्यादाये टूट जाती है जन-मानस किसी शुभ प्रेरणा और सत् प्रभावसे प्रभावित होने की क्षमता खो बैठना है, तब 'महा सुधारक' की जरूरत पडती है इस कार्य को विश्व-सचालक (महाकाल) स्वय पूरा करते है। इन दिनो जन-जीवन जिस अनैतिक स्तर पर पहुँच गया है, उसमे अब छोटे सुधारको से काम चलता नही दीखता। अब उसके लिये बहुत बडी उलट-पुलट की--उथल-पथल की आवश्यकता अनिवार्य हो गई है। इस प्रयोजन की पूर्ति अनादि काल से 'महाकाल' ही करते रहे है। अब भी वे ही करने जा रहे है।"

आगामी कुछ ही वर्षों मे जिस उथल-पुथल की सभावना स्पष्ट दिखाई पड रही है, उसे भावनात्मक दृष्टिकोण वाले विचारक" भली प्रकार अनुभव करते हैं। वे कहते हैं कि अब ऐसी परिस्थितियाँ

उत्पन्न होने जा रही है कि जिनसे मनुष्य-जाति के कष्टो मे वृद्धि हो और उसकी ऐसी प्रताड़ना हो जिससे विवश होकर वह अपनी भूल को अनुभव करे और आगे लिये सावधान हो। अनीति अन्तत हानिकारक होती है, इतनी सी शिक्षा यदि लोग अपना सके होते तो आज प्रकृति को कुपित होकर रुद्र रूप नही धारण करना पडता और असख्यो व्यक्तियो को निरर्थक कष्ट नही भोगना पडता।"

यह परिस्थिति किसी दृष्टि से हितकारी नही कही जा सकती और भगवान को तो इस तरह लोगो को दण्ड देना पसन्द हो ही नही सकता। पर उनको यह सब कुछ बाध्य होकर करना पडता है। आज मानव-समाज जहरवाद (फोडे) का रोगी बन गया है और जब तक उसका आपरेशन करके दूषित मवाद को बाहर न निकाल दिया जायगा तब तक वह स्वस्थ्य नही हो सकता। इसी आवश्यकता की पूर्ति के लिये भगवान का 'अवतार' शीघ्र होने की आशा की जा रही है।

"अवतारो का सदा यही प्रयोजन रहा है कि किसी प्रकार अशान्ति का अन्त होकर शान्ति की स्थापना हो। महाकाल इस उद्देश्य से एक भावनात्मक प्रवाह उत्पन्न करते है। इस प्रवाह से जन-मानस उद्वेलित होता है और उसमे से ऐसे कितने ही 'योद्धा' निकल पडते हैं जो इस दैवी पुण्य-प्रयोजन की पूर्ति के लिये असाधारण पुरुषार्थ कर दिखाते है। भले ही उस अभियान के नेताओ मे से किसी एक को विशेष ख्याति मिल जाय, पर वस्तुत होता वह भावनात्मक प्रवाह ही है, जो सहज ही अनेक साथी-सहयोगी बनाकर खडे कर देता है। आश्चर्य-चकित लोग प्रभु प्रेरित सूक्ष्म जगत की विधि व्यवस्था को तो देख नही पाते, बाहर से जो सबसे प्रमुख व्यक्ति दीखता है, उसी के सिर पर श्रेय का सेहरा बाँध देते है।"

"अवतार या विजेता कोई एक घोषित किया जाता है—यह मनुष्यो की भूल भरी परख है। तत्वदर्शी जानते है कि एक व्यक्ति कितना ही बडा या समर्थ क्यो न हो, वह अनेक मनुष्यो के सहयोग के

बिना कुछ नही कर सकता । यह सामूहिक सघर्ष की प्रवृत्ति अदृश्य अवतार (महाकाल) ही समय-समय पर भडकाते है । वे निराकार है, इस लिए उनका कार्य-क्षेत्र भी सूक्ष्म जगत ही होता है। वे भाव-स्वरूप-चैतन्या है, इस लिये विश्वव्यापी चैतन्य-तत्व मे ही उनकी इच्छा सक्रिय होती है। उन्ही की स्फुरणा से प्रबुद्ध व्यक्ति बडे-बडे काम करने लगते है। उन्हे सहयोग, श्रेय,साफल्य उपलब्ध होना है। इस लिये उन्ही को कर्ता, विजयी, उद्धारक, अवतार मानते है। पर वास्तविकता कुछ और ही होती है। उनको प्रेरणा देने वाला सूत्रधार पर्दे के पीछे छिपा बैठा रहता है, उसे चर्म-चक्षु कब देख सकते है।

अनीति को हटाकर उसके स्थान पर औचित्य एव विवेक को प्रतिष्ठापित करने का दैवी प्रयोजन अनेक व्यक्ति पूर्ण करते है और उनको यश भी प्राप्त होता है। महत्व-पूर्ण अवसरो पर यह अवतरण प्रक्रिया अनादि काल से उपस्थित होती आई है। अब फिर वैसी ही परिस्थितियाँ उत्पन्न हो जाने पर उसी प्रकार की पुनरायवत्ति होने वाली है।

भावनात्मक अवतरण के उदाहरण—

"प्राचीन काल मे एक बार उत्पादन और वैभव ठप्प हो गया। सभी देव और असुर आलस मे ग्रसित होकर बैठ गये तब "महाकाल" ने समुद्र-मन्थन की प्रेरणा की। देवता और असुरो का सम्मिलित सहयोग सभव हो गया और समुद्र से ऐसे १४ 'रत्न' निकले जिन्हे पा कर ससार की समृद्धि अनेक गुनी बढ गई। पर समुद्र-मथन का कार्य सुचारु रूप से चलाने के लिए इस बात की आवश्यकता पडी कि इतनी भारी मथानी (पर्वत) को कहाँ रखा जाय ? उसका भार कौन सम्भालेगा ? तब कच्छप-अवतार आगे आया। उसने आधार बनना स्वीकार किया। उसी की पीठ पर समुद्र-मन्थन हो सका। कच्छप-अवतार की जय बोली गई, क्योकि उसने एक बडा उत्तरदायित्व सँभाला था।

फिर भी वे समुद्र-मथन की सारी प्रक्रिया करने वाले नही कहे जा सकते हैं। जिस वासुकि सर्प की रस्सी बनाई गई, जिन देवता और असुरो ने लम्बी अवधि तक अपार श्रम किया, जिस समुद्र ने अपने गर्भ से निकाल कर वे रत्न दिये, उन सभी का सहयोग महत्वपूर्ण था। वस्तुत: यह सभी की सम्मिलित विजय थी। तात्विक दृष्टि से देखा जाय तो इसका श्रेय भगवान द्वारा प्रेरित उस भावनात्मक प्रवाह को है, जिसने जन-मानस मे एक विशिष्ट हलचल और उत्साह उत्पन्न किया और इतने विशाल साधन जुटाने के कार्य को सभव बना दिया। तो भी घटना का वर्णन करने वाले लेखक उसका श्रेय कच्छप अवतार को देते है। इसमे कोई बडा दोष भी नही है। पूरी न सही एक महत्वपूर्ण भूमिका तो आखिर उनकी भी थी ही।"

हर अवतार मे इसी तथ्य की पुनरावृत्ति होती रही है। मत्स्य कूर्म, वाराह, नृसिह, वामन, परशुराम, कृष्ण, बुद्ध के चरित्रो पर व्यापक दृष्टि डालने से यही तथ्य उनमे अन्तर्निहित जान पडता है। अवतारी युग-पुरुष बडे-बडे अद्‌भुत काम कर दिखाते हैं। पर दो बाते हर 'अवतार' मे एक सी होती हैं—एक यह कि उनका उद्देश्य तत्कालीन अवाछनीय स्थितियो को बदलना होता है और दूसरा यह कि इस प्रयोजन मे जन-सहयोग की पर्याप्त मात्रा सम्मिलित होती है। इतना ही नही 'अवतार तभी होता है जब सारा जन-मानस क्षुब्ध और असन्तोष युक्त हो जाता है। इसी को अवतार के कथानको मे पृथ्वी का पीडित और भारग्रस्त होकर देवताओ और भगवान की शरण मे जाने के रूपक की भाँति वर्णन किया गया है।

"अब दसवाँ 'निष्कलक' अवतार इन दिनो हो रहा है अथवा यो कहना चाहिये कि हो चुका है। यह एक ऐसा भावना-प्रवाह है जिसका उद्देश्य हजारो वर्षो की कलककालिमा को धोकर मानवता का मुख उज्ज्वल करना है।" दसवे निष्कलक अवतार के नाम पर अन्तत. उस अभियान की सफलता का सेहरा किसके सिर पर बाँधा जायगा, इसमे

साधारण लोगो को भले ही दिलचस्पी हो, पर तत्त्वदर्शियो की दृष्टि उसका कुछ भी मूल्य नही। वे जानते है कि इतने बडे प्रयोजन की पूर्ति कोई एक व्यक्ति नहीं कर सकता। भगवान अपने विशेष प्रतिनिधि ससार मे भेजते रहते है। पर वे अ श-अवतार ही होते है। 'अवतार' की वेला मे अनेक प्रबुद्ध आत्माये एक साथ अवतरित होती है और वे मिल-जुलकर ही दैवी प्रयोजन की पूर्ति सभव करती है।

इस तथ्य को समझने वाले विचारक ऐसी युग-परिवर्तन की घटनाओ मे व्यक्तियो को कम महत्व देते है, वे भावना-स्रोत को ही पहिचानने का प्रयत्न करते हैं। इस समय इस प्रकार का जो प्रवाह समस्त विश्व को उद्वेलित कर रहा है, उसके पीछे एक ही लक्ष्य है -मानवता के अतीत कालीन उज्ज्वल गौरव की पुनः प्रतिष्ठापना। लम्बी अवधि तक विधर्मी शासन के नीचे पडे रहने और आवश्यक सघर्ष से बचते रहने की भीरुता का कलक हमारे मस्तक पर एक कालिमा की तरह लगा हुआ है। हम अवाछनीय स्थिति को इसलिये सहन करते रहे कि सघर्ष मे पडने से हमे कष्ट उठाने पडेगे, त्याग करने पडेगे। यह कलक एक साहसी, शूरवीर और आत्मा को अमर मानने वालो के लिये नि सन्देह बहुत घृणित है। अब जन-मानस मे यही भावना-प्रवाह उत्पन्न होकर हलचल मचा रहा है कि हम स्वाभिमानी, सत्य-निष्ठ, विवेकशील मनुष्यो की तरह जियेगे और हमारे जीवनो पर पिछली शताब्दियो मे जो कलक लगा है, उन्हे प्रायश्चित्तपूर्वक धो डालेगे। इस भावना-प्रवाह को 'निष्कलक अवतार' ही कहा जायगा।

दशम अवतार हो चुका है—वह पढ-बढ और परिपुष्ट हो रहा है। पौराणिक-भाषा मे उसका नाम है निष्कलक' क्योकि वह हमारी पिछली तथा वर्तमान दुष्प्रवृत्तियो, कलको को धोने आ रहा है। उसके द्वारा ऐसा भावनात्मक-प्रवाह उत्पन्न किया जा रहा है, जिससे लोग अपनी व्यक्तिगत आवश्यकताओ तथा समस्याओ मे ही उलझे रहने की बजाय खुशी से लोक-मगल सम्बन्धी कार्यों के लिये कटिबद्ध होगे।

इसके लिये बड़े-बड़े तप-त्याग करने मे भी सकोच न करेंगे। 'कल्कि-अवतार' का यह प्रत्यक्ष प्रेरणा-प्रवाह हम अपने चारो ओर प्रवाहित होते हुए इस समय भी आसानी से देख और अनुभव कर सकते है।

पर इस सक्रान्ति-काल (युग-सध्या) मे कुछ ऐसे व्यक्ति भी निकल पडते है जो इस महान उत्तरदायित्व का विचार न करके अवतार होने का दावा करने लगते है और ससार को भीषण परिस्थितियो मे मुक्ति दिलाने का वायदा करते है। इससे अनेक सीधे-साधे व्यक्ति मार्ग च्युत हो जाते है और 'अवतार' के वास्तविक कार्य मे सहयोग देने के बजाय उल्टी-सीधी बाते करने लगते है, जिससे इस महान-उद्देश्य को हानि पहुँचती है। ऐसे तथाकथित 'अवतार' उन घुस-पैठ करने वाले व्यक्तियो की तरह है, जो जहाँ कही लाभकारी स्थिति देखते है वही वैसा ही रूप बनाकर उपस्थित हो जाते है। जिस प्रकार वर्तमान समय मे शासनाधिकार पा जाने पर हजारो चलते-पुर्जा व्यक्ति शुद्ध खद्दर की पोशाक पहिन कर 'गाँधी जी के अनुयायी' बन बैठे और अन्त मे काँग्रेस का पतन कराने वाले सिद्ध हुए, इसी प्रकार ये 'अवतार' नामधारी भी 'निष्कलक अवतार' के कार्यक्रम मे सहायता पहुँचाने के बजाय स्वार्थ-पूर्ति की कार्यवाहियो से बाधक ही सिद्ध होगे।

"इस समय इतिहास की पुनरावृत्ति हो रही है। अवाछनीय अन्याय और अविवेक का उन्मूलन करके, सद्भावनाओ एव सत्-वृत्तियो का अभिवर्धन करने के लिए दसवाँ 'निष्कलक अवतार' फिर हो रहा है। आँख वाले उसका दर्शन कर सकते है और बुद्धि वाले ईश्वरीय-योजना मे सहयोग देकर अनन्त सौभाग्य के भागीदार बन सकते हैं।"

यहाँ तक अवतार के प्रयोजन और स्वरूप के सम्बन्ध मे भावनात्मकतावादी दृष्टिकोण का वर्णन किया गया। भगवान की सत्ता और ससार के लिये उनकी व्यवस्था को वे भी स्वीकार करते है और उनकी सर्वशक्तिमानता मे भी विश्वास रखते है, पर उनका विचार

है कि इस कार्य के लिये साक्षात् भगवान को मनुष्य शरीर धारण करने की आवश्यकता नहीं, वे किसी भी एक या अनेक व्यक्तियो को प्रेरणा, साहस, शक्ति प्रदान करके इस उद्देश्य को पूरा करा सकते है। यदि शास्त्रो का गम्भीर भाव से मनन किया जाय तो यह विचार-धारा भी उनमे पाई जाती है। इसे 'आधुनिक' ही समझा जाय यह कोई जरूरी बात नही। प्राचीन ऋषि-मुनियो मे से भी कितनो ने ही 'अवतार' की इसी रूप मे व्याख्या की है। उनका अभिमत है कि ससार की दशा का सुधार और परिवर्तन करने के लिए भगवान किसी उपयुक्त मानव के अन्तर मे अपनी विशेष शक्ति का प्रवेश करा देते है और जब वह प्रयोजन पूरा हो जाता है तो वह शक्ति भी निकल कर जहाँ की तहाँ पहुँच जाती है। विशेष उद्देश्य की पूर्ति भगवान की विशेष शक्ति से ही होती है पर ससार के देखने लिये एक या कुछ अधिक व्यक्ति उसके निमित्त बन जाते है।

प्रत्यक्ष अवतार के समर्थक—

दूसरा पक्ष उन भक्ति-भाव प्रधान विद्वानो का है जो भगवान के साकार रूप मे विशेष आस्था रखते है और कहते है कि मानव-समाज को शिक्षा और प्रेरणा देने के लिए भगवान को मानव-देह धारण करके अपनी लीला करनी चाहिये। ऐसा होने पर ही सामान्य मानव उसे हृदयगम कर सकता है और उसका अनुकरण करके सफल होने का विश्वास कर सकता है। यदि भगवान अपनी शक्ति का अतीन्द्रिय रूप से प्रयोग करके किसी महान प्रयोजन को पूरा कर दे, अथवा अस-भव बना दे, अथवा असभव को सभव बना दे, तो इससे साधारण मनुष्य का मानसिक बल नही बढ सकता। वह यही कहता रहेगा कि "यह तो भगवान की महिमा है, हम साँसारिक प्राणी उसकी समता किस प्रकार कर सकते है।" मानव-जीवन मे इस प्रकार के प्रत्यक्ष ईश्वरीय सहयोग की कितनी अधिक आवश्यकता है इस सम्बन्ध मे 'कमिङ्ग आफ वर्ल्ड सेवियर' (जगत-त्राता का आगमन) पुस्तक मे कहा गया है—

"ईश्वर के विना मानव-जीवन एक दुर्वह भार और न सुलझ सकने वाली समस्या है। भगवान से पृथक होते ही हमारा जीवन अपने मूल स्रोत, आनन्द, प्रसन्नता से पृथक हो जाता है। अपने आरम्भिक स्रोत से कटी हुई नदी की तरह वह थोडे ही समय मे सूख जाता है। इसके बिना किसी श्रेष्ठ और महान लक्ष्य की प्राप्ति नही हो सकती। बिना भगवान के जीवन का यथार्थ रूप मे जी सकना असम्भव है। आज मनुष्य भगवान को भूल गया है। वह सोचता है कि मैं स्वय ही अपना स्वामी हूँ और साँसारिक विषयो की जिस प्रकार चाहूँ व्यवस्था कर सकता हूँ। इसमे ईश्वर की कोई आवश्यकता नही। उसकी इसी मिथ्या अहम्मन्यता का परिणामहै कि आज मनुष्य अपने ही आविष्कारों के परिणाम स्वरूप मृत्यु के सामने खडा है और भयकर दुर्घटना होकर उसके सर्वनाश की सभावना पैदा हो गई है।

"आज ससार की सबसे बडी आवश्यकता 'भगवान' ही है। समस्त मानव-जाति को भगवान के समझने और मानने की आवश्यकता है। मनुष्य को ईश्वर के सम्बन्ध मे विचार करना चाहिये, ईश्वर के सम्बन्ध मे वार्तालाप करना चाहिये, ईश्वर को जीवन का मूल-आधार स्वीकार करना चाहिये और स्वेच्छापूर्वक जीवन के समस्त व्यापारो मे भगवान को पिता और सब मनुष्यो को भ्राता मानकर आचरण करना चाहिये। वर्तमान समय का समाज सगठन बिना किसी निश्चित योजना के अस्तव्यस्त हो गया है, उसमे अनेक प्रकार के अन्याय और असमानता का समावेश हो गया है। उसमे भगवान के पितृत्त्व और मनुष्यो के भ्रातृत्त्व का खण्डन कर दिया गया है और यही कारण है कि आज मानव जाति आत्महत्या करके जडमूल से नष्ट हो जाने की स्थिति मे पहुँचती जाती है।"

भगवान ही संसार का संचालक है--

बिना भगवान के मनुष्य सर्वथा अशक्त है। पर यदि मनुष्य असहाय है तो भगवान करुणासिन्धु है। आज मनुष्य को बहुत अधिक

मात्रा मे आध्यात्मिक सहायता की आवश्यकता है। इस समय मनुष्य के ऊपर भौतिकता का नशा, जिस प्रकार चढ गया है, उसे देखते हुए आवश्यकता है कि वह भगवान को फिर से समझे उनके लिये भगवान को फिर से सिद्ध करने की आवश्यकता है। उन्होने 'एटम बम' और 'हायड्रोजन बम' की शक्ति को देख लिया है, अब आवश्यकता है कि वे दुष्टता पर विजय पाने की ईश्वरीय-शक्ति को भी देखे। मनुष्य के सम्मुख यह प्रकट हो जाना चाहिये कि ईश्वर की महिमा कोई कहानी किस्सा है अथवा एक वास्तविक तथ्य ? इस समय बहुत आवश्यक है कि कोई इस बात का सबूत लोगो के सामने उपस्थित करे। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये मनुष्य तो ईश्वर की ऊँचाई तक पहुँच नही सकता इस कारण करुणा-सागर भगवान को ही मनुष्य-लोक मे अवतीर्ण होना पडेगा।

दैवी अवतरण—

जैसा कि इस समय देखने में आ रहा है, मनुष्य भगवान को उसी समय ठीक तरह से समझ सकता है जब वह मानव-शरीर मे उसके सामने खडा हो, चले-फिरे और उसके साथ मिलकर विविध प्रकार की लीलाये करे। ससार को भगवान की पूर्ण रूप से आवश्यकता है, वह भी केवल भावना रूप मे नहीं वरन् स्थूल दृष्टि मे भी।" वे ऐसा भगवान चाहते है जो उन्ही मे से एक जान पडे, उनकी चिन्ता करे, उनको प्रेम करे, उनके लिये परिश्रम करें, उनके लिए कष्ट सहन करे। वे चाहते हैं कि भगवान उनके पास आकर उनको शिक्षा दें, उनको नई दैवी-सम्पदा का मार्ग-दर्शन कराये और यह सब काम वह उन पर विशेष भार डाले बिना स्वय ही पूरा करे।"

मानव-जाति का इतिहास इस प्रकार के उदाहरणो से भरा हुआ है, जब दयालु भगवान ने पृथ्वी पर प्रकट होकर मानवता की रक्षा की। मनुष्य इस बात को जानते हैं, पर 'दैवी माया' के प्रभाव से फिर भूल जाते हैं। इस समय तो वे इस बात को स्वीकार करने

का साहस भी नही कर सकते कि वर्तमान समय मे भगवान मनुष्य रूप मे अवतार लेगे। वे जानते है कि प्राचीन समय मे भगवान ने कितनी ही वार अवतार लिया है, पर इस समय रक्त-मॉस से वनी देह मे जन्म लेकर वैसे कार्य कर सकते है, यह बात उनके मन मे नही बैठती। इसे आत्म-ज्ञान सम्बन्धी मूढता के अतिरिक्त और क्या कहा जा सकता है।"

भगवान कृष्ण ने आज से ५००० वर्ष पहले स्पष्ट रूप मे कहा था—"जब कभी धर्म-न्याय का पतन होता है और अधर्म प्रधानता प्राप्त कर लेता है, तो मैं जन्म लेता हूँ।" अगर उनके ये शब्द सत्य है, तो वे इस समय भी आ सकते है। हम इस बात को पढते और समझते भी हैं, पर इस पर हमारा दृढ विश्वास नही होता। इसमे लोगो का ज्यादा दोष भी नही है। भगवान की माया बडी प्रबल है और उसी ने इस समय मनुष्य की बुद्धि पर पर्दा डाल रखा है।

हम ऐसे सज्जनो से पूछना चाहते हैं कि क्या अब शक्ति की निगाह से भगवान दिवालिया हो गया है? क्या भगवान ने मनुष्यो से प्रेम करना छोड दिया है। क्या दैवी-अवतारो का युग समाप्त हो गया है। क्या ससार मे तर्क विज्ञान और 'बुद्धिमानी' की वृद्धि हो जाने से भगवान का आना रुक गया है? क्या भगवान 'एटम' और 'हायड्रोजन' बमो का आविष्कार हो जाने से भयभीत हो गया है? नही, इनमे से कोई बात ठीक नही है। तब उसके अवतार को रोकने वाली कौन-सी बात है? इसका एक मात्र उत्तर यही दिया जा सकता है कि 'कुछ भी नही'।

सब से खास बात याद रखने की यह है कि जगत-त्राता का काम केवल कुछ सद्गुणो की शिक्षा देना नही होता, वह केवल कुछ दार्शनिक तत्व या आर्थिक सिद्धान्त सिखलाने को नही आयेगा। जगत-उद्धारक आयेगा मानव जाति को बचाने के लिये, दुष्टता को मिटाने के लिये मनुष्यो के हृदय को बदलने के लिए, उनमे एक नवीन भावना

भरने के लिए, एक नवीन सभ्यता का श्रीगणेश करने के लिए और पृथ्वी पर सुख-शान्ति-समृद्धि को लाने के लिए। यही जगत-त्राता का कार्य हो सकता है। इसके लिये शक्ति की आवश्यकता होगी, और वह जगत उद्धारक इतनी आध्यात्मिक शक्ति लेकर आयेगा जिसकी मनुष्य कल्पना भी नही कर सकते। वे केवल परिणाम—फल को देखकर ही उसका निर्णय कर सकेंगे।

वर्तमान जगत और उसकी समस्या—

आज की दुनिया भगवान कृष्ण, या बुद्ध देव, अथवा ईसामसीह मुहम्मद आदि के सामने की दुनिया से सर्वथा भिन्न है। उस समय ससार छोटे-छोटे टुकडो मे बँटा था, जो एक दूसरे से अनजान थे और कभी अवसर पडने पर बडी कठिनाई से एक दूसरे के निकट पहुँच पाते थे। पर आज समस्त पृथ्वी एक साधारण देश की तरह बन गई, है, जिसके निवासी प्रति दिन परस्पर मिलते-जुलते रहते है और जिनके स्वार्थ भी अधिकाश मे एक ही होते है। यद्यपि इस समय समस्त ससार की समस्याये—भोजन, वस्त्र, मकान, शान्ति, प्रसन्नता सम्बन्धी एक ही है, पर उनको विभिन्न दृष्टि-कोण से देखा जाता है। इससे बडी उलझने पैदा हो गई हैं, जिन्हे सुलझा सकना मानव-बुद्धि के लिये असम्भव सिद्ध हो रहा है।

आज की सबसे बडी समस्या पृथ्वी पर मानव-जाति का अस्तित्व स्थिर रह सकने की है। यह प्रश्न किया जाता है कि मनुष्य पृथ्वी तल पर जीवित रहेगे या अपने ही अविष्कारो के फल स्वरूप मर मिटेगे ? आज की सबसे बडी समस्या है 'एटम बम' और 'हाय-ड्रोजन बम' का अन्त करने की। आज की बडी समस्या है सदा के लिये युद्ध का अन्त करने की और पूर्ण नि शस्त्रीकरण करने की और उनके मूल कारणो का भी अन्त कर देने की। आज की समस्या है मानसिक और नैतिक दृष्टि से शस्त्रो का सर्वथा त्याग करके मानव-जाति के आध्यात्मिक पुनर्जन्म होने की। आज की आवश्यकता है एक

विश्व-राज्य की स्थापना करके मानव-मात्र मे सहयोगात्मक, रचनात्मक और न्यायानुकूल प्रवृत्तियो का प्रचार करने की।

"ये सब महान परिवर्तन अनिवार्य रूप से अन्तरात्मा, हृदय और मस्तिष्क से ही प्रकट होगे। सडे-गले विचारो वाले मनुष्यो से नये जगत का निर्माण नही हो सकता। केवल आध्यात्मिक दृष्टि से पुनर्जन्म ग्रहण की हुई जाति ही शान्ति, समृद्धि, आनन्द से युक्त ससार की रचना मे समर्थ हो सकती हैं। इसका तात्पर्य है एक नवीन जगत और नये स्वर्ग की रचना करना। निश्चय ही इसके लिये आवश्यकता होगी सर्वोच्च आध्यात्मिक शक्ति और अभिरुचि की। ये सब कार्य मानसिक प्रयत्नो द्वारा ही पूर्ण किए जायेगे। पर इस समय मनुष्य तो अनेक दोषो के शिकार बने हुये, इस कार्य के अयोग्य दिखलाई पड रहे है। मनुष्यो की सामर्थ्य इस कार्य के लिये सर्वथा अपर्याप्त है, क्योकि इसके लिये मुख्यतया आध्यात्मिक प्रवृत्ति और आध्यात्मिक शक्ति की ही आवश्यकता होती है, जिनकी इस समय मनुष्यो मे बडी कमी देखने मे आ रही है। इस समय अगर मानव-जाति की रक्षा होनी है तो उसके लिये सर्वोच्च नैतिकता वाले व्यक्तियो के सामने आने और निस्वार्थ भावना से काम करने की जरूरत है। सामान्य श्रेणी के नर नारियो के लिये यह कार्य कल्पना से बाहर है। इसके लिए इस दृष्टि से पूर्णत उपयुक्त नेतृत्व की आवश्यकता पडेगी।

इसके लिये आवश्यकता है मनुष्यो के एक 'नये नेता' की—एक सच्चे मार्ग दर्शक की। उसमे ऐसी शक्ति होनी चाहिये कि वह मानवता को इच्छित लक्ष्य तक पहुँचा सके और मनुष्य मात्र के हृदय, मस्तिष्क, अन्तरात्मा पर नियत्रण रख सके। इस महान कार्य के लिये जिसकी आवश्यकता है, वह सिवाय भगवान के और कोई नही हो सकता। इसके लिये किसी भी दैवी प्रतिनिधि या 'दूत' (पैगम्बर) से काम नही चलेगा। सिवाय भगवद्-शक्ति के और कोई इस अवसर पर संसार की समस्या को नही सुलझा सकता।

"इस लिए अगर ससार मे कभी इस बात की आवश्यकता थी कि पृथ्वी पर 'भगवद्-शक्ति' का अवतरण हो और वह मानवीय रूप और मानवीय प्रणाली से ससार का उद्धार-कार्य करे तो वह अवसर इस समय उपस्थित है। अगर किसी जमाने मे कृष्ण, बुद्ध, ईसा और अन्य दिव्य आत्माओ के आने की आवश्यकता थी, तो वह आवश्यकता इस समय सैकडो गुने बडे रूप मे मौजूद है। यह स्थिति किसी उपयुक्त साधनो से युक्त 'महान शक्ति' के आविर्भाव की राह देख रही है। इस समय अगर ईश्वरीय हस्तक्षेप न हुआ तो ससार नष्ट हो जायगा और मानव जाति मर जायगी। अत इस समय ससार के प्रत्येक नर, नारी और बालक के लिये जगत्-उद्धारक का आगमन जीवन और मरण का प्रश्न है।"

"इस बार अवतार लेने पर भगवान ससार के लोगो को एक ईश्वर, एक धर्म, एक राष्ट्र की शिक्षा देगे, जिससे मनुष्य-मात्र एक परिवार की तरह रहने लगे। यह भगवान का विशाल परिवार होगा। इससे कम मे ससार की समस्या सुलझ नही सकती। जब तक किसी प्रकार का भेद भाव रहेगा तब तक पारस्परिक कलह का बीज बना ही रहेगा जो किसी समय अवसर पाकर पनप सकता है। इस प्रकार का परिवर्तन आज असम्भव जान पडता है पर जब काल चक्र के प्रभाव से कट्टरपथी लोगो का अन्त हो जायगा और शेष लोगों का आध्यात्मिक पुनर्जन्म होगा तो वे जगतोद्धारक अवतार के आदेशो को प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार करेगे, क्योकि इसी मे उनको अपनी रक्षा और मुक्ति दिखलाई देगी।"

'जगत-त्राता' के लेखक का कथन है कि "इस परिवर्तन के लिये 'अवतार' एक-एक व्यक्ति को समझाते नही फिरेंगे। वरन् इसके लिये वे अपनी प्रबल विचार शक्ति से मानसिक जगत को प्रभावित करेंगे, जिससे सब श्रेणी के व्यक्ति स्वय ही नवीन आदर्शों, सिद्धान्तो की तरफ आकर्षित होंगे। अवतार के सभी कार्य सूक्ष्म जगत (ऐथेरिक-

प्लेन) के द्वारा प्रेरित होगे, जिससे अदृश्य होने के कारण कोई उनका विरोध न कर सकेगा और धीरे-धीरे उनके सम्मुख आत्म समर्पण कर देगा। आज कल विज्ञान मे भी बडे पेचीदा यत्रो को दूर से ही नियत्रण मे रखा जाता है। भावी अवतार भी अपनी सर्वोपरि आध्यात्मिक शक्ति के द्वारा सब लोगो की अन्तरात्मा को उसी प्रकार वश मे कर लेंगे।"

यदि विज्ञान की आधुनिकतम खोजो और प्रत्यक्ष क्रियाकलापो पर ध्यान दिया जाय तब तो दूर से अदृश्य शक्ति द्वारा अनेक प्रकार के विलक्षण कार्यो के होने मे कोई सन्देह ही नही रह जाता। पृथ्वी से चन्द्रमा पर भेजे गये यन्त्र द्वारा फोटो लेकर पृथ्वी तक भेजना वहाँ मिट्टी को खोदकर उसके तत्वो की जानकारी अमरीका और रूस की प्रयोग-शालाओ मे बैठे हुए वैज्ञानिको को दे देना, अन्तरिक्ष मे हजारो मील ऊपर उडते हुए बीमार व्यक्ति की डाक्टरी परीक्षा पृथ्वी के अस्पताल से ही कर सकना और उसके लिए औषधि निर्देश करके सूचित कर देना, ऐसी बातें हैं कि यदि इनका भेद किसी को न बतलाया गया होता तो दुनियाँ इन्हे निश्चय ही 'जादू' या 'दैवी कृत्य' मान लेती। इस लिये यह मनोवृत्ति कि जिस बात को हम अभी नही समझ पाते उसे असत्य अथवा असभव घोषित कर दिया जाय, कोई बडी बुद्धिमानी अथवा 'ज्ञान' का लक्षण नही मानी जा सकती। विश्व-ब्रह्माण्ड के निर्माण और उसके संचालन के नियमों के विषय मे हम अभी बहुत कम जानते हैं। इस लिये संसार का नियंत्रण करने वाली चैतन्य शक्ति किस-किस रूप मे काम करती है इस सम्बन्ध मे हठधर्मी से काम न लेकर अधिकाधिक अध्ययन, मनन और विचार का आश्रय लेकर उसका निर्णय करना ही उचित है।

तीसरा अध्याय

अवतार के सम्बन्ध मे शास्त्रो और महात्माओ का अभिमत

गत अध्यायो मे पाठको ने अवतार के सम्बन्ध मे सामान्य विवेचन तथा तर्क और बुद्धि-वादियो के मन्तव्य पढ़े। अब हम इस विषय पर हिन्दू शास्त्रो तथा विभिन्न देशो के महापुरुषो के कथनो का विवेचन करेगे। क्योकि अवतार सम्बन्धी विचारो के उद्भव कर्ता हमारे पौराणिक-ग्रन्थ ही है। दश अथवा चौवीस अवतारो का वर्णन सर्व प्रथम पुराणो मे ही किया गया है। इस लिये यदि इस विषय को ठीक तरह से समझना हो हमको पुराणो मे पाये जाने वाले अवतार सम्बन्धी अशो को ध्यान पूर्वक पढना और मनन करना चाहिये जिससे इस सम्बन्ध में ठीक निर्णय कर सकना सभव हो सके।

यो तो अवतारो का न्यूनाधिक वर्णन सभी पुराणो मे पाया जाता है, और एक-एक अवतार के नाम पर कितने ही पुराणो की रचना भी की गई है, पर इस सम्बन्ध मे सबसे अधिक गम्भीरता पूर्ण विवेचन 'श्री मद्भागवत्' का है। उसमे अवतार का जो रहस्य और तत्त्व प्रकट किया गया है, उसी को भिन्न रूप और शब्दो में अन्य सब लोगो ने भी कथन किया है। 'भागवत' के प्रथम स्कन्द के तीसरे अध्याय में श्री सूत जी कहते है—

जगृहे पौरुषं रूपं भगवान्महदादिभिः।
सम्भूतं षोडशकलमादौ लोकसिसृक्षया ॥ १ ॥
यस्याम्भसि शयानस्य योग निद्रा वितन्वतः।
नाभिहृदाम्बुजादासी।द्ब्रह्मा विश्वसृजा पति ॥ २ ॥

यस्यावयवसंस्थानै. कल्पिता लोकविस्तरः
तद्वै भगवतो रूपं विशुद्ध सत्वमूर्जितम् ॥
पश्यन्त्यदो रूपमदभ्रचक्षुषा सहस्रपादोरुभुजाननाद्भुतम् ।
सहस्रमूर्धश्रवणाक्षिनासिक सहस्रमौल्यम्बर कुण्डलोल्लसत्
एतान्नानावताराणा निधान बीजमव्ययम् ।
यस्याशाशेन सृज्यन्ते देव तिर्यङ्नरादयः ॥

अर्थात्—"सृष्टि के आदि मे भगवान् ने लोको के निर्माण की इच्छा की। इच्छा होते ही उन्होने महतत्त्व आदि से निष्पन्न पुरुप रूप ग्रहण किया। उसमे दस इन्द्रियाँ, एक मन और पाँच भूत—ये सोलह कलाये थी। उन्होने 'कारण-जल' मे शयन करते हुए जब योग निद्रा का विस्तार किया, तब उनके नाभि सरोवर मे से एक कमल प्रकट हुआ और उस कमल से प्रजापतियो के अधिपति ब्रह्माजी उत्पन्न हुये। भगवान के उस विराट रूप के अ ग प्रत्यग मे समस्त लोको की कल्पना की गई है और वही भगवान का विशुद्ध, सत्त्वमय श्रेष्ठ रूप हजारो पैर, जाघे, भुजाये और मुखो के कारण अत्यन्त विलक्षण है। उसमे हजारो सिर, हजारो कान, हजारो आँखे और हजारो नासिकाये है। हजकुट, वस्त्र, कुण्डल आदि आभूषणो से वह उल्लिसित रहता है। भगवान का यही सगुण रूप अनेक अवतारो का बीज है जो अक्षय रहता है। इसी रूप के छोटे से अ श से देवता, पशु-पक्षी और मनुष्यादि समस्त प्राणियो की सृष्टि होती है।"

भगवान के इस विराट स्वरूप की कल्पना और उसी से समस्त अवतारो के प्रकट होने का वर्णन ही एक मात्र ऐसा सिद्धान्त जो इस समस्या का ठीक समाधान कर सकता है। इसके पश्चात् जितने भी और तर्कवादी विद्वानो ने इस विषय का विवेचन किया है वह घुमा-फिरा कर 'भागवत' की इसी व्याख्या के अन्तर्गत आ जाता है। यद्यपि पौराणिक शैली के अनुसार उसमे रूपक और अकार भरे पड़े हैं, पर उसका आशय शब्दो मे यही है कि जगत का सचालन

करने वाली चैतन्य सत्ता तीन दर्जो मे बँटी हुई है। उसका पहला रूप निर्गुण निराकार और अव्यक्त है। उसकी व्याख्या करने की चेष्टा निरर्थक है। क्योकि वह ससार की किसी भली-बुरी बात से किसी प्रकार का सम्बन्ध नही रखती, सब प्रकार से निर्लिप्त है। इस लिये वेद और शास्त्रो ने उसका जिक्र आने पर 'नेति-नेति' कह कर ही समस्या को समाप्त कर दिया है।

पर जब सृष्टि रचना का अवसर आता है तो उसका एक अ श सक्रिय होकर सगुण रूप मे परिवर्तित हो जाता है जिसको ब्रह्मा विष्णु, महेश दुर्गा सूर्य, इन्द्र आदि किसी भी नाम से पुकारा जा सकता है। ये सब नाम देश, काल अथवा सम्प्रदाय आदि से सम्बन्ध रखते है, पर वास्तव मे यह विश्वव्यापी चैतन्य शक्ति का दूसरा दर्जा या रूप है जिससे सृष्टि-रचना, लोक-निर्माण आदि का कार्य सम्पन्न होता है। पर यह दैवी शक्ति, जिसे अवसर और प्रयोजन के अनुसार विभिन्न नामो से पुकारा जाता है सूक्ष्म होती है, और वास्तव मे उसका कोई आकार नही होता। इसी का तीसरा दर्जा अवतार है जो स्थूल रूप मे देखा जा सकता है और विश्व-संचालन की प्रक्रिया मे प्रत्यक्षत. भाग लेता है। यो सिद्धान्त रूप से सभी जीव, प्रत्येक मनुष्य ईश्वर का अवतार है, पर शास्त्रो मे विश्व-सचालन की प्रक्रिया को समझाने के लिये उन्ही व्यक्तियो अथवा विभूतियो को 'प्रवतार' नाम दिया गया जिन्होने इस जगद्व्यापी कार्यक्रम की किसी विशेष आवश्यकता की पूर्ति की है।

ऐसे दश अवतारो का वर्णन हम पीछे कर चुके है, पर 'भागवत' मे उनकी सख्या बढाकर चौबीस कर दी है। इनमे से जितने अवतार मानव देह-धारी है वे सब भारतवर्ष से ही सम्बन्धित है। पर ससार के अन्य देशो मे भी समाज-व्यवस्था के कार्य मे समय-समय पर ऐसे ही विशेष अवसर आये है और वहाँ भी लोकोत्तर पुरुषो ने प्रकट होकर उनका समाधान किया है। उनका उद्गम स्थल भी वही

एक 'भगवान' या दैवी शक्ति है, क्योकि प्रत्येक देश या मजहब के लिये एक-एक प्रथक दैवी-शक्ति या भगवान को मानना तो मूढता का लक्षण होगा। इसका अर्थ तो यह होगा कि जब काल-प्रभाव से किसी मजहब का अन्त हो जाय तो उसका 'भगवान' भी समाप्त हो गया और जब किसी नये मजहब का आरम्भ हो तो उसका नया 'भगवान' उत्पन्न हो गया! ये सब बाल बुद्धि बाले लोगो की बाते है, जिनको कोई विद्वान का बुद्धिमान महत्व नही दे सकता।

इस प्रकार हम 'अवतारो' की सख्या जिनका पता पुराणो और इतिहासो से लगाया जा सकता है, चौबीस ही नही कई सौ तो मान ही सकते हैं। इनमे दस-पाँच का उल्लेख स्थान-स्थान पर किया भी गया है, पर यहाँ हमारा उद्देश्य उन्ही अवतारो का वर्णन करना है। जिनका भारतीय शास्त्रो मे उल्लेख है और जिनमे से अनेको का नाम हम प्राय: सुनते भी रहते है। 'भागवत' मे २४ अवतारो का वर्णन इस प्रकार मिलता है—

स एव प्रथम देवः कौमार सर्ग मास्थितः।
चचार दुश्चरं ब्रह्मा ब्रह्मचर्यमखण्डितम् ॥ ६ ॥
द्वितीयं तु भवायास्य रसातलगता महीम्।
उद्धरिष्यन्नुपादत्त यज्ञेशः सौकरं वपुः ॥ ७ ॥
तृतीयमृषिसर्गं च देवर्षित्वमुयेत्य सः।
तन्त्रं सात्वतमाचष्ट नैष्कर्म्यं कर्मणा यतः ॥ ८ ॥
तुर्ये धर्मकलासर्गे नर नारायणवृषी।
भूत्वाऽत्मोयशमोपेतमकरोद्द दुश्चर तपः ॥ ९ ॥
पंचमो कपिलो नाम सिद्धेशकालाविप्लुतम्।
प्रोवाचा सुखे साख्ये तत्त्वग्राम विनिर्णयम् ॥ १० ॥

"भगवान ने आरम्भ मे सनक, सनन्दन, सनातन और सनत्कुमार—चार ब्रह्मकुमारों के रूप मे अवतार लेकर अखण्ड ब्रह्मचर्य का पालन किया। दूसरी बार उन्होने यज्ञ वाराह का रूप धारण

करके पृथ्वी को जल के भीतर से निकाला। तीसरी बार 'ऋषियो' की सृष्टि मे वे देवर्षि नारद के रूप मे प्रकट हुये और निष्काम कर्म द्वारा मुक्ति का मार्ग दिखलाया। धर्म की पत्नी मूर्ति के गर्भ से उन्होने नर-नारायण के रूप मे अवतार लिया और बड़ी कठिन तपस्या की। पाँचवे अवतार के समय वे सिद्धो के स्वामी कपिल देव के रूप मे प्रकट हुये और आसुरि ऋषि को तत्त्वो के निर्णय करने वाले 'साख्य-शास्त्र' का उपदेश दिया।

षष्ठे अत्रेरपत्यत्वं वृतः प्राप्तोऽनसूयया।
आन्वीक्षिकीमलर्काय प्रह्लादादिभ्य ऊचिवान्॥ ११॥
ततः सप्तम आकूत्या रुचेर्यज्ञोऽभ्यजायत।
स यामाद्यैः सुरगणैरपात्स्वायम्भुवान्तरम्॥ १२॥
अष्टमे मेरुदेव्या तु नाभेर्जात उरुक्रमः।
दर्शयन वर्त्म धीराणा सर्वाश्रम नमस्कृतम्॥ १३॥
ऋषिभिर्याचितो भेजे नवमं पार्थिवं वपुः।
दुग्धे मामोषधीर्विप्रास्तेनायं स उशत्तमः॥ १४॥
रूप स जगृहे मात्स्यं चाक्षुषोदधिसम्प्लवे।
ना व्यारोप्य महीमय्यामपाद्वैवस्वत मनुम्॥ १५॥

'अनुसूया के वर माँगने पर वे छठे अवतार मे अत्रि ऋषि के पुत्र रूप मे—दत्तात्रेय हुए और अलर्क, प्रहलाद आदि को ज्ञानोपदेश दिया। सातवी बार उन्होने रुचि प्रजापति की पत्नी आकूति के 'यज्ञ के रूप मे अवतार लिया और अपने पुत्र 'याम' आदि के साथ स्वायम्भुव मनवन्तर की रक्षा की। आठवी बार राजा नाभि की पत्नी मेरुदेवी के गर्भ से ऋषभदेव के रूप मे प्रकट हुये, और परम हसो का वह मार्ग प्रचलित किया जो सबके लिये वन्दनीय है। नवी बार ऋषियो की प्रार्थना पर वे राजा पृथु के रूप मे अवतीर्ण हुए और मनुष्यो के निर्वाह के लिये पृथ्वी से समस्त वनस्पतियो का दोहन किया। दसवी बार चाक्षुष मन्वन्तर के अन्त मे जब समस्त पृथ्वी-मडल जल

मे डूब गया तो उन्होने मत्स्यावतार के रूप मे वैवस्वत मनु की रक्षा की।"

सुरासुराणामुदधिं मथ्नतां मन्दराचलम्।
दध्रे कमठरूपेण पृष्ठ एकादशे विभुः॥ १६॥

धान्वन्तरं द्वादशमं त्रयोदशममेव च।
अपाययत्सुरान्यान्मोहिन्या मोहयन् स्त्रिया॥ १७॥

चतुर्दशं नारसिंह विभ्रद्दैत्येन्द्र मूर्जितम्।
ददार करजैर्वक्षस्येरका कटकृद्यथा॥ १८॥

पञ्चदश वामनकं कृत्वागादध्वव वलेः।
पदत्रय याचमानः प्रत्यादित्सुस्त्रिविष्टयम्॥ १९॥

अवतारे षोडशमे पश्यन् ब्रह्मद्रुहो नपान्।
त्रिसप्त कृत्वः कुपितो निःक्षत्रामकरोन्महीम्॥ २०॥

"जिस समय देवता और दैत्य मिलकर समुद्र मन्थन करने लगे तो भगवान् ने कच्छप रूप धारण करके ग्यारहवाँ अवतार लिया और मन्दराचल को अपनी पीठ पर धारण किया। बारहवाँ अवतार धन्वन्तरि के रूप मे अमृत लेकर हुआ तेरहवाँ मोहिनी रूप मे प्रकट हुआ जिसने दैत्यो को मोहित करके देवताओ को अमृत प्रदान किया। चौदहवाँ अवतार नृसिंह भगवान् के रूप मे हुआ और उन्होने महाबलशाली दैत्यराज हिरण्यकशिपु की छाती को इस प्रकार विदीर्ण कर दिया, जैसे चटाई बनाने वाला सींको को चीर देता है। पन्द्रहवाँ अवतार वामन का हुआ, जिसमे उन्होने बलि के यज्ञ मे जाकर तीन पैर पृथ्वी माँगी और तीनो लोक नाप लिये। सोलहवाँ अवतार परशुराम का हुआ जिन्होंने राजाओं को ब्राह्मणो का द्रोही देखकर क्रोध पूर्वक इक्कीस बार पृथ्वी को क्षत्रिय-विहीन कर दिया।"

ततः सप्तदशे जातः सत्यवत्या पराशरात्।
चक्रे वेदतरो शाखा दृष्ट्वा पुंसोऽल्पमेधसः॥ २१॥

नरदेवत्वमापन्नः सुरकार्यं चिकीर्षया ।
समुद्रनिग्रहादीनि चक्रे वीर्याण्यत. परम् ॥ २२ ॥
एकोनविंशे विंशतमे वृष्णिषु प्राप्य जन्मनी ।
रामकृष्णाविति भुवो भगवान हरद्भरम् ॥ २३ ॥
ततः कलौ सम्प्रवृत्ते सम्मोहाय सुरद्विषाम् ।
बुद्धो नाम्नाजिनसुतः कीकटेषु भविष्यति ॥ २४ ॥
अथासौ युग सध्याया दस्युप्रायेषु राजसु ।
जनिता विष्णुयशो नाम्ना कल्किर्जगत्पतिः ॥ २५ ॥

"सत्रहवे अवतार मे सत्यवती के गर्भ से पाराशर द्वारा व्यास के रूप मे अवतीर्ण हुये और लोगो की मेधा-शक्ति को क्षीण होता देखकर वेद रूपी वृक्ष को कई शाखाएँ बनाकर सुव्यवस्थित कर दिया। अठारहवी बार देवताओ का कार्य सम्पन्न करने के उद्देश्य से रामचन्द्र के रूप मे अवतार धारण किया तथा समुद्र पर सेतु बाँधना और रावण वध आदि की वीरतापूर्ण लीलाएँ की। उन्नीसवे और और बीसवे अवतारो मे यदुवश मे कृष्ण और बलराम के रूप मे प्रकट हुये और पृथ्वी के भार को हलका किया। इक्कीसवी बार कलियुग आ जाने पर वे मगध देश मे देवताओ के द्वेषी दैत्यो को मोहग्रस्त बनाने के लिये जिन-पुत्र बुद्ध अवतार के रूप मे प्रकट हुये। इसके पश्चात् जब कलियुग समाप्त होने लगेगा और शासक वर्ग प्रजा को लूटने लगेगा तो जगत की रक्षा के लिये भगवान् विष्णुयश के घर मे कल्कि रूप मे प्रकट होगे।"

इन बाईस अवतारो के अतिरिक्त दो अवतार 'हयग्रीव' और 'हस' के और है जिनका वर्णन द्वितीय स्कन्द के सातवे अध्याय मे ब्रह्माजी ने नारद को इस प्रकार सुनाया था—

सत्रे ममास भगवान हयशीरषाथो
साक्षात् स यज्ञपुरुषस्तपनीय वर्णः ।
छन्दोमयो मखमयोऽखिल देवतात्मा
वाचो बभूवुरुशतीः श्वसतोऽस्य नस्तः ॥

"तत्पश्चात् उन्ही यज्ञ पुरुष ने यज्ञ मे स्वर्ण की कान्ति वाले 'हयग्रीव' के रूप मे अवतार ग्रहण किया था। भगवान् का वह विग्रह वेदमय, यज्ञमय और सर्व देवमय है। उन्हीं की नासिका से श्वास के रूप मे वेदवाणी प्रकट हुई।"

तुभ्यं च नारद भृश भगवान् विवृद्ध-
भावेन साधुपरितुष्ट उवाच योगम्।
ज्ञान च भागवतमात्मसतत्वदीप
यद्वासुदेवशरणा विदुरञ्जसैव ॥

"हे नारद! तुम्हारे प्रेम-भाव से अत्यन्त प्रसन्न होकर हस के रूप मे भगवान् ने तुम्हे योग, ज्ञान और आत्म तत्त्व को प्रकाशित करने वाले वैष्णव धर्म का उपदेश दिया। वह श्रेष्ठ ज्ञान भगवान् के शरणागत भक्तो को ही युगमता से प्राप्त हो सकता है"

भगवान के अवतार असंख्य है—

इन चौबीस अवतारो का वर्णन करके भागवतकार ने अन्त में स्वयं ही यह कह दिया है कि भगवान् के अवतारो की तो कोई सख्या ही नही है, क्योकि ससार में जो कुछ विभूति-युक्त पदार्थ हैं वे सब भगवान् के विशेष अश रूप हैं और इसलिये उनके अवतार ही हैं—

अवतारा ह्यसख्येया हरेः सत्त्वनिधेर्दिजाः।
यथाविदासिनः कुल्याः सरसः स्युः सहस्रशः॥
ऋषयो मनवो देवा मनुपुत्रा महौजसः।
कलः सर्वे हरेरेव स प्रजायरास्तथा ॥

"जैसे अगाध सरोवर से हजारो छोटे-छोटे नाले निकलते हैं वैसे ही सत्त्वनिधि भगवान् श्रीहरि के असख्यो अवतार हुआ करते हैं। ऋषि-मुनि देवता प्रजापति, मनु पुत्र और जितने भी महान् शक्तिशाली है, वे सब भगवान् के ही अश हैं।"

'भागवत' के ही अध्याय २-६ मे इस बात को और भी स्पष्ट रूप मे विस्तार के साथ कहा गया है—

आद्योऽवतार पुरुष परस्य काल
स्वभाव- सदसन्मनश्च
द्रव्य विकारो गुण इन्द्रियाणि
विराट् स्वराट् स्थास्नु चरिष्णु भूम्न ।।
अह भवो यज्ञ दमे प्रजेशा
दक्षादयो मे भवदादयश्च ।
स्वर्लोकपाला- खगलोकपाला
नृलोकपालास्तल लोकपाला: ।।
यत्किच लोके भगवन्महस्वदोज-
सहसद्व बलवत् क्षमावत् ।
श्रीह्री विभूत्यात्मवदद्भुतार्णं
तत्त्व पर रूपवदस्वरूपम् ।।

"परमात्मा के सर्व प्रथम अवतार तो विराट् पुरुष ही है। उसके सिवा काल, स्वभाव कार्य, कारण, मन, पचभूत, अहङ्कार, तीनो गुण, इन्द्रियाँ, ब्रह्माण्ड-शरीर, उसका अभिमानी स्थावर और जगम जीव, सबके सब उस अनन्त भगवान् के रूप है। मै (ब्रह्मा) शङ्कर, विष्णु, दक्ष आदि सब प्रजापति, तुम और तुम्हारे जैसे अन्य भक्तजन, स्वर्ग-लोक के पालक, पक्षियो के राजा, मनुष्य-लोक के पालक नीचे के लोको के राजा आदि ससार मे जितनी वस्तुएँ ऐश्वर्य, तेज, इन्द्रिय-बल, मनोबल, शरीर बल या क्षमा से युक्त है अथवा जो भी विशेष सौन्दर्य, लज्जा, वैभव तथा विभूति से युक्त है अथवा जितनी भी वस्तुएँ अद्भुत वर्ण वाली रूप या अरूप हैं, वे सब परम तत्त्वमय भगवद् स्वरूप ही है।"

पुराणकार के इतने साफ शब्दो मे अवतार की वास्तविकता और व्यापकता प्रकठ कर देने पर भी जो मनुष्य वाराह आदि अवतारों के दोष दर्शन मे ही अपनी शक्ति खर्च करते रहते है, उनकी बुद्धि उन्ही सामान्य जीव-जन्तुओ की भाँति निम्न श्रेणी की ही समझना चाहिये। वे सार वस्तु को त्याग कर निस्सार पर ही दृष्टि डालते रहते है अथवा

अपने मस्तिष्क को 'सत्य' से अवरुद्ध रखकर निरर्थक दलीलोमे ही आनन्द का अनुभव किया करते है। उनको उन कथाओ मे वर्णित अद्भुत प्राणियो की विशालता, आहार, भोग और अन्य चमत्कार आदि बाते तो याद रहती है, पर उनमे निहित सृष्टि और प्राणिजगत का उद्भव और मानव की बुद्धि, शक्ति, सभ्यता का क्रमश विकास समझ मे नही आता। ऐसे लोग पौराणिक-शैली की विशेपताओ और उद्देश्य पर कुछ ध्यान न देकर केवल उनके कहानी वाले अशो की आलोचना, खण्डन-मडन करने मे ही अपनी योग्यता समझा करते है। पर ऐसा करने से वे उन कथाओ मे छिपे ज्ञानवर्द्धक तथ्यो से वचित रह जाते है, उसका उन्हे कुछ ख्याल नही होता।

'भागवत' और अन्य अनेक पुराणो मे अवतार सिद्धान्त पर जो कुछ कहा गया है उससे प्रत्येक विचारक यह समझ सकता है कि वे ससार के प्रत्येक पदार्थ प्राणी और कार्य को भगवान के रूप और लीला की दृष्टि से देखते है, जब कि एक वैज्ञानिक इनका ससार के 'मूलत्व' और 'क्रम विकास' के रूप मे वर्णन करता है। पुराणकार का उद्देश्य करोडो अल्पशिक्षित और आर्शीवाद और अशिक्षित व्यक्तियो को कथा-कहानी के रूप मे ईश्वर और विश्व-ब्रह्माण्ड की असीमता और अनन्तता का परिचय कराके धर्म, नीति, चरित्र तथा कर्तव्य पालन की शिक्षा देना होता है, जब कि वैज्ञानिक उसका वर्णन गूढ और गम्भीर शैली से करता है, जिसे विद्वान ही समझ पाते है। पुराणो की कथाओ को सुनकर चाहे सब लोग धार्मिक और पवित्र न बन जाते हो तो भी बहुसख्यक लोगो के हृदय मे भक्ति और शुद्ध-आचरण की भावना विकसित होती है और आज तक उनके प्रभाव से करोडो व्यक्ति कुमार्ग से हटकर सुमार्गगामी बन चुके हो और आत्मोद्धार कर चुके हो तो कोई आश्चर्य की बात नहीं। पर वैज्ञानिको का वर्णन किसी को धार्मिक, सच्चरित्र, परोपकारी बनाता हो यह अभी तक देखने मे नही आया। इस दृष्टि से विचार करने पर सर्व-

साधारण की दृष्टि से पुराणो की कथाग्रो का यदि समयानुकूल रूप मे प्रचार किया जाय तो इससे जन-साधारण का हित साधन ही हो सकना है। अधिक विशालकाय पुराणों का पढना-सुनना वर्तमान परिस्थितियो मे अवश्य ही कठिन जान पडेगा। इसके लिए उनके सरल और सक्षिप्त सस्करण प्रस्तुत किये जा सकते है और यही कार्य आज कल हमारी सस्था द्वारा किया जा रहा है।

महाभारत में अवतार-महिमा कथन--

भारतीय धर्म-साहित्य के यदि प्रमुख ग्रन्थो की भी गणना की जाय तो उनकी सख्या सैकडो तक पहुँचती है। पर उन सबमे 'महाभारत' की महिमा को कोई नही पहुँचता। वैसे किसी एक विशेष दृष्टि से किन्ही एक दो-दो ग्रन्थो को श्रेष्ठ माना जा सकता है पर सर्वाङ्ग रूपसे विचार करने पर महाभारत ही भारतीय सस्कृति का 'महासागर' प्रतीत होता है। महाभारत के आधार अन्य कितने ग्रन्थो की रचना की गई है, इसकी गिनती नही। फिर आपेक्षिक दृष्टि से विचार किया जाय तो महाभारत की वर्णन शैली अधिक प्रामाणिक भी जान पडती है। अवतार के सम्बन्ध मे भी 'महाभारत' का विवेचन विशेष रूप से स्वाभाविक और गम्भीर है। उसमे बहुत स्पष्ट रूप से यह प्रतिपादित किया गया है कि समस्त जगत भगवत् स्वरूप ही है। प्रत्येक प्राणी, प्रत्येक पदार्थ और प्रत्येक लोक उनका एक अ ग ही है। इस दृष्टि से 'अवतार' भी उनके अतिरिक्त अन्य किसी स्रोत से प्रकट नहीं हो सकते 'सभापर्व' के ३८ वे अध्याय मे युधिष्ठिर के प्रश्न करने पर भगवान कृष्ण के विश्व-स्वरूप का वर्णन करते हुए महाज्ञानी भीष्म पितामह ने कहा--

सहस्रशीर्ष पुरुषो ध्रुवोऽव्यक्त सनातन. :
सहस्राक्ष सहस्रास्य. सहस्रचरणो विभु ॥

सहस्रबाहु साहस्रो देवो नामसहस्रवान्।
अष्सृजत् सलिल पूर्वं स च नारायण. प्रभु।

ततस्तु भगवास्तोये ब्रह्माणममृजत् स्वयम् ।
ब्रह्मा चतुर्मुखो लोकान् सर्वांस्तानमृजत् स्वयम् ॥
आदिकाले पुरा ह्येव सर्वलोकस्य चोद्भव ।
पुराथ प्रलये प्राप्ते नष्टे स्थावर जगमे ।
ब्रह्मादिषु प्रलीनेषु नष्टे लोके चराचरे ॥

"ये ही ध्रुव अव्यक्त एव सनातन परम पुरुष है । इनके सहस्रों मस्तक, सहस्रो नेत्र, सहस्रो मुख, सहस्रो चरण, सहस्रो भुजाये हैं । ये सहस्रों रूपो और सहस्रो नामो से युक्त है । इन्ही सामर्थ्यवान भगवान नारायण ने सबसे पहले जल (मूलतत्व) की सृष्टि की और फिर उस जल मे शयन करके स्वय ही ब्रह्माजी को उत्पन्न किया । ब्रह्माजी ने, जिनके चार मुख है, सम्पूर्ण लोको की रचना की है । आदि काल मे इसी रीति से समस्त जगत और उसके पदार्थों की उत्पत्ति हुई थी । फिर प्रलय काल आने पर जैसा कि सदा का नियम है, समस्त स्थावर जगम सृष्टि का नाश हो जाता है एव चराचर जगत का नाश होने के पश्चात् ब्रह्मा आदि देवता भी अपने कारण तत्व मे लीन हो जाते है ।"

इस प्रकार महाभारतकार ने बहुत स्पष्ट रूप से यह बतलाया है कि यह समस्त जगत एक ही तत्व (जिसको परमा मा' कहना उचित ही हैं) से उत्पन्न, विकसित हुआ है और अरबो-खरबो वर्ष बीत जाने पर अन्त मे उन्हीं मे लीन हो जाता है । विश्व की उत्पत्ति और अन्त होने की ठीक यही व्याख्या आज विज्ञान भी कर रहा है । यही बात वेदो के 'एकोऽहम् बहुस्यामि' वाले सिद्धान्त से प्रकट होती है । भगवान के इस 'विराट् रूप' का वर्णन करते हुए भीष्म पितामह कहते है—

नारायणस्य चाङ्गानि सर्व दैवानि भारत ।
शिरस्तस्य दिव राजन् नाभि ख चरणौ मही ॥
अश्विनौ घ्राणयोर्देवौ चक्षुषी शशिभास्करौ ।

इन्द्र वैश्वानरौ देवौ मुखे तस्य महात्मन ।
अन्यानि सर्व दैवानि तस्याङ्गानि महात्मन. ।।
सर्व व्याप्य हरिस्तस्थौ सूत्र मणिगणानिब ।
सोऽध्यक्ष. सर्वभूताना प्रभूत प्रभवोऽच्युत
सनत्कुमारं रुद्रं च मनु चैव तपाधनान्
सर्वमेवासृजत ब्रह्मा ततो लोकान् प्रजास्त था

"हे युधिष्ठिर ! भगवान नारायण के सब अ ग सर्व देवमय है। द्यु लोक उनका मस्तक, अन्तरिक्ष उनकी नाभि और पृथ्वी चरण है। दोनो अश्विनीकुमार उनके नासिका के स्थान मे है, चन्द्रमा और सूर्य नेत्र है, एव इन्द्र और अग्निदेव उन परमात्मा के मुख स्वरूप हैं। इसी प्रकार अन्य सब देवता (देव-शक्तियाँ) भी उन महात्मा के विभिन्न अवयव हैं। जैसे गुथी हुई माला की सभी मणियो मे एक ही सूत्र व्याप्त रहता है, उसी प्रकार भगवान श्रीहरि समस्त जगत को व्याप्त करके स्थित है। इस प्रकार अपनी महिमा से कभी च्युत न होने वाले, सब की उत्पत्ति के कारणभूत और सम्पूर्ण भूतो के अध्यक्ष श्रीहरि ने ब्रह्म रूप से प्रकट होकर सनत्कुमार रुद्र मनु तथा तपस्वी ऋषि-मुनिमो को उत्पन्न किया। सबकी सृष्टि उन्हीने की है। उन्ही से सम्पूर्ण लोको और प्रजाओ की उत्पत्ति हुई।'

यद्यपि इनमे से प्रत्येक देवता के सम्बन्ध मे बिभिन्न प्रकार की अनेक अद्भुत कथाये लिखी गई है, पर वे सब ऐसे पाठको या श्रोताओ के कौतूहल को शान्त करने के लिए रची गई हैं, जो 'परमात्मा' जैसे अज्ञेय तत्त्व की कल्पना नही कर सकते और न किसी निराकार वस्तु से लाखो प्रकार की साकार वस्तुओं का उत्पन्न होना जिनकी समझ मे आ सकता है। बुद्धिमान व्यक्ति पहले भी सृष्टि, देवी-देवता और अवतर आदि की वास्तविकता को जानते थे और आज भी जानते हैं। पर अल्प विकसित बुद्धि के व्यक्तियो को सदैव इसी प्रकार उपमा, रूपक, दृष्टान्त, उदाहरण द्वारा समझाया जाता रहा है। इस प्रकट

तथ्य को समझकर अथवा न समझने का बहाना करके जो लोग पुराणो मे वर्णित अवतारो के चरित्रो का 'खण्डन' करने लग जाते है उनकी बुद्धिमत्ता को हम सदिग्ध ही कह सकते है। अन्यथा एक बार नही अनेक बार विभिन्न शब्दो मे इस बात को कहा गया है जिससे पाठक के हृदय मे शका न रहे —

अव्यक्तो व्यक्त लिङ्गस्थो य एष भगवान् प्रभु ।
नारायणो जगच्चक्रे प्रभमवाप्यय सहितः ।। /

"जो अव्यक्त होते हुए भी व्यक्त शरीरो मे स्थित है, सृष्टि और प्रलयकाल मे भी स्थिर रहते हैं, उन्ही सर्व शक्तिमान भगवान् नारायण ने इस जगत की रचना की है।"

आगे चल कर जहाँ विभिन्न अवतारो की चर्चा की गई है वहाँ वाराहवतार के शरीर का जो वर्णन किया गया है उसमे पूर्ण रूप से सम्पूर्ण विश्व रूपी यज्ञ और उसके प्रमुख पदार्थों को ही चित्रित कर दिया गया है—

वाराहस्तु श्रुतिमुखः प्रादुर्भावो महात्मन ।
यत्र विष्णु सुरश्रेष्ठो वाराह रूपभगस्थित ।।
उज्जहार महीं तोयात् सशैल वन काननाम।
वेदपादो यूपदष्ट्र क्रतुदन्तश्चितीमुख ।।
अग्नि जिह्वो दर्भरोमा ब्रह्मशीर्षो महातप ।
अहोरात्रोक्षणो दिव्यो वेदाङ्ग श्रुतिभूषणः ।
आज्य नास स्रुवतुण्ड सामघोष वनो महान् ।।
धर्म सत्यमय श्रीमान् कर्म विक्रमसत्कृत ।
प्रायश्चित्तनखो धीरः पशुजानुर्महावृष ।।

"भगवान श्रीहरि का जो 'वाराह' नामक अवतार है, उसमे भी प्रधानत: वैदिक श्रुतिही प्रमाण है। भगवान ने वाराह रूप धारण करके पर्वतो और वनो सहित सारी पृथ्वी को जल से बाहर निकाला था। उस समय चारो वेद ही अवतार के चार पैर थे, यूप ही उनकी दाढ़ थे। क्रतु (यज्ञ) ही दाँत और 'चिति' (इष्टकायव) ही मुख

है। अग्नि उनकी जिह्वा, दर्भ रोम है, ब्रह्म मस्तक है, दिन और रात्रि ही आखे है और वेदाङ्ग कानो के आभूषण है। घी उनकी नासिका, स्रुवा उनकी थूथुन और सामवेद का स्वर ही उनकी भीषण गर्जना थी। धर्म और सत्य उनका स्वरूप था, वे अलौकिक तेज से सम्पन्न थे। वे विभिन्न कर्मरूपी विक्रम से सुशोभित हो रहे थे। प्रायश्चित्त उनके नख थे, वे धीर स्वभाव से युक्त थे, पशु उनके घुटनो के स्थान मे थे और महान वृषभ (धर्म) उनका श्री विग्रह था।"

इसी प्रकार वामन-भगवान के स्वरूप का वर्णन करते हुये कहा है—

तस्य गात्रे जगत् सर्वमानीतमिव दृश्यते।
न किंचिदस्ति लोकेषु यद व्याप्त महात्मन॥
तद्धि रूप महेशस्य देव दानव मानवा।
दृष्ट्वा त मुमुहु सर्वे विष्णु तेजोभि पीडिता॥

'भगवान वामन के शरीर मे सारा ससार इस प्रकार दिखाई देता था, मानो उसमे लाकर रख दिया गया हो। ससार मे कोई एसी वस्तु नही है, जो उन परमात्मा मे व्याप्त न हो। परमेश्वर भगवान विष्णु के उस रूप को देखकर उनके तेज से दब कर देवता, दानव और मानब सब हतप्रभ हो गये।"

भगवान राम के सम्बन्ध मे लिखा है—

लोके राम इति ख्यातस्तेजसा भास्करोपम।
प्रसादनार्थ लोकस्य विष्णुस्तस्य सनातन॥
धमार्थमेव कौन्तेय जज्ञे तत्र महायशः।
तमप्याहुर्मनुष्येन्द्र सर्वभूतेस्तनुम्॥

"वे भगवान सूर्य के समान तेजस्वी राजकुमार जगत मे 'श्रीराम' के नाम से विख्यात हुये। हे युधिष्ठिर! जगत को प्रसन्न करने तथा धर्म की स्थापना के लिये ही महायशस्वी सनातन भगवान विष्णु वहाँ

प्रकट हुये थे। मनुष्यों के स्वामी श्रीराम को साक्षात सर्वभूतपति श्रीहरि का ही स्वरूप बतलाया जाता है।"

उपरोक्त अवतार—वर्णन के अन्त मे भगवान 'कल्कि' का भी परिचय दिया गया है—

कल्की विष्णुयशा नाम भूयश्चोत्पत्स्यते हरि ।
कलेयुगान्ते सम्प्राप्ते धर्मे शिथिलता गते ।।
पाखण्डिना गणाना हि वधार्थ भरतर्षभ. ।
धर्मस्य च विवृद्धचर्थ विप्राणा हितकाम्यया ।।

"कलियुग के अन्त मे जब धर्म मे अधिक शिथिलता आने लगेगी तो उस समय भगवान श्रीहरि पाखडियो के निर्मूल करने, धर्म की वृद्धि और सच्चे ब्राह्मणो की हित-कामना से पुन. अवतार लेंगे। उनके उस अवतार को 'कल्कि विष्णु यशा' कहा जायगा

इस प्रकार अवतारो के वर्णन को समाप्त करके महाभारतकार ने फिर इस बात को स्मरण करा दिया है कि केवल जिन थोड़े से अवतारो का यहाँ वर्णन किया गया है, वे ही सब नही है। ससार की रक्षा के लिये प्रत्येक महत्वपूर्ण अवसर पर भगवान किसी न किसी रूप मे उपस्थित रहते ही है—

एते चान्ये च वहवो दिव्या देवगणैर्युताः ।
प्रादुर्भावा' पुराणेषु गीयन्ते ब्रह्मवादिभि ।।

"भगवान के ये तथा और भी बहुत से दिव्य अवतार देवताओ के साथ होते हैं, जिनका ब्रह्मपरायण महापुरुष पुराणो मे वर्णन करते हैं।"

महाभारत मे अवतार-सिद्धान्त और उनके स्वरूप के सम्बन्ध मे जो विवेचन किया गया है, उससे इस विषय की सभी शकाओ तथा प्रश्नो का समाधान हो जाता है। चाहे इसको सृष्टि का नियम कहा जाय और चाहे भगवान की लीला माना जाय, दैवी-शक्ति समय

समय पर विभिन्न रूपो मे प्रकट होकर ससार की रक्षा और मार्ग-दर्शन के कार्य मे सहयोग देती रहती है, इसमे कोई सन्देह नही । ऐसी घटना भूतकाल मे अनेक वार हो चुकी है और भविष्य मे भी होगी । 'कल्कि अवतार जिनका रूपक और अलकार युक्त वर्णन इस पुराण मे किया गया है, इसी शखला के एक अ ग माने जाते है ।

अवतार

पिछले कुछ सौ वर्षो मे जिस रचना ने अवतारवाद का सबसे अधिक प्रचार किया है और इसकी महिमा का विस्तार किया है, वह 'रामायण' ही है । पहले तो वाल्मीकि-रामायण ने ही राम-चरित्र तो बहुत ऊँचा उठाकर उन्हे श्रद्धा, भक्ति और प्रेम का पात्र बनाया, फिर गोस्वामी तुलसीदासजी ने उसी के आधार पर तथा अन्य अनेक पुराणो की कथाओ का भी सार लेकर जिस रामचरित मानस की रचना की उसने तो भारतवर्ष की, विशेषतया उत्तर भारत की सम्मान्य जनता मे 'राम-भक्ति' को इतना लोकप्रिय बना दिया जिसका अनुमान कर सकना भी कठिन है । यदि यह कहा जाय कि आज तुलसीदासजी की यह अमर-रचना झोपडो से लेकर राज-महलो तक मे व्याप्त है तो इसमे कोई अतिशयोक्ति नही । सस्कृत और हिन्दी के अतिरिक्त बगाली, गुजराती, तामिल तेलुगू आदि भाषाओ मे भी वहाँ के महाकवियो ने 'कृतिवास रामायण' 'गिरधरकृत गुजराती रामायण' 'कम्ब रामायण' 'रङ्गनाथ रामायण' के नाम से रामचरित्र सम्बन्धी विशाल ग्रन्थो की रचना की है, और उन प्रदेशो मे उनका पर्याप्त प्रचार है । फिर 'रामायण से प्रेरणा लेकर सस्कृत, हिन्दी तथा अन्य भाषाओ मे 'रघुवश' 'उत्तर रामचरित्र' 'हनुमन्नाटक' 'प्रसन्नराघव' 'अध्यात्म रामायण' 'आनन्द रामायण' 'चम्पू रामायण' 'सेतुबन्ध', 'रामचन्द्रिका' 'रामरसायन आदि जो रामचरित्र पर अन्य सैकडो उच्च-कोटि के ग्रन्थ रचे गये हैं उनका प्रभाव भी विद्वानो तथा सामान्य

जनता पर कम नही पडा है । तुलसीकृत रामायण का तो बहुत वर्षों पहले रूसी और अँगरेजी भाषाओ मे अविकल अनुवाद हो चुका है, जिससे उसकी अपूर्व लोकप्रियता पर प्रकाश पडता है ।

'रामायण' मे भगवान् राम का ईश्वरीय अवतार होना इतने साङ्गोपाङ्ग रूप मे वर्णन किया गया है,कि उससे पाठक के नेत्रों के सम्मुख समस्त घटना एक चित्र की तरह उपस्थित हा जाती है । 'रामायण' के लेखक भगवान् के साकार रूप के अनुयायी है, इसलिये उन्होने भगवान के श्रीरामचन्द्र के रूप मे अवतार लेने का ऐसा विशद वर्णन किया है जैसे वह हमारे नर-लोक की ही किसी सभा-समिति मे हो रहा हो । जब राक्षसराज रावण के आतक से पीडित होकर समस्त देवता पृथ्वी के साथ ब्रह्मलोक मे पहुँचे और ब्रह्माजी ने इस विषय मे अपने तो असमर्थ पाया, तो उन सबने सहायता के लिये जगतपिता परमात्मा की प्रार्थना की । ससार की कठिन समस्या और मानव-जाति की दुरवस्था से द्रवित होकर वह महाशक्ति साकार रूप मे उनके सम्मुख उपस्थित हो गई—

एतास्मिन्नन्तरे विष्णुरूपयातो महाद्युति ।
शङ्खचक्रगदापाणि पीतवासा जगत्पति ।।
वैनतेय समारुह्य भास्करस्तोयद यथा ।
तप्तहाटककेयूरो वन्द्यमान. सुरोत्तमै. ।।
ब्रह्मणा च समागत्य तत्र तस्थौ समाहित ।
तम ब्रुवन सुरा. सर्वे समभिष्टूय सतता ।।

(बाल० १५।१५।१८)

"उसी समय भगवान विष्णु शंख, चक्र, गदा को हाथो में लिये, पीताम्बर धारण किये, गरुण पर आरुढ होकर वहाँ इस प्रकार आ गये जैसे किसी मेघ के ऊपर सूर्य का दर्शन होता है । उनकी भुजाओं में तप्त सुवर्ण के केयूर शोभित थे । सम्पूर्ण देवताओ ने उनकी वन्दना

की ओर जब वे अपने स्थान पर विराजमान हो गये तो देवगण ने विनीत भाव से प्रार्थना की—

त्वा ,नयोक्ष्यामहे विष्णो लोकानां हितकाम्यया।
राज्ञो दशरथस्य त्वमयोध्याधिपतेर्विभो ।।
धर्मज्ञस्य वदानस्य महर्षिसमतेजस. ।
अस्य भार्यासु तिष्टषु ह्रीश्रीकीर्त्युपमासु च ।।
विष्णो पुत्र त्वमागच्छ कृत्वाऽऽत्मन चतुर्विधम् ।
तत्रत्व मानुषोभूत्वा प्रवृद्ध लोक कटकम् ।।
अवध्य दैवतैर्विष्णो समरे जहि रावणम् ।।

"हे भगवन् ! हम तीनो लोको के हित की दृष्टि से आपके ऊपर एक महान् कार्य का भार डाल रहे है । प्रभो ! अयोध्या के राजा दशरथ धर्मज्ञ, उदार और महान् तेजस्वी है । उनकी तीन रानियाँ ह्री, श्री और कीर्ति—इन तोन देवियो के सदृश्य है । हे भगवन् ! आप अपने चार स्वरूप बनाकर उन रानियो के गर्भ से दशरथ के पुत्ररूप मे अवतार ग्रहण कीजिये । इस प्रकार मनुष्य रूप मे प्रकट होकर आप समस्त जगत के लिये कष्टकारक रावण का, जो, देवताओ के लिये अवध्य है, सहार कर डालिये ।"

एव स्तुतस्तु देवेशो विष्णुस्त्रिदश पुंगव. ।
पितामहपुरोगास्तान् सर्वलोकनमस्कृत. ।
अब्रवीत त्रिदशान् सर्वान् समेतान् धर्मसहितान् ।।
भयत्यजग भद्रं वो हितार्थं युधि रावणम् ।
सपुत्रपौत्रं समात्य समन्त्रिज्ञातिबान्धवम् ।।
सत्वाक्रूरदुराधर्ष देवर्षीणा भयावहम् ।

"देवताओ द्वारा इस प्रकार स्तुति किये जाने पर सर्वलोक वन्दित देवधिदेव भगवान् विष्णु ने वहाँ पर समवेत ब्रह्मा आदि समस्त देवताओ से कहा—'देवगण ! अब तुम भय त्याग दो । मैं

तुम्हारे हितार्थ रावरण से सग्राम करके पुत्र, पौत्र, अमात्य, मत्री, और जाति बन्धुओ सहित नष्ट कर दूँगा ।"

इस विषय मे यह विवाद उठाना कि क्या वास्तव मे ऐसी कोई 'काफ्रेन्स' ब्रह्मलोक मे हुई थी या नही, और देवताओ ने भगवान विष्णु के दरबार मे रावरण के विरुद्ध सचमुच कोई शिकायत की थी या नही, हमारी सम्मति मे बेकार है, और हम इस प्रकार के तर्क-वितर्क करने वालो की स्पष्ट रूप से उपेक्षा करते है। हम तो एकबार कह चुके कि कथा-उपाख्यानो मे, वह भी कविता मे लिखे गये ग्रन्थो मे गरिगत के समान प्रमारग ढूँढना, अपनी हठधर्मी अथवा अल्पज्ञता को प्रमारिगत करना है। प्रत्येक कवि न्यूनाधिक मात्रा मे कल्पना से काम लेता है और काव्य के विभिन्न रसो का उद्दीपन करने के लिये साधारग बातो को बढा-चढाकर लिखता है। जैसे युद्ध का वर्णन करते हुए प्राय. लिख दिया जाता है कि 'रक्त की नदी बह चली जिसमे मरे हुये सैनिक और घोडे जलजन्तुओ के समान बहते दिखाई पडते थे।' जहा तक हम जानते है आज तक ससार की किसी लडाई मे इस प्रकार रक्त की नदी नही बही, जिसमे लाशे तैर सके, पर कविगरग युद्ध के वातावररग को वीभत्स रूप देने के लिये ऐसे रूपक बाँधा ही करते हैं। अब यदि कोई आलोचक सज्जन इस वर्णन को अक्षरश सत्य सिद्ध करने की माँग करे तो यह कैसे सम्भव होगा ? पुरारगोमे देवासुर सग्राम और दुर्गा के युद्धो का वर्णन इसी प्रकार बहुत अधिक बढा-चढाकर लिखा गया है। उस सबको समझदार पाठक कवि की कल्पना का ध्यान रखकर ही पढता और समझता है। यही बात अन्य पौरारिगक कथाओ मे भी ध्यान मे रखनी चाहिए।

अनेक लोग कहा करते है कि बाल्मीकि रामायरग मे श्रीराम चन्द्रजी को एक आदर्श नरेश मानकर ही उनका गुरगानुवाद किया गया है, उनको भगवान का अवतार नही कहा है। उपरोक्त वर्णन

से उनकी शका का निवारण हो सकता है। यहाँ तो कथा के रूप मे देवताओ के कथन द्वारा उनको ईश्वरावतार बतलाया गया है, पर कुछ आगे चलकर वाल्मीकिजी ने स्वय भी इस तथ्य को स्वीकार किया है—

सर्व एव तु तस्येष्टाश्चत्वार पुरुषर्षभा ।
स्वशरीराद् विनिर्वृत्तश्चत्वार इव बाहव ॥
तेषामपि महातेजा रामो रतिकर: पितु ।
स्वयम्भूरिव भूताना बभूव गुणवत्तर. ॥
स हि देवैरुदीर्णस्य रावणस्य वधार्थिभि ।
अर्थितोमानुषे लोके जज्ञे विष्णु सनातन. ॥

"महाराज दशरथ को चारो पुत्रो अपनी भुजाओ के समान ही अत्यन्त प्रिय थे । परन्तु उनमे भी महातेजस्वी श्रीराम सबसे अधिक प्रिय जान पडते थे । इसका एक कारण यह भी था कि वे साक्षात् सनातन विष्णु है और परम प्रचण्ड रावण ने वध के उद्देश्य से देवताओ की प्रार्थना पर मनुष्य-लोक मे अवतीर्ण हुये है ।"

तुलसीकृत रामायण मे तो यह बात और भी प्रभावशाली रूप मे कही गई है । वनवास होने पर चित्रकूट की ओर जाते हुये जब भगवान राम बाल्मीकिजी के आश्रम मे पहुँचे तो महर्षि ने उनसे कहा—

जग पेखन तुम देखनि हारे ।
विधि हरि सभु नचावन हारे ॥
तेउ न जानहि मरमु तिहारा ।
औरु तुम्हहि को जाननिहारा ॥

राम सरूप तुम्हार वचन अगोचर बुद्धि पर ।
अविगत अकथ अपार नेति नेति नित निगम कह ॥

"हे भगवान् ! तुम्ही इस समस्त जगन को जानने और प्रेरित करने वाले हो और ब्रह्मा, विष्णु, महेश इन देवताओ को भी इच्छानुसार चलाते हो । पर वे भी तुम्हारे रहस्य को पूर्ण तरह नही जानते, तब अन्य कोई तुमको कैसे जान सकता है ? हे राम ! तुम्हारा सरूप वाणी और बुद्धि से वर्णन नही किया जा सकता । वह ऐसा अव्यक्त अकथनीय और अपार है कि वेदो ने भी उसका कथन 'नेति-नेति' कहकर ही किया है ।"

बाल्मीकिजी के अतिरिक्त अन्य सब महाज्ञानी ऋषियो ने भी भगवान राम को ईश्वरावतार बतलाया है । इनमे से कोई साकारवादी है और कोई निराकारवादी भी, पर अवतार के सिद्धान्त की सचाई और उसकी महिमा सबने अनुभव की थी । भगवान राम का अवतार हुये थोडा ही समय बीता था कि महामुनि विश्वामित्र को उनकी आवश्यकता पड गई और उन्होने विचार किया—

गाधितनय मन चिन्ता व्यापी ।
हरि बिनु मरहि न निसिचर पापी ।।
तब मुनिबर मन कीन्ह विचारा ।
प्रभु अवतरेउ हरन महि भारा ।।
एहूँ मिस देखौ पद जाई ।
करि विनती आनौ दोऊ भाई ।।
ग्यान विराग सकल गुन अयना ।
सो प्रभु मै देखव भरि नयना ।।

"गाधि नरेश के पुत्र (विश्वामित्रजी) के मनमे यह चिन्ता उत्पन्न हुई कि हमारे धर्मकार्य मे विघ्न डालने वाले पापी राक्षसों को श्री हरि के अतिरिक्त और कोई नही मार सकता । फिर उनको यह विचार आया कि पृथ्वी का भार मिटाने के लिये भगवान का अवतार तो हो चुका है, अब क्यो न उनके पास जाकर दर्शन करूँ और विनय

करके उनको यज्ञ-रक्षार्थ साथ मे ले आऊँ। अब मै अवश्य वहाँ चल कर ज्ञान और विराग के भडार उन प्रभु को मन भर के देखूँगा।"

परशुराम जी ने भी धनुप यज्ञ के अवसर पर बडा रोष प्रकट किया, पर जब रामचन्द्र जी से वार्तालाप हुआ और उनकी शक्ति का अनुमान किया तो उन्होने यही कहा—

न चेयं तव काकुत्स्थ व्रीडा भवितुमर्हति।
त्वया त्रैलोक्य नाथेन यदह विमुखीकृत ॥
(वा० रा० बाल० ७६।१०)

"हे काकुत्स्थकुल भूषण श्रीराम! आपके सामने मेरी जो असमर्थता प्रकट हुई, वह मेरे लिये लज्जाजनक नही हो सकती, क्योकि आप त्रिलोकीनाथ श्रीहरि ने मुझे पराजित किया है।"

वसिष्ठ जी ने भी भगवान् राम के सिहासनासीन हो जाने पर एक बार कहा था कि मै इस पुरोहित कर्म को निन्दित समझता हूँ, पर मैंने इसको ब्रह्माजी के यह कहने पर स्वीकार कर लिया कि इस वश मे आगे चलकर साक्षात् परमात्मा का अवतार होगा जिसकी कृपा से समस्त भोग, यज्ञ, जप, दान आदि धर्मों का फल अनायास ही प्राप्त हो जायगा —

परमात्मा ब्रह्म नर रूपा। होइहि रघुकुल भूषन भूपा ॥
तब मै हृदय विचार किय, योग यज्ञ जप दान।
जेहि हित करिय सो पाइये, धर्म न दूसर आन।

इसी प्रकार बाल्मीकि, तुलसीदास तथा अन्यान्य महात्मा कवियो की रचनाओ मे श्रीरामचन्द्र के अवतार होने के वक्तव्य भरे पडे है। यह सत्य है कि इनमे जो शब्द प्रयुक्त किये गये है वे कवियो के ही है, पर तो भी इससे इतना अवश्य प्रकट होता है कि उन्होने जो कुछ लिखा उसके मूल विचार और उस प्रकार की भावनाएँ उस समय बहुसख्यक लोगो मे पाये जाते थे। जैसा कि कहा गया है कवि अपने

जमाने के लोकमत का दर्पण होता है, बाल्मीकि, तुलसी तथा अन्य विद्वानो की रचनाओ से यह सिद्ध होता है कि मध्य-काल मे भी राम-कृष्ण के सम्बन्ध मे लोगो की अवतार-भावना काफी बढ़ी-चढी थी और विश्व के रक्षक तथा दुष्ट-तत्वो के सहारक के रूप मे उनका सम्मान किया जाता था।

रामायण मे और भी अनेक अवसरो सभी देवताओ और ऋषि-मुनियो के कथनो द्वारा श्रीराम के ईश्वरावतार होने का समर्थन किया गया है और अवतार के स्वरूप तथा महत्व पर भी प्रकाश डाला गया है। सर्व प्रथम तो इसके समर्थक शिवजी है जो सदा भगवान राम का ध्यान करते रहते है।

जासु कृपा सब भ्रम मिट जाई।
गिरिजा सोइ कृपाल रघुराई।
आदि अत कोउ-जासु न पावा।
मति अनुमान निगम जस गावा।
विनु पद चलइ सुनइ बिनु काना।
कर बिनु करम करे विधि नाना।
असि सब भाँति अलौकिक करनी।
महिमा जासु जाइहि बरनी॥

जब भगवान राम वन मे चलते हुये महर्षि अगस्त के आश्रम मे मे पहुँचे तो उनने भी यही कहा—

ऊमरि तरु विशाल तब माया।
फल ब्रह्माण्ड अनेक निकाया।
जद्यपि ब्रह्म अखड अनन्ता।
अनुभव गम्य भजहि जेहि सता।
अस नव रूप बखानउँ जानउँ।
फिर फिर सगुन ब्रह्म रति मानउँ।

सीता की खोज करते समय जब समुद्र को बाँधे जाने का अवसर आया और बन्दरो को इससे घबडाते देखा तो जामवन्त ने उनको समझाया —

तात राम कहुँ नर जनि मानहु। निर्गुण ब्रह्म अजित भज जानहु ।।
हम सब सेवक अति बडभागी । सतत सगुन ब्रह्म अनुरागी ।।

जब भगवान राम सनिक तैयारी करके लका पर आक्रमण करने को समुद्र के किनारे आ पहुँचे तब विभीषण ने युद्ध द्वारा राक्षस कुल के नाश की सभावना देखकर रावण को श्रीराम की अलौकिकता को समझा कर समझौता करने की सलाह दी और कहा—

तात राम नहि नर भूपाला। भुवनेश्वर कालहु कर काला ।।
ब्रह्म अनामय अज भगवता। व्यापक अजित अनादि अनन्त ।।

जब भगवान लका के निकट पहुँच गये और युद्धारम्भ होने का अवसर आ पहुँचा तो मन्दोदरी ने रावण को उनसे सुलह करने को समझाया और कहा कि श्रीराम ही जगत का सचालन करने वाली सर्वव्यापी शक्ति के अवतार है, उनसे कोई किसी प्रकार नही जीत सकता। उसने भगवान राम के विराट् रूप को बतलाते हुये कहा—

विश्व रूप रघुवस मनि, करहु वचन विस्वासु ।
लोक कल्पना वेद कर, अग-अग प्रति जासु ।।

पद पाताल सीस अज धामा । अपर लोग अँग-अँग विश्रामा ।।
भृकुटि विलास भयकर काला। नयन दिवाकर कच घनमाला ।।
जासु घ्रान अश्विनी कुमारा। निसि और दिवस निमेष अपारा ।।
श्रवन दिसा दस वेद बखानी। मारुत स्वास निगम निज बानी ।।
अधर लोभ जम दसन कराला । माया हास दाहु दिग्पाला ।।
आनन अनल अबुपति जीहा । उतपति पालन प्रलय समीहा ।।
रोम राजि अष्टादस भारा । अस्थि शैल सरिता नस जारा ।।
उदर उदधि अधगो जातना । जगमय प्रभु की बहुत कल्पना ।।

अहकार सिव बुद्धि अज, मन ससि चित्त महान।
मनुज बास सचराचर, रूप राम भगवान॥

अर्थात् "इस बात को खूब अच्छी तरह समझ लो कि श्रीराम उस परब्रह्म के अवतार है, जिसके समस्त अ गो मे वेदो ने विभिन्न लोको की कल्पना की है। उनके पैर ही पाताल है और सिर वैकुन्ठ लोक है। इसी प्रकार अन्य लोको का समावेश अन्य-अन्य अ गो मे है। उनकी भृकुटि का चलना ही भयकर काल स्वरूप है, नेत्र सूर्य रूप हैं और केश बादलो के रूप मे है। उनकी घ्राण अश्विनी कुमार है और पलको का चलना दिन रात का होना है। दशो दिशाये उनके कानो के रूप मे है, उनकी स्वास ही वायु है और वाणी ही वेद रुप है। उनके अधर सबको ग्रहण करने वाले और दाँत ही यम है, हँसना माया रूप और ,ुजाये दिकप।ल है। मुख अग्नि स्वरूप है, जीभ, वरुण है, और ससार की उत्पत्ति, स्थिति तथा प्रलय ही उनकी चेप्टा क्रिया है। अठारह प्रकार की असख्यो वनस्पतियाँ रोमावलि है, पर्वत उनके अस्थि-रूप और नदिया नस-नाडियो के तुल्य है। उनका उदर ही समुद्र रूप और अधोभाग नर्क स्वरूप है। इस प्रकार प्रभु के विश्व रूप को बहुत तरह से वर्णन किया गया है। उनका अहकार का भाव ही शिव है बुद्धि ब्रह्मा है और मन चन्द्रमा रूप है। इस प्रकार भगवान राम मनुष्य के रूप मे समस्त चराचर जगत के आश्रयस्थल परमात्मा है।"

इस प्रकार रामायण मे सभी पात्रो के मुख से यही कहलाया गया है कि श्री रामचन्द्र पृथ्वी का भार हरण करने के लिये ही पृथ्वी पर अवतरित हुए है और उनके 'अवतारी स्वरूप' को समझ कर मनुष्य सद्गति का अधिकारी बन सकता है। और तो क्या स्वयप्, रावण भी, जिसके सहार करने को श्री रामचन्द्रजी का आविर्भाव हुआ था, इस सत्य को पनुभव करता था। सीता हरण का विचार करते हुए उसने कहा था—

खरदूषण मो सम बलवता। तिन्हहि को मारइ बिनु भगवता॥

सुर रंजन भजन महि भारा। जो भगवत लीन्ह अवतारा ।।
तो मै जाइ बैरु हठ करिऊँ । प्रभु सर प्रान तजे भव तरऊँ ।।

अर्थात्—"खर और दूषण तो मेरे समान ही बलवान थे, उनको सिवाय भगवान के और कौन मार सकता है? इसलिए देवताओ की प्रसन्नतार्थ पृथ्वी का भार हरण करने के निमित्त यदि भगवान ने अवतार लिया है तो मै जान बूझ-कर उनसे वैर करूँगा, जिससे उनके द्वारा मारा जाकर मेरी मुक्ति हो सके ।"

इस प्रकार जिसकी जैसी भावना और परिस्थिति थी उसने उसी दृष्टि से श्री रामचन्द्र के अवतारत्व को समझा और स्वीकार किया । उन सबके विचारो का आधार यही है कि ससार पर जब कोई बहुत बडी आपत्ति आती है और मानवता कष्टो से पीडित होकर कराहने लगती है तो उसके उद्धार के लिए किसी रूप मे ईश्वरीय शक्ति का विशेष रूप से प्राकट्य होता है । श्री रामचन्द्रजी मे उनके सम्पर्क मे आने वाले सब व्यक्तियो को वैसे ही लक्षण दिखाई पडते थे, इसलिए सब ने अपनी-अपनी भावना के अनुसार उनके दैवी रूप को अनुभव किया ।

'पद्म-पुराण' के 'पातालखण्ड' मे भी रामचरित्र विस्तार पूर्वक दिया गया है । उसमे राज्याभिषेक के अवसर पर देवताओ द्वारा श्री रामचन्द्रजी की स्तुति करते हुए कहा गया है—

तव यद्दनुजेन्द्रनाशन कवयो वर्णयितु समुत्सुका ।
प्रलये जगता तती पुनर्ग्रससे त्व भुवनेश लीलया ।।
जय जन्म जरादि दु खकै परिमुक्ता प्रबलोद्धरोद्धर ।
जय धर्मकरान्वयाम्बुधौ कृतजन्म जरामराच्युत ।।
यदा यदा नो दनुजा हि दु खदास्तदा तदा त्व भुवि
अजोऽव्ययोऽपीश वरोऽपि सन्विभो स्वभावमास्थाय
निज निजार्चित ।।

"आपके द्वारा जो दनुजेन्द्र (रावण) का विनाश हुआ है, उस अद्भुत कथा का समस्त कविगण सदैव उत्कण्ठा पूर्वक वर्णन करते रहेंगे। हे भुवनेश्वर! प्रलय काल मे आप ही सम्पूर्ण लोको को लीलापूर्वक ग्रस लेते है। प्रभो! आप जन्म और जरा आदि से सदा मुक्त है। आप सर्वोपरि शक्ति सम्पन्न है। हे परमात्मन्! आपकी जय हो, आप हमारा उद्धार करे। हे नाथ! जब-जब दानवी (दुष्टतापूर्ण) शक्तियाँ हमे दु ख देने लगे तब तब आप इस पृथ्वी पर अवतार ग्रहण करे। हे प्रभो! यद्यपि आप सब से श्रेष्ठ, अपने भक्तो द्वारा पूजित अजन्मा तथा सबके स्वामी है, तो भी अपनी माया का आश्रय लेकर भिन्न-भिन्न रूपो मे प्रकट होते रहते है।"

"अध्यात्म रामायण" मे भी भगवान राम का अनादित्व और और सच्चिदानन्द स्वरूप अनेक स्थानो पर वर्णन किया गया है—

राम परात्मा प्रकृतेरनादिरा नन्द एक पुरुषोत्तमो हि।
राम विद्धि पर ब्रह्म सच्चिदानन्द मद्वयम्।
सर्वोपाधि विनिर्मुक्त सत्तामात्र मगोचरम्॥

"श्रीराम प्रकृति से परे, परमात्मा, अनादि, आनन्दघन, अद्वितीय एव पुरुषोत्तम है। वे ही सच्चिदानन्द समस्त उपाधियो से रहित, सत्तामात्र, वाणी और मनसे अगोचर परमब्रह्म है।"

'आनन्द रामायण' मे कहा गया है कि श्री रामचन्द्र के दैवी चरित्रो का देखकर महाराज दशरथ ने उनसे एकान्त मे कहा—राम! तुम साक्षात् नारायण हो। तुमने भूमि का भार मिटाने के लिए मेरे यहाँ अवतार लिया है, ऐसा सब लोग कहते है। मैं भी तुम्हारी माया से मोहित हो रहा हूँ, अत: मुझे ज्ञानोपदेश देकर मेरे अज्ञान को दूर करो।' तब भगवान राम ने उनको ससार की मृग मरीचिका का रहस्य समझाते हुए अन्त मे कहा—

पूर्वत्वया तपस्तप्त पुत्रत्व याचित मम।
तस्माज्जातोऽस्मि त्वत्तोऽह कौसल्याया नृपोत्तम॥

'आपने पूर्वकाल मे तप करके मुझे पुत्र रूप मे माँगा था।

इसी कारण मै आपके यहाँ कौशल्या माता के गर्भ से पुत्र रूप से प्रगट हुआ हूँ।"

इस प्रकार भगवान राम ने तथा अन्य ऋषि-मुनियो ने समय समय पर 'रामावतार' के स्वरूप और उद्देश्य को प्रकट किया है।

कृष्णावतार की महानता—

शास्त्रो मे जितने अवतारो का वर्णन किया गया है उनमे प्रथम स्थान भगवान कृष्ण को मिला है और इस लिये 'कलाओ' का हिसाब बतलाया गया है। भगवान की समस्त कलाओ की सख्या १६ मानी गई है। अवतारो मे से कोई ८ कला का कोई १० का, १२ का कहा गया है, पर भगवान कृष्ण 'षोडशकलावतार' के नाम से प्रसिद्ध है। भगवान राम का भी महत्त्व बहुत अधिक है और समस्त जगत उनका सम्मान करता है, पर भगवान कृष्ण ने जितनी अधिक पेचीदा समस्याओ को सुलझाया उसमे उनका महत्व बहुत बढ जाता है। श्री रामचन्द्रजी को मुख्यत रावण का ही सामना करना पड़ा और उसका आतक समाप्त कर देने पर वे जीवन के अन्त तक शातिपूर्वक राज्य-सचालन करके प्रजा को धर्ममार्ग पर चलाते रहे। पर भगवान कृष्ण आजीवन अन्याय और दुष्टता का दमन करते रहे। एक के बाद एक पाशविक शक्ति पर विश्वास रखने वालो का सामना करके लोककल्याण साधन करने मे उनको अपनी समस्त शक्ति और समय लगाना पडा, उसका पूरा वर्णन कर सकना भी कठिन है। जन्म लेते ही कस की क्रूरता के लक्ष्य बने और बाल्यावस्था से ही उसके भयकर-कर्मा दूतो से सघर्ष करना पडा। किशोरावस्था मे वे सब तरह से इतने शक्ति शाली बन गये कि थोडे से अनुयाइयो के सहयोग से कस का अन्त कर दिया। फिर वे उसके ससुर जरासध से भिडे जो समस्त देश का सम्राट बनने की योजना कर रहा था। शिशुपाल जैसे उच्छृखल राजा को उन्होने भरी सभा मे यमलोक पहुँचा दिया और बाणासुर की अहम्मन्यता को नीचा दिखा दिया। जब देखाकि इस प्रकार एक-एक को

खत्म करते तो सारी आयु बीत जायगी तब भी काम पूरा न होगा, तो 'महाभारत' रचा दिया और शक्ति के मतवाले राजाओ को परस्पर मे ही नष्ट कराके प्रजा को उनके असह्य भार से मुक्त किया।

भगवान कृष्ण की इस लोक-कल्याण वृत्ति का समस्त जनता पर अपूर्व प्रभाव पडा और उसके अन्त करण मे स्वत. यह भावना भर गई कि वे वास्तवमे लोक रक्षक थे और उन्होने इसी हेतु जन्म ग्रहण किया था। किसी को यह विश्वास नही होता था कि कोई एक व्यक्ति ऐसे अनेक असम्भव कामो को सिद्ध करके दिखा सकता है, इसलिए सबको ही निश्चय हो गया कि वे वास्तव जगतपति भगवान ही थे, जो ससार की रक्षार्थ प्रकट हुये थे और इस उद्देश्य की पूर्ति करके अस्तगत हो गये।

महाराज युधिष्ठिर के ईश्वर भक्ति और अवतार आदि के सम्बन्ध मे अत्यन्त विनयपूर्वक पूछने पर एक बार भगवान कृष्ण ने अपने प्राकट्य का रहस्य इस प्रकार बतलाया था–

इद मे मानुष जन्म कृतमात्मनि मायया।
धर्म सस्थापनार्थाय दुष्टाना नाशनायच ॥
मानुष्य भावमापन्न ये मामृग्रहणत्त्यवज्ञय।
ससारार्तहि ते मूढास्तिर्यग्योनिष्वनेकश ॥
ये च मा सर्वभूतस्थ पश्यन्ति ज्ञानचक्षुषा।
मद्भक्तांस्तान् सदा युक्तान् मत्समीप नयाम्यहम् ॥
स्थित्युत्पत्त्य व्ययकर यो मा ज्ञात्वा प्रपद्यते।
अनुग्रहणाम्यह त वै ससारान्मोचयामि च ॥

"इस समय धर्म की स्थापना और दुष्टो का विनाश करने के लिये ही मैंने अपनी माया से मानव रूप में अवतार लिया है। जो लोग मुझे केवल मनुष्य ही समझकर अवज्ञा का भाव रखेंगे, वे मूर्ख हैं और ससार के भीतर बारम्बार तियक् योनियो मे भटकते फिरगे। इसके विपरीत जो ज्ञानदृष्टि से मुझे सब भूतो मे स्थित देखते हैं, वे

सदा मेरे भक्त बने रहते है और अन्त मे मेरे पास ही आ जाते है। जो मनुष्य मुझे जगत की उत्पत्ति, स्थिति और सहार का कारण समझकर कर मेरी शरण लेता है, उसको मै भवबन्धन से छुडा देता हूँ।"

अहमादिर्हि देवानां सृष्ट ब्रह्मादयो मया।
प्रकृति स्वामवष्टभ्य जगत् सर्व सृजाम्यहम्।।
तमोमूलोऽहमव्यक्तो रजोमध्ये प्रतिष्ठित।
ऊर्ध्वा सत्व विना लोभ ब्रह्मादिस्तम्ब पर्यत.।
धृतोर्वी सर्वत: सम्पगत्यतिष्ठ दशागुलम्।
सर्वभूतात्म भूतस्थ. सर्वव्यापी ततोऽस्म्यहम्।।

"मैं ही देवताओ का आदि हूँ। ब्रह्मा आदि देवताओ की मैने ही सृष्टि की है। मैं ही अपनी प्रकृति का आश्रय लेकर जगत की सृष्टि करता हूँ। मैं अव्यक्त परमेश्वर ही तमोगुण का आधार, रजोगुण के भीतर स्थिति और उत्कृष्ट सत्वगुण मे भी व्याप्त हूँ। मुझे कोई आकाक्षा नही है पर मै ब्रह्मा से लेकर छोटे से कीट मे भी व्याप्त हूँ। मैं पृथ्वी को सब ओर से धारण करके, नाभि से दश अ गुल ऊपर सब के हृदय मे विराजमान हूँ। सम्पूर्ण प्राणियो मे आत्मरूप से स्थिति हूँ, इसलिए सर्वव्यापी कहलाता हूँ।"

कस का शासन समाप्त होने के पश्चात् एक दिन कृष्ण-बलराम जब अक्रूरजी के पास गये तो उनकी महिमा को समझकर वयोवृद्ध होते हुए भी उन्होने उनकी पूजा की और स्तुति करते हुए उनकी दैवी सत्ता के विषय मे कहा—

युवा प्रधान पुरुषौ जगद्धेतू जगन्मयौ।
भवद्भ्या न बिना किञ्चित् परमास्ति न चापरम्।।
आत्म सृष्टिमिद विश्वमन्वाविश्य स्वशक्तिभि:।
ईयते बहुधा ब्रह्मन् श्रुत प्रत्यक्ष गोचरम्।।
यथाहि भूतेषु चराचरेषु मह्यादयो योनिषु भान्ति नाना।

एव भवान् केवल आत्मयोनिष्वात्मऽऽत्मतन्त्रो बहुधा
विभाति ॥
सृजस्वथो लुम्पसि पासि विश्व, रजस्तम. सत्वगुणै
स्वशक्तिभिः ।
न बध्यसे तद्‌गुणकर्मभिर्वाज्ञानात्मनस्ते क्वच बन्धहेतु ॥
देहाद्युपाधेरनिरूपितत्वाद् भवो न साक्षान्न भिदाऽऽत्मनः
स्यात्
अतो न बन्धस्तव नै व मोक्षः स्याता निकामस्त्वयि
नोऽविवेक. ॥

आप जगत के कारण जगत-रूप और आदि पुरुष हैं। आपके अतिरिक्त और कोई वस्तु नही है न कारण है और न कार्य। हे परमात्मन् ! आपने ही अपनी शक्तियो से इसकी रचना की है। आप अपनी काल, माया आदि शक्तियो से इसमे प्रविष्ट होकर, जितनी वस्तुएं देखी और सुनी जाती हैं; उनके रूप मे प्रतीत हो रहे हैं। जैसे पृथ्वी आदि की रचना उनके कारण तत्वो से ही होती है, पर कार्य रूप मे अनेक प्रकार के प्रतीत होते है, इसी प्रकार आप हैं तो केवल आत्मा तत्व मे ही, पर कार्यरूप जगत मे स्वेच्छा से अनेक रूपो मे प्रतीत होते हैं। प्रभो ! आप रजोगुण, सत्वगुण और तमोगुण रूप अपनी शक्तियो से क्रमशः जगत की रचना, पालन और सहार करते है, किन्तु उन गुणो अथवा उनके द्वारा होने वाले कर्मों बन्धन मे नही पडते क्योकि आप शुद्ध ज्ञान स्वरूप है। ऐसी स्थित मे आपके लिये बन्धन का कारण ही क्या हो सकता है ? आत्मा मे किसी प्रकार की स्थूल अथवा सूक्ष्मदेह की उपाधि नही होती इसलिये उसमे न तो जन्म मृत्यु होती है, न कोई भेदभाव होता है। यही कारण है कि आप बन्धन और मोक्ष दोनो से परे हैं। हम अपने अज्ञान के कारण ही अपनी मति के अनुसार आप के बन्धनग्रस्त या मुक्त होने की कल्पना किया करते हैं।'

इसी प्रकार जब भगवान कृष्ण कालयवन को धोखा देकर मुचुकुन्द के पास ले गये और उसे भस्म करा दिया तो मुचुकन्द द्वारा नाम, वश, निवास स्थान आदि पूछने पर अपना परिचय देते हुए उसमे अपने ईश्वरत्व को पूर्ण रूप से प्रकट किया है—

जन्मकर्माभिधानानि सन्ति मेऽङ्ग सहस्रश. ।
न शक्यन्तेऽनुसख्यातुमनन्तत्वान्मयापि हि ॥
क्वचिद् रजासि विममे पार्थिवान्युरुजन्मभि ।
गुणकर्माभिधानानि न मे जन्मानि कर्हिचित् ॥
कालत्रयोपपन्नानि जन्म कर्माणि मे नृप ।
अनुक्रमन्तो नैवान्त गच्छन्ति परमर्षय. ॥
तथाप्यद्यतनान्यङ्ग शृणुष्व गदतो मम ।
विज्ञापितो विरिञ्चेन पुराह धर्म गुप्तये ॥
भूमेर्भारायमाणानाम सुराणा क्षयाय च ।
अवतीर्णो यदुकुले गृह आनक दुन्दभे. ॥
वदन्ति वासुदेवेति वसुदेवसुत हि माम् ।

"हे मुचुकुन्द ! मेरे हजारो जन्म, कर्म और नाम हैं । वे अनन्त है इसलिये मैं भी उनकी गिनती करके नही बतला सकता । यह सम्भव है कि कोई पुरुष अपने जन्मो मे पृथ्वी के धूलकणो की गिनती कर डाले, परन्तु मेरे जन्म, गुण कर्म और नामो को कोई कभी किसी प्रकार नही गिन सकता । सनक-सनन्दन आदि परमर्षिगण मेरे त्रिकालसिद्ध जन्म और कर्मो का वर्णन करते रहते है, परन्तु कभी उनका पार नही पाते । ऐसा होने पर भी मैं तुमको बतलाता हूँ कि पहले ब्रह्माजी ने मुझसे धर्म की रक्षा और पृथ्वी का भार बने हुए असुरो का सहार करने के लिये प्रार्थना की थी । उन्ही की प्रार्थना से मैं ने यदुवश मे वसुदेवजी के यहाँ अवतार ग्रहण किया है । अब मैं वसुदेव जी का पुत्र हूँ, इसलिये मुझे वासुदेव कहते है ।"

जब वाणासुर ने श्री कृष्ण के पौत्र अनिरुद्ध को अवरुद्ध कर लिया तो उन्होने वाणासुर की राजधानी शोणितपुर पर आक्रमण किया और बडे-बडे प्रसिद्ध दैत्यो तथा उनके सहायक भगवान शकर के गणो को हरा कर भगादिया । जब वे वाणासुर की भुजाओ को काटने लगे तो भगवान शकर ने स्वय वहाँ आकर उनसे वाणासुर की रक्षा की प्रार्थना की । उस अवसर पर शकरजी ने श्रीकृष्ण की स्तुति करते हुए कहा था ।

त्व हि ब्रह्म परं ज्योतिगूंढं ब्रह्मणि वाङ्मये ।
य पश्यन्त्यमलात्मान आकाशमिव केवलम् ।।
नाभिर्नभोऽग्निर्मुखमम्बु रेतो द्यौ शीर्षमाशा श्रुतिरङ्घ्रिरुर्वी ।
चन्द्रो मनोयस्य दृगर्क आत्मा अह समुद्रो जठर भुजेन्द्र. ।।
तवावतारोऽयमकुण्ठधामन् धर्मस्य गुप्त्यै जगतो भवाय ।
वद च सर्वे भवतानुभाविता विभावयामो भुवनानि सप्त ।।
त्वमेक आद्य पुरुषोऽद्वितीयस्तुर्य स्वदृगघेतुरहेतुरीश ।
प्रतीपसेऽथापि यथाविकार स्वमायया सर्वगुण प्रसिद्धयै ।।
यथैवसूर्य. पिहितश्छायया स्वया छाया च रूपाणि च सञ्चकास्ति ।
एव गुणेनापि हतो गुणास्त्वमात्मप्रदीपो गुणिनश्च भूमन् ।।
(स्कन्द १० अ० ६३)

"प्रभो ! आप वेदमन्त्रो मे तात्पर्य रूप से छिपे हुये परम ज्योति स्वरूप परब्रह्म है । शुद्ध हृदय महात्मागण आपके आकाश के समान सर्वव्यापक और निर्विकार स्वरूप का साक्षात्कार करते है । आकाश आपकी नाभि है, अग्नि मुख है, जल वीर्य है, स्वर्ग सिर, दिशाएँ कान और पृथ्वी चरण हैं । चन्द्रमा मन, सूर्य नेत्र, और मैं (शिव) आपका अहकार हूँ । समुद्र आपका पेट है और इन्द्र भुजा स्वरूप है । हे अखड ज्योतिस्वरूप परमात्मन् ! आपका यह अवतार धर्म की रक्षा और

ससार के अभ्युदय-आभिवृद्धि के लिये हुआ है। हम सब आपके प्रभाव से ही प्रभावान्वित होकर सातो भुवनो का पालन करते हैं। आप एक और अद्वितीय आदिपुरुष है। मायाकृत जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति—इन तीन अवस्थाओ मे अनुगत और उनसे अतीत तुरीय तत्त्व भी आप ही है। आप किसी दूसरी वस्तु से प्रकाशित नही होते, वरन् स्वय प्रकाश है। आप सब के कारण हैं, परन्तु आपका न तो कोई कारण हैं और न आप मे कारणपना ही है। भगवान्! ऐसा होने पर भी आप तीनो गुणो की विभिन्न विषमताओ को प्रकाशित करने के लिये अपनी माया से देवता, पशु, पक्षी, मनुष्य आदि शरीरो के अनुसार भिन्न भिन्न-रूपों मे प्रतीत होते है।"

भगवान कृष्ण जी ने शकर जी के अनुरोध की रक्षा करके वाणासुर को प्राण प्रदान किया और कहा कि आप (शकर जी) और मुझमे कोई भेद ही नही है। केवल सृष्टि सचालन के लिये दो भिन्न रूप जान पडते है।

'पद्मपुराण' में वेद व्यास और कृष्णजी का संवाद—

एक बार भगवान वेद व्यास ने ईश्वर के परमतत्व को जानने की इच्छा से कई हजार वर्ष तक कठिन तप किया। इस पर प्रसन्न होकर भगवान ने उनसे वर मागने को कहा तो उन्होने यही प्रार्थना की, कि हे मधुसूदन! मैं आपके अद्भुत तत्व रूप को ही जनना चाहता हूँ। इस पर भगवान ने कहा—

मामेके प्रकृति प्राहु पुरुष च तथेश्वरम्।
धर्म मेके धन चैके मोक्ष मेके ऽकुतोभयम्॥
शून्य मेके भावमेके शिवमेके सदाशिवम्।
अपरे वेदशिरसि स्थितमेकं सनातनम्॥
सद्भावं विक्रियाहीन सच्चिदानन्द विग्रहम्।
अद्याद्य दर्शयिष्यामि स्वरूपं वेदिगोपितम्॥

"हे व्यासजी ! मेरे विषय मे लोगो की अनेक प्रकार की धारणा हैं। कोई मुझे 'प्रकृति' कहते हैं, कोई 'पुरुष' कोई ईश्वर' कोई 'धर्म' या 'अर्थ'। किन्ही के मत से मैं भय रहित मोक्षस्वरूप हूं, कोई भाव (सत्वस्वरूप) मानते हैं और कोई कल्याणमय सदाशिव बतलाते हैं। इसी प्रकार दूसरे लोग मुझे वेदान्त प्रतिपादित 'अद्वितीय सनातन ब्रह्म' मानते हैं। किन्तु जो वास्तव मे सत्तास्वरूप और निर्विकार है, जो दिव्य सच्चिदानन्द विग्रह रूप है, तथा जिसका रहस्य वेदो से भी छिपा हुआ है, अपने उस पारमार्थिक स्वरूप को आज तुम्हारे सामने प्रकट करता हूं।"

यह कह कर भगवान ने व्यासजी को अपना बालकृष्ण स्वरूप दिखलाया, जिसमे वे एक दिव्य बालक के रूप मे गोप बालक और कन्याओ से घिरे हुए एक कदम्ब वृक्ष की जड पर बैठे हुए थे। भगवान ने कहा—

यदिह मे त्वया दृष्ट रूप दिव्य सनातनम् ।
निष्कल निष्क्रिय शान्त सच्चिदानन्द विग्रहम् ॥
पूर्ण पद्मपलाशाक्ष नात परतर मम ।
इदमेव वदन्त्येते वेदा कारणकारणम् ॥
सत्य नित्यं परानन्द चिद्घन शाश्वत शिवम् ।

"हे मुनिवर ! तुमने जो इस दिव्य सनातन रूप का दर्शन किया है, यही मेरा निष्कल, निष्क्रिय, शान्त और पूर्ण सच्चिदानन्दमय विग्रह है। इस कमल लोचन स्वरूप से बढकर दूसरा कोई उत्कृष्ट तत्व नही है। वेद इसी स्वरूप का वर्णन करते हैं और यही कारणों का भी कारण हैं। यही सत्य, नित्य, परमानन्द स्वरूप; चिदान दघन, सनातन शिवतत्व है।"

आदि पुराण में भगवान का भक्ति-तत्त्व कथन—

'आदि पुराण' मे भक्ति मार्ग और भक्तों की महिमा का कथन

करते हुए भगवान कृष्ण ने कहा—

नाहं वसामि वैकुण्ठे योगिनां हृदये न च ।
मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद ।।

'हे नारदजी ! मैं न तो वैकुन्ठ मे वास करता हूँ और न योगियों के हृदय मे ही रहता हूँ । मेरे भक्त जहा मेरा गुण-कीर्तन या स्मरण करते हैं मैं वही रहता हूं ।'

इस एक ही श्लोक मे भगवान ने उस तत्व को प्रकट कर दिया है जिसको कोई तीन काल मे नहीं कर सकता । वैकुण्ठ के योग्य धर्म-साधन अथवा योग-साधन न्यूनाधिक सांसारिकता से सम्बन्धित है और इनमे मनुष्य जो कुछ कर्म करता है वह फल प्राप्ति की इच्छा से होता है । पर भगवान की निष्काम भक्ति एक ऐसी चीज है जिसमे भला-बुरा कोई उद्देश्य नही होता वरन्-भक्ति-भक्ति के लिये ही होती है, और उस मार्ग पर चलने वाला निश्चित रूप से जीवन को सफल कर लेता है । भक्त के लिए भगवान हर जगह और हर रूपमे उपस्थिति रहते हैं । उनको वैकुण्ठ मे, या मन्दिरो मे या किसी विशेष विधि के द्वारा ही प्राप्त करने की चेष्टा आवश्यक नही है । वे सत्ता मात्र है और इस लिए सर्वत्र और सभी रूपो मे उनको पाया जा सकता है ।

भविष्य पुराण में अवतार कथन—

महाभारत युद्ध के पश्चात जब महाराज युधिष्ठिर, राज्यसंचालन कर रहे थे, एक समय व्यास, मार्कण्डेय शाडिल्य आदि अनेक मुनि उनके पास आये । उस अवसर पर उन्होने धर्म सिद्धान्त को जानने की जिज्ञासा की तो श्री व्यासजी ने उन्हे बतलाया—

पार्श्वस्थिते हृषीकेशे केशवे केशिसूदने ।
कस्यचित्कथने जिह्वा तत्र सपरिवर्तते ।।
कर्ता पालयिता हर्ता जगता यो जगन्मय. ।
प्रत्यक्षदर्शी सर्वस्य धर्मान्वक्ष्यत्यसौ तव ।।

भगवान केशिसूदन श्रीकृष्ण यहा हमारे सामने सब के

उपस्थित है। इन के रहते हुए धर्म के सम्बन्ध मे कोई अन्य क्या कह सकता है ? ये तो ससार के कर्ता-हर्ता, पालन कर्ता और स्वय ही जगतरूप हैं। ये धर्म के प्रत्यक्ष दृष्टा है। इस धर्म के सम्बन्ध मे ये ही तुम को सब कुछ बता सकेगे ।

ब्रह्मवैवर्त पुराण—

ब्रह्मवैवर्त पुराण मे राधा कृष्ण के युगल स्वरूप की उपासना को सर्वोच्च मान कर उसका दिव्य रूप मे बडे विस्तार के साथ वर्णन किया गया है। पर उसमे भी भगवान को सबका कर्ता और सर्वव्यापी मान कर अवतार के स्वरूप का वर्णन पाया जाता है। जब नन्द बाबा भगवान कृष्ण के मथुरा मे ही ठहर जाने के कारण उनके वियोग से अत्यन्त कातर हो रहे थे, तब भगवान से स्वय उनको बतलाया था—

निबोध नन्द सानन्दं त्यज शोकं मुदं लभ ।
ज्ञान गृहाण मद्दत्तं ब्रह्मणे पुरा ॥
यद्यदत्त च शेषाय गणेशायेश्वराय च ।
दिनेशाय मुनीशाय योगीशाय च पुष्करे ॥
ममैव मायया सर्वे सानन्दा विषयेषु च ।
देहत्यागे विषण्णाश्च विच्छेदे बान्धवस्य च ॥
मद्भक्तो भक्तियुक्तश्च मद्याजी विजितेन्द्रिय. ।
मन्मन्त्रोपासकश्चैव मत्सेवानिरत शुचि· ॥
मद्भयाद्वाति वातोऽय रविभाति च नित्यशः ।
भाति चन्द्रो महेन्द्रश्च कालभेदे च वर्षति ॥
वह्निर्दहति मृत्युश्च चरत्येव हि जन्तुषु ।
विभर्ति वृक्षः कालेन पुष्पाणि च फलानि च ॥

हे नन्द बाबा ! मेरे वचनो को आनद पूर्वक सुनो, शोक को त्यागकर वर्ष को हृदय मे स्थान दो। मैं जो विश्व ब्रह्माण्ड सम्बन्धी रहस्य बतलाता हूँ उसे सुनो और समझो। पूर्वकाल मे यही ज्ञान मैंने

ब्रह्मा, शेष, गणेश, महेश, दिनेश, मुनीशो और योगीशो को भी प्रदान किया था। यह मेरी माया ही है जिसके प्रभाव से सब प्राणी ससार के सुखो को प्राप्त करके प्रसन्न होते रहते है और देह त्याग तथा कुटुम्ब-परिवार से छूटने का समय आता है तो विषाद करने लगते है। पर जो मेरा भक्त परमात्मा-तत्व को समझता होगा, मेरे भजन मे लगा रहता होगा, इन्द्रियो को वश मे रख कर मेरी उपासना करता होगा, निरन्तर मेरी सेवा मे सलग्न होगा, वह सदैव परम पवित्र माना जायगा और कभी किसी कारण से दुःखी नही हो सकेगा। आप अच्छी तरह विश्वास करलो कि विश्व का नियन्ता मै ही हूँ। मेरे भय से ही वायु चलती है, सूर्य और चन्द्रमा प्रतिदिन प्रकाशित होते हैं, इन्द्र समय पर वर्षा करते है, आग जलती है, मृत्यु सब जीवो को हटाती रहती है और वृक्ष समयानुसार पुष्प फल आदि धारण करते हैं।"

अहमात्मा च सर्वेशा सर्वज्ञानात्मक स्मृत ।
मनो ब्रह्मा च प्रकृतिर्बुद्धिरूपा सनातनी ॥
प्राणा विष्णुश्चेतना सा पद्मा तु चाधि देवता ।
मयिस्थिते स्थित. सर्वे गतास्तेऽपि गते मयि ॥
अस्माभिश्च विना देह सद्य पतित निश्चितम् ।
पाञ्चभूतो विलीनश्च पंचभूतेषु तत्क्षणम्
सर्व देहे प्रविष्टोह न लिप्त सर्व कर्मसु ।
जीवन्मुक्तश्च मद्भक्तो जन्ममृत्युजराहर ॥

"मैं सर्वेश्वर पूर्ण ज्ञान स्वरूप आत्मा हूँ। ब्रह्मा मन है, सनातनी प्रकृति बुद्धि है, प्राण विष्णु है, तथा चेतना उसकी अधिष्ठात्री देवी लक्ष्मी है। शरीर मे जब तक मैं चेतन आत्मा रूप से स्थित रहता हूँ, तभी तक वह भी स्थिर रहता है। मेरे चले जाने पर वे भी सब हट जाते हैं, क्योकि सब मेरे ही रूप हैं। इन सबके चले जाने पर देह तत्काल निस्सार हो जाता है। जिन पच भूतो से वह बना होता है वे भी समयानसार अपने मल तत्वो मे विलीन हो जाते हैं। इस प्रकार मैं

आत्मा रूप से समस्त शरीर मे व्याप्त रहता हूँ, पर उनके द्वारा किये जाने वाले कर्मों से निर्लिप्त रहता हूँ। मुझे इस रूप मे जानने वाला मेरा भक्त जीवन्मुक्त होता है और उस पर जन्म-जरा, मृत्यु का कोई दुष्प्रभाव नही पडता।''

विष्णु पुराण में अक्रूरजी का भगवद्दर्शन-

अक्रूरजी जब कस की आज्ञा से कृष्ण और बलराम को वृन्दावन से लिवाकर मथुरा आ रहे थे तो मार्ग मे सन्ध्या-वन्दन के निमित्त वे यमुना मे स्नान करने को उतरे। वहाँ उनको शेष शैया पर भगवान कृष्ण के दर्शन हुये तो वे आश्चर्य चकित हो गये क्योंकि वे उसी समय उनको रथ पर बैठा हुआ छोड आये थे। फिर जब वे जल से बाहर आये तो उन्होने दोनो भाइयो को उसी प्रकार बैठा पाया। जब दूसरी बार भी ऐसा ही दृश्य दिखलाई पडा तो वे भगवान कृष्ण के वास्तविक परात्पर रूप को पहिचान गये और स्तुति करत हुए उन्होने कहा—

नमो विज्ञान पाराया पग प्रकृते. प्रभो।
भूतात्मा चेन्द्रियात्मा च प्रधानात्मा तथा भवान्॥
आत्मा च परमात्मा च त्वमेक पचधा स्थित'।
प्रसीद सर्वे सर्वात्मन् क्षराक्षरमयेश्वर।
ब्रह्माविष्णुशिवाख्याभि' कल्पना भिरुदीरित॥
अनाख्येयस्वरूपात्मन्ननाख्येय प्रय.जनम्।
अनाख्येयाभिधानं त्वा नतोऽस्मि परमेश्वर॥
न यत्र नाथ विद्यन्ते नामजात्यादिकल्पना'।
तद् ब्रह्म परम नित्यमविकारि भवानजः॥
न कल्पनामृतेऽर्थस्य सर्वस्याधिगमो यतः।
तत कृष्णाच्युतानन्तविष्णु सज्ञा भिरीड्यते॥

"हे प्रभो! आप विज्ञान और प्रकृति से परे को नमस्कार है। आप एक ही भूतात्मा, इन्द्रियात्मा, प्रधानात्मा, जीवात्मा और पर-

मात्मा—इन पाँच रूपो मे स्थित है। सर्वात्मन ! हे क्षर-अक्षरमय परमेश्वर ! आप एक ही ब्रह्मा, विष्णु, महादेव के रूपो मे कल्पित किये जाते हैं। हे भगवान् ! आपके नाम, रूप प्रयोजन–सभी अकथ-नीय है। ऐसा कोई स्थान नही जहाँ आप न हो। आप जाति आदि कल्पनाओ से परे नित्य, निर्विकार एव अजन्मा परब्रह्म है। पर बिना किसी विधि के आपका वर्णन सभव न होने से ही लोग कृष्ण अच्युत, अनन्त और विष्णु आदि नामो से आपकी आराधना करते है।

सर्वार्थस्त्वमज विकल्पनाभिरेतै –
र्देवाद्यैर्भवति हि यैरनन्त विश्वम् ।।
विश्वात्मा त्वामिति विकारहीन मेत ।
त्सर्वस्मिन्न हि भवतोऽसि किञ्चिदन्यत् ।।
त्व ब्रह्मा पशुपतिर्यमा विधाता ।
धाता त्व त्रिदशपतिस्समीरणोऽग्नि ।।
तोमेशो धनपतिरन्तकस्त्वमेको ।
भिन्नार्थैर्जगदभिपासि शक्ति भेदै ।।
विश्व भवान्सृजति सूर्यगभस्तिरूपो ।
विश्वेश ते गुणमयोऽयमत' प्रपच ।।
रूप परं सदिति वाचकमक्षरं य—
ज्ज्ञानात्मने सदसते प्रणतोस्मि तस्मै ।।

"हे अजन्मा ! जिन देवादि कल्पना वाले पदार्थों से यह ससार उत्पन्न हुआ हैं, वह आप ही हैं। आप ही विकारहीन आत्मावस्तु होने से विश्वात्मा हैं। इन सब मे आपसे भिन्न कोई भी पदार्थ नही है। आप ही ब्रह्मा, पशुपति; अर्यमा, विधाता, धाना, इन्द्र, समीर, अग्नि, वरुण, कुबेर और यम के रूप मे विभिन्न कार्यभेद के द्वारा सम्पूर्ण विश्व का सचालन करते हैं। हे विश्वेश्वर ! आप ही सूर्य रश्मियो के रूप मे होकर जगत की सृष्टि करते हैं। इस प्रकार यह गुणमय सम्पूर्ण प्रपच आपका ही स्वरूप है। जिसका वाचक सत है, वह प्रणव आपका

ही रूप है। आपके उस ज्ञानात्मक सत्स्वरूप को मैं प्रणाम करता हूँ।"

'विष्णुपुराण' के आरम्भ मे ही मैत्रेय के जिज्ञासा करने पर महर्षि पाराशर ने कहा था—

विष्णो सकाशाद्‌द्भूतम् जगत्तत्रैव च
स्थितम् स्थिति सयमकर्ता सौ जयमगतोऽस्य जगच्च स ॥
अविकाराय शुद्धाय, नित्याय परमात्मने ।
सदैक रूपरूपाय विष्णवे सर्वजिष्णवे ॥
नमो हिरण्यगर्भाय हरये शकराय च ।
वासुदेवाय ताराय सर्गस्थित्यन्त कारिणे ॥
एकानेक रूपाय स्थूल सूक्ष्मात्मने नम. ।
अव्यक्तव्यक्तरूपाय विष्णवे-मुक्ति हेतवे ॥

"यह समस्त जगत भगवान विष्णु से ही उत्पन्न हुआ है और उन्ही मे स्थित है। इसकी स्थिति और सचालन के कर्त्ता वही हैं और वस्तुत वे ही जगत रूप है। ऐसे विकाररहित, शुद्ध, तीनो काल मे अविनाशी, परमात्मा, सर्वदा एक रूप, सर्व विजयी विष्णु ही हरि, हिरण्यगर्भ और शकर क नाम से प्रसिद्ध हैं। उन सृष्टि स्थिति और विनाश के कारण भगवान विष्णु को नमस्कार है। अनेकानेक स्वरूप, स्थूल, सूक्ष्ममय, कर्मकारणभूत, मुक्तिप्रदाता, समस्त जगत की उत्पत्ति, स्थिति और सब के मूलभूत जगतमय परमात्मा विष्णु को नमस्कार है।" भगवान कृष्ण को कही विष्णु का और कही विष्णु-ब्रह्मा-शिव आदि त्रिदेवो के भी उत्पत्तिकर्त्ता परब्रह्म का अवतार कहा गया है। वास्तव में विश्व की सर्वोच्च सत्ता चैतन्य-तत्त्व है। जो उसके मूल स्वरूप को समझ लेता है और उसी मे स्थित हो जाता है उसे विष्णु, महाविष्णु परमात्मा सब कुछ कहा जा सकता है।

हरिवंश पुराण—

'हरिवश पुराण मे भी कई स्थानो पर श्री कृष्ण जी के

अवतारत्व का विशेष रूप से प्रतिपादन किया है और समस्त दैवी और पार्थिव शक्तियो का केन्द्र उन्ही को बतलाया गया है। जब उन्होने बाणासुर को मारने के लिये उस पर चढाई की तब भगवान शकर बाणासुर की तरफ से लडने को आये। दोनो मे ऐसा भीषण युद्ध हुआ कि पृथ्वी भय से काँपने लगी और ब्रह्माजी की शरण मे पहुँची। उसकी रक्षा के लिये ब्रह्माजी ने शिवजी के पास जाकर कहा—

"हे भगवान् ! आपने स्वय ही इस महादैत्य के निधन का उपाय किया था, फिर आप इसकी रक्षा को क्यो तत्पर है ? श्रीकृष्ण तो आपकी ही आत्मा है, इसलिये उनके साथ युद्ध करना आपको शोभा नही देता।" यह सुनकर भगवान शकर ने श्रीकृष्ण की देह मे घुसकर तीनो लोको के दर्शन किये। उस समय उन्होने योगस्थ होकर अपने जृम्भास्त्र को निष्क्रिय देखा, फिर द्वारका मे बाणासुर की मृत्यु विषयक अपने वर का भी स्मरण किया। तब ब्रह्माजी की बात मान कर वे कहने लगे—अब मै श्रीकृष्ण से नही लड़ूँगा, अच्छा हो कि पृथ्वी का भार हलका हो जाय। अन्त मे जब श्रीकृष्ण ने बाणासुर को पराजित करके मारना चाहा तो शकर जी ने उसकी प्राण रक्षा का आग्रह करते हुये कहा—

कृष्ण कृष्ण महाबाहो जाने त्वा पुरुषोत्तमम्।
मधु कैटभ हन्तार देवदेव सनातनम् ॥
लोकानां त्व गतिर्देव त्वत्प्रसूतमिद जगत्।
अजेयस्त्व त्रिभिर्लोकै. ससुरासुर पन्नगै ॥
तस्मात्सहर दिव्य त्वमिद चक्र समुद्यतम्।
बाणस्यास्याभय दत्त मया केशिनिषूदनम्।
तन्मे न स्यादवृथा वाक्यमतस्तत्वा क्षामयाम्यहम् ॥

"हे महाबाहो ! हे पुरुषोत्तम ! हे देवाधिदेव कृष्ण ! आप ही मधुकैटभ को मारने वाले सनातन पुरुष हैं। आपही ससारी जीवो की एकमात्र गति हैं, और यह सम्पूर्ण विश्व आप से ही उत्पन्न हुआ है।

इसलिये कोई देवता, दैत्य, मनुष्य अथवा अन्य प्राणी आपको परास्त नही कर सकता । अत आप कृपा करके अपने अमोघ चक्र को रोक लें । हे केशव ! मैंने बाणासुर को अभय प्रदान किया हुआ है, इसलिये आप ऐसा करे जिससे मेरे वचनो की रक्षा हो सके ।"

इसी प्रकार बाणासुर पर विजय प्राप्त करके वहाँ से लौटते समय उनका सघर्ष बरुण से हो गया । उस समय श्रीकृष्ण की शक्ति से अपनी सेना को नष्ट होते देख कर उसने कहा—

अजेय शाश्वतो देह' स्वयम्भूभूतभावनः ।
अक्षरच क्षरचैव भावाभावौ महाद्युते ।।
रक्ष मा रक्षणीयोऽह त्वयाऽनघ नमोस्तुते ।
आदिकर्त्ताऽसि लोकाना त्वयैतद् बहुलीकृतम् ।।
विक्रीडसि महादेव बाल क्रीडनकैरिव ।
न ह्ययं प्रकृ'तिद्वे षी नाह प्रकृति दूषकः ।।
प्रकृतिर्या विकारेषु वर्त्त ते पुरुषर्षभ ।
तस्या विकार शमने वर्त्त से त्व महाद्युते ।।
विकारो वा विकाराणां विकाराय न तेऽनघा ।
तान धर्मविदो मन्दान्भवान्वि कुरुते सदा ।।
परावरज्ञ सर्वज्ञ ऐश्वर्यविधिमास्थि ति ।
किं मोहयसि न सर्वान्प्रजापतिरिव स्वयम् ।।

"हे भगवन् ! आप अजेय, शाश्वत, स्वयम्भू, भूतभावन, अक्षर-क्षर, भाव-अभाव हैं और आपही सर्वत्र व्याप्त हैं । हे एक से अनेक होने की सामर्थ्य रखने वाले परमात्मन् ! मैं तो आपसे रक्षा किये जाने का पात्र हूँ । हे लोको के कर्त्ता जगदीश्वर ! आपको नमस्कार है । जैसे बालक खिलौनो के साथ खेलते हैं वैसे ही आप इस विश्वरूपी खिलौने से खेलते रहते हैं, पर उसका तात्पर्य किसी की समझ मे नही आता । जब प्रकृति मे कोई महाविकार उत्पन्न हो जाता है, तो उसको दूर करने के निमित्त ही आपका अवतार होता है । उस समय

आप जो क्रोध करते है, उसकी उत्पत्ति केवल दुष्टो और अधार्मिको का अच्छी तरह मर्दन करने के लिये ही होती है। हे सर्वज्ञ ! आप अपने महान् देवी ऐश्वर्य मे स्थित होकर प्रजापति के समान हम सबको मोहित क्यो करते है ?"

वरुण ने अपने वक्तव्य मे जो कुछ कहा वह शास्त्रो के इसी सिद्धान्त के आधार पर कहा गया है कि जब पृथ्वी पर दुष्ट लोगो का उत्थान होता है और वे धर्म तथा नीति का उल्लघन करने लगते है, तभी भगवान अवतार लेकर उस स्थिति का सुधार करते है। यद्यपि उस समय वे भी सामान्य मनुष्यो की तरह ही युद्ध और सधि करते है, पर वस्तुत: उनका यह कार्य केवल एक खेल के समान ही होता है।



चौथा अध्याय

अवतार के विषय में मतभेद

इस बात को तो सभी शास्त्र तथा विद्वान् स्वीकार करते है कि इस समस्त दृश्य जगत की सचालिका और प्रेरिका कोई अदृश्य और अव्यक्त शक्ति है, और ससार मे जब कोई बहुत बडा परिवर्तन होता है, या मानवता की प्रगति का मार्ग अवरुद्ध हो जाता है, तब उसी शक्ति के हस्तक्षेप से अन्त मे उसका निवारण होता है। इस निवारण करने की क्रिया को कुछ लोग अदृश्य दैवी शक्तियो अथवा ससारव्यापी नवीन भावनाओ के रूप मे अनुभव करते है और कुछ किसी 'महामानव' की लोकोत्तर नर-लीलाओ मे उसका दर्शन करते हैं। फिर अवतारो की नरलीलाओ के मानने वाले उनका वर्णन अपनी मान्यताओ के अनुसार विभिन्न रीति से करते हैं। इससे सर्व साधारण को शका उत्पन्न होती है कि ऐसी घटनाओ को निराकार परमात्मा की दैवी शक्तियो का परिणाम माना जाय या मनुष्य शरीर धारण करके सासारिक रूप मे जगत की व्यवस्था और सशोधन करने वाले 'अवतार' की लीलाएँ कहा जाय ?

इसी मतभेद और तरह-तरह के पृथक वर्णनो के कारण आलोचको को इनका खण्डन करने का अवसर मिलता है और वे समस्त अवतार सिद्धान्त को ही काल्पनिक या असम्भव कह कर उसकी तरफ ध्यान न देने की प्रेरणा करने लगते हैं। हम भी अवतार सम्बन्धी विस्तृत वर्णनों को धार्मिक उपाख्यान ही मानते हैं, और उनमे वर्णित प्रत्येक घटना को अक्षरश: सत्य सिद्ध करने की आवश्यकता नही समझते। पर इसका यह अर्थ नही कि ससार-सकट के अवसर पर पराशक्ति

की विशेष व्यक्ति को विशेष प्रेरणा देने की सम्भावना भी अस्वीकार की जाय । जैसा हम पीछे बतला चुके है । यह प्रत्यक्ष दिखाई देता है कि पौराणिक-युग मे भगवान राम और कृष्ण तथा ऐतिहासिक काल मे भगवान बुद्ध और शकराचार्य जो कार्य करके दिखा गये है उसको आज तक मानव की शक्ति से सम्भव नही माना जा सकता। अतः जब हम देखते है कि इन ढाई हजार वर्षो के भीतर जन्म लेने वाले कई खरब मनुष्यो मे से दस-पाँच भी प्रयत्न करते हुये उनके समान कार्य करके न दिखा सके तो इस अन्तर का कोई विशेष कारण मानना ही पडेगा । और वह विशेष कारण यही हो सकता है कि या तो अनेक जन्मो मे उनका इतना विकास हो चुका था कि वे ईश्वरीय स्थिति तक पहुँच गये थे या ससार की सर्वोच्च जीवनमुक्त आत्माओ मे से ही कोई विश्व-विधान के अनुसार ससार की उलझी हुई विकट समस्या को सुलझाने के लिये पृथ्वी पर अवतरित हुई थी । इस प्रकार की विचारधारा वर्तमान समय के विद्वानो मे ही नही पाई जाती, पुराने 'अवतारवादी' लेखको ने ईश्वरावतारो के चरित्र सम्बन्धी अद्भुत और चमत्कारो से भरी हुई कथाएँ लिखते हुये बीच-बीच मे इस तथ्य को भी प्रकट कर दिया है । 'रामचरित मानस' मे, जिसे 'अवतारवाद' की दृष्टि से सबसे प्रभावशाली और महान रचना कहा जा सकता है, गोस्वामी तुलसीदास जी ने भगवान के निर्गुण और सगुण दोनो रूपो को मानते हुये ही 'अवतार' का प्रतिपादन किया है । उन्होने कहा है कि भगवान के अवतार का वास्तविक रहस्य जान सकना या बतला सकना तो किसी भी बडे से बडे विद्वान, ऋषि-महर्षि के लिये सभव नही, पर उसका प्रत्यक्ष कारण वही है जो गीता मे बतलाया गया है—

यदा यदाहि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।
अभ्युत्थानमर्धमस्य तदात्मानम् सृजामह्यम् ।।

इसी सिद्धान्त की व्याख्या करते हुये उन्होंने 'उमा-शंभु संवाद'

मे श्री शिव जी के मुख से कहलाया है—

हरि अवतार हेतु जेहि होई। इदमित्थं कहि जाइ न सोई।
राम अतर्क्य बुद्धि मन बानी। मत हमार अस सुनहि सयानी।
करहि अनीति जाइ नहि बरनी। सीदहि विप्र धेनु सुर धरनी।
तब तब प्रभु धरि विविध सरीरा। हरहि कृपानिधि सज्जन पीरा।
असुर मारि थापहि सुरन्ह राखहि निज श्रुति सेतु।
जग बिस्तरहि बिसद जस राम-जन्म कर हेतु॥

अर्थात् "भगवान का अवतार क्यो होता है इसको निश्चयपूर्वक कोई नही कह सकता। परमात्मा और उसकी क्रियाएँ मनुष्य की बुद्धि, मन और वाणी से परे की बात है, उसमे तर्क से काम नही चल सकता। तो भी शास्त्रो के मतानुसार यही कहा जा सकता है कि जब-जब धर्म पर आघात होता है, ससार मे अहकारी, दुष्ट लोगो की सख्या बहुत अधिक हो जाती है और वे अनीतिपूर्वक सज्जन पुरुषो, गायो, देवताओ तथा पृथ्वी को कष्ट देने लगते है, तभी-तभी भगवान विभिन्न रूप धारण करके सज्जनो की विपत्ति को दूर करते है। उस अवसर पर भगवान दुष्टो का नाश कर फिर से देव-पुरुषो की स्थापना करते है और इस तरह वे धर्म-नीति की मर्यादा को सुदृढ बनाते है। यही भगवान के अवतार का मुख्य हेतु है।"

इस वक्तव्य मे 'शिवजी' ने अवतार का मूल स्वरूप बता दिया है कि जब कभी ससार मे अनीति और अधर्म की अत्यधिक प्रबलता हो जाती है और पाशविक शक्ति से मदान्ध दुष्ट प्रकृति के व्यक्ति सात्विक वृत्ति के सज्जनो को आतंकित करने लगते है तभी परमात्म-शक्ति उसके सुधार की कोई योजना करती है। उस योजना का कर्त्ता 'अवतार' कहलाने लग जाता है। आगे चल कर उन्होने दृष्टान्त रूप से इसके कुछ उदाहरण भी दिये है—

राम जन्म के हेतु अनेका। परम विचित्र एक से एका।
जनम एक दुइ कहउँ बखानी। सावधान सुनु सुमति भवानी॥

द्वारपाल हरि के प्रिय दोऊ। जय अरु विजय जान सब कोऊ ।।
विप्र श्राप ने दूनउ भाई। तामस असुर देह तिन पाई ।।
कनकसिपु और हाटक लोचन। जगत विदित सुरपति मदमोचन।
विजई समर वीर विख्याता। धरि बराह बपु एक निपाता ।।
होइ नरहरि दूसर पुन मारा। जन प्रहलाद सुजस विस्तारा ।।
भये निसाचर जाइ तेइ महावीर बलवान।
कुंभ करन रावन सुभट सुर विजई जगजान ।।
एकबार तिन्हके हित लागी। धरेउ शरीर भगत अनुरागी ।।
कस्यप अदिति तहाँ पितुमाता। दशरथ कौशल्या विख्याता ।।
एक कलप सुर देखि दुखारे। समर जलंधर सन सब हारे ।।
तहाँ जलधर रावन भयऊ। रन हति राम परम पद दयऊ ।।
प्रति अवतार कथा प्रभु केरी। सुन मुनि वरनी कविन घनेरी ।।

"इसके सिवाय भगवान के अवतार के और भी अनेक कारणहै, जो एक से एक बढकर अत्यन्त विचित्र होते है। मै उनमे से दो-एक का वर्णन यहाँ करता हूँ। जय और विजय नाम के भगवान के दो द्वारपाल थे। ऋषि ने उनको तामसी योनि मे जाने का शाप दे दिया। इससे वे हिरण्याक्ष और हिरनाकुश के नाम वाले दो महावीर दैत्य बन गये, जिनके भय से इन्द्र भी अपना राज्य छोडकर भाग गया। वे ससार-विजयी वीर थे। उनमे से हिरण्याक्ष को भगवान ने 'वाराह' अवतार धारण करके मारा। दूसरे हिरनाकुश को नष्ट करने के लिये उन्हे 'नरसिंह' रूप धारण करना पडा। ये दोनो दैत्य यहाँ मारे जाकर फिर से रावण और कुम्भकरण के रूप मे राक्षस बने। उनसे भक्तो की रक्षा करने के लिये भगवान को फिर अवतार लेना पडा। इसबार उनके माता-पिता कस्यप और अदिति थे, जिन्होने पृथ्वी पर दशरथ और कौशल्याके रूपमे जन्म लिया था। एक अन्य कल्पमे समस्त देवगण जलधर नामक दैत्य से हार कर बहुत दुःखी हो गये। तब भगवान ने बडे कौशल से जलधर को मारा। वही जलधर दूसरे जन्म

मे रावण बना। उसको भगवान ने राम का अवतार ग्रहण करके युद्ध मे मारा था। इस प्रकार भगवान के प्रत्येक अवतार की अलग-अलग कथा है, जिनका ऋषि मुनियो ने वर्णन किया है और उसे सुनकर कवियो ने उसका विस्तार करके बडे-बडे ग्रथ रच डाले है।"

पुराणो मे एक ही अवतार की कथा जो विभिन्न रूपो मे वर्णित है उसका कारण बतलाते हुये गोस्वामी जी ने एक नही अनेक स्थलो पर कहा है कि इस अन्तर का कारण अलग-अलग कल्पो से उनका सम्बन्ध होना है। ससार मे बीच-बीच मे स्वार्थ प्रधान मार्ग के अनुयायी दुष्टो का जोर बढना और धर्म तथा नीति के नियमो का ह्रास हो जाना तो एक प्राकृतिक नियम-सा ही है, क्योकि प्रत्येक पदार्थ तथा सामाजिक प्रणाली काल-प्रभाव से एकाध हजार वर्ष मे विकृत तथा अनुपयोगी हो जाती है। पर जिनका लाभ उसी से होता है वह उसके सुधार अथवा परिवर्तन का विरोध करते हैं और इससे ससार मे अन्याय तथा लडाई-झगडे का बाजार गर्म हो जाता है। तब उस दूषित परिस्थिति का सुधार करने को भगवान का 'अवतार' होता है। यह सभव है कि भिन्न-भिन्न कल्पो मे उन दुष्ट प्रकृति के व्यक्तियो (दैत्यो) तथा 'अवतारो' के नाम भी कुछ और रहे हो, पर जब हम दस-बीस हजार वर्ष पुराने राजाओ और महान पुरुषो के नाम तथा परिचय आदि नही जानते और केवल अनुमान से ही थोडा बहुत काम चलाते हैं तो बहुत वर्ष पहले के 'कल्प' की घटनाओ का यथातथ्य वर्णन अथवा नामो आदि का उल्लेख कैसे सभव हो सकता है? इसलिये कवि एक प्रकृति के लोगो का वर्णन एक ही नाम से करने लगता है, और समझता है कि इससे कोई हानि नही हो सकती। लोग तो अन्याय के दमन और सज्जनता की रक्षा की कथा सुनकर शिक्षा ग्रहण करते है, नाम कुछ भी हो, उसका कोई खास प्रभाव नही पड सकता।

निर्गुण और सगुण का विवाद निरर्थक है—

इसी प्रसग मे पार्वती जी के यह प्रश्न करने पर कि निर्गुण, निराकार परमात्मा मनुष्य शरीरधारी अवतार कैसे बन सकता है, शिवजी ने उसका समाधान इस प्रकार किया है—

सगुनहि अगुनहि नहि कछु भेदा।
गावहि मुनि पुराण बुध वेदा ।।
अगुन अरूप अलख अज जोई।
भगत प्रेम बस सगुन सो होई ।।
जो गुन रहित सगुन सोई कैसे।
जल हिम उपल विलग नहि जैसे ।।

इस प्रकार अवतार सम्बन्धी अधिकाश शकाओ तथा भ्रमो का निराकरण प्राचीन 'अवतारवादी' विद्वानो ने स्वय ही कर दिया है और इस गूढ विषय को जहाँ तक बन सका है स्पष्ट और बोधगम्य भी बना दिया है। पर कठिनाई यही है कि लोग उनकी रचनाओ को भी निष्पक्ष भाव से, मूल तथ्य को समझने की चेष्टा करते हुये नही पढते। अन्ध श्रद्धा वाले तो बिना सोचे-समझे प्रत्येक सभव-असभव, रूपक-अलकारयुक्त बात को भी ज्यो का त्यो अक्षरश: मानने मे ही 'धर्म' मानते है, और विरोधी या खण्डनात्मक मनोवृत्ति वाले उसके वास्तविक आशय और उद्देश्य को ठुकरा कर इधर-उधर के दो-चार वाक्य ऐसे ढूँढते है, जिनका 'अनर्थ' करके वे उस पर दोषारोपण कर सके। पाठक देखेगे कि हमने भागवत, रामायण, महाभारत और विविध पुराण ग्रथो से ही ऐसे कथन प्रस्तुत किये है, जिनसे अवतार की युक्तियुक्त स्थिति सबकी समझ मे आ सकती है। भक्त शिरोमणि गो० तुलसीदास जी भी यह कहते हैं कि मनुष्य की क्या चलाई देवगण भी भगवान के 'अवतार' का निश्चित कारण और रहस्य नही समझ सकते। पर मुनि और ऋषियो ने इस सम्बन्ध मे अपनी विशद बुद्धि से अनुमान करके जो कुछ बतलाया है उसी के आधार पर विद्वान् कवियों और लेखको ने कवि-कल्पना और लेखन

कला के अनुसार उनके अनेकानेक चरित्रो की लोक कल्याणार्थ रचना की है—तो इससे बढकर स्पष्ट वक्तव्य और क्या हो सकता है ?

हम यह जानते है कि सभी पुराणो मे और रामायण मे भी अवतारो के सम्बन्ध मे ऐसे अनेक कथा-प्रसग लिखे गये है, जिनका 'चमत्कार' के सिवाय और कोई उद्देश्य नही और उनके प्रत्येक कार्य और शक्ति का वर्णन भी प्राय बहुत बढा-चढाकर किया गया है। इससे अनेक स्थानो मे एक समझदार पाठक को 'निराधार गप्पे' लिख मारने का अनुभव होता है और ऐसी रचनाओ के प्रति उसके मन मे 'दुर्भाव' उत्पन्न हो जाता है। यह स्थिति खेदजनक अवश्य है, पर इसका उत्तरदायित्व अधिकाश मे मूल लेखकों पर न होकर उन कथा-वाचको तथा प्रचारको पर है जिन्होने अपने किसी लाभ की दृष्टि से अथवा निम्न श्रेणी के श्रोताओ का मनोरजन करने के उद्देश्य से उनमें प्रक्षिप्त अश सम्मिलित कर दिये है। यह हानिकारक प्रवृत्ति केवल पुराणो तक ही सीमित नही है, वरन् हिंदू धर्म के अन्य अनेक शास्त्रो मे भी परिलक्षित होती है। अन्य धर्मों के प्रधान ग्रथ भी इससे अछूते नही कहे जा सकते। पर उनकी सख्या अत्यल्प होने से उनमे इतनी अधिक 'मिलावट' नही की जा सकी है।

कबीरदास जी का अवतार-सिद्धांत—

महात्मा कबीरदास का भारतवर्ष के मध्यकालीन तथा आधुनिक धार्मिक-इतिहास मे बडा महत्वपूर्ण स्थान है। उनके धर्म-सिद्धान्तो मे निर्गुण परमात्मा की उपासना का उपदेश दिया गया है और अन्ध-विश्वास पर आधारित अनेक प्राचीन धार्मिक रूढियो का भी उन्होने खण्डन किया है। 'सन्त-मत' के आदि प्रवर्तक वे ही हैं और नानक, दादू, रैदास, प्राणनाथ आदि सन्तो से लेकर वर्तमान राधास्वामी सम्प्रदाय तक का मूल स्रोत किसी न किसी रूप मे कबीरसाहब की शिक्षाएँ ही हैं। वे एक कट्टर निर्गुणोपासक की दृष्टि से सगुण अवतारो की उपासना का समर्थन नही कर सकते थे, पर ईश्वरीय-शक्ति और

जीवात्मा के विकास क्रम को ध्यान मे रखते हुये सिद्धान्त रूप से 'अवतार' को उन्होने भी माना है। उन्होने कहा है—

एक राम है सब से न्यारा। एक राम ने जगत पसारा॥
एक राम घट-घट मे बोले। एक राम अवतारी डोले॥
जासु कृपा भव दुख मिट जाही। सद्गुरू एक राम रघुराई॥

कबीरदास जी ने परमात्मा की चैतन्य-सत्ता के विकास और विस्तार के पाँच दर्जे बतलाये है। आरम्भ मे उसका स्वरूप सर्वथा अव्यक्त और अज्ञेय होता है। उसके लिये कोई ठीक नाम या रूप बतला सकना सभव नही होता। उसी को शास्त्रो मे निराकार, निर्गुण 'परब्रह्म' बतलाया गया। फिर जब उस अव्यक्त शक्ति मे सृष्टि रचना की प्रवृत्ति आरम्भ होती है तो वह ऐसे रूप मे आ जाती है जिसके कार्य और रूप का अनुमान मानव-बुद्धि कर सकती है। शास्त्रकारो ने उसे 'ईश्वर' कहा है, जो सृष्टि का कर्त्ता माना जाता है। उससे आगे चलकर वह 'एकोऽहम बहुस्यामि' के सिद्धान्त के अनुसार असख्य जीवात्माओ के रूप मे प्रकट होता है और उससे प्राणी-जगत की रचना आरम्भ हो जाती है। इस विकास-क्रम मे जो जीवात्मा अपने कर्मों द्वारा विशेषरूप से उन्नति कर लेता है और विकास से सर्वोच्च शिखर पर जा पहुँचता है वह जीवनमुक्त होकर अन्य जीवात्माओ के लिये मार्ग-दर्शक बन जाता है और 'अवतार' की स्थिति को प्राप्त कर लेता है। उसके अतिरिक्त अन्य जीवनमुक्त आत्माये भी, जो अपनी शक्तियो को लोक कल्याण के लिये अर्पण कर देती है, सद्गुरु या महान सन्तो के रूप में माननीय होती हैं। यद्यपि चैतन्य-सत्ता के इन पाँचो विभागो मे शक्ति और कर्मों की निगाह से बडा भेद है, पर ये सब एक ही श्रेणी मे गिने जा सकते है और अन्त मे कभी न कभी एक ही स्थान पर मिल जाते हैं।

गीता और अवतारवाद—

'गीता' को अधिकाश लोग व्यावहारिक वेदान्त तथा दर्शन-शास्त्र की एक रचना मानते है। वैसे भी उसको 'ब्रह्म विद्या शास्त्र' कहा गया है, जिसका आशय अध्यात्म-ज्ञान तथा उसके अनुकूल व्यवहार से है। यद्यपि 'गीता' मुख्य रूप से अवतार-सिद्धान्त का प्रतिपादन करने या किसी अवतार का चरित्र वर्णन करने के उद्देश्य से नही लिखी गयी है, तो भी उसके वक्ता भगवान कृष्ण है और उन्होने अपनी विशेष शक्तियो से ही अर्जुन को प्रभावित किया था। इसलिये उसमे अवतार-वाद की चर्चा अनिवार्य रूप से आगई है और जो कुछ कहा गया है, वह बडे प्रामाणिक रूप मे कहा गया है ।

चौथे अध्याय के आरम्भ में ही भगवान कृष्ण ने यह कहा है कि " इस अनासक्त कर्मयोग का उपदेश सर्व प्रथम मैंने सूर्य को दिया था । सूर्य ने अपने पुत्र मनु से कहा और मनु ने अपने पुत्र राजा इच्छाकु से कहा। उनके द्वारा यह परम्परागत रूप मे राजर्षियो मे प्रचलित रहा।" इस पर शका करके अर्जुन ने पूछा कि "आप ने इस योग का उपदेश सूर्य को कैसे दिया होगा ? क्यो कि आपका जन्म तो अभी हुआ है और सूर्य का जन्म बहुत पुराना है।" इस पर श्रीकृष्ण ने उत्तर दिया—

अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन् ।
प्रकृति स्वामधिष्ठाय सभवाम्यात्ममायया ॥
जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वत ।
त्यक्त्वा देह पुनर्जन्म नैति मामेतिसोऽर्जुन ॥

"हे अर्जुन मेरा जन्म प्राकृत (सामान्य) मनुष्यो की तरह नही होता। मैं अविनाशी स्वरूप, अजन्मा होने पर भी, तथा सब सासारिक प्राणियों का ईश्वर होने पर भी अपनी प्रकृति को आधीन करके योग-माया से प्रकट होता हूँ। इसलिये मेरा जन्म और कर्म दिव्य अथवा अलौकिक है। इस बात को जो पुरुष तत्त्वपूर्वक समझ लेता है, वह भव-बन्धन से छुटकारा पाजाता है।'

थियोसोफी की सस्थापिका मैडम ब्लैवटस्की ने भी अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'सीक्रेट डाक्टरिन '(गुप्त रहस्य) मे लिखा है कि स सार मे जन्म तीन प्रकार के होते हैं। प्रथम जन्म सामान्य जीवात्माओ का सृष्टि विकास क्रम के अनुसार होता है। दूसरा जीवन्मुक्त आत्माओ को जन्म होता है जो वे अपनी इच्छा से किसी विशेष उद्देश्य की पूर्ति के लिये लेते है। और तीसरा जन्म भगवान के अवतारो का होता है, जो यद्यपि सब लोगो को सामान्य मनुष्यो के समान ही जान पडता है, पर जिसे वे अपनी योगमाया के प्रभाव से ग्रहण करके ठीक अवसर पर कही भी प्रकट होजाते है। 'गीता' मे भगवान का कथन इसी तथ्य की पुष्टि करने वाला है। यद्यपि 'भागवत' और 'हरिवश' के अनुसार अनेक पटरानी और रानियो से विवाह करके बहुसख्यक पुत्र उत्पन्न करने वाले श्रीकृष्ण चन्द्र महाराज घोर स सारी जीव जान पडते हैं, पर साथ ही आवश्यकता पडने पर वे भक्तो की रक्षा और दुष्टो के नाश के लिये ऐसी अलौकिक शक्ति भी दिखलाते है जो अन्य नर तन धारी के लिये स भव नही। इसी लिये वे एक बार नही बार-बार अर्जुन को अपनी ईश्वरीय सत्ता का विश्वास दिलाते रहे और परिचय देते रहे। सातवे अध्याय मे उन्होने कहा है कि यद्यपि लोग अपने अज्ञान के कारण मेरे अविनाशी स्वरूप को नही समझ पाते पर जो व्यक्ति श्रद्धा और भक्ति पूर्वक मेरा आश्रय ग्रहण करते हैं मैं सदा उनका कल्याण करता हूँ।

अन्तवत्तु फल तेषाम् तद्भवत्यल्पमेधसाम्।
देवान्देवयजो यान्ति मद्भक्ता यान्ति मामपि ॥
अव्यक्त व्यक्तिमापन्न मन्यते माम बुद्धय ।
पर भावमजानन्तो ममाव्ययमनुत्तमम् ॥
नाह प्रकाश सर्वस्य योगमाया समावृत. ।
मूढोऽयं नाभिजानाति लोको मामजमव्ययम् ॥

"जो अल्प बुद्धि लोग ससारिक लाभ की आशा से विभिन्न

देवताओ की उपासना किया करते है, वे स्थाई लाभ प्राप्त नही कर सकते क्योकि ससार त्यागने पर वे उन्ही देवताओ के लोकमे जाते है, जहा से फिर वापस आना पडता है । पर भगवान के भक्त उनके पास जाकर सदैव को मुक्त हो जाते है । ऐसे मूढ लोग मेरे 'भगवान' के श्रेष्ठ उत्तमोतम और अव्यय रूप को न जानकर मुझे व्यक्त रूप मे अर्थात् मनुष्य ही मानते है । मै भी अपनी योगमाया से आच्छादित रह कर सबको अपना वास्तविक रूप नही दिखाता, इससे मूढ लोग यह नही जान पाते कि मैं अजन्मा और अव्यय हूँ ।"

इसमे भगवान कृष्ण ने अर्जुन के सामने अपने ईश्वरत्व को प्रकट करते हुए कहा है कि मैं अनधिकारी लोगो के सामने अपने वास्तविक अविनाशी और अनन्त रूप को प्रकट नही करता । इससे वे मुझे सामान्य मनुष्यो की तरह जन्म-मरण और पाप-पुण्य मे बँधा हुआ मानते रहते हैं । ऐसे लोग समझते है कि भगवान की भक्ति से तो केवल मोक्ष ही प्राप्त हो सकती है । सासारिक वैभव, अधिकार, शक्ति देने का कार्य तो अन्य देवताओ का है । इस लिये वे उन्ही की उपासना मे लग जाते हैं । अगर वे सच्चे हृदय से उपासना करते है तो उसका फल भी उनको मिलता है । पर चूँकि वे देवगण स्वय अस्थाई हैं, इसलिये उन सबके पास घूम फिर कर मनुष्य को भगवान के पास ही आना पडता है और उन्ही की श्रद्धाभक्ति द्वारा अपने जीवन को सार्थक बनाना पडता है । वैसे सामान्यता भगवान की उपासना मूर्ति आदि की पूजा जप, ध्यान आदि के द्वारा ही की जाती है, पर जो लोग सौभाग्य से किसी 'अवतार' के युग मे जन्म लेकर उसका सान्निध्य प्राप्त कर लेते हैं वे तो भवसागर से तर ही जाते हैं । जीवन्मुक्त महात्माओं की कृपा का भी ऐसा ही फल होता है, क्योकि वे भगवान को प्राप्त कर चुके होते हैं और इस लिये अन्य जीवात्माओ का मार्ग-दर्शन करके उन्हे भी लक्ष्य तक पहुचा सकते हैं बडे या छोटे (पूर्ण अपूर्ण) अवतारो का यह महत्त्व ससार के कल्याण की दृष्टि साधारण नही है ।

नौवे अध्याय मे भगवान ने वह स्पष्ट किया है कि यद्यपि मैं समस्त जड भूतो, सासारिक पदार्थों को उत्पन्न करता हूँ, उनका पालन-पोषण भी करता हूँ फिर भी अपनी योगमाया के प्रभाव से अपनी आत्मा को उन भूतो से सदैव प्रथक ही रखता हूँ–

न च मत्स्थानि भूतानि पश्य मे योगमैश्वरम् ।
भूतभृन्न न भूतस्थो ममात्मा भूत भावना ।।५
यथाकाश स्थितो नित्य वायु सर्वत्रगो महान् ।
तथा सर्वाणि भूतानि मत्स्थानीत्युपधारय ।। ६
सर्व भूतानि कौन्तेय प्रकृति यान्ति मामि काम ।
कल्प वृक्षाये पुनस्तानि कल्पादौ विसृजाम्यहम् ।।७
प्रकृति स्वामवष्टभ्य विसृजामि पुन पुन ।
भूतग्राममिम कृत्स्नमवश प्रकृतेर्वशात ।।८
ममाध्यक्षेण प्रकृति· सूयते सचराचरम् ।
हेतुनानेन कौन्तेय जगद्विपरिवर्तते ।।

‘ मेरी योग सामर्थ्यी का यह चमत्कार है कि मेरी आत्मा उन भूतो को उत्पन्न करती है, उनका पालन भी करती है पर उनसे सर्वथा पृथक रहती है । जिसप्रकार वायु सर्वत्र बहती हुई आकाश मे ही रहती है, उसी प्रकार समस्त भूत सदैव मेरे भीतर ही रहते है । वे सृष्टि रचना के समय विभिन्न पदार्थों का रूप धारण करते है, पर अन्त मे सब मेरी प्रकृति मे ही आ मिलते हैं । प्रत्येक कल्प के आरम्भ मे मै इसीप्रकार उनका निर्माण करता हूँ । पर यह कार्य मैं स्वय नही करता, वरन अध्यक्ष रूप से प्रकृति द्वारा ही सब कार्य कराता हू । इस प्रकार यह जगत का बनना-बिगडना सदैव चलता रहता है ।’’

भगवान का यह कथन है कि समस्त भूत मेरे भीतर है, पर मैं उनसे सर्वथा प्रथक रहता हूँ, एक पहेली की तरह जान पडता है इसमे पाठक को एक विरोधाभास की झलक दिखाई पडती है । पर परमात्मा का विषय ही ऐसा है कि मानव बुद्धि कभी उसको ठीक रूप मे ग्रहण

नही कर सकती, न उसका निश्चयात्मक रूप से वर्णन कर सकती हैं इसका विवेचन करते हुए लोकमान्य तिलक ने 'गीता रहस्य' मे लिख है—

"उपनिषदो मे परमात्मा का स्वरूप अव्यक्त माना हैं और उसे ती प्रकार का बतलाया है अर्थात् सगुण, सगुण-निर्गुण और अन्त मे केव निर्गुण। अब प्रश्न यह है कि अव्यक्त और श्रेष्ठ स्वरूप के उक्त ती परस्पर विरोधी रूपो का मेल किस तरह मिलाया जाय ? यह कहा ज सकता है कि इन तीनो मे जो सगुण-निर्गुण अर्थात् उभयात्मक रूप है वह सगुण से निर्गुण (अथवा अज्ञेय) मे जाने की सीढी या साध है। क्योकि, पहले सगुण रूप का ज्ञान होने पर ही धीरे-धीरे एक ए गुण का त्याग करने से निर्गुण स्वरूप का अनुभव हो सकता है और इसी वृत्ति से 'ब्रह्म-प्रतीक की चढती हुई उपासना उपनिषदो मे बतलाई गई है। उदाहरणार्थ 'तैत्तरीय उपनिषद' मे वरुण ने भृगु क यही उपदेश दिया कि 'अन्न ही ब्रह्म है' फिर क्रम से प्राण, मन विज्ञान और आनन्द इन ब्रह्म रूपो का ज्ञान उसे करा दिया। दूसर बात यह भी है कि गुण-बोधक विशेषणो से निर्गुण रूप का वर्णन करन असम्भव है, अतएव परस्पर-विरोधी विशेषणो से ही वर्णन करन पडता है।

"इसका कारण यह है कि जब हम किसी एक वस्तु के सम्बन्ध मे 'दूर' या'सत्' शब्दो का प्रयोग करते है तब हमे किसी दूसरी वस्तु के 'समीप या 'असत्' होने का भी अप्रत्यक्ष रूप से बोध होजाया करता है। परन्तु यदि एक ही ब्रह्म सर्वव्यापी है तो परमेश्वर को 'दूर या सत्' कह कर 'समीप या असत्' और किसी दूसरी वस्तु को कहे ? ऐसी अवस्था में दूर नही समीप नही "सत् नही असत् नही" इस प्रकार के परस्पर विरुद्ध विशेषणो की भाषा का ही उपयोग करना पडता है।"

यही सिद्धान्त स्वयं भगवान श्री कृष्ण ने 'गीता' मे प्रतिपादित किया है—

बहिरतश्च भूतानाम चर चरमेव च ।
सूक्ष्म त्वात्तदविज्ञेय दूरस्थ चातिके चतत् ॥

"वह परमात्मा सब भूतो के भीतर और बाहर भी है, अचर है चर भी है, सूक्ष्म होने के कारण वह जानने मे नही आता, और दूर होकर भी समीप है ।" 'विष्णु-पुराण' के अन्त मे भी भगवान की इन परस्पर विरोधी जान पडने वाली विशेषताओ का उल्लेख मिलता है—

तस्यैव योऽनु गुणभुग्बहुधैक एव
शुद्धो ऽ प्यशुद्ध इव भाति हि मूर्तिभेदै ।
ज्ञानान्वितः सकलसत्वविभूति कर्ता
तस्मै नमोऽस्तु पुरुषाय सदाव्ययाय ॥

"जो ईश्वर के सदृश्य ही विशेषताओ से सम्पन्न है, एक होकर भी अनेक रूप है, शुद्ध होकर भी अनेक रूपो के कारण अशुद्ध 'विकार-वान जैसे' प्रतीत होते है, जो ज्ञानस्वरूप और समस्त तत्त्वो और विभूतियो के कर्ता है, उस नित्य 'अविनाशी' तथा अव्यय पुरुष को नमस्कार है ।"

जो व्यक्ति इस परस्पर-विरोधी दृष्टिकोण को समझ लेता है और यह विश्वास कर लेता है कि जब भगवान को 'सर्व शक्ति-मान' कहा जाता है तो उसके लिये निर्गुण और सगुण दोनो रूपो मे विश्व की व्यवस्था कर सकना असम्भव नही, वे 'अवतार' के तत्व को भी सहज मे हृदयगम कर सकते है । वास्तव मे मानव बुद्धि और ज्ञान अभी जहाँ तक विकसित हो सका है, उसके आधार पर परब्रह्म के स्वरूप का समझ सकना अथवा उसके कार्यों के गलत अथ वा सही होने का फैसला कर डालना अबुद्धिमत्ता का प्रमाण है । इस लिये यदि कोई राम, कृष्ण कल्कि आदि को पूर्ण परमात्मा का अवतार मानना है और दूसरा उनको आत्म विकास के सर्वोपरि पर शिखर पर पहुची हुई जीवात्मा ही बतलाता है, तो इस पर झगडना व्यर्थ की बात है । सभी जीवात्मा परमात्मा के अंश माने गये हैं । "ईश्वर अ श जीव अविनाशी" "रामायण'

के अनुसार जो जीवात्मा अपने पुरुषार्थ से अंतिम लक्ष्य तक पहुंच जाता है उसमे और परमात्मा मे कोई अन्तर नही रहता । इसलिये 'अवतारो' को चाहे किसी ऊपर के लोक से स्वेच्छापूर्वक 'धर्म रक्षार्थ' आई हुई दैवी आत्मा माना जाय और चाहे जीवन्मुक्त अवस्था को पहुँची हुई कोई आत्मा उससे तत्वत कोई अन्तर नही पडता । ये दोनो एक ही परमात्मा के अत्यन्त विकसित अंश है, जो चाहे तो अपने को बिना किसी भूल के 'परमात्मा' कह सकते है. क्योकि वे परमात्मा मे से ही प्रकट हुए है और उसी मे जब चाहेगे चल जायेंगे । उनमे और साधारण जीवात्माओ मे यही अन्तर होता है कि जीवात्मा स्वेच्छापूर्वक चाहे जहा नही जा सकते, वरन् कर्म बन्धनो मे बंधे रहने कारण उनको विवश होकर बार-बार जन्म मरण के चक्र मे भ्रमण करते रहना पडता है । वे भी उद्योग करके 'अवतारो' के समान जीवन्मुक्त स्थिति को प्राप्त कर सकते हैं, पर वह केवल सुन लेने या समझ लेने की चीज नही । जो वास्तव मे उतना ऊँचा परमार्थ, त्याग, तप कर सकेगा और ससार के सर्वोच्च ज्ञान को प्राप्त करलेगा, वही एक या अनेक जन्मो के प्रयत्न से उस स्थिति को पहुँच सकेगा ।

इस सम्बन्ध मे हम एक विचित्र अवस्था आजकल अपने देश मे देख रहे हैं । एक तरफ तो नवशिक्षित कहलाने वाले अवतार आदि को 'गपोडा' अथवा अन्धविश्वास के सिवाय और कुछ मानने को तैयार नही और दूसरी तरफ कुछ लोग आत्मा, परमात्मा, कर्म-फल तप, जीवन्मुक्ति आदि की बातो को पढ़ या सुनकर, अपने भीतर कुछ अनुभव करने लगते हैं, और थोडा जप, तप या किसी प्रकार का योग साधन करके अपने को दैवी-पुरुष—अवतार समझने, कहने लगजाते हैं । वे अपने को स्वय इस रूप मे प्रकट करते हैं और उनके सहयोगी भी, कुछ अन्धश्रद्धा से और कुछ किसी स्वार्थ-भाव के कारण इसका प्रचार करने लगजाते है । ऐसे एक नही बहुसख्यक व्यक्ति इस समय हमारे देश में मौजूद है और प्रत्येक को हजार-दो हजार या कुछ सौ

अनुयायी मिल ही जाते है, जिससे वे मिथ्या प्रचार करके हिन्दू-समाज के धार्मिक वातावरण को दूषित बनाते है। पर यह एक अलग ही समस्या हैं, जिस पर किसी अगले अध्याय मे विचार करेगे।

गीता के अवतार सिद्धान्त की विशेषता

'गीता' मे भगवान कृष्ण ने अपने भगवत्स्वरूप का जो उल्लेख स्थान-स्थान पर किया है, उसका ध्यानपूर्वक मनन और विश्लेषण करने पर अन्यग्रथो की अपेक्षा उसमे एक विशेषता यह जान पडती है कि उनका मुख्य उद्देश्य अपने को भगवान का अवतार घोषित करना नही है, वरन् अर्जुन को 'ब्रह्मविद्या' (अध्यात्म शास्त्र) का मर्म समझाने के लिये वे अपने को ईश्वरीय-शक्ति के प्रतीक रूप मे उपस्थित कर रहे है। उन्होने अनेक स्थानो पर इस तरह के उद्गार प्रकट करते हुए एक श्लोक मे अपने को ईश्वर या अवतार के रूप मे प्रकट किया है और दूसरे मे परमात्मा की शक्ति का भिन्न रूप मे उल्लेख किया है। उदाहरण के लिये गीता का उपदेश समाप्त हो जाने पर १८ वे अध्याय के अन्त मे उन्होने अर्जुन से कहा है—

भक्त्या मामभिजानाति यावान्यश्चास्मि तत्त्वत ।
ततो मा तत्त्वतो ज्ञात्वा विशते तदन्तरम् ॥ ५५
सर्व कर्माण्यपि सदा कुर्वाणा मद्व्यपाश्रय ।
मत्प्रसादादवाप्नोति शाश्वत पदमव्ययम् ॥५६
चेतसा सर्वकर्माणि मयि सन्यस्य मत्पर ।
बुद्धियोग मुपाश्रित्यमच्चित सतत भवः ॥५७

"साधक को भक्ति के प्रभाव से मेरा तात्विक ज्ञान होजाता है। कि मैं कितना हूँ और कौन हूँ ? इस प्रकार मेरी तात्त्विक पहिचान होजाने पर वह मुझ मे ही प्रवेश करता है और उस अवस्था मे मेरा ही आश्रय लेकर, सब कर्म करते रहने परभी मेरे अनुग्रह से उसे शाश्वत एव अव्यय स्थान प्राप्त होता है। इसलिये हे अर्जुन! तू हृदय से सब कर्मों को मेर में अर्पण करके मेरे परायण हुआ, समत्वबुद्धि रूप

निष्काम कर्मयोग को अवलम्बन करके निरन्तर मुझ मे चित्त रखने वाला होगा।"

इस प्रकार अपनी ईश्वरीय सत्ता को बहुत स्पष्ट शब्दो मे प्रकट करके उसी प्रसग मे पृथक भाव से भी ईश्वरत्व का उल्लेख करने लगते है

ईश्वर सर्व भूताना हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।
भ्रामयन्सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया ॥६१
तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत।
तत्प्रसादात्परा शान्ति स्थान प्राप्स्यसि शाश्वतम् ॥

"क्योकि हे अर्जुन! शरीर रूप यंत्र मे आरूढ हुए सपूर्ण प्राणियो को अन्तर्यामी परमेश्वर अपनी माया से उनके कर्मों के अनुसार भ्रमाता हुआ सब भूत प्राणियो के हृदय से स्थित रहता है। इसलिये हे भारत! सब प्रकार से उस परमेश्वर की ही अनन्य शरण को प्राप्त होकर उनकी कृपा से परम शान्ति और सनातन परम धाम को प्राप्त करो।'

इस प्रकार एक बार अपने को कर्त्ता बताकर दूसरी बार मानव-हृदय मे स्थित 'ईश्वर' का उल्लेख करना यह प्रकट करता है कि श्री कृष्ण का आशय अपने ईश्वर होने पर जोर देना नही है, वरन् वे अर्जुन के सम्मुख नाटक के एक पात्र के समान 'ईश्वरत्व' का पार्ट अदा करके उसे अपने कथन का अर्थ भली भाँति समझा देना चाहते हैं। इसके अतरिक्त जब वेदान्त-शास्त्र निश्चित रूप से जीव के ब्रह्म होने का प्रतिपादन करता है और प्रत्येक मनुष्य के लिये 'अहं ब्रह्मास्मि' की घोषणा करता है, तो श्रीकृष्ण जैसे महाज्ञानी और योगीश्वर को यदि भगवान कहा जाय तो इसमे अनुचित क्या है? वे तो स्वयअन्य जीवों से अपनी तुलना करते हुए अपनी यही विशेषता मानते हैं कि वे आत्मा और परमात्मा के वास्तविक रहस्यो को जान गये हैं जब कि अन्य लोग उसे नही जानते।

बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन ।
तान्यहं वेद सर्वाणि न त्वं वेत्थ परंतप ॥

अर्थात् 'हे अर्जुन ! मेरे और तेरे भी बहुत से जन्म होचुके है, परतु हे धनजय उन सब को तू नही जानता और मै जानता हूं।''

इस कथन से यदि यह तात्पर्य निकाला जाय कि भगवान श्रीकृष्ण स्वयं अपने को भी मानव-श्रेणी मे रखते थे और अपने ईश्वर-भाव को दैवी-सत्ता का विषय प्रभावशाली ढग से प्रतिपादन करने के निमित्त ही प्रकट करते थे, तो यह सर्वथा अनुपयुक्त नही है। यो तो 'भागवत' 'महाभारत, 'हरिवश' 'ब्रह्मवैवर्त्त' 'विष्णु पुराण' आदि मे उनके चरित्र की घटनाओं मे से अनेक आक्षेप योग्य बतलाई जा सकती है, पर श्रद्धालु भक्तगण उनका कारण 'भगवान की नर लीला, बतला कर मामला खत्म कर देते है। यदि हम 'अवतार' का आशय किसी 'महा मानव' या 'अति मानव' से लगायें अथवा उनकी विशेष विचार धारा को कार्य रूप मे परिणित करने को ही वास्तविक 'अवतार' माने तो फिर इस मे बुद्धिवादी लोगो को भी कोई विरोध नही हो सकता। हम भगवान कृष्ण को सर्वोपरि दैवी सत्ता को मानने से इन्कार नहीं करते, पर हमने ऊपर 'अवतार-समस्या' का जो एक नया पहलू रखा है, वह भी 'अवतार का' एक रूप हो सकता है। ससार मे तो कही न कही एकाध कठिन और भयकर समस्या सदैव उत्पन्न होती ही रहती है, और उसका निवारण किसी नए आन्दोलन नई विचारधारा को प्रचारित करने से ही हो सकता है। ऐसी प्रभावशाली विचारधारा ईश्वर की प्रेरणा से ही उत्पन्न होसकती और चारो तरफ फैल सकती है। इस लिये यदि उसे ही ईश्वर का एक 'भाव अवतार' कहा जाय तो इसमे कुछ अनुचित नहीं।

गीता का मनन करने से यह प्रकट होता है कि उसका मूल उद्देश्य मनुष्य को कर्त्तव्य परायण बनाना है, और उसका यह कर्त्तव्य पालन का भाव इतना सुदृढ होना चाहिये कि उसकी पूर्ति मे वह सुख-दुःख हानि-लाभ, यश-अपयश और सगे सम्बन्धियो तक का ख्याल न करे।

भगवान कृष्ण का कहना था कि यह सिद्धान्त ईश्वरीय विधान के अनुकूल है, और इसपर चलकर मनुष्य सासारिक जीवन व्यतीत करता हुआ भी मोक्ष और जीवन्मुक्त स्थिति को प्राप्त कर सकता है। उनकी यह 'निष्काम कर्म' विचारधारा हजारो वर्षों से स्थिर है और इससे न मालुम कितने मनुष्यो का उद्धार हो चुका है। आज भी ससार भर मे 'गीता' का जो आदर और प्रचार है, उससे यह विदित होता है कि यदि बहुसख्यक व्यक्ति नही तो कुछ चुनी हुई आत्माये अवश्य उससे प्रभावित होकर मोक्ष-मार्ग की ओर अग्रसर हो रही होगी। ऐसी सशक्त विचार-धाराऐं जो पाँच हजार वर्षो से जन-मानस पर अधिकार जमाए हुए है 'ईश्वरीय सत्ता का प्रकटीकरण' ही मानी जा सकती है!

अवतार के सम्बन्ध में सब से बुद्धिसगत घोषणा भगवान कृष्ण ने गीता मे ही की है कि 'जब कभी 'धर्म' पर सकट आता है 'अधर्म' का उत्थान होने लगता है तभी उसका निराकरण करने को दैवी-सत्ता का प्रकटीकरण होता है।" यह विचारधारा इतनी स्वाभाविक और सुदृढ सिद्ध हुई है कि प्रत्येक विद्वान और धर्मशास्त्र ने इसको अपना लिया है। इस घोषणा मे यह नही कहा गया है कि भगवद्-शक्ति अवश्यमेव मानवाकार और किसी व्यक्त विशेष के रूप मे ही प्रकट होगी। ईश्वर सर्व शक्तिमान और घट-घट व्यापी है वह अपना उद्देश्य अनेक प्रकार से पूरा कर सकता है। जब गीता (१८.३१) के अनुसार ही ईश्वर प्रत्येक नर तन धारी के हृदय-देश मे प्रतिष्ठित है और उसे निरन्तर भ्रमाता रहता है, तो वह किसी एक या अनेक व्यक्तियो को समयानुकूल प्रेरणा देकर ही महान कार्यों की पूर्ति करा सकता है। इसलिये गीता के अनुयाइयो को 'अवतार वाद' के सम्बन्ध मे अपना दृष्टिकोण सकीर्ण नही विस्तृत रखना चाहिये 'श.र मा.व रूप अवतार' की तरह भाव रूप ईश्वरावतार के सिद्धान्त को भी सर्वथा युक्तियुक्त और शास्त्रानुकूल मानना चाहिये।

कल्कि पुराण के अवतार वर्णन पर एक दृष्टि

'कल्कि-पुराण' के रचियता ने भगवान कल्कि के प्राकट्य का का वर्णन बहुत सीधे-साधे ढग से 'प्राचीन शैली' पर कर दिया है, कि "जब कलियुग मे पाप बहुत बढ़ गये और धर्म-कार्यो के बन्द होजाने से देवगण कष्ट पाने लगे तो वे अपनी दुरवस्था का निवारण करने के लिये ब्रह्माजी की सेवा मे उपस्थित हुए । ब्रह्माजी सब को लेकर विष्णु भगवान की सेवा मे उपस्थित हुए । भगवान ने धर्म की हानि होते देखकर अवतार लेना स्वीकार किया और वे 'शभल' ग्राम मे विष्णु-यशविप्र की भार्या के गर्भ मे प्रविष्ट होगये, और यथा समय जन्म लेकर अपने लीला कार्य को सम्पन्न करने लगे ।"

इस वर्णन मे कोई नई बात नही है । अन्य सब पुराणो और रामायण आदि मे यही अधिक विस्तार से साहित्यिक ढग से वर्णन किया गया है । कल्कि पुराण का आकार अपेक्षाकृत बहुत छोटा है, इसलिये उसमे दस-बीस श्लोको मे ही इस वर्णन को निपटा दिया है। तो भी उसमे दो-चार बाते ऐसी है जिन से कल्कि भगवान का जन्म लौकिक के बजाय दैवी सिद्ध हो सकता है । कल्कि भगवान का जन्म होने पर उनके आरम्भिक सस्कार कैसे सम्पन्न हुए इस सम्बन्ध मे कहा गया है—

धातृमाता महाषष्ठी नाभिच्छेत्री तदम्बिका ।
गगोदक क्लेदमोक्षा सावित्री मार्जनोद्यता ।।
तस्य विष्णोरनन्तस्य वसुधा ऽधात्पयः सुधाम् ।
मात्रका माङ्गल्य वच कृष्णजन्मदिने यथा ।।

अर्थात्—"कल्कि भगवान के जन्म लेने पर भगवती महाषष्ठी ने धात्री (दाई) का कार्य किया, अम्बिका देवी ने नाल काटा, भगवती भगीरथी ने अपने जल से गर्भक्लेद (शिशु के शरीर मे लगे रक्त आदि)को दूर किया, और सावित्री देवी उनका मार्जन करने लगी । भगवान कृष्ण के जन्म के अवसर की भाँति भगवान कल्कि के

जन्म लेने पर भगवती वसुमती ने दुग्ध धारा प्रवाहित की और मातृका भवानी ने मगल गीत गाये ।''

यह वर्णन लौकिक नही, अलौकिक ही कहा जा सकता है। वैसे यह तो हर शास्त्र मे कह दिया गया है कि भगवान के अवतार रूप मे जन्म ग्रहण करने का रहस्य कोई जान नही सकता। इसी प्रसग मे यह भी लिखा है कि 'उसी अवसर पर जब भगवान का नाम करण सस्कार किया जाने लगा तो उनके दर्शन के निमित्त परशुराम जी, कृपाचार्य, व्यासमुनि एव द्रोणाचार्य-पुत्र अश्वत्थामा भिक्षुक भेष धारण करके वहाँ आये।'' इस प्रकार के वर्णन स्थूल जगत की अपेक्षा सूक्ष्म-जगत अथवा दैवी-जगत के लिये अधिक उपयुक्त जान पडते हैं। कल्कि-पुराण के रचियता ने श्री कल्कि के प्रकट होने का वर्णन परम्परागत रूप मे कर दिया है। पर समस्त पुराण के कथानक पर ध्यान देने से कल्कि-भगवान का प्राकट्य व्यक्तिगत रूप मे मानने की अपेक्षा भाव-रूप मे मानना अधिक युक्तिसंगत जान पडता है। वैसे जब कभी धर्म और अधर्म के विरोधी पक्षो मे सघर्ष प्रकट रूप मे और विशाल परिमाण मे होगा तो धर्मरक्षार्थ अग्रसर होने वालों मैं एक या दो-चार व्यक्ति भी प्रमुख हो सकते हैं, उनमे से किसी एक का आत्मोत्सर्ग और बलिदान सर्वोपरि भी माना जासकता है, पर ज्ञानी जन इसको बहुत अधिक महत्व देना अनावश्यक बतलाते है। ऐसे सघर्ष मे महत्व की वस्तु वह सिद्धान्त या विचार धारा ही होती है। जिमसे प्रेरित होकर इतने सुयोग्य और शक्तिशाली व्यक्तित्व सांसारिक स्वार्थ को त्याग कर पारमार्थिक उद्देश्य के लिये अधर्म के विरुद्ध उठ खडे होते हैं, और इस कार्य की पूर्ति के लिये किसी भी त्याग या बलिदान को करने से पीछे पैर नहीं हटाते।

इसी प्रकार जब श्री कल्कि भगवान के पुन: बैकुन्ठ जाने का वर्णन किया है तो कहा गया है कि भगवान तो वास्तव मे निराकार और रूपविहीन थे। ससार के प्राणियो को उनका जो रूप दिखाई दिया

वह उनकी माया की शक्ति ही थी—

तुष्टुवुर्मु मुंहु सर्वे लोका सस्थाणु जगमा ।
दृष्टोरूपनरूपस्य निर्वाणे वैष्णव पदम् ।।

अर्थात् "जब भगवान कल्कि ने इस जगत को त्याग कर विष्णु-पद मे प्रवेश किया तो उन अरूप विष्णु भगवान के रूप-दर्शन कर समस्त स्थावर और जगम प्राणी मोहित होकर स्तुति करने लगे।"

अवतार के सम्बन्ध मे निराकार ब्रह्म के साकार रूप मे प्रकट होने की समस्या सदा से विवादास्पद रही है। इसी कारण निराकार-वादी और वेदान्ती विचारो वाले किसी अवतार को साक्षात् परमात्मा के दर्जे का स्वीकार नही करते, वरन् विशेष दैवी शक्ति से सम्पन्न देवपुरुष ही मानते हैं। यद्यपि सगुणवादियो ने जल जैसे निराकार तत्व के ठण्ड पाकर जम जाने पर साकार रूप मे परिवर्तित होने का प्रमाण दिया है पर तर्कवादी लोगो का उससे संतोष नही होता। उनका कहना है कि जल और वायु के निराकारत्व तथा परमात्म-तत्त्व के निराकार होने मे बहुत अन्तर है। विज्ञान के अनुसार भौतिक तत्त्व-गैस, द्रव और ठोस तीनो अवस्थाओ मे रह सकते है और रहते है। पर परमात्म तत्त्वो को किसी प्रकार पच-भौतिक नही कहा जासकता है। वह तो केवल शक्ति या सत्ता के रूप मे है, उसका स्थूल रूप मे आसकना सभव नही। जिस प्रकार उष्णता और विद्युत की शक्ति केवल किसी माध्यम से ही प्रकट होती और काम करती है, उसी प्रकार परमात्म-शक्ति भी आवश्यकतानुसार एक या अधिक लोगो को प्रेरित करके ही दैवी लक्ष्य की पूर्ति करती है।

जैसा हमने ऊपर बतलाया है 'कल्कि पुराण' का कथानक बहुत सीधा सीधा और आरम्भ से अन्त तक एक उपाख्यान की तरह है। उसमे अन्य पुराणो की तरह 'सर्ग', प्रतिसर्ग, मन्वन्तर, देव-ऋषि और राजवशो, आदि का समावेश नही किया गया है। या तो रचियता ने ही इसे सक्षिप्त रूप मे प्रस्तुत किया है अथवा किसी अन्य विद्वान ने उसका

यह संक्षिप्त सस्करण तैयार किया है यही समस्या 'विष्णु पुराण' के सम्बन्ध मे भी उपस्थित है जिसको अन्य पुराणो की सूचियो मे २३ हजार श्लोको का बतलाया है, पर वर्तमान समय मे जो ६।। हजार श्लोको का ही मिलता है । कुछ भी हो 'कल्कि पुराण' मे अवतार के साकार और निराकार रूपो के सम्बन्ध कोई स्पष्ट विवेचन नही किया गया, पर जब हम ,रामायण' 'गीता' 'भागवत' आदि के विवेचन को ध्यान मे रखते हुए उसके कथानक पर विचार करते हैं, तो 'कल्कि भगवान'का स्वरूप अधिकाँश मे 'भावात्मक' ही प्रतीत होता है ' हम जानते हैं कि जो लोग 'अवतार' शब्द से केवल 'राम,कृष्ण' नरसिंह, 'वामन' आदि जैसे चमत्कारी दैवी पुरुषो का ही आशय समझते है और लोकोत्तर लीलाओ के कारण ही उनको 'भगवान' मानते है, वे अवश्य ही 'भावात्मक अवतार' के सम्बन्ध मे तरह-तरह की शकाय करेगे । उनसे हम इतना ही कह सकते हैं कि जिसप्रकार वेदव्यास, गो० तुलसी-दास आदि महामानवों ने भगवान के निराकार' और ,साकार' दोनो रूपों को यथार्थ स्वीकार किया है ।उसी प्रकार' शरीर धारी' अवतार और भाव रूपी अवतार दोनो ही सभव होसकते है !



पाँचवा अध्याय

कल्कि अवतार का विश्वव्यापी प्रभाव

समस्त अवतारो का 'युग-परिवर्तन' से विशेष सम्बन्ध होता है। हम यह कह सकते है कि जब नये युग का आविर्भाव होने लगता है, तो उसकी प्रक्रिया किसी 'अवतार' नामधारी द्वारा आरम्भ की जाती है। इसी बात को दूसरे शब्दो मे इस प्रकार कह सकते है कि जब ससार मे किसी 'अवतार' का प्राकट्य होता है, तो उसके परिणाम स्वरूप एक नवीन युग का जन्म भी होता है। इसी सिद्धान्त के आधार पर आज लाखो व्यक्ति वर्तमान विश्वव्यापी हलचल मे एक नये युग के सूत्रपात के चिन्ह देखकर भावी अवतार के आगमन की आशा भी कर रहे है।

'कल्कि' का कलियुग के साथ बडा घनिष्ठ सम्बन्ध है। उनका नामकरण इसी आधार पर किया गया है। सभी पुराणो मे यह वर्णन पाया जाता है कि जब कलियुग के प्रभाव से मानव समाज की अवस्था विशेष शोचनीय हो जायगी तब 'कलियुग' को नष्ट करके 'सतयुग' की स्थापना के निमित्त 'कल्कि भगवान' प्रकट होगे। कुछ लोग इस घटना का समय अब से कई लाख वर्ष बाद मान रहे है और कितने ही वर्तमान चिन्हो को देखते हुए शीघ्र ही उनके प्रादुर्भाव की भविष्यवाणी कर रहे हैं। बगाल के एक स्वामी जी ने तो 'शास्त्रो के प्रमाण' और निजी "यौगिक अनुभूतियो' के आधार एक बडा ग्रन्थ छपा कर सन् १९८५ मे कल्कि के प्रकट होने की घोषणा ही कर दी है। हम इस स्थान पर 'कल्कि' के प्रकट होने की तारीख सम्बन्धी विवाद मे पडना नही चाहते, पर जो लोग अवतार को लाखो वर्ष आगे की घटना मानते है, उनसे तो हमारा मतभेद स्पष्ट है। अधिकाश पुराणो और मनुस्मृति

आदि मे भी कलियुग को १२०० वर्ष का लिखा है। पर पुराने ढर के पडित उनको देव-वर्ष कहकर ४ लाख ३२ हजार की सख्या बतलाते है, जब कि अन्य विद्वान् उनको मानव वर्ष मानकर चारो युगो का परिमाण १२ हजार वर्ष निश्चित करते है। वे इसके प्रमाण स्वरूप 'मनुस्मृति' के ये श्लोक उपस्थित करते है—

चत्वार्याहु सहस्राणि वर्षाणातु कृत युग।
तस्य तावत शटी सध्या सध्याशश्च तथा विधि:॥
इतरेषु स सध्येषु स सध्याशेषु च त्रिषु।
एकोपायेन वर्तन्ते सहस्राणि शतानि च॥

इन श्लोको मे स्पष्ट शब्दो मे कहा गया है कि कृतयुग (सतयुग)४ हजार वर्षो का होना है और ४००-४०० वर्ष की उसकी सध्या और सध्याश होते है। इसी प्रकार त्रेता, द्वापर तथा कलियुग क्रमश . हजार, २ हजार और एक हजार वर्षो के होते हैं, और उतने-उतने सौ वर्षों की उनकी दोनो सधिया(सध्या और सध्याश)भी होती हैं।"

युगो की अवधि का निर्णय करने के लिए अब से ४० वर्ष पहले 'चेतावनी' नामक पुस्तिका के लेखक प० राजनारायण षटशास्त्री ने बडा परिश्रम और आन्दोलन किया था। उनकी 'चेतावनी' सामान्य जनता मे वडी लोकप्रिय हो गई थी और हजारो की सख्या मे छप कर बिकी थी। उन्होंने लाखो वर्ष के युगो के खण्डन मे ज्योतिष, धर्मशास्त्र तथा महाभारत आदि से तथा स्वय खोजकर बहुत से प्रमाण दिये थे। उनमे से दो का उल्लेख नीचे किया जाता है—

उदयपुर जयपुर, जोधपुर तथा काश्मीर के महाराज अपने वश का सम्बन्ध भगवान राम के सूर्यवश से बतलाते हैं और इन्होंने अनेक विद्वान पडितो को नियुक्त करके तथा समस्त प्राचीन ग्रन्थो तथा पुराणो मे दी हुई वशावालियो की खोज और मिलान कराके अन्त में श्रीरामचन्द्र से अपने समय तक के समस्त राजाओ की नामावली तैयार कराई। इसके अनुसार श्रीरामचन्द्र से जयपुर के वर्तमान महाराज मानसिह तक कुल २३१ राजा हो चुके है। अब अगर पुराने ढर्रे

के पडितो के हिसाब से माना जाय तो श्रीरामचन्द्र को करीब ९-१० लाख वर्ष पहले का मानना पडेगा । पर दस लाख वर्षों मे २३१ पीढियो का होना किसी हिसाव से ठीक सिद्ध नही होता । विद्वानो ने एक पीढी से दूसरी पीढी का अन्तर सामान्यतया २५, ३० वर्ष का ही निर्धारित किया है । इस हिसाव स २३१ पीढियो मे ५–६ हजार वर्ष से अधिक का समय व्यतीत नही हो सकता ।

इसमे अगर यह दलील दी जाय, जैसा कि अक्सर 'पडित' नाम-धारी प्राय दिया करते है कि पुराने जमाने मे मनुष्यो की आयु हजारो वर्ष की हुआ करती थी, इसलिए एक-एक पीढी का अन्तर बहुत अधिक हो सकता है, तो यह निरर्थक है । हजारो, लाखो वर्ष की आयु और सैकडो गज लम्बे चौडे शरीर कथा और उपाख्यानो मे सुनाये जा सकते है, पर जब गभीरतापूर्वक विचार विमश किया जाय तो उन को प्रामाणिक नही माना जा सकता ।प्राचीन और आधुनिक बाता-वरण और रहन-सहन मे अन्तर पड गया है उसके आधार पर उस समय बहुसख्यक लोगो की आय अब से ड्योढी दुगुनी तक मानी जा सकती है जैसा कि आजकल भी शहरो के कृत्रिम बातावरण से दूर ग्रामीण अथवा पहाडी स्थानो के निवासियो मे अनेक ब्यक्ति १२५, १५० या इससे भी अधिक आयु के पाये जाते है । धर्मशास्त्रो की दृष्टि से भी जो 'वेद' ससार के सबसे प्राचीन ग्रन्थ स्वीकार किये गये है उनमे सब जगह 'जीवेम शरद शतम्' कह कर परमात्मा से सौ वर्ष की आयु की प्रार्थना की गई है। पाठक इस पर विचार करके स्वय वास्तविकता का अनुमान कर सकते है । ऐसी ही कथाओ मे श्री रामचन्द्र जी का शासन-काल ग्यारह हजार वर्ष लिख दिया गया है, पर उनके विवाह के सम्बन्ध मे यही कहा गया है कि उस समय 'रामचन्द्र जी की आयु २७ वर्ष और सीता की १८ वर्ष की थी ।' इससे भी यह जाना जा सकता है कि हजारों बर्ष की आय वाली बात ठीक नही है, कम से कम उसका

'चेतावनी' की दूसरी खोज यह है कि अनेक स्थानो पर चारो युगो को जो ४३ लाख २० हजार वर्षों का लिखा है,वे वास्तव मे ३६० दिन वाले वर्ष नही है, वरन् सूर्याब्द (२४ घटे का रात दिन) हैं। प्राचीन ग्रन्थो मे बहुत से वर्णनो मे इसी प्रकार 'सूर्याब्द' का उल्लेख किया गया है। इसका एक उदाहरण 'बाल्मीकि रामायण' मे मिलता है। उसके उत्तरकाण्ड (सर्ग ७३) मे एक ब्राह्मण का वर्णन मिलता है जिसने श्रीराम के दरवार मे आकर अपने बालक के मर जाने की शिकायत की और कहा—

अप्राप्त यौवनं वाले पंच वर्ष सहस्रकम ।
अकाले कालमापन्न मम दुखाय पुत्रकम् ॥

इसमे कहा गया है कि "मेरा पाँच सहस्र वर्ष की आयु का बालक यौवनावस्था प्राप्त होने से पूर्व ही अकाल मे काल-कवलित हो गया है, इससे मैं अत्यन्त दुखी हूँ।" इस कथानक मे ५ हजार वर्ष की आयु वाले को 'बालक' कहना बडा बेतुका जान पडता है पुराणो की कथाओ मे महाराज दशरथ और श्री रामचन्द्रजी की आयु लगभग दस-ग्यारह सहस्र वर्ष की बतलाई है। थोडी देर के लिए उसको भी मान लिया जाय तो भी ५ हजार वर्ष की आयु वाला 'युवा' अथवा प्रौढ ही कहा जा सकता है, उसे बालक कहना तो गलत ही माना जायगा। इसलिये रामायण के एक विद्वान् टीकाकार प० रामाभिराम ने इसका अर्थ करते हुए लिखा है—

"पञ्च वर्ष सहस्रक, वर्ष शब्दोत्र दिन परः ।
किञ्चिन्न्यून चतुर्दश वर्ष मित्यर्थः ।"

अर्थात् "यहाँ पर जो 'पच सहस्र वर्ष' कहा गया है उसका आशय दिन से है। इस हिसाब से उस ब्राह्मण का बालक चौदह वर्ष से कुछ कम आयु का था।"

अगर कोई इस 'सूर्याब्द' की बात को मनगढन्त अथवा काल्पनिक कहे तो यह उसकी भूल और जानकारी की कमी है। वास्तव मे कथा

कहने वाले या पूजा-पाठ कराने वाले 'पंडितों' में से एक प्रतिशत भी ऐसे नहीं होते जिन्होंने प्राचीन साहित्य का गहरा अध्ययन किया हो और उसका मर्म खोजने में परिश्रम किया हो। यदि वे खोज करते तो उनको मालूम हो जाता है कि वर्ष केवल ३६० या ३६५ दिनों का ही नहीं होता वरन् इससे बहुत कम और बहुत अधिक अनेक प्रकार का होता है। गणित ज्योतिष के प्रसिद्ध ग्रन्थ 'सूर्य सिद्धान्त' में नौ प्रकार के वर्ष बतलाये गये हैं—

ब्राह्मं दिव्यं यथा पित्र्यं प्राजापत्यं गुरोऽस्तथा।
सौरं च सावनं चान्द्रं मार्क्षं मानानी वै नव॥

(सू० १३-१)

अर्थात्—"ब्रह्म-वर्ष इस सृष्टि के बराबर होता है। 'दिव्य-वर्ष (यह सूर्य की उत्तर-दक्षिण गति से ३६० दिन का होता है)। 'पितृ वर्ष' 'यह हमारे एक महीने के बराबर होता है) 'प्रजापति वर्ष'' (यह एक प्रतिसर्ग सृष्टि के समान कहा गया है।) 'गुरू वर्ष'' (यह बृहस्पति के भ्रमण काल के अनुसार १२ वर्ष का होता है।) 'सौर-वर्ष' (३६५ दिन का।) 'सावन वर्ष'' (सूर्योदय से अगले सूर्योदय तक २४ घंटे का। इसी को 'सूर्य-वत्सर' या 'सूर्याब्द कहा गया है।) 'चान्द्र वर्ष'' (यह तिथियों के हिसाब से ३५४ दिन का होता है।) 'नक्षत्र वर्ष'' यह ५२ घडी कुछ पल का होता है।)

वेदों में 'युगों' का हिसाब भी कई प्रकार से बताया गया है और वेदांग-ज्योतिष के ग्रन्थों में छः-छः महीने के('देवयुग' और 'मनुष्य-युग) से लेकर पाँच, बारह, साठ, बारह हजार तथा लाखों वर्ष की संख्या वाले अनेक युगों का विवरण पाया जाता है। 'अथर्व वेद' में भी एक स्थान पर चारों युगों का परिमाण १२ हजार वर्ष का होने का वर्णन मिलता है—

शतं ते युतं हायनान्द्वे युगे त्रीणि चत्वारि कृण्मः।
इन्द्राग्नी विश्वेदेवास्ते नुमन्यतामहृणीयमाना॥

सायणाचार्य ने इस मंत्र का भाष्य करते हुए लिखा है—

"चतुर्णां युगानां संधि संवत्सरान् विहाय युग चतुष्टय मिलितत्वा अयुत संवत्सरा स्यु तानु विभज्य कलि द्वापराख्ये त्रीणि त्रेता साहितानि चत्वारि कृतयुग साहितानि कुर्म इति आशास्यते।"

अर्थात् –' चारो युगो के संधि–संवत्सरो को छोड़ दस हजार वर्ष होते है। कलि, द्वापर, त्रेता और कृतयुग सहित ये चारो युग होते है।"

आचरण के आधार पर युग परिवर्तन—यहाँ तक हमने उन पाठको को समझाने के लिये, जो मानते है कि शास्त्रानुसार चारो युगो का क्रम से निरन्तर आते–जाते रहना अनिवार्य है, कुछ शास्त्रीय विवेचन किया। अन्यथा हम तो इस सम्बन्ध मे वैदिक ऋषियो के उस सिद्धान्त को यथार्थ मानते हैं जिसमे कहा गया है कि 'युग' का आधार मनुष्य के कर्मों और विचारों पर है। जैसा भला-बुरा हमारा आचरण होगा वैसा ही 'युग' (समय) हमको जान पडने लगेगा। 'ऐतरेय ब्राह्मण' मे इन्द्र ने कहा था —

कलि शयानो भवति संजिहानस्तु द्वापरः।
उत्तिष्ठिन्त्रेता भवति कृत सम्पद्यते चरन्॥

अर्थात्—"जब समाज या व्यक्ति सोता रहता है (अकर्मण्य अवस्था में रहता है) तो उसे कलियुग की अवस्था कहना चाहिए) जब वह आँखें खोलकर जँभाई लेने लगे तो वह द्वापर की दशा होती है। जब उठ जाता है तो वह त्रेता मे पैर धरता है, और जब चलने लग जाता है (अपने कर्तव्य पालन में संलग्न होता है)तब वह सतयुग की अवस्था को प्राप्त हो जाता है।"

शासन और 'युग का सम्बन्ध—

इससे भी अधिक व्यावहारिक बात इस सम्बन्ध मे महाभारत' मे भीष्म पितामह ने कही थी। उन्होने युधिष्ठिर को उपदेश देते हुए

कहा कि "देश का राजा या शासन-संचालन करने वाला राष्ट्रपति जैसा होगा वहाँ वैसा ही युग प्रवृत्तमान हो जायगा।" यदि राजा या शासन का संचालन करने वाले प्रधान अधिकारी सच्चे, न्यायपरायण और पूर्ण कर्तव्य निष्ठ है तो वहाँ की जनता को भी उसी प्रकार चलना पड़ेगा। ऐसे आदर्श शासन मे दुष्ट, दुराचारी, ठग, बदमाशो को या तो अपने दुर्गुण त्याग कर सज्जनता का व्यवहार सीखना पड़ता है अथवा वहाँ से निकल किसी दूरवर्ती स्थान को चला जाना पड़ता है। इस प्रकार महाभारत के कथनानुसार जहाँ जैसा राजा होता है वैसा ही युग वर्तने लगता है—

राजा कृतयुगस्रष्टा त्रेताया द्वापरस्य च।
युगस्य च चतुर्थस्य राजा भवति कारणम्॥
(शान्ति पर्व अ० ६९-९८)

"राजा ही सत्युग की सृष्टि करने वाला होता है और राजा ही त्रेता, द्वापर और चौथे युग (कलियुग) की भी सृष्टि का कारण होता है।"

इस प्रकार हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि वर्तमान समय मे भारतीय जनता के एक बड़े भाग मे जो 'कलियुग' के अनिवार्य होने की धारणा जमी हुई है, वह बड़ी घातक है। हमने बहुसख्यक व्यक्तियो को किसी बुराई का जिक्र आने पर प्राय यह कहते सुना है कि—"अजी, यह तो कलियुग है, इसमे तो ऐसे निषिद्ध या पाप कर्मों का होना मामूली बात है।" आज यह मनोवृत्ति करोडो लोगो मे देखी जा सकती है। अपनी बुराई या त्रुटियो का दोष इस प्रकार 'युग' अथवा 'दैव' पर डालकर उनके सुधार का कोई प्रयत्न न करना एक बहुत बड़ी मूर्खता का चिन्ह है 'कल्कि पुराण' के पाठको से हम आग्रह पूर्वक प्रार्थना करेंगे कि वे अपने ऊपर 'कलियुग' का प्रभाव स्वीकार न करें, वरन् "भगवान कल्कि" के सहयोगी बन कर उसको नष्ट करने को तैयार हो जायें। जैसा 'कल्कि पुराण' मे कहा गया है 'कलियुग' का

प्रभाव तामसी बुद्धि वालों और मद्यपान व्यभिचार, जुआ आदि दुर्व्यसनो मे लिप्त व्यक्तिओ पर ही अधिक पडता है। अतएव अपना कल्याण चाहने वाले मनुष्यो को सबसे पहले 'कलियुग' की दूषित भावना को सर्वथा त्यागकर श्रेष्ठ युग के आगमन की ही भावना करनी चाहिए। हमारे विचार मे यही 'कल्कि' का सबसे मुख्य और वास्तविक सन्देश और उपदेश है। युगो की वर्ष-सख्या के सम्बन्ध एक मध्यम मार्गीय दल उन लोगो का भी है, जो कहते है कि प्रत्येक महायुग मे कम अवधि वाले चारों युगो की अन्तर-दशा मे निरन्तर आती रहती है। इसी विचार के एक सज्जन ने 'सतयुग' मासिक पत्र (सितम्बर १९३९) मे लिखा था कि 'कलियुग ४३२००० वर्ष तक रहना है, पर बीच-बीच मे प्रत्येक ५०५३ वर्षों के बाद ८० वर्षों के लिये सतयुग आता रहता है)' इन दोनो मे से किसी का खडन न करते हुए वर्तमान परिस्थितियो को देख कर हम युग-परिवर्तन की सभावना पर निश्चित रूप से विश्वास करते हैं, और हमारी यह भी धारणा है कि इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए 'कल्कि अवतार' की प्रक्रिया इस समय भी भी विश्वव्यापी वातावरण मे चल रही है।

'महाभारत' (वन पर्व अ० १९०) मे कल्कि-अवतार के प्रकट होने का वर्णन अन्य ग्रन्थो की अपेक्षा विस्तारपूर्वक किया गया है। उसमे आरम्भ मे कलियुग मे समाज की दुरवस्था और लोगो मे उत्पन्न होने वाले भयकर दोषो का वर्णन करके कहा गया है—

कल्की विष्णुयशा नाम द्विज. काल प्रचोदित ।
उत्पत्स्यते महावीर्यो महा बुद्धि पराक्रम ॥९३
सम्भूतः सम्भल ग्रामे ब्राह्मण वसथे शुभे ।
(महात्मा वृत्तसम्पन्नः प्रजाना हितकृन्नृप)
मनसा तस्य सर्वाणि वाहनान्यायुधानि च ॥९४
उपस्थास्यन्ति योधाश्च शस्त्राणि कवचानि च ।
स धर्म विजयी राजा चक्रवर्ती भविष्यति ॥९५

स चेमे सकुल लोकँ प्रसादमुप नेष्यति ।
उत्थितो ब्राह्मणो दीत क्षयान्तुकृदुदारधी ॥९६
सक्षेप को हि सर्वस्य युगस्य परिवर्तक ।
स सर्वत्र गतान् क्षुद्रान् ब्राह्मणैः परिवारित ।
उत्सादयिष्यति तदा सर्वम्लेच्छ गणान् द्विज ॥९७

अर्थात्—"युगान्त के अवसर पर महाकाल की प्रेरणा से सम्भल निवासी एक ब्राह्मण के घर मे एक बालक प्रकट होगा जिसका नाम 'विष्णु यशा-कल्की' होगा । वह महान बुद्धि एव पराक्रम से सम्पन्न महात्मा, सदाचारी और जनता का हितैषी होगा । मन से चिन्तन करते ही उसके पास इच्छानुसार वाहन अस्त्र-शस्त्र, योद्धा, कवच आदि उपस्थित हो जायेगे । वह धर्मविजयी चक्रवर्ती राजा होगा । वह उदार बुद्धि, तेजस्वी ब्राह्मण, दु ख से व्याप्त इस जगत को आनन्द प्रदान करेगा । कलियुग का अन्त करने के लिए उसका प्रादुर्भाव होगा । वही कलियुग का सहार करके नूतन युग का प्रवर्तक होगा । वह सर्वत्र ब्राह्मणो से घिरा हुआ विचरण करेगा और भूमडल मे फैले हुए नीच स्वभाव वाले सम्पूर्ण म्लेच्छो का संहार कर डालेगा ।"

उपर्युक्त वर्णन मे अवतार का नाम 'विष्णुयशा कल्की' लिखा है, जब कि 'कल्किपुराण' तथा अन्य ग्रन्थो मे भी विष्णुयश को कल्की का पिता कहा गया है । हो सकता है कि जैसे अनेक प्रदेशो मे पिता और पुत्र का नाम मिलाकर ही पूरा नाम बोला जाता है, उसी रीति का यहा अनुसरण किया गया हो । 'श्रीमदभागवत' के बारहवे स्कन्ध के दूसरे अध्याय मे भी कलियुग का वर्णन करते हुए कल्कि अवतार के प्राकट्य और कार्यो का महत्त्व बड़े श्रद्धायुक्त रूप मे बतलाया गया है—

शम्भलग्राममुख्यस्य ब्राह्मणस्य महात्मनः ।
भ॰ ने विष्णुयशस: कल्कि प्रादुर्भवष्यति ॥१८
अश्वमाशुगमारुह्य देवदत्त जगत्पति ।
असिनासासाधुदमनमष्टैश्वर्यगुणान्वित ॥१९

विचरन्नाशुना क्षोण्या हयेनाप्रतिमद्युति ।
नृपलिगच्छदो दस्यून कोटिशो निहनिष्यति: ॥२०
अथ तेषा भविष्यन्ति मनासि विशदानि वै ।
वासुदेवागरागातिपुण्यगन्धानिलस्प्रशाम् ।
पौरजानपदाना वै हतेष्वखिलदस्यपु ॥२१
तेषा प्रजाविसर्गश्च स्थविष्ठ सम्भाविष्यति ।
वासुदेवे भगवति सत्त्वमूर्तौ हृदि स्थिते ॥२२
यदावतीर्णो भगवान् कल्किर्धर्मपतिर्हरि ।
कृत भविष्यति तदा प्रजासूतिश्च सात्त्विकी ॥२३

"जब अवतार के प्रकट होने का अबसर आयेगा उस समय सम्भल ग्राम मे विष्णुयश नाम के एक श्रेष्ठ ब्राह्मण होगे । उनका हृदय बडा उदार एव भक्तियुक्त होगा । उन्ही के घर मे कल्कि-भगवान अवतार ग्रहण करेगे । श्री भगवान ही अष्ट सिद्धियो के तथा समस्त सद्गुणो के एकमात्र आश्रय है । समस्त चराचर जगत के वे ही रक्षक और स्वामी है । वे देवदत्त नामक शीघ्रगामी घोडे पर सवार होकर दुष्टो को अपनी जगत प्रसिद्ध तलवार के घाट उतारेगे । उनके रोम-रोम से तेज छिटकता होगा । अपने शीघ्रगामी वाहन पर पृथ्वी पर सर्वत्र विचरण करके 'राजाओ' के वेष मे प्रच्छन्न करोडो लुटेरो का सहार करेंगे । जब भगवान के अगराग से सुगन्धित हुई वायु लोगो को स्पर्श करेगी तो उनका हृदय पवित्र हो जायगा और पाप कर्मों का अन्त हो जायगा । इससे सबके हृदय मे भगवद्भक्ति का सचार होगा और वे सुखी तथा पूर्ण स्वस्थ होने लग जायेगे । प्रजा के नयन-मनोहारी श्री हरि ही धर्म के रक्षक और सब के स्वामी है । वे ही भगवान जब कल्कि रूप मे प्रकट होगे, तो कलियुग का अन्त होकर सत्युग (श्रेष्ठ युग) प्रारम्भ हो जायगा और सब मनुष्य तथा उनकी सतान स्वयमेव सत्त्वगुण युक्त बन जायगी ।"

'भागवत' मे 'राजा रूपी दस्युओ' के कल्कि भगवान् द्वारा नष्ट किए जाने की बात लिखी गई है। जिस समय इस वर्णन को लिखा गया था, उस समय पृथिवी पर प्रत्येक अधिकार सम्पन्न और शक्ति-शाली को राजा माना जाता था, क्योकि वह क्षत्रियो की प्रधानता का युग था। पर अब वह समय बदल कर वैश्य-प्रधान युग आ गया है और ससार भर मे समाज की बागडोर बहुत बडे धनवानो, उद्योग-पतियो, बैंकरो, पूँजीवादियो के हाथ मे है। उन्होने समस्त धन को और उसके द्वारा जनता के जीवन-निर्वाह के साधनो को अपने वश मे कर रखा है। इसका परिणाम यह होता है कि एक तरफ तो ससार के करोडो व्यक्ति अन्न और वस्त्र के अभाव से पीडित रहते है और दूसरी तरफ लाखो मन खाद्य सामग्री और करोडो गज कपडा उनके गोदामो मे ताले के भीतर बन्द घुन-सडकर नष्ट हो जाता है। 'कल्कि' अपनी शक्ति-प्रभाव से इस अन्याय पूर्ण स्थिति को बदल देगे, और पूँजीवादी प्रथा का अन्त हो जायगा।

'भविष्य-पुराण' मे 'कल्कि' का उल्लेख युग परिवर्तन के सम्बन्ध मे करके यह बताया गया है कि वे 'महायज्ञ' द्वारा देवताओ को सतुष्ट करके जगत् को सुखी बनायेगे—

तदास भगवान कल्किः पुराण पुरुषोद्भवः।
दिव्य वाजिनमारुह्य खड्गी वर्मा च चर्मधक ।।
म्लेच्छास्तान दैत्यभूतांश्च हत्वा योगं गमिष्यति ।।
षोडशाब्द सहस्रानि तद्ध्वशाग्नि प्रतापिता।
भस्मभूता कर्मभूमिर्निर्जीवा भाविता तदा ।।
गते कलियुगे घोर कर्मभूमि पुनर्हरि।
कृत्वास्थलमयी रम्यां यज्ञैर्देवान् यजिष्यति ।।
यज्ञभागमुपादाय देवास्ते बल संयुता।
वैवस्वत मनुं गत्वा कथयिष्यन्ति कारणम् ।।

'उस अवसर पर पुराण, पुरुष, परमेश्वर 'कल्कि' प्रकट होगे, जो दिव्य अश्व पर आरूढ और असि (तलवार), वर्म (कवच), चर्म (ढाल) आदि समस्त शस्त्रो से सुसज्जित होगे । वे लाखों म्लेच्छो को उनके दुष्कर्मों के फलस्वरूप नष्ट कर देंगे और उसके पश्चात् 'महासमाधि' ग्रहण कर लेगे। उनके प्राकट्य के पहले यह भूमि धर्म-कर्म रहित धर्म विमुख लोगो से भर जायगी, पर भगवान् कल्कि के प्रभाव से वह फिर पुण्य-स्थली बन चायगी। जब कल्कि भगवान् धर्म रक्षार्थ महायज्ञ का अनुष्ठान करेंगे, तो देवगण अपना नियमित अ श प्राप्त करके शक्ति सम्पन्न हो जायेंगे और पृथ्वी निवासियो के कल्याण साधन में तत्पर होगे।'

'ब्रह्मवैवर्त पुराण' के 'प्रकृतिखण्ड' मे 'कल्कि' का वर्णन करते हुए कहा है—

एवं कलौ सम्प्रवृत्ते सर्वे म्लेच्छमयो भवेत् ।
विप्रस्य विष्णुयशसः पुत्र कल्किर्भविष्यति ।।
नारायण कलांशश्च भगवान बलिना बली ।
दीर्घेण करवालेन दीर्घ घोटक वाहनः ।।
म्लेच्छशून्याश्च पृथिव्या त्रिरात्रेण करिष्यति ।
निर्म्लेच्छां वसुधा कृत्वा अनुर्धानं करिष्यति ।।

'जब कलियुग की वृद्धि होकर समस्त जगत् म्लेच्छो (धर्म-द्रोहियो, से भर जायगा, तब भगवान् नारायण के कलाश से विष्णु यश के ग्रह में 'कल्कि' का आविर्भाव होगा। वह बडे-बडे शक्तिशा लियो की अपेक्षा भी अधिक शक्तिमान् होगे । वे अपनी विशाल तलवार और विशाल अश्व द्वारा तीन रात्रि में अत्यन्त शीघ्र म्लेच्छो का मूलोच्छेदन कर डालेंगे और पृथिवी के धर्मयुक्त हो जाने पर पुनः वैकुण्ठ को चले जायेंगे।' ये ही श्लोक कल्कि अवतार का वर्णन करते हुए 'देवी भागवत' में भी मिलते हैं। 'विष्णु पुराण' (३—२) में कल्कि अवतार के विषय मे कहा गया है—

वेदांस्तु द्वापरे व्यासः कलेरन्ते पुनर्हरि ।
कल्किस्वरूपी दुर्वृत्तान् मार्गे स्थापयति प्रभु ।।

अर्थात् 'भगवान् नारायण द्वापर मे व्यासदेव के रूप मे वेदो का विभाजन करके पुनः कलियुग के अन्त मे 'कल्कि' के रूप मे प्रकट होगे और दुष्ट स्वभाव वालो को सत्मार्ग पर लगायेंगे ।' आगे चलकर चतुर्थ अंश के चौबीसवे अध्याय में कल्कि अवतार का विशेष वर्णन करते हुए कहा है—

'श्रौते स्मार्ते च धर्मे विप्लवमत्यन्तमुपगते क्षीणप्राये च कलावशेषजगत्स्रष्टु श्चराचरगुरोरादि मध्यान्तर रहितस्य ब्रह्ममयस्यात्मरूपिणो भगवतो वासुदेवस्याशश्शम्बलग्रामप्रधान-ब्राह्मणस्य विष्णुयशसो गहेऽष्टगुणर्द्धिसमन्वित कल्किरूपी जगत्यश्रावतीर्य सकल म्लेच्छदस्युदुष्टा चरणचेतसामशेषाणामपरिच्छिन्न शक्तिमहात्म्यः क्षय करिष्यति स्वधर्मेषु चाखिलामेव सस्थापयिष्यति ।६८।

अर्थात्—'जब श्रौत वैदिक) और स्मार्त धर्म की अत्यन्त हानि हो जायेगी और कलियुग प्रायः समाप्ति पर होगा, तभी 'शम्बल' ग्राम में निवास करने वाले विप्रश्रेष्ठ विष्णु यश के यहाँ सम्पूर्ण विश्व के कारण, चराचर के स्वामी, आदि-मध्य-अन्त से हीन, ब्रह्ममय एव आत्मरूप भगवान् अपने अंश से अष्टगुण युक्त कल्कि रूप से अवतार धारण करेंगे। वही अपनी शक्ति और महिमा से सम्पन्न होकर सब म्लेच्छो, दस्युओ और दुष्ट हृदयों और दुराचारियो को नष्ट कर सभी प्रजा को अपने-अपने धर्म मे स्थापित करेंगे ।'

'अग्नि पुराण' मे कलियुग के कारण धर्म मोर समाज की दुरवस्था का चित्रण करते हुए 'कल्कि' के महत्व पर प्रकाश डाला गया है—

सर्वे कलियुगान्ते तु भविष्यन्ति च संकराः ।
दस्यवः शीलहीनाश्च वेदो वाजसनेयकः ॥
धर्मकञ्चुकसंवीता अधर्मरुचयस्तथा ।
मानुषान् भक्षयिष्यन्ति म्लेच्छान् पार्थिव रूपिणः ॥
कल्कि विष्णुयशः पुत्रो याज्ञवल्क्य पुरोहितः ।
उत्सादयिष्यति म्लेच्छान् गृहीतास्त्र कृतायुधः ॥
कल्कि रूपं परित्यज्य हरिः स्वर्गं गमिष्यति ।
तथा कृतयुगं नाम पुण्वत् सम्भविष्यति ॥

'कलियुग का अन्त होने के समय सब लोग वर्ण सकर हो जायेंगे । वे लुटेरे, शील रहित और वेद विरुद्ध आचरण करने वाले होंगे । उनकी रुचि धर्म की तरफ से हटकर अधर्म की तरफ चली जायगी । म्लेच्छ राजागरण मनुष्यो का बहुत बुरी तरह शोषण करेंगे । तब कल्कि भगवान् श्री विष्णु यश के यहाँ प्रकट होंगे और याज्ञवल्क्य उनके पुरोहित होंगे । वे शस्त्र लेकर अपनी शक्ति से म्लेच्छो को नष्ट कर डालेंगे । इसके पश्चात् जब पृथिवी पर फिर से सत्युग स्थापित हो जायगा तब भगवान् कल्कि पुनः अपने लोक को चले जायेंगे ।'

'गरुड पुराण' (अध्याय—१४६) में भी 'कल्कि' का वर्णन बहुत सक्षेप मे कर दिया गया है—

कल्कि विष्णुश्च भाविता शम्भल ग्रामके पुनः ।
अश्वारूढोऽखिलान् लोकास्तदाभीतान करिष्यति ॥
एवं स भगवान व्यास धर्मसंरक्षणाय च ।
दुष्टानां च वधार्थाय अवतारं करिष्यति ॥

'शम्भलग्राम मे विष्णु यश के यहाँ भगवान् 'कल्कि' रूप में प्रकट होंगे । वे घोड़े पर चढ़कर समस्त ससार को प्रभावित करेंगे । जैसा भगवान् व्यास कह गये हैं उनका अवतार दुष्टों का वध करने के लिए होगा ।'

'विष्णुधर्मोत्तर पुराण' मे भी कल्कि के सम्बन्ध में निम्न-लिखित श्लोक मिलता है—

कलेरन्ते तु सप्राप्ते कल्किनं ब्रह्मवादिनम् ।
अनुप्रविश्य कुरुते वासुदेवो जगत्स्थितम् ।।

'जब कलियुग समाप्त होने लगेगा तो सर्वव्यापी भगवान् पृथ्वी पर 'कल्कि' रूप मे प्रकट होगे और ईश्वरीय सत्ता (धर्म) की स्थापना करेगे

इस प्रकार प्रत्येक पुराण मे 'कल्कि' का न्यूनाधिक परिमाण मे उल्लेख मिलता है । सभी विद्वानो और ऋषि महर्षियो ने उनकी गणना प्रमुख अवतारो मे की है और उनकी महिमा श्रद्धापूर्वक गाई है । यद्यपि 'कल्किपुराण' मे 'कल्कि' का चरित्र-चित्रण सामान्य रूप मे ही किया गया है और अन्य पुराणो की तुलना मे वह नाममात्र का ही ग्रथ माना जा सकता है, पर इससे 'कल्कि' के महत्व मे कोई अन्तर नहीं पडा और हम कह सकते है कि दश अवतारो मे से राम, कृष्ण अति-रिक्त शायद ही कोई ऐसा अवतार हो जिसकी चर्चा प्राचीन और नवीन ग्रथो मे 'कल्कि' की अपेक्षा अधिक मिल सके । कारण यही है कि 'कल्कि' का उद्देश्य प्रत्यक्ष रूप मे दुष्टो और अधर्मियो से मानवता का परित्राण करना माना गया है । इतना ही नही अनेक विद्वानो की यह भी धारणा है कि 'कल्कि' संसार की भावी सभ्यता, जो वर्तमान से बहुत भिन्न होगी, के संस्थापक होगे । यही कारण है कि प्राचीन धार्मिक विद्वानो के साथ नये युग के विचारको ने भी 'कल्कि' की तरफ अधिक ध्यान दिया है और इस विषय की पर्याप्त विवेचना की है । थियोसोफिकल सोसाइटी की विदेश स्थित शाखाओ के द्वारा 'कल्कि' की चर्चा वहाँ भी पहुच गई है और विद्वानो मे इस विषय पर विचार विमर्श हुआ करता है ।

पुराणकारों के अतिरिक्त प्राचीन विद्वानो तथा कवियों मे से भीअनेक ने अपनी रचनाओं में 'कल्कि' का गुणगान और मानवता की

रक्षा करने के उपलक्ष मे उनके प्रति श्रद्धाञ्जलि अर्पित की है। एक सस्कृत कविता मे जिसको शङ्कराचार्य की रचित बताया गया है, 'कल्कि' के सम्बन्ध मे कहा है—

दुरापार संसार सहारकारी
भवत्यश्वार कृपाणप्रहारी।
मुरारिर्दशाकार धारीह कल्की
करोतु द्विषा ध्वंसन व स कल्कि॥

'भगवान् कल्कि, जो दश अवतारो मे से हैं, हमको भीषण ससार-सागर से पार करे और कृपाण से दुष्टो का नाश करके हमारे कष्टो को मिटाये।'

काश्मीर के सुप्रसिद्ध प्राचीन सस्कृत कवि क्षेमेन्द्र ने 'दशावतार चरित्र' नामक सुन्दर काव्य लिखा है। इसमे कल्कि भगवान् (क्षेमेन्द्र ने इसका उच्चारण 'कर्कि' किया है) की गुण गाथा विस्तार पूर्वक गाते हुए कहा है—

तस्मिन काले निरा लोके लोके पाप तमोदये।
उत्पत्स्य तेऽर्क संकाशः शिशुर्ककिकुले द्विजः॥
विष्णुर्भू भार शान्त्यर्था सोऽथ विष्णुयशः क्षितौ।
चरिष्यत्यश्वमारुह्य म्लेच्छ संक्षय दीक्षितः॥

'उस अन्धकार युग मे जब कि लोग पाप-कर्मों मे लिप्त होगे, विष्णुयश नामक प्रमुख ब्राह्मणो के घर मे सूर्य के समान तेजस्वी एक बालक जन्म लेगा। वह 'कल्कि' नाम वाला भगवान् का अवतार होगा और पृथिवी को भारमुक्त करके सुखी बनायेगा। वह अश्व पर सवार होकर सर्वत्र दुष्टो का नाश करता हुआ फिरेगा।'

दशावतार सम्बन्धी एक अन्य रचना मे कहा गया है—

कल्पावसाने तुरगाधिरूढो
सञ्चूटायामास निमेषमात्रात्।

यस्तेजसातिदं हृतातिभीष
स्त क'ल्कन विश्वपतिं भजामः ।।

'युग के समाप्त होने पर अश्व पर आरूढ 'कल्कि' प्रकट होगे जिनका तेज अत्यन्त तीव्र और भीषण होगा, वे दुष्टो को देखते-देखते भस्म कर देगे ।'

'कल्कि' की भावना का प्रभाव भारत के अन्य धर्म-सम्प्रदायो पर भी पडा है। चाहे वे उनको किसी दृष्टि से क्यो न देखते हो पर उनके रूप मे भावी अवतार की सम्भावनाओ को उन्होने स्वीकार किया है।' 'जैन हरि वश' (१०-२-५२) मे कहा गया है —

मुक्तिगते महावीरः प्रतिवर्ष सहस्रकम् ।
एकैको जायते कल्कि जैनमत विरोधकः ।।

'जैन तीर्थङ्कर महावीर स्वामी के निर्वाण के पश्चात् प्रति एक हजार वर्ष पर एक 'कल्कि' प्रकट होता रहेगा, जो जैन मत का विरोधी होगा ।'

इस वर्णन में एक हजार वर्ष का उल्लेख विशेष महत्त्वपूर्ण है। कलियुग की अवधि अधिकाश पुराणो मे एक हजार वर्ष ही बतलाई है और सूरदास आदि कई सन्त एक हजार वर्ष तक 'सतयुग' कायम रहने का कथन कर गए हैं। 'कल्कि' प्रकट होने का आशय 'युग-परिवर्तन' से निश्चित रूप से लिया जाता है । इसलिए प्रति एक हजार वर्ष पर संसार की अवस्था मे एक नया विशेष परिवर्तन होने की सम्भावना का प्रतिपादन करना अवश्य ध्यान देने योग्य है।

एक आश्चर्यजनक बात यह है कि कल्कि की भावना भारतवर्ष की धार्मिक रूढियो मे ओत-प्रोत जनता तक ही सीमित नही रही पर उनका प्रभाव अब से दो सौ वर्ष पूर्व इङ्गलैण्ड तक पहुँच गया। वहाँ के Thomas Cambell (थामस केम्बैल) नामक कवि ने सन् १७९९ मे "Pleasures of Hope" शीर्षक जोरदार कविता मे

'कल्कि' के महान् कार्यों का वर्णन करके उनके जगदुद्धारक रूप को बड़ी भक्ति भावना से नमस्कार किया था—

Nine times have Brahma's wheels of lightning hurld.
His awful presence o'er the alarmed world.
Nine times hath guilt, through all his giant frame.
Convulsive trembled. as the mighty came.
Nine times hath Suffering, Mercy spread in vain.
But heaven shall burst her starry gates again !
He comes ! dread Brahma shakes the sunless sky,
With murmuring wrath and thunders from on high.'
Heaven's fiery horse, beneath his warrior form,
Paws the light clouds and gallops on the storm.
Earth, and her trembling isles in oceans bed
Are shook, and Nature rocks beneath his tread.
The tenth Avtar comes ! at heaven's command.
Shall Sarswati wave her hallow'd wand
Come heavenly powers ! prisneval peace restore
Loves !—Mercy !—Wisdom !—rule for ever more

अर्थात्—परमात्मा के रथ के विद्युत चक्र नौ बार घूम चुके हैं और भयभीत संसार उसकी दारुण सत्ता का अनुभव कर चुका है। नौ बार जब वह शक्तिशाली सत्ता प्रकट हुई संसारव्यापि दुष्टता का

विशालकाय ढाँचा काँप उठा और अस्त-व्यस्त हो गया। नौ बार उस सत्ता ने जो दया दिखाई वह निरर्थक सिद्ध हुई, पर अब वैकुण्ठ का नक्षत्र-मडित द्वार फिर एक बार खुलने वाला है। 'वह' आ रहा है। उसके भय से आकाश हिलने लगता है, दिशाओ मे सन्नाटा छा जाता है और एक महा भयङ्कर गर्जना ऊपर से आती है। वैकुण्ठ लोक के अग्निमय अश्व पर आरूढ होकर वह दैवी योद्धा (कल्कि) बादलो पर कदम रखता है और तूफानो के कूद पडता है। तब समस्त पृथिवी और महासागरो मे स्थित बडे-बडे टापू कम्पायमान हो उठेंगे और प्रकृति के शक्तिशाली चरण उनकी जड तक को हिला देंगे। दशवाँ अवतार महाकाल के आदेश से आ रहा है। भगवती सरस्वती अपने पवित्र हस्त-दड से उसका अभिवादन करेगी। हे दिव्यलोकवासी सर्वशक्तिमान्! प्रकट होकर फिर से शान्ति को प्रतिष्ठित करो, जिससे ससार में एक बार पुन: प्रेम, करुणा और ज्ञान का राज्य स्थापित हो जाय।'

यद्यपि हम इन उद्‌गारो का आशय भावात्मक रूप मे ही ग्रहण करते हैं और हमारा अनुमान है कि इस अवसर पर दैवी-सत्ता (कल्कि) अदृश्य रूप से ही युग-परिवर्तन का ध्येय पूरा करेगी। तो भी प्रत्यक्षवादी जन समूह के लिए उसका मानवाकार मे दिखाई देना भी सर्वथा असम्भव नही है। ससार सकट के निवारण के लिए कोई न कोई महान् आत्मा अग्रसर होगी ही। उसे सब देश के न्यायप्रिय लोगों का सहयोग भी प्राप्त होगा, जिससे वह दुष्टता की शक्तियो का अन्त कर सके। पर हम इसको अधिक महत्व इसलिए नही देना चाहते कि वह तो सृष्टि का अटल नियम है और सदा से होता आया है। पर ऐसे अवसर पर एक नही अनेक महापुरुष सम्मुख आकर उद्देश्य की पूर्ति के लिए प्रयत्नशील होते हैं। उनमे से कौन प्रमुख है, सर्वोच्च दैवी सत्ता का प्रतीक है इसे शीघ्र ही जान सकना सम्भव नही होता। इसीलिए हमारी दृष्टि में तो सर्वाधिक महत्व और आश्चर्य की बात वह 'अवतार भावना' है, जो कम से कम दो-डेढ़ हजार वर्ष से हमारे देश में अक्षुण्ण

चली आई है और जिसकी प्रतिध्वनि दो सौ वर्ष पूर्व योरोप जैसे सूदूरवर्ती महाद्वीप मे भी उठने लग गई।

इतना ही नहीं इसी भावना के प्रभाव से यहूदी, ईसाई, बौद्ध, शिंट्टोमत [जापान का धर्म] इस्लाम आदि सभी प्रमुख मजहवो मे 'अवतार' की चर्चा आरम्भ हो गई है। ईसाइयो मे ईसामसीह के 'द्वितीय आगमन' की चर्चा दिन पर दिन जोर पकडती जाती है, और अमरीका आदि मे इस सिद्धान्त का प्रचार करने के लिए 'सैकिण्ड एड-वेटिस चर्च" का पृथक् ही सङ्गठन हो गया है। मुसलमानो मे 'हजरत मेहदी' के प्राकट्य का विश्वास लाखो व्यक्ति कर रहे हैं और उसके लिए बहुत कुछ कष्ट सहन कर चुके हैं, क्योकि कट्टरपथी मुसलमान ऐसी चर्चा को 'अधर्म" मानते है। बौद्धो मे 'मैत्रेय' के रूप मे बुद्ध भगवान् के नवीन अवतार की सभावना गम्भीरता पूर्वक स्वीकार की जा रही रही है। इस प्रकार 'कल्कि-भावना' ने दुनिया भर का ध्यान आकर्शित किया है और जगह-जगह के लोग किसी अदृश्य प्रेरणा के वशीभूत होकर 'उस आने वाले' की राह उत्ससुकता पूर्वक देख रहे हैं।

इसका आशय यही है कि सत्रस्त मानवता इतने समय से निरन्तर किसी 'उद्धारकर्ता' की राह देख रही है और उसके स्वागत के लिये हर तरह की तैयारियाँ भी कर रही है।

समय के चिन्हो को देखकर हम कह सकते हैं कि जन-समुदाय की उस चिर-अभिलाषित कामना की पूर्ति का समय बिल्कुल समीप आ चुका है। जिन लोगों को किञ्चित भी दैवी-प्रकाश प्राप्त है वे इस समय 'कल्कि' के अश्व की टापो का शब्द अपने कानो से सुन रहे है और उसकी कृपाण की चमक सुदूर आकाश मे देख रहे है। समस्त शास्त्रो, भविष्य वेत्ताओं, सन्तो, भक्तों ने आत्मा से जो उद्‌गार प्रकट किए हैं उनके पूरा होने मे अब विलम्ब नही। इसलिए हम सब भी उन सबके स्वर मे स्वर मिलाकर गगन-भेदी स्वर मे कहे—

"कल्कि की जय"

छठा अध्याय

कलियुग और कल्कि

कल्कि अवतार का नामकरण कलियुग के आधार पर ही हुआ है। कलियुग का नाश करने वाला होने से ही उनको 'कल्कि' कहा गया है। कलियुग को पाप-पुरुष से उत्पन्न माना गया है और सर्व-साधारण मे आम तौर से यह धारणा पाई जाती है कि जब तक कलियुग रहेगा लोगो का झुकाव अधिकाश मे पाप-कर्मों की तरफ ही रहेगा और धर्म दुर्दशा होती रहेगी। यह भावना चाहे किसी कारण उत्पन्न हुई हो, पर इसने समाज की बडी हानि की है और दोषो तथा दुर्गुणो का प्रतिकार करने की प्रवृत्ति को निरन्तर निर्बल किया है।

फिर हम जिस पुराण या शास्त्र को देखें उसमे कलियुग की पापपूर्ण अवस्था और दूषित सामाजिक वातावरण का वर्णन अवश्य पाते हैं। सभी पुराणो ने यह कहा है कि ब्राह्मण ही समाज मे सर्वाधिक पूज्य हैं, उनकी महिमा देवताओ से भी अधिक है पर कलियुग मे वे ही ब्राह्मण महभ्रष्ट हो जायेंगे और इसके फलस्वरूप समस्त समाज का पतन हो जायगा—वह अनगिनती छोटे-बडे दोषो का भण्डार बन जायगा। हमारी सम्मति में भी कलियुग सबन्धी भविष्यवाणियों मे सबसे सच्ची बात यही है।

आज हम निस्सकोच कह सकते हैं कि ब्राह्मणो का पतन हो जाने से ही भारतीय समाज वर्तमान दुर्दशा को प्राप्त हुआ है। जब तक ब्राह्मण सच्चे अर्थों मे 'राष्ट्र के कर्णधार' थे और अपने तुच्छ स्वार्थ के बजाय जन समुदाय को वास्तविक कल्याणकारी मार्ग दिखलाने में ही

अपनी शक्ति और साधनो का उपयोग करते थे, तब तक यह देश सब तरह से सुखी और अधिकार सम्पन्न बना रहा । पर जब वे स्वार्थ के वशीभूत हो अपने कर्तव्य से विमुख हो गये और लोगो को सन्मार्ग दिखलाने के बजाय अपनी पूजा-पाठ की कमाई की खातिर उनको अन्ध-विश्वास के गर्त मे ढकेलने लगे, तो समाज को गिरते हुए देर न लगी । इस दूषित वातावरण का वर्णन करते हुए 'कल्कि पुराण' मे कहा गया है—

यज्ञाध्ययनदानादिवेद तन्त्र विनाशका. ।
आधिव्याधि जराग्लानि दु.ख शोक भयाश्रया ॥

'जब कलियुग ने अपना प्रभाव फैलाया तो देश मे दल के दल धर्म निन्दक पैदा होने लगे । ये आधि-व्याधि, जरा, ग्लानि, दुख, शोक, भय का आश्रय लेकर यज्ञ, स्वाध्याय, दानादि, धर्म कार्य एव-वेद तन्त्रादि धर्म शास्त्रो के विनाश करने वाले हुए ।'

आगे चल कर कहा गया है कि 'ऐसे लाखो समाज को नष्ट करने वाले कलिराज के अनुयायिओ ने क्षण भ गुर और कामुक मानव-शरीरधारण किया । वे अत्यन्त दम्भी दुराचारी, माता-पिता-हिंसक कलि-युगानुयायी ब्राह्मण योनि मे जन्म लेकर वेद-शास्त्र से विमुख, दरिद्र और शूद्र जाति के उपासक हुए । धर्म बेचने वाले, वेद बेचने वाले, रस और माँस बेचने वाले, सस्कारहीन, अत्यन्त कुतर्कवादी, शिश्नोदरपरा-यण, उन्मत्त, परपत्नीरत, अधम, वर्ण सङ्करो के जनक असंख्यो पैदा हो गए । विवाद और कलह मे क्षुब्ध, केश विन्यास मे निपुण, धनी और ब्याज खाने वाले ब्राह्मण कलियुग मे पूज्य माने जाने लगे । उस समय सन्यासी गृहस्थो की तरह रहने लगे, सब मनुष्य गुरुजनो के निन्दक हो गए और धर्मध्वज धारण करने वाले साधु ठगी का धन्धा करने लगे । धनवान् पुरुष ही सज्जन समझे जाने लगे, दूर देश का जल ही तीर्थ हुआ, यज्ञोपवीत—मात्र मे ही ब्राह्मणत्व माना जाने लगा और

केवल दण्ड ही सन्यासी का चिन्ह रह गया । परान्नलोलुप ब्राह्मणगण चण्डाल-गृह मे यजन करने लगे, मेघो ने अल्प जल बरसाना आरम्भ किया, पृथ्वी थोडा अन्न उपजाने वाली हुई, राजा प्रजा का भक्षण करने लगे और प्रजा करो के भार से व्याकुल होने लगी। कलियुग के प्रथम मे ही साधारण जन भगवान की निन्दा करने लगे। दूसरे चरण में भगवान् का नाम तक लेना उन्होने छोड दिया।'

अन्य ग्रन्थो मे भी कलियुगीन स्थिति का ऐसा ही चरित्र-चित्रण किया, और यद्यपि उनके रचयिता अधिकांश मे ब्राह्मण ही थे, पर उन्होने कलियुगी ब्राह्मणो के सम्बन्ध मे ऐसी कडी आलोचनात्मक बाते लिखी है। नीचे हम पाठको के अवलोकनार्थ 'महाभारत' (वन पर्व अ० १६०) मे दिए गए 'कलियुग वर्णन' का कुछ अ श उद्धृत करते है, जिससे पाठको को अनुमान हो सकेगा कि अब से सैकडो-हजारों वर्ष पूर्व जिन विद्वानो ने इन वर्णनो को लिखा था, वे निस्सन्देह मानव-प्रकृति और समाज के उत्थान और पतन के कारणो के कितने सच्चे ज्ञाता थे—

व्याजैर्धर्मे चरिष्यन्ति धर्म वैत सिका नरा.।
सत्य सक्षेप्स्यते लोके नरै. पण्डितमानिभि ॥
सत्यहान्या ततस्तेषामायुरल्पं भविष्यति।
आयुषः प्रक्षयाद् विद्यां शक्ष्यन्त्युपजीवितुम् ॥
विद्याहीनानविज्ञानाल्लोभोऽभ्यामि भविष्यति।
लोभक्रोधपरा मूढाः कामासक्ताश्च मानवाः ॥
वैरबद्ध भविष्यन्ति परस्पर वधैषिणः।
ब्राह्मणाः क्षत्रीया वैश्या संकीर्यन्तः परस्परम् ॥
शूद्रतुल्या भविष्यन्ति तपःसत्यविवर्जिताः।
अन्त्या मध्या भविष्यन्ति मध्याश्चान्त्या न सशयः।

'ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र सभी जातियो के लोग कपट-पूर्वक धर्म का आचरण करेगे और धर्म का जाल बिछाकर दूसरे लोगो

को ठगने लगेंगे । 'पण्डित' कहलाने वाले लोग भी सत्य का परित्याग कर देंगे । सत्य की कमी हो जाने से उनकी आयु भी घट जायगी, और आयु कम होने के कारण वे जीवन-निर्वाह के योग्य विद्या प्राप्त नहीं कर सकेंगे । विद्या के बिना ज्ञान का होना कैसे सम्भव है ? इसलिए उनमें लोभ की प्रबलता हो जायगी । लोभ और क्रोध के वशीभूत मूढ मनुष्य कामनाओं के फँसकर आपस में बैर करने लगेंगे और शत्रुभाव से एक दूसरे को मारने को तत्पर होंगे । साथ ही चारों वर्ण के स्त्री-पुरुष आचार-भ्रष्ट होकर परस्पर वर्णसंकर सन्तान उत्पन्न करने लगेंगे । वे तपस्या और सत्य से रहित होकर नीच लोगों के समान हो जायगे । छोटी जाति वाले ऊँचे वर्णों के कार्य करने लगेंगे और ऊँचे कहलाने वाले नीच कर्मों में संकोच अनुभव अनुभव नहीं करेंगे, इसमें संशय नहीं ।'

भार्यामित्राश्च पुरुषा भविष्यन्ति युगक्षये ।
मत्स्याभिषेण जीवन्तो दुहन्तश्चाप्यजैडकम् ॥
गोषु नष्टासु पुरुषा येऽपि नित्य धृतव्रत. ।
तेपि लोभसमायुक्ता भविष्यन्ति युगक्षये ॥
अन्यान्य परिमृष्णान्तो हिंसयन्तश्च मानवाः ।
अजपा नास्तिकाः स्तेना भविष्यन्ति युगक्षये ॥
श्राद्धे दैवे च पुरुषा येऽपि नित्य धृतव्रता ।
तेऽपि लोभसमायुक्ता भोक्षयन्तीह परस्परम् ॥
न व्रतानि चरिष्यन्ति ब्राह्मणा वेदनिन्दकाः ।
न यक्ष्यन्ति न होष्यन्ति हेतुवाद विमोहिताः ।
निम्नेष्वीहां करिष्यन्ति हेतुवादविमोहिता ॥

'उस समय लोग स्त्रियों से ही मित्रता करने वाले होंगे । अनेक लोग मछली मांस से जीविका चलाने वाले होंगे । गायों के नष्ट हो जाने से भेड़, बकरी का दूध व्यवहार में लाने लगेंगे । जो व्यक्ति व्रतों का पालन करने वाले हैं वे भी युग-प्रभाव से लोभी बन जायेंगे । लोग एक दूसरे

को लूटने-मारने लगेगे और उनमे से अधिकाश भजन-साधन से रहित नास्तिक, अपहरणकर्त्ता बन जायेगे । जो लोग सदैव परान्न का त्याग करके व्रतशील रहते हैं वे लोभवश देवयज्ञ और मृतक श्राद्धो मे खाने लग जायेगे । ब्राह्मण लोग व्रतो का पालन त्याग कर उल्टा वेदनिन्दक बन जायेगे, वे यज्ञ और होम को छोड बैठेगे और झूठे तर्कवाद मे फँस कर नीच कर्म करने को उद्यत हो जायेगे ।'

प्रामशः कृपणाना हि तथा बन्धुमतामपि ।
विधवाना च वित्तानि हरिष्यन्तीह मानवा ।।
स्वल्प वीर्यबला· स्तब्धा लोभमोहपरायणाः ।
तत्कथादान संतुष्टा दुष्टनामपि मानवाः ।।
परिग्रहे करिष्यन्ति मायाचार परिग्रहाः ।
समाह्वयन्तः कौन्तेयः राजान पाप बुद्धय. ।।
परस्परवधोद्युक्ता मूर्खाः पण्डित मानिन ।
भविष्यन्ति युगस्यान्ते क्षत्रिया लोककण्टयाः ।।
अरक्षितारो लुब्धाश्च मानाहकार दर्पिताः ।
केवल दण्डरुचयो भविष्यन्ति युगक्षये ।।

'अर्थपिशाच मनोवृत्ति के मनुष्य दीनो, असहायो और विधवाओ का भी धन भी हडप लेंगे । उनके शारीरिक बल और पराक्रम क्षीण हो जायेगे । वे उद्दड होकर लोभ और मोह मे ग्रस्त रहेगे । वैसी ही चर्चा, प्रशंसा करने और उनसे दान लेने मे प्रसन्नता अनुभव करेगे । कपटपूर्ण आचरण करते हुए वे बुरे लोगो के दान को भी ग्रहण कर लेगे । राजा लोग पाप-परायण होकर एक-दूसरे का प्राण लेने को उद्यत होगे और ब्राह्मण मूर्ख और नीच होते हुए भी पण्डिताई का दावा करेंगे । क्षत्रीय लोग (शासक-वर्ग) जगत के लिए कटक स्वरूप बन जायेंगे । उस समय उनको प्रजा की रक्षा की ओ जरा भी चिन्ता न होगी केवल उनसे रुपया ऐंठकर अपना घर भरने का ध्यान रखेंगे । सदा मान और अहङ्कार के

मद मे चूर रहेगे और प्रजा को अनावश्यक रूप से दण्डित करते रहेगे ।

आक्रम्याक्रम्य साधूनां दारांश्चापि धनानिच ।
भोक्ष्यन्ते निरनुक्रोशा रुदतामपि भारत ॥
न कन्यां याचते कश्चिन्नापि कन्या प्रदीयते ।
स्वयंग्राहा भविष्यन्ति युगान्ते समुपस्थिते ॥
म्लेच्छीभूतं जगत् सर्वं भविष्यतिन सशयः ।
हस्तो हस्त परिमुषेद् युगान्ते समुपस्थिते ॥
सत्यं सक्षिप्यते लोके नरै. पण्डितमानिभि ।
स्थविरा बालमतयो बाल स्थाविरबुद्धयः ॥
एकहार्ये युग सर्व लोभ मोह व्यवस्थितम् ।
अधर्मो वर्द्धते तत्र न तु धर्म· प्रवर्तते ॥

'लोग इतने दुष्ट हो जायेगे कि सीधे-साधे भले मानसो पर अकारण आक्रमण करके उनके धर्म और स्त्री आदि का बल पूर्वक अपहरण करने लगेगे और उनके रोने-पीटने पर भी कुछ ध्यान न देगे । उस समय न तो कोई किसी से कन्या की याचना करेगा । और न कन्यादान ही करेगा वर-कन्या स्वय ही एक दूसरे को पसन्द कर लेगे । तब सारा जगत म्लेच्छमय हो जायगा और एक हाथ दूसरे हाथ को लूटेगा–अर्थात् सगा भाई ही भाईके धन को हड़प लेगा । अपने को पण्डित मानने वाले मनुष्य ससार सत्य को मिटा देगे। बूढो की बुद्धि बालको जैसी और बालको की बूढो के समान हो जायगी । सब कोई लोभ और मोह में फंसकर भक्ष्याभक्ष्य का विचार किए बिना सम्मिलित भोजन करने लगेगे । अधर्म बढ़ेगा और धर्म विदा हो जायगा ।'

न कश्चित् कस्याचिच्छ्रोता न कश्चिद् कस्याचिद् गुरुः ।
तमोग्रस्तस्तदा लोको भविष्यति जनाधिप ॥
अल्प द्रव्या वृथालिंग च प्रभविष्यति ।

न कश्चित्कस्यचिद् दाता भविष्यते युगक्षये ।
अट्टशूला जनपदा शिवशूलाश्चतुष्पथाः ।
केशशूलाः स्त्रियश्चापि भविष्यन्ति युगक्षये ।।

क्रयविक्रय काले च सर्वः सर्वस्य वञ्चनम् ।
युगान्ते भरतश्रेष्ठ वित्तलोभात् करिष्यति ।।

आरामांश्चैव वृक्षाश्च नाशयिष्यन्ति निर्व्यथाः ।
भविता सशयो लोके जीवितस्य हि देहिनाम् ।।

'उस समय कोई किसी का उपदेश नही सुनेगा और न कोई किसी को गुरु मानेगा । समस्त जगत् एक प्रकार के अन्धकार मे ग्रस्त होगा । लोगो के पास सम्पत्ति का अभाव होगा, वे दिखावे के लिए साधु वेश धारण कर लेंगे, हिंसा की भावना बढ जायगी और कोई किसी को कुछ देने वाला न होगा । उस समय सभी ग्राम नगर आदि अन्न बेचेगे ब्राह्मण वेद बेचने वाले होगे, स्त्रियाँ वेश्यावृत्ति अपना लेगी । लोग बगीचो के वृक्षो को भी काट डालेगे और इससे उनको किसी प्रकार का खेद नही होगा । उस समय लोगो के जीवित रहने मे भी शङ्का हो जायगी ।'

दस्युभिः पीडिता राजन् काका इव द्विजोत्तमाः ।
कुराजभिश्च सतत करभार प्रपीडिता ।।
धैर्य त्यक्त्वा महीपाल दारुणे युगसक्षये ।
विकर्माणि करिष्यन्ति शूद्राणा परिचारकाः ।।
निर्विशेषा जनपदास्तथा विष्टिकरार्दिताः ।
आश्रमानुपलयस्यन्ति फलमूलोपजीविनः ।।
भर्तृणा वचने चैव न स्थास्यन्ति तत स्त्रिय. ।
पुत्राश्च मातापितरौ हनिष्यन्ति युगक्षये ।।
जन परिजनं चापि युगान्ते पर्युपस्थिते ।

अथ देशान् दिशश्चापि पत्तनानि पुराणि च ।
क्रमशः सश्रियष्यन्ति युगान्ते पर्युपस्थिते ॥

'श्रेष्ठ ब्राह्मण भी लुटेरो से पीडित होकर व्याकुल-भाव से चारों तरफ फिरने लगेगे। राजाओ (शासक-वर्ग) के कर भार से दुःखी और धैर्यहीन होकर वे शूद्रो की नौकरी करने लगेगे। उस समय सभी भूभागो के निवासी एक-सी वेषभूषा बना लेगे। लोग बेगार लेने वालो और कर वसूल करने वालो से पीडित होकर निर्जन स्थानो मे चले जायेंगे और वन के फल-मूल खाकर गुजर करने लगेगे। स्त्रियाँ पति के वचनो पर कुछ भी ध्यान न देगी और पुत्र माता-पिता को मारने मे संकोच न करेगे। उस समय लोग अपने परिवार वालो को भी त्याग देगे। बहुसंख्यक लोग स्वदेश छोडकर दूसरे देशो, दिशाओ, नगरो, गाँवो का आश्रय लेगे।'

'श्री मद्भागवत' भी 'महाभारत' की तरह ही महत्वपूर्ण और मौलिकता से युक्त है। उसका कलियुग वर्णन है तो इससे मिलता-जुलता ही, पर उसकी शैली मे कुछ भिन्नता है और कई बाते उसकी आजकल प्रत्यक्ष दिखाई पड रही हैं। उसमे कलियुगी धर्म (स्कन्ध १२ अ० २) का वर्णन करते हुए कहा गया है—

ततश्चानुदिन धर्मः सत्य शौचं क्षमा दया ।
कालेन बलिना राजन् नंक्ष्यत्यायुदुर्बल स्मृतिः ॥
वित्तमेव कलौ नृणां जन्माचारगुणोदयः ।
धर्मन्यायव्यवस्थाया कारणं बलमेव हि ॥
दाम्पत्येऽभिरुचिर्हेतुर्मायैव व्यावहारिके ।
स्त्रीत्वे पुंस्त्वे च हि रतिर्विप्रत्वे सूत्रमेव हि ॥
लिङ्गमेवाश्रमख्यातावन्योन्यापत्तिकारणम् ।
अवृत्या न्यायदौर्बल्यं पाण्डित्ये चापलं वचः ॥

अनाढ्य तैवासाधुत्वे साधुत्वे दम्भ एव तु ।
स्वीकार एव चोद्वाहे स्नानमेव प्रसाधनम् ।।

'समय बडा बलवान् है । जैसे-जैसे कलियुग बढता जायगा, वैसे-वैसे ही धर्म, सत्य, पवित्रता, क्षमा, दया, आयु, बल और स्मरण शक्ति का लोप होता जायगा। कलियुग मे जिसके पास धन होगा, उसी को लोग कुलीन, सदाचारी और सद्गुणी मानेगे। जिसके हाथ मे शक्ति होगी वही धर्म और न्याय की व्यवस्था अपने अनुकूल करा सकेगा। विवाह-सम्बन्ध के लिए कुल, शील योग्यता आदि की निरख-परख नही रहेगी, युवक-युवती का मन मिल जाने से ही विवाह सम्पन्न हो जायगा। जो जितना छल-कपट कर सकेगा वह उतना ही व्यवहार-कुशल माना जायगा। स्त्री-पुरुष की श्रेष्ठता का आधार उनका शील-सयम न होकर उनका रति-कौशल ही रहेगा। ब्राह्मण की पहिचान उसके गुण-स्वभाव से नही यज्ञोपवीत से हुआ करेगी। वस्त्र, दण्ड-कमण्डल आदि से ही ब्रह्मचारी, सन्यासी आदि की पहचान होगी, और एक दूसरे का चिन्ह स्वीकार कर लेना ही एक से दूसरे आश्रम मे प्रवेश का स्वरूप होगा। जो घूस देने या धन खर्च करने मे असमर्थ होगा उसे अदालतो मे ठीक न्याय न मिल सकेगा। बात-चीत मे चालाक होने से ही पण्डित माना जायगा। गरीब होना ही असाधुता, दोषी होने का चिन्ह होगा और जो जितना दम्भ कर सकेगा वह उतना ही साधु मान लिया जायगा। विवाह परस्पर की स्वीकृति से हो जायगा और शृङ्गार कर लेने से ही स्नान करना मान लिया जायगा।'

दूरे वार्ययन तीर्थं लावण्य केशधारणम् ।
उदरम्भरता स्वार्थं सत्यत्वो धार्ष्टयमेव हि ।।
दाक्ष्य कुटुम्बभरण यशोऽर्थे धर्मसेवनम् ।
एव प्रजाभिर्दुष्टाभिराकीर्णे क्षितिमण्डले ।।
ब्रह्मविट्क्षत्रशूद्राणा यो बली भविता नृपः।

प्रजा हि लुब्धैं राजन्यैर्निघृ र्णैर्दस्युधर्मभिः ।।
अनावृष्टचा विनंक्ष्यन्ति दुर्भिक्षकर पीड़िताः ।
शीत वातातपप्रावृड्‌हिमैरन्योन्यतः प्रजाः ।।
क्षुतृड्‌भ्यां व्याधिभिश्चैव सन्तप्स्यन्ते च चिन्तया ।
त्रिंशद्विंशतिवर्षाणि परमायुः कलौ नृणाम् ।।

'लोग दूर के तालाब को ही तीर्थ मान लेंगे, सिर पर बडे-बडे बाल रखना ही सुन्दरता का चिन्ह समझा जायगा, अपना पेट भर लेना ही बडा पुरुषार्थ होगा, जो जितनी ढिठाई से बात कर सकेगा वह उतना ही सच्चा मान लिया जायगा। अपने कुटुम्ब का भरण-पोषण कर लेना ही सबसे अधिक योग्यता मानी जायगी, 'धर्म' का सेवन यश के लिए किया जायगा। इस प्रकार जब पृथिवी मे सर्वत्र दुष्टो की प्रधानता हो जायगी, तब राज्य व्यवस्था भी दूषित हो जायगी। ब्राह्मण, वैश्य, क्षत्रिय, शूद्र आदि मे से जो भी शक्तिशाली, चलता पुर्जा होगा वही शासक बन जायगा। ये शासक अत्यन्त लोभी, निर्दय और लुटेरे होगे। वे जन-साधारण के धन तथा स्त्रियो तक को लूटने मे संकोच न करेंगे। इसके फलस्वरूप सर्वसाधारण सदैव भूख-प्यास, चिन्ता, रोग आदि से दुःखी रहेगे। उनकी आयु भी बहुत थोडी—बीस, तीस वर्ष की ही रह जायगी।

क्षीयमाणेषु देहेषु देहिनां कलि दोषतः ।
वर्णाश्रमावतां धर्मे नष्टे वेदपथे नृणाम् ।।
पाखण्डप्रचुरे धर्मे दस्युप्रायेषु राजसु ।
चौर्यानृतवृथाहिंसानाना वृत्तिषु वै नृषु ।
शूद्रप्रायेषु वर्णेषुच्छागप्रायासु धेनुषु ।
गृहप्रायेष्वाश्रमेषु यौन प्रायेषु बन्धुषु ।।
इत्थ कलौ गतप्राये जने तु खरधर्मिणि ।
धर्मं त्राणाय सत्त्वेन भगवानवतारिष्यति ।।

'कलियुग के दोषो से लोगो के शरीर भी क्षीण हो जायेगे और वर्णाश्रम धर्म का प्रकाशक वेद-मार्ग नष्ट हो जायगा। धर्म मे पाखण्ड बहुम अधिक बढ जायगा, शासक-वर्ग लुटेरो की तरह बन जायगा और लोग जीवन-निर्वाह के लिए साम न्यत: चोरी, झूँठ, हिंसा का व्यवहार करने लगेगे। सब वर्णों के मनुष्यो का आचरण शूद्रो जैसा मर्यादा रहित हो जायगा, गाये बकरियो की तरह दूध देने वाली हो जायेगी। सन्यासियो के आश्रम गृहस्थियो के घरो की तरह बन जायेंगे और जिनसे विवाह-सम्बन्ध होगा उन्ही को अपना सम्बन्धी माना जायगा। इस प्रकार का कलियुगी वाता 'रण छा जाने पर लोग गधो की तरह भार ढोने वाले और विषयी हो जायेगे। ऐसी तामसी अवस्था हो जाने पर भगवान पुन: सतोगुण लाने के लिए स्वय अवतार लेगे।'

वर्तमान दशा को देखते हुए इस वर्णन मे कितनी यथार्थता है, इसे पाठक स्वयं अनुभव करते होगे। समाज मे जो नीचतापूर्ण स्वार्थ-भावना तथा स्त्री-पुरुषो मे भ्रष्टाचार और चरित्रहीनता का व्यवहार इसमे वर्णन किया गया है वह आज प्रत्यक्ष दिखाई पड रहा है। यह तो नही कहा जा सकता कि आज सभी लोग ऐसे ही हो गये है, क्योकि भले-बुरे व्यक्ति तो सब कालो मे रहेगे, पर आज ऐसे 'कलियुगी' व्यक्ति लाखो-करोडो की संख्या मे प्रत्येक देश मे मिल सकते हैं, इसमे सन्देह नही।

'विष्णु पुराण' मे महर्षि पाराशर ने बतलाया है कि जिस समय कलियुग की प्रबलता होगी तो समस्त सामाजिक व्यवस्था नष्ट-भ्रष्ट हो जायगी और नर-नारियो मे बहुत से दोष बढ जायगे। यद्यपि काम,क्रोध, लोभ आदि के दुर्गुण किसी परिमाण मे मनुष्यो मे सदा ही बने रहते है, पर प्राचीन समय मे जब उनको पाप की तरह माना जाता था, तो लोग यथासम्भव इन प्रवृत्तियो को दबाकर रखते थे। पर कलियुग मे छोटे-बढ़े सभी लोगो में उनका प्राबल्य हो जाने से सामाजिक मर्यादा भङ्ग

हो जायगी और लोग इन बातो मे किसी प्रकार के सकोच या पाप का अनुभव नही करेगे। जिसके मन मे जो आवेगा उसी तरह करने मे सब अपने को स्वतन्त्र समझेगे । पुराणकार ने इस स्थिति का दिग्दर्शन कराते हुए कहा है-

सर्वमेव कलौ शास्त्र यस्य यद्वचन द्विज।
देवता च कलौ सर्वा सर्वस्सर्वस्य चाश्रम ।।
उपवासस्तथायासो वित्तोत्सर्गस्तपः कलौ ।
धर्मो मयाभिरुचिरैरनुष्ठानैरनुष्ठित. ।।
वित्तेन भविता पुंसा स्वल्पेनाढ्यमदः कलौ।
स्त्रीणां रूपमदाश्चैव केशैरेव भविष्यति ।।
परित्यज्यन्ति भर्त्तार वित्तहीनं तथा स्त्रियः।
भर्त्ता भविष्यति कलौ वित्तवानेव योषिताम् ।।
यो वै ददाति बहुलं स्वं स स्वामी सदा नृणाम् ।
स्वामित्वहेतुसम्बन्धी न चाभि जनता तथा ।।
गृहान्ता द्रव्यसघाता द्रव्यान्ता च तथा मति ।
अर्थाश्चात्मोपभोग्यान्ता भविष्यन्ति कलौ युगे ।।

'कलियुग मे जिसके मुंह से जो निकल जाय वही 'शास्त्र' मान लिया जायगा, सब कोई देवता बन बैठेगे और जो जिस आश्रम को चाहेगा उसी को अपना लेगा। उपवास व्रत आदि ही बहुत बडा काम मान लिया जायगा, धन दे देना ही बडा तप हो जायगा और अपनी पसन्द से जो जिस अनुष्ठान को कर लेगा वही 'धर्म' हो जायगा। लोग थोडे से धन से ही अपने को सेठ, साहूकार समझने लगेगे और स्त्रियाँ केश विन्यास से ही सौन्दर्य का गर्व करने लगेगी। वे धनहीन पति का त्याग कर देंगी,जो अधिक धन दे सकता है वही स्त्रियो का वास्तविक पति होगा। उस समय पुराने सम्बन्ध अथवा कुलीनता का ख्याल न करके जो अधिक धन देगा उसी को स्वामी माना जायेगा । गृह-सचालन के

लिए ही समस्त द्रव्य होगा, और द्रव्य कमाने मे ही मनुष्य की समस्त बुद्धि संलग्न रहेगी, और उस द्रव्य का उद्देश्य स्वयं आराम से जीवन बिताना ही होगा।'

स्त्रियः कलौ भविष्यन्ति स्वैरिण्यो ललितस्पृहाः।
अन्याय वाप्तवित्तेषु पुरुषः स्पृहयालवः ।।
अभ्यर्थितापि सुहृदा स्वार्थ हानि न मानवाः ।।
पणार्धार्द्ध मात्रेऽपि करिष्यन्ति कलौ द्विज ।।
समान पौरुषं चेतो भावि विप्रेषु वै कलौ।
क्षीरप्रदानसम्बन्धि भावि गोषु च गौरवम् ।।
यो योऽश्वरथनागाढ्यस्स स राजा भविष्यति।
यश्च यश्चाबलस्सर्वस्स स भृत्य कलौ युगे ।।
वैश्याः कृषिवाणिज्यादि सन्त्यज्य निजकर्म यत्।
शूद्रवृत्त्या प्रवत्स्यन्ति कारुकर्मोपजीविनः ।।

'उस समय स्त्रियाँ प्रायः स्वेच्छारिणी होकर सुन्दर वेषभूषा वाले पुरुषो को ही चाहेगी और पुरुष अन्यायपूर्वक अधिकाधिक धन कमाने मे ही योग्यता समझेंगे। निकट सम्बन्धियो की प्रार्थना करने पर भी कोई अपनी थोडी सी भी स्वार्थ हानि के लिए तैयार न होगा। छोटी जाति वाले ब्राह्मणो के साथ समानता का दावा करेंगे और गायो का भी दूध देने की निगाह से ही आदर किया जायगा। जिसके पास हाथी, घोड़ा, सवारी आदि बहुमूल्य सामग्री होगी वही राजा या शासक बन जायगा और साधन विहीन मनुष्य सज्जन होकर भी उनका सेवक बन कर ही रहेगा। वैश्य लोग अपने स्वाभाविक कर्म – खेती और व्यापार को त्याग कर शिल्प, कारीगरी आदि के कामो से जीवन निर्वाह करने लगेगे।'

'शिव-पुराण' का तो कथारम्भ ही कलियुग वर्णन से हुआ है। जब पुराण-मर्मज्ञ सूतजी प्रयाग में पहुचे तो वहाँ के दीर्घ-यज्ञ मे उपस्थित

ऋषियो-मुनियो ने कलियुग की भयङ्करता का वर्णन करते हुए उनसे उद्धार होने का मार्ग पूछा। उसी समस्या का समाधान करते हुए उन्होने शिवाराधन का उपदेश दिया था। मुनियो ने कलिकाल मे आध्यात्मिक पतन का वर्णन करते हुए कहा था—

प्राप्ते कलियुगे घोरे नराः पुण्यविवर्जिताः।
दुराचाररताः सर्वे सत्यवार्तापराङ्मुखः॥
परापवादनिरताः परद्रव्याभिलाषिणः।
परस्त्रीसक्तमनस. परहिंसापरायणाः॥
देहात्मदृष्टयो मूढा नास्तिका. पशुबुद्धयः।
मातृपितृकुलद्वेषा स्त्रीदेवाः कामकिंकराः॥
विप्रा लोभग्रहग्रस्ता वेदविक्रयजीविनः।
धनार्जनार्थमभ्यस्त विद्यामदविमोहिताः॥
क्षत्रियाश्च तथा सर्वे स्वधर्मत्याग शीलिनः।
असत्सङ्गा पापरता व्याभिचारपरायणाः॥
वैश्यासंस्कारहीनास्ते स्वधर्मत्यागशीलिनः।
कुपथाः स्वार्जनरताः तुलाकर्म कुवृत्तयः॥
तद्वच्छूद्राश्च ये केचिद् ब्राह्मणाचार तत्पराः।
उज्ज्वलाकृतयो मूढाः स्वधर्म त्यागशीलिनः॥

'कलियुग मे मनुष्य पुण्य-पथ को त्यागकर दुराचार में प्रवृत्त हो रहे हैं और सत्य व्यवहार से दूर हटते जा रहे हैं। वे दूसरो की निन्दा करने मे निपुण है और इसी टोह मे रहते हैं कि दूसरे के धन को किस प्रकार हड़पा जाय। साथ ही परस्त्रीगामी और निरपराध व्यक्तियो की हिंसा करने वाले बन गये हैं। अध्यात्म तत्त्व को भूल कर वे देह को ही आत्मा मानने लगे हैं और इस कारण पशुओ की तरह विवेक रहित आचरण करने लगे है। वे स्त्री के वशीभूत होकर माता-पिता से द्वेष-भाव रखते हैं और इस प्रकार विषय भोगो के दास बने हुए हैं। ब्राह्मण

धन के लोभी होकर धर्म को बेचने लग गए हैं। वे धन कमाने की विद्या ही सीखते है और उसी विद्या का बडा गर्व दिखाते है। क्षत्रियो ने भी प्रजा संरक्षण का कर्तव्य त्याग दिया है और वे कुसङ्ग मे रहने वाले पाप कर्मो मे लीन और महाव्यभिचारी हो गए है। वैश्यो ने अपने जातीय सस्कारो को त्यागकर बेईमानी का व्यापार अपना लिया है और तोल-नाप मे छल करके धन कमाने को ही बडा गुण समझ रहे हैं। शूद्र परिश्रम के कार्यों से विमुख होकर ब्राह्मणो के ढगों को अपना रहे हैं, वैसी ही वेषभूषा बनाकर लोगो को भ्रम मे डालना चाहते हैं।"

इस प्रकार सभी पुराणो ने 'कलियुगीन-समाज' की भ्रष्टता के प्रति घृणा और निन्दा का भाव प्रकट किया है और उसका दोषारोपण मुख्यतया ब्राह्मण-वर्ग पर किया है, क्योकि वे ही समाज के अगुआ है। यह तो प्रत्यक्ष है कि इस गिरी-गुजरी हालत मे भी अधिकाश भारतीय जनता उनको पूज्य मानती है। प्राचीन काल मे जब भारत उन्नति के उच्च सोपान पर स्थित था और उसे जगद्गुरु की पदवी प्राप्त हुई थी, तो उसका श्रेय यहाँ के विद्वान् और त्यागी, तपस्वी ब्राह्मणो को ही दिया गया था। फिर जब उसका पतन हुआ, उसे अपने दोषो के कारण विधर्मी और विदेशियो की दासता स्वीकार करके अपने मस्तक पर कलक का टीका लगाना पडा तो वह उत्तरदायित्व भी ब्राह्मणो का ही माना गया। वास्तव मे भारतीय समाज पर उनका प्रभाव इतना अधिक था कि उन्होने जब जो कुछ निर्णय किया—जो आदेश दिया जो मार्ग दिखलाया, देश के निवासी बिना किसी प्रकार का विरोध किये भले-बुरे का विचार किए उसी के अनुसार चले। इसीलिए पुराण के लेखको ने, जो प्रायः सभी ब्राह्मण थे, न्यायरक्षार्थ ब्राह्मणो को ही देश और समाज की दुर्दशा के लिए दोषी ठहराया। इसका एक उद्देश्य यह भी है, कि ब्राह्मण अपनी भूल को समझें, और जनता को फिर से सही रास्ता दिखलाने के लिए तत्पर हो।

ऊपर धर्मशास्त्रो से कलियुग वर्णन के जो उद्धरण दिए गए हैं, उनके अतिरिक्त अन्य सभी पुराणो मे इस सम्बन्ध मे इसी प्रकार के भाव प्रकट किए गए है। पर उनमे कोई विशेषता नही, वरन् कई मे तो ऐसा जान पडता है कि एक दूसरे की नकल करदी गई है। उन सबका साराश देश-भाषा मे गोस्वामी तुलसीदास ने अपने 'रामचरितमानस' मे बडे प्रभावशाली रूप मे लिख दिया है। साथ ही वह वर्णन स्वाभाविक भी है, और सामान्य बुद्धि के व्यक्ति भी उसका आशय भली प्रकार समझ लेते है। गोस्वामी जी ने उत्तरकाण्ड मे काकभुशुण्ड और गरुड़ सम्वाद मे किसी प्राचीन कल्प के कलियुग का नामोल्लेख करके उसके दोषो का वर्णन इस प्रकार किया है—

तेहि कलिजुग कोसलपुर जाई। जन्मत भयउँ सूद्र तनु पाई॥
सो कलिकाल कठिन उरगारी। पाप परायन सब नरनारी॥
द्विज श्रुति बेचक भूप प्रजासन। कोउ नहि मान निगम अनुशासन
मारग सोई जा कहुँ जो भावा। पण्डित सोई जो गाल बजावा॥
सोई सयान जो परधन हारी। जो करि दंभ सो बड़ आचारी॥
जाके नख अरु जटा विसाला। सोइ तापस प्रसिद्ध कलिकाला॥
असुभ वेष भूषन धरे, भच्छाभच्छ जे खाहि॥
तेई जोगी तेई सिद्ध नर, पूज्यते कलियुग माहि॥
सब नर काम लोभ रत क्रोधी। देव विप्र श्रुति सत बिरोधी॥
गुर सिष बधिर अंध का लेखा। एक न सुनइ एक नहि देखा॥
ब्रह्म ग्यान बिनु नारि नर, कहहि न दूसरि बात।
कौड़ी लागि लोभ बस, करहि बिप्र गुर घात॥

काकभुशुण्डिजी ने कहा—"उस कलियुग मे मैंने अयोध्याजी मे जन्म लिया था। वह बडा ही दारुण-युग था और उस समय समस्त स्त्री, पुरुष भाँति-भाँति के पापो में लिप्त रहने वाले थे। ब्राह्मण और क्षत्रिय अधर्म पर चलने वाले हो गए थे और कोई शास्त्राज्ञा की तरफ

ध्यान नही देता था। सभी मनुष्य मनमाने मार्ग पर चलते थे। जो बहुत बाते बनाता उसी को पण्डित समझा जाता। दूसरो का धन हड़प लेना बडी होशियारी की बात मानी जाती थी और जो जितना दम्भ-ढोग करता वह उतना ही आचरणवान माना जाता। बडे-बडे नाखून और विशाल जटाये तपस्वियो के चिन्ह मान लिए गये थे। गन्दा वेष और गन्दा आहार करने वाले योगी और सिद्ध मान लिए जाते थे। अधिकाश व्यक्ति काम और लोभ जैसे दुर्गुणो मे ग्रस्त थे और वे सब शास्त्रो तथा महात्माओ की शिक्षाओ का विरोध करने वाले थे। शिष्य गुरु की बातो को सुनते न थे और गुरु शिष्य के आचरणो की तरफ से बेखबर रहते थे। वे गुरु कहलाने वाले शिष्य के धन पर तो अधिकार जमा लेते थे पर उसके अज्ञानान्धकार के दूर करने का प्रयत्न नही करते थे। उस युग मे सभी लोग ब्रह्मज्ञान, अध्यात्म की बात तो बडी-बडी करते थे, पर जरा से लोभ के लिए गुरुजनो की हिंसा करने को भी तैयार हो जाते थे।"

पर त्रिय लपट कपट सयाने। मोह द्रोह ममता लपटाने ।।
तेइ अभेदवादी ग्यानी नर। देखा मै चरित्र कलियुग कर ।।
नारी मुई गृह सम्पति नासो। मूड मुडाई होहिं संन्यासी ।।
ते विप्रन सन आपु पुजावहि। उभय लोक निज हाथ नसावहिं ।।
विप्र निरच्छर लोलुप कामी निराचार सठ वृषलो स्वामी ।।
तपसी धनवन्त दरिद्र गृही। कलि कौतुक तात न जात कही ।।
नृप पाप परायन धर्म नही। करि दण्ड विडम्ब प्रजा नितहीं ।।
कलि बारहिंबार दुकाल परै। बिनु अन्न दुखी सब लोग मरै ।।

'कलियुगी मनुष्य दुराचारी और कपटी हो गए और सदैव मोह, कलह, ममता आदि मे फसे रहने लगे। तो भी अपने को बडा वेदान्त-वादी और ज्ञानी समझते थे। स्त्री के मर जाने और घर की सम्पत्ति के नष्ट हो जाने पर सब जातियो के लोग साधु, सन्यासी बन जाते थे और

ब्राह्मणो से पैर पुजाते थे। उधर ब्राह्मण अनपढ, लालची और चरित्र-हीन थे। वे नीच जाति की स्त्रियो से सम्बन्ध स्थापित कर लेते थे। कलियुग की एक बडी अनोखी बात यह देखने में आई कि तपस्वी कहलाने वाले तो धन सम्पत्ति युक्त दिखलाई पडते थे और गृहस्थी दरिद्र थे। राजा लोगो को पाप-पुण्य का कोई ध्यान न था, प्रजा को लूटना-मारना ही उनका काम रह गया था। कलियुग मे अकाल तो सदा ही बना रहता था और लोग प्राय 'हाय अन्न' 'हाय अन्न' कहते हुए ही मरते रहते थे।'

जैसा हम युग परिवर्तन के सम्बन्ध मे एक स्थान पर लिख चुके हैं बुरा और भला समय कभी एक-सा नही चलता। अन्तर्दशा और प्रत्यन्तर दशा के रूप मे समाज के उत्थान और पतन का चक्र चलता ही रहता है। यद्यपि सामान्य लोगो के मतानुसार राजा परीक्षित के समय से, जिसे ५००० हजार वर्ष हो चुके हैं, कलियुग ही चल रहा है और दिन पर दिन उसकी भयङ्करता बढती जाती हैं। पर हम जानते है कि इसी बीच में महाराज विक्रमादित्य का समय भी आ चुका है जिसे सब कोई 'रामराज्य' मानते हैं और इसी आधार पर उनका सवत् आज तक सर्वत्र माननीय है। उनके कुछ समय बाद राजा भोज का शासन-काल भी 'स्वर्णयुग' के नाम से प्रसिद्ध है। इसीलिए हमको यह मानकर कलियुग के इन वर्णनो को पढना चाहिए कि इन ग्रन्थो के लेखको ने या उनके परिचितो ने इन वर्णनो से मिलते-जुलते समय देखे थे और उन्ही अनुभवो के आधार पर उन्होने कलियुग का ऐसा चित्र खीचा है जो आजकल अधिकांश मे प्रत्यक्ष दिखाई पड़ रहा है।

पर इन वर्णनो का यह आशय हर्गिज नही कि हम इन सब बातो को कलियुग के नाम पर उचित या अनिवार्य मान लें। जहाँ तक हम समझ सकते हैं पुराण-लेखकों ने भी इन वर्णनो को इसी भाव से लिखा है कि पाठको मे इस प्रकार की जघन्य प्रवृत्तियो के प्रति विरक्ति और घृणा का भाव उत्पन्न हो और वे यथाशक्ति इनसे बचने की चेष्टा

करे। 'कलियुगी जीव' कहा जाना किसी के लिए सम्मान की बात नहीं हो सकती और कोई भी सज्जन, सभ्य पुरुष इस प्रकार के सम्बोधन को गर्हित ही मानेगा। चारो युगो का विभाजन शास्त्रकारो ने इसीलिए किया है कि लोग भलाई-बुराई के भेद को समझ जाये और सदैव इस विषय मे सावधान रहे कि वे 'युग' की प्रचलित बुराइयो मे ग्रस्त न हो जाये। यदि अधिकांश व्यक्ति इस प्रकार की भावना बनाये रहे और समाज के अग्रणी, देश के शासक भी इन बुराइयो को दबाते रहने का ध्यान रखें तो कोई कारण नही कि 'महाभारत' मे व्यासजी का यह कथन कि 'राजा कालस्य कारणम्' (जैसा राजा होता है वैसा ही युग वर्तने लग जाता है) यथार्थ सिद्ध न हो।

कलियुग की इस दुरवस्था और महान् दोषो का निराकरण करके समाज मे सुव्यवस्था और सद्-गुणों का प्रसार करना ही 'कल्कि अवतार' का उद्देश्य माना गया है। 'अधर्म' का मूलोच्छेद और 'धर्म' की स्थापना ही पृथ्वी पर अवतरित भगवद् शक्ति का सर्वप्रधान लक्षण बतलाया गया है। इसलिए 'कल्कि' चाहे किसी 'भावनात्मक आन्दोलन' के रूप मे प्रकट हो और चाहे किसी व्यक्ति या सस्था, समुदाय आदि के रूप मे, यदि वह ससार मे से वर्तमान भ्रष्टाचार को मिटाकर न्याय और नीति पर आधारित समाज की रचना मे सफलता प्राप्त करके दिखा देगे, तो यह निश्चय ही 'सबसे बड़ा चमत्कार' माना जायगा और भारत की 'भक्ति-प्राण' जनता ही नही योरोप अमरीका के साइस [विज्ञान] का अभिमान रखने वाले भी उसके सम्मुख तुरन्त नतमस्तक होगे।

सातवाँ अध्याय

कल्कि-पुराण पर एक दृष्टि और उसका तात्पर्य

पुराणो को दो श्रेणियो मे विभाजित कर दिया गया है—महा-पुराण और उपपुराण। कुछ लोग इसका आशय बडे और छोटे पुराणो से लगाते हैं, पर यह विचार ठीक नही। जिनको उपपुराण कहा गया है उनमे से कई महापुराणो की अपेक्षा बहुत अधिक बडे और सर्वाङ्गपूर्ण हैं। उदाहरण के लिए 'देवी भागवत' का उल्लेख किया जा सकता है, जो 'ब्रह्मपुराण', 'विष्णु पुराण', 'अग्निपुराण', 'वामनपुराण' आदि अनेक पुराणो से दुगुने से भी बडा है। यह विविध विषयो से युक्त है, पुराणो के पाँचो लक्षण इसमे विस्तारपूर्वक पाये जाते है। 'विष्णु धर्मोत्तर' तथा 'हरिवश' भी काफी बडे और विशाल ग्रथ हैं। लेखक सभी महापुराण और उपपुराणो के 'व्यासजी' माने गए है। इसलिए केवल 'उपपुराण' कह देने से किसी को छोटा महत्वहीन नही माना जा सकता। जनता मे तो 'देवी भागवत' 'हरिवश' आदि का प्रचार अधिकाँश पुराणो की अपेक्षा कही अधिक है और उनको 'पुराण' की दृष्टि से अधिक मान्यता प्रदान की गई है।

'कल्किपुराण' भी 'उपपुराणो' की सूची मे ही आता है, और इस समय उसका जो सस्करण प्राप्त हो रहा है वह बहुत छोटा भी है। यद्यपि 'कल्किपुराण' मे ही उसको छः हजार एक सौ श्लोको का बतलाया गया है, पर इसका जो सस्करण काशी के 'श्रीभारतधर्म महा-मण्डल' द्वारा स्थापित 'श्री निगमागम पुस्तक भण्डार' द्वारा प्रकाशित किया गया है उसकी श्लोक सख्या डेढ़ हजार के आस-पास ही है। इसका

कारण शायद यह हो कि 'भारतधर्म महामण्डल' के पंडितो ने इसको संक्षिप्त करके 'कल्कि-कथा' सम्बन्धी सामग्री ही इसमे से संगृहीत की हो जैसे कई प्रकाशको ने 'गरुड-पुराण' के केवल 'प्रेतखण्ड' को ही पृथक करके उस पुराण के नाम से छाप दिया है। अथवा जैसे 'विष्णुपुराण' तथा 'कूर्मपुराण' आदि आजकल उनमे लिखी हुई श्लोक संख्या से चौथाई और तिहाई की संख्या मे ही मिलते हैं, वैसा ही हाल 'कल्कि-पुराण' का भी हो गया हो। जो कुछ भी हो इस समय 'कल्कि पुराण' के नाम से केवल यही पुस्तक बाजार मे उपलब्ध है। इसमे तीन अंश और ३५ अध्यायो मे 'कल्कि' जन्म, विवाह, म्लेच्छ राजाओ से युद्ध तथा राज्य-शासन आदि का मुख्य रूप से वर्णन किया गया है। यद्यपि यह माना जाता है कि 'कल्कि अवतार' कलियुग के अन्त मे होगा, पर इस ग्रन्थ मे जितनी भी घटनाये वर्णन की गई हैं वे सब भूतकाल वाचक रूप मे ही लिखी गई है। अर्थात् उनको इस शैली मे लिखा गया है जिससे पढने वाले को यह प्रतीत होता है कि ये अब से पहिले किसी समय हो चुकी हैं। इस सम्बन्ध में पुराणकार ने स्वयं एक स्थान पर स्पष्ट कर दिया है यह लेखन-शैली की ही एक विशेषता है जो पुराण-ग्रन्थो मे प्रायः प्रयोग मे लाई जाती है।

'कल्कि पुराण' के आरम्भ मे ही 'दशम अवतार' की जो झाँकी दिखाई गई है वह काफी प्रभावपूर्ण है और लेखक की कवित्व-शक्ति परिचायक है—

यद्दोर्दण्ड कराल सर्पकवलज्वालाज्वलद्विग्रहाः।
नेतुः सत्करवालदण्डदलिता भूपाः क्षिति क्षोभकाः॥
शाश्वत सैन्धव वाहनो द्विजजनि कल्कि परात्मा हरि।
परात् सत्ययुगादिकृत स भगवान् धर्म प्रवृत्ति प्रिया॥

अर्थात् 'जिन राजाओं (शासकों) ने पृथ्वी की शान्ति को नष्ट किया है, वे जिसकी भुज-भुजङ्ग विषज्वाल से भस्म होगे, जिनकी भयङ्कर

खड्ग-धारा से अत्याचारी भूपालो को अच्छी तरह दण्ड दिया जायगा ऐसे ब्राह्मण वशोत्पन्न श्रेष्ठ अश्वारोही, सत्युग आदि विभिन्न युगो मे अवतार धारण करन वाले, धर्म–रक्षक भगवान कल्कि तुम्हारी रक्षा करें।'

क्योकि 'कल्कि' का प्रादुर्भाव कलियुग के दोषो और भीषणता को मिटाने के लिए होगा, इसलिए 'कल्कि-पुराण' में सबसे पहले कलियुग की विकारयुक्त अवस्था का ही वर्णन किया गया है। पुराणकार ने सर्वप्रथम यह स्पष्ट कर दिया है कि कलियुग की उत्पत्ति 'अधर्म'' और 'मिथ्या' के संयोग से होती है। इन दोनो के एकत्र हो जाने से दम्भ, माया, लोभ, निकृति, क्रोध, हिंसा आदि दोषो की उत्पत्ति होती है और ये ही सब आगे चल कर अत्यन्त विकार और भ्रष्टाचार युक्त 'कलियुग' जैसे समय की वृद्धि के कारण बनते है। इस प्रकार के दोष जब तक नीच वर्ग के थोडे–बहुत व्यक्तियो तक सीमित रहते हैं तब तक तो उनका प्रभाव विशेष रूप से अनुभव नही होता, पर सब समाज के उच्च और शिक्षित वर्ग — ब्राह्मणो मे उनका प्रवेश हो जाता है तो दशा बिगडने लग जाती है। उनके उदाहरण को देखकर अधिकाश लोग उसी मार्ग का अनुसरण करने लगते है और इससे सर्वत्र अनाचार और दुराचार का बोलबाला हो जाता है, और अन्त मे धर्म का लोप होकर अधर्म की ही प्रतिष्ठा होने लगती है —

निःस्वाध्या—स्वधा—स्वाहा—वौषडोंकार वर्जिताः।
देवा. सर्वे निराहाराः ब्रह्माण शरण ययुः॥

अर्थात् 'जब यज्ञ, कर्म अथवा परमार्थ, परोपकार, उदारता, सेवा धर्म की भावनायें नष्ट हो जाती है तब समस्त देवगण (सत्प्रवृत्तियाँ) भी क्षीण होने लगती हैं और वे विश्व सचालक शक्ति (ब्रह्म) की शरण ग्रहण करके समाज मे फैली दुरवस्था को दूर करने की प्रार्थना करती है।'

जब समाज की अवस्था अत्यन्त शोचनीय हो जाती है और 'गीता' के कथनानुसार अधर्म की विजय होकर धर्म पददलित किया जाने लगता है—सज्जन व्यक्ति दुखी और पीडित दिखाई पडते हैं तथा दुष्ट, धूर्त व्यक्ति शान के साथ अकडने लगते है, तो जगत् का नियन्त्रण करने वाली शक्ति का आसन डोल जाता है और ससार मे कोई ऐसा व्यक्ति सम्मुख आता है—किसी ऐसी दैवी-शक्ति का अवतरण होता है जो उस दूषित, अस्वाभाविक, प्रकृति विरोधी अवस्था के विरुद्ध खडी होती है और उसका जडमूल से परिवर्तन करके नई दुनिया की रचना करती है।

यही 'कल्किपुराण' मे वर्णित कथा का साराश और मूल उद्देश्य है। यह एक ऐसी घटना या नाटक है जो युग-युग मे, जब कभी अधर्म की, अन्याय और अत्याचार की अत्यधिक वृद्धि हो जाती है, तो संसार के रङ्गमच पर दिखाई दिया करता है। इस घटना को 'कल्किपुराण' के लेखक ने अपने समय की लोकरुचि के अनुकूल शैली और भाषा मे, मनोरञ्जन का पुट देकर दर्शाया है। इसलिए एक समझदार पाठक को पुराण पढते हुए इस तथ्य को सदैव ध्यान मे रखना चाहिए। यो तो सभी पुराणो मे लोकाकर्षण के उद्देश्य से कथा भाग को ही मुख्यता दी जाती है, तो भी वे लोग उनके आधार स्वरूप कुछ वास्तविक तथ्यो को समझाने का प्रयत्न करते हैं। पर 'कल्कि पुराण' के लेखक ने तो समस्त वर्णन यह समझकर किया है कि ये घटनायें सुदूर भविष्य मे होगी। ऐसी दशा मे उसका कार्य तो केवल कल्पना द्वारा ही सम्पन्न हो सकता था। यही बात हमको इस पुराण को पढते समय आदि से अन्त तक प्रतीत होती है। इसमे बीच-बीच मे माया की प्रबलता ज्ञान, भक्ति की महिमा, उपासना, सत्कर्म आदि के सिद्धान्तों और उपदेशो का समावेश अवश्य कर दिया गया है। रामायण की संक्षिप्त कथा भी इसमे एक जगह आ गई है। पर कल्कि के जन्म से लेकर मृत्यु तक की कथा लेखक को अपनी कल्पना से ही गढ़नी पड़ी है।

कल्कि-कथा का एक बहुत बडा भाग सिंहल द्वीप की राजकुमारी पद्मा के साथ विवाह होने का है। उसमे लेखक ने एक शुक (तोता) को माध्यम बनाकर जिस प्रकार दोनो तरफ प्रेम का सूत्रपात कराया है और फिर विरह की अवस्था दिखलाकर दोनो का मिलन कराया है, वही भारतीय और अन्य देशो की भी अधिकाँश प्रेम—कथाओ की शैली है। इसी प्रकार कल्किजी के युद्धो का वर्णन भी उन्ही गिने-चुने शब्दो में किया गया है जो अन्य पुराणो मे वर्णित सैकडो देव-दानवो के युद्धो अथवा राजाओ के प्रसिद्ध संग्रामो मे पढने को मिलते हैं। अन्त मे अपनी कितनी ही रानियो के साथ उनके विहार और रमण आदि का जो दृश्य दिखलाया गया है वह भी अन्य कवियो के शृङ्गार रस वर्णनो से मिलता-जुलता ही है।

पुराण मे कल्कि जी का प्रथम युद्ध बौद्धो के साथ दिखलाया गया है और बाद मे कलियुग के साथ होने वाले युद्ध मे भी शत्रु पक्ष को बौद्धो तथा यवनो के अनुरूप ही चित्रित किया है। अन्य स्थानो पर भी बौद्धो को मारने, हटाने का संकेत मिलता है। अब तो भारतवर्ष मे बौद्धों का अस्तित्व एक प्रकार से समाप्त ही हो गया है, और भारतीय धर्म से उनके सघर्ष का वर्णन केवल इतिहास का विषय रह गया है। डेढ़ हजार वर्ष पहले ऐसा समय अवश्य था, जब दोनो दलो मे निरन्तर लाग-डाँट बनी रहती थी और उनके रक्त रंजित संग्राम भी हुए थे। इससे यह निष्कर्ष निकालना अनुचित न होगा कि यह रचना उसी समय के आस-पास की है जब भारतवर्ष में बौद्ध युग प्रचलित था और उसे नष्ट करने के लिए हिन्दू धर्मानुयायियों का पक्ष भी कमर कसके उठ खड़ा हुआ था। उन घटनाओ को देखकर या सुनकर लेखक के दिमाग मे उन्ही युद्धो का नक्शा घूम रहा था और उन्होने उन्ही दृश्यो को कल्कि जी के युद्धो मे प्रधानता दी है।

पर अन्य पुराणो के वर्णनानुसार उन्होने उसका प्रारम्भ अश्व-मेध यज्ञ के लिए किए जाने वाले युद्धो की तरह किया है और उसके लिए धन संग्रहार्थ कल्कि जी को सर्वप्रथम कीकट देश (मगध या वर्तमान समय का बिहार प्रदेश) पर आक्रमण करते दिखलाया गया है। वहाँ के शासक 'जिन' ने एक बार तो युद्ध मे उनको भयङ्कर अस्त्राघात द्वारा सज्ञा शून्य कर दिया, पर वह उनको उठाकर नही ले जा सका, जैसे लक्ष्मणजी को शक्ति से मार देने पर भी मेघनाथ उनको उठा नहीं सका था। पर अन्त मे कल्किजी द्वारा बौद्ध पक्ष सर्वथा नष्ट कर दिया गया।

जब कल्किजी जगन्नाथपुरी पहुँचे तो मुनि-ऋषियो ने उनसे कुथोदरी राक्षसी को मारने का अनुरोध किया जो कुम्भकर्ण के पुत्र निकुम्भ की पुत्री थी। वह इतनी विशालकाय थी कि कल्किजी और उनकी सेना उसकी साँस द्वारा खिंचकर उसके पेट में चली गई। पर वे भीतर से उसके पेट को फाडकर बाहर निकल आये, जिससे कुथोदरी मर गई। ये सब वर्णन पुराणो के देव-दानवो की तरह ही हैं। जिस प्रकार तुलसीदासजी ने कुम्भकर्ण द्वारा लाखो बन्दरो को एक साथ निगल जाने की बात लिखी है उसी प्रकार कल्किजी और उनकी सेना के राक्षसी के पेट मे चले जाने की बात कौतूहल का भाव उत्पन्न करने की दृष्टि से ही मानी जा सकती है। अन्यथा मानवाकार शरीरो मे इतना अधिक अन्तर न कभी हुआ और न होगा।

कल्कि और कलियुग का संघर्ष—

कुथोदरी को मारकर कल्कि हरिद्वार आ गये, जहाँ उनकी भेंट मरु और देवापि नामक राजाओ से हुई जो अब तपस्वी जीवन व्यतीत कर रहे थे। मरु ने अपने को रघुवंशी बतलाया और कल्किजी के पूछने पर समस्त राम-कथा का साराश उनको सुना दिया। उस समय 'सत-

युग' और 'धर्म' भी सन्यासी और ब्राह्मणो के रूप मे वहाँ आ गये । ये चारों व्यक्ति कल्किजी के पक्के अनुयायी बनकर म्लेच्छो से युद्ध करने और धर्म-सस्थापन के कार्य मे सदैव उनके साथ रहे । कहा गया है कि 'धर्म' के साथ उसके अनुयायी भी थे । उनके नाम थे— ऋत (सत्य) प्रसाद, अभय, सुख, प्रीति, योग, अर्थ, स्मृति, क्षेम, प्रतिश्रय । इनके अतिरिक्त श्रद्धा, मैत्री दया, शान्ति, तुष्टि, पुष्टि, क्रिया, उन्नति, बुद्धि, मेधा, तितिक्षा ह्री आदि भी मूर्तिमान रूप मे उसके साथ थे ।'

इस उद्धरण में कल्कि की सेना का वर्णन प्रतीकात्मक प्रकट होता है । ऋत, अभय श्रद्धा, मैत्री, दया आदि धर्म के अग ही हैं और कल्कि (धर्म पक्ष) तथा कलियुग (अधर्मपक्ष) के सघर्ष मे उनका कल्कि के साथ रहना स्वाभाविक ही है । जब धर्म कल्किजी के साथ शत्रुओ पर विजय-यात्रा के लिए उद्यत हुआ तो उसके शस्त्रो तथा रथ का जो वर्णन किया गया है वह भी प्रतीकात्मक होना चाहिए । इस विषय मे लेखक कहते हैं—

साधु सत्कार ही युद्ध के लिए प्रस्तुत 'धर्म' का वेष हुआ । वेद और ब्रह्म महारथ स्वरूप से प्रकट हुए । अनेक शास्त्रो का अन्वेषण धर्म का धनुष हुआ । वेद के सात स्वर उसके रथ के अश्व, भूदेव सारथि अग्नि आसन हुआ । इस प्रकार धर्मरूप नायक ने अनेक क्रियानुष्ठानों के रूप मे बडे बल से युक्त होकर यात्रा की ।' उधर कलियुग के जो सहयोगी कल्कि-सेना से युद्ध करने आये उनमें 'दंभ, लोभ, क्रोध, भय, निरय, आधि-व्याधि, ग्लानि, जरा' आदि के नामो का उल्लेख किया गया है । ये सब अधर्म के अंग ही हैं । इस प्रकार लेखक ने यहाँ पर इस बात का संकेत किया है कि कल्कि और कलियुग का सघर्ष एक प्रकार से भावात्मक माना जा सकता है और सूक्ष्म दृष्टि से विचार न किया जाय तो वह ससार में सदैव होता रहता है ।

राजा शशिध्वज की दैवी-भावना–

कलियुग की सेना पर विजय प्राप्त करके कल्किजी भल्लाट-नगर (वाणसे घिरे नगर मे पहुचे। वहाँ का राजा शशिध्वज (चन्द्रमा की ध्वजा वाला अर्थात् शिव) भगवान् का सच्चा भक्त था, पर जब कल्किजी दिग्विजय की भावना से वहाँ पहुँचे तो वह क्षत्रिय-धर्म के अनुसार उनसे युद्ध के लिए तैयार हुआ। उसकी रानी सुशान्ता ने जब पूछा कि आप तो भगवान् के भक्त और सेवक हो उनके ऊपर अस्त्र-प्रहार कैसे करोगे, तो शशिध्वज ने अवतार के रहस्य के सम्बन्ध मे एक बडी महत्वपूर्ण बात कही—

ब्रह्मता ब्रह्मतेशस्य शरीरित्त्वे शरीरिता।
सेवकस्याभेददृशस्त्वेव जन्मलयोदथा: ॥

'अर्थात् 'पूर्ण ब्रह्मभावयुक्त ईश्वर को ब्रह्म कहते है। जब वह भौतिक शरीर धारण करके मूर्तिमान हो जाता है तब वह शरीरिता (अवतार) कहा जाता है। जिस सेवक (भक्त) की भक्ति-भावना दूर हो गई है और जिसे अभेद-ज्ञान प्राप्त हो चुका है, उसका जन्म, उदय (वृद्धि) और लय (समाप्ति) भी भगवान् के सदृश ही होता है, अर्थात् वह भगवान् के तुल्य ही बन आता है। साथ ही उसने यह भी कहा कि 'जब भगवान् ने मूर्ति धारण की, तब कामादि माया के अश स्वरूप शरीरों के गुणो की परम्परा नारायण के शरीर मे भी आरोपित हुई। कामादि के आरोपित होने से उनके देह में कामादिक विषय क्यो नही आरोपित होगे ?'

इस प्रकार 'कल्कि पुराण' ने एक बहुत बडा सिद्धान्त पाठको के समक्ष रखा है कि संसार मे सबसे बड़ा धर्म कर्तव्य-पालन ही है। इसका महत्व इतना अधिक है कि यदि इसके लिए बडे से बडे गुरुजन का भी विरोध करना पडे, उनके विरुद्ध न्याययुक्त सघर्ष करना पड़े

तो उसमे भी कोई दोष नही। शशिध्वज ने कहा कि कल्किजी दैवी पुरुष अवश्य है और हम उनकी पूजा भी करते है, पर जब वे एक विजयी योद्धा के रूप में हमारे नगर पर आते हैं तो हमको संग्राम भूमि मे उनका मुकाबला भी करना चाहिए। इससे न उनके प्रति कोई शत्रुता का भाव होगा न हमारी श्रद्धा मे कोई कमी आवेगी। हम केवल उन की बनाई मर्यादा का पालन करने वाले माने जायेंगे। युद्ध समाप्त होने पर फिर भी वे भगवान् और हम भक्त ही बने रहेगे। कर्तव्य का प्रश्न आने पर एक बार भगवान् कृष्ण और अर्जुन के बीच भी युद्ध ठन गया था और इसी सिद्धान्त के आधार पर श्रीकृष्ण ने गीता मे अर्जुन को भीष्म जैसे पूजनीय सम्बन्धी से लडने की प्रेरणा की थी।

'कल्कि-कथा' के अनुसार जब युद्ध करते हुए कल्किजी शशि-ध्वज के प्रहार से संज्ञाशून्य हो गए तो वह उनको उठाकर अपने महलो मे ले गया और पत्नी सहित सेवा सुश्रूषा करके उनको स्वस्थ किया। दोनो पक्षो मे मेल हो जाने पर युद्ध बन्द कर दिया गया और शशि-ध्वज ने अपनी पुत्री का पाणिग्रहण कल्किजी के साथ कराके उनको सब प्रकार से सन्तुष्ट और प्रसन्न किया। उन्होने अन्य राजाओ के प्रश्न करने पर यह भी प्रकट किया कि कृष्णावतार के समय भी सत्राजित के रूप मे भगवान् कृष्ण के श्वसुर थे और अपनी कन्या सत्यभामा का विवाह भगवान् के साथ किया। उन्होने कहा कि मैने अनेक जन्मो मे भगवान् की भक्ति करके ही यह महान् पदवी प्राप्त की है और भक्ति ही मानव जीवन का सार है। इस समय मैं उन्ही भगवान् को कल्कि जी के रूप मे अपने सम्मुख देख रहा हूँ। इसीलिए अपनी कन्या और सर्वस्व को उन्हें समर्पित करके मैं अन्त समय मे उसी भक्ति-मार्ग का ही अनुसरण करता हूँ।

भगवान् कल्कि इसके पश्चात् भी अनेक दुष्कर्मरत व्यक्तियो का ध्वंस करके धर्म-संस्थापन का कार्य करते रहे। उन्होने नागों की

काञ्चीपुरी पर ग्र क्रमण करके चित्रग्रीव गन्धर्व की भार्या सुलोचना का उद्धार किया। वह यक्ष ऋषि के शाप से विष-दृष्टि वाली बन गई थी और जो भी प्राणी उसके सम्मुख ग्राता था वह मृत हो जाता था। कल्कि के दर्शनो के पश्चात् उसने कहा—'अब आपकी अमृतमयी दृष्टि के पडने से मेरा वह दोष जाता रहा और मैं भी आपका दर्शन करके धन्य हो गई।'

जब 'कल्कि' समस्त पृथिवी मे धर्म की स्थापना करके और विभिन्न भागो का आधिपत्य अपने सहयोगियो को देकर पुन: 'शम्भल' मे आकर निवास करने लगे तो उनके माता-पिता, भ्राता, पत्नी आदि सबको अत्यानन्द हुआ। इसके पश्चात् वे अनेक वर्षों तक धर्मराज्य करके अपनी पत्नी और पुत्रो के साथ सुखोपभोग करते रहे। जब यहाँ का कार्य पूरा हो चुका तो स्वर्ग के देवताओ ने उनकी सेवा मे उपस्थित होकर बैकुण्ठ चलने की प्रार्थना की। इस पर कल्किजी राज्य-भार अपने पुत्रो को देकर हिमालय को चले गये और गङ्गाजी के तट पर चतुर्भुज रूप धारण करके विष्णु पद में प्रवेश कर गये।

'कल्कि-कथा' का यही अन्त होता है। इसका साराश यही है कि जब अधर्म की प्रबलता होकर धर्म का ह्रास होगा तो भगवान् दुष्ट दमनकारी रूप धारण करके ससार का उद्धार करेंगे। पिछले बुद्धावतार के समय भगवान् ने प्रेम और दया का आश्रय लेकर मानव जाति को सुमार्ग पर लगाने का प्रयत्न किया था। पर उसका प्रभाव थोडे ही समय तक रहा और लोगो ने फिर स्वार्थपरता का मार्ग अपनाकर समाज को कलह और पतन के गढ़े मे ढकेल दिया। इस समय दुनिया के 'कर्णधार' कहलाने वाले जिस प्रकार भौतिक विज्ञान का प्रयोग पारस्परिक नाश के साधन प्रस्तुत करने मे कर रहे हैं, उससे मानव जाति का भविष्य अत्यन्त सङ्कटमय और अन्धकारपूर्ण दिखलाई पड़ रहा है।

इस समय केवल पृथ्वी-तल पर ही भीषण ध्वस की तैयारियाँ नही हो रही हैं वरन जल, थल और अन्तरिक्ष तीनो मे मृत्यु के अभूत-पूर्व यन्त्र इकट्ठे किए जा रहे हैं। अवस्था यहाँ तक गम्भीर हो गई है कि यदि आज किसी एक सत्ताधारी व्यक्ति को सनक सवार हो जाय तो वह किसी भी दिन इस 'बारूद के पर्वत' मे चिनगारी छोडकर समस्त जगत् को एक ज्वालामुखी के रूप मे परिणित कर सकता है। उस समय न छोटा बच सकेगा और न बडा—न आक्रमण किया जाने वाला शेष रहेगा और न आक्रमण करने वाला,न हारने वाला जीवित रहेगा और न जीतने वाला। इस भीषण-भविष्य से भगवान् ही मानव-जाति की रक्षा कर सकते हैं। इसलिए किसी भी रूप मे भगवत्–शक्ति का प्रकट होना आवश्यक है। चाहे प्रेम से और चाहे दण्ड से वे ही इस ससार की रक्षा कर सकते हैं। अगर इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए हम 'कल्कि अवतार' की कल्पना करें तो इसमे कोई अनुचित बात नही है। 'कल्कि' शब्द नवीन और उत्कृष्ट मानव-सभ्यता का प्रतीक माना जा सकता है।

'कल्कि' के अनेक रूप—

'कल्कि' कहाँ होगे, कब होगे और किस रूप मे होगे? इसका निर्णय विचारशील लोग स्वय कर सकते हैं। ऐसे संक्रान्ति-काल मे दैवी शक्ति का प्रकट होना अनिवार्य है, इतना ही हा जानना हमारे लिए पर्याप्त हैं। वह शक्ति कब, कहाँ और कैसे सांसा-रिक मनुष्यो को अपना परिचय देगी? यह एक गौण प्रश्न है और इस विवाद को उठाना विशेष महत्व की बात नही। गुलाब का फूल किसी भी क्यारी मे खिले वह बगीचे को सुरभित बनायेगा ही, उसकी सुगन्ध दूर-दूर के लोगो को कुछ लाभ पहुचायेगी ही।

तो भी हमारे अनेक भाई कौतूहल पूर्वक यह पूछते ही रहते हैं कि 'अगामी अवतार' कब तक प्रकट हो जायगा? वह किस भूभाग को सुशोभित करेगा? हमारे सनातन धर्मी भाई तो परम्परागत बातों का

अधिक महत्व मानकर उत्तरप्रदेश के 'सम्भल' नामक कस्बे को 'भगवान् कल्कि' का जन्म-स्थान मान रहे है और वहाँ बहुत वर्षों से उनका एक मन्दिर भी बना रखा है। 'थियोसोफिकल सोसाइटी' की सस्थापिका मैडम ब्लैवटस्की ने अपनी 'सीक्रेट डाक्टरिन' पुस्तक मे 'शभल' का पता चीन स्थित गोबी के रेगिस्तान मे बतलाया है, जहाँ कोई मानव नही पहुँच सकता। 'सतयुग' मासिक पत्र (नवम्बर १६४०) के एक लेखक श्री भारद्वाज रघुनाथ ने उडीसा के सिद्धयोगी अच्युतानन्द दास रचित 'मालिका' ग्रन्थ के आधार पर, जो इस समय भी वहाँ के मन्दिरो मे ताडपत्र पर लिखा मिलता है, यह बतलाया था कि 'शभल पुरी' उडीसा में है और वही पर 'कल्कि अवतार' होगा। इसके लिए उन्होने 'मालिका' का एक उद्धारण दिया था जो उडिया भाषा मे है—

जाण ओसुक नदी याउत्ति भेदि।
प्रपुना गाई चीर नाम ता दुधि।
भक्तङ्क पेण्ट
गिरि उपरे देख उदय वट।
झगडे नदी आसे उजाणि फेरी।
नदीर उत्तर कु शभल पुरी।
पद्म पोखरी
पोखरी पश्चिम कु लिङ्ग बिहारी॥

'इस पद्य के अनुसार इस समय भी उड़ीसा मे 'दुधि' नाम की नदी मौजूद है। उदयगिरि नाम का पर्वत भी है और बिल्कुल पास ही एक वट वृक्ष है। इस स्थान से थोडी दूर उत्तर की तरफ शभलपुरी (वर्तमान नाम शारगपुर) है। इसके पास ही एक शिव-मन्दिर मे 'लिंगविहारी' विराजमान हैं। दुधि नदी शारगपुर के दक्षिण और पश्चिम की तरफ बहती है और उसने 'सम्भल' को दो तरफ से घेर रखा है।

हमने यह लेख आज से २८ वर्ष पहले 'सतयुग' में प्रकाशित किया था, इस तरफ ज्यादा ध्यान इसलिए नही दिया था कि अनेक लोग इसी प्रकार अपने-अपने प्रदेशो को भावी अवतार की लीला भूमि बतलाते है। पर अब कल्कि पुराण' की 'श्रीभारतधर्म महामण्डल' द्वारा प्रकाशित तथा काशी के प० दामोदर शास्त्री द्वारा सम्पादित और सन् १६०७ मे प्रकाशित पुस्तक का अवलोकन करते समय हमको यह देखकर कुछ आश्चर्य हुआ कि उसमे भी उड़ीसा का जिक्र आया है। जैसा कि इस पुराण के कथा-भाग मे वर्णित है श्री कल्कि भगवान् महेन्द्र पर्वत पर परशुरामजी पास वेदाध्ययन और शस्त्र विद्या की शिक्षा प्राप्त करने गए थे।' यह महेन्द्र पर्वत कहाँ है, इस सम्बन्ध में उक्त पुस्तक मे यह फुट नोट दिया गया है—

"पुरुषोत्तम क्षेत्र (जगन्नाथ जी) मे ऋषिकुल्या नाम की नदी हैं। यह गोन्दवन देश की पर्वतमाला से उत्पन्न हुई है। इसी स्थान में 'महेन्द्रमाली नाम से एक पर्वत' प्रख्यात है। यही महेन्द्र पर्वत है। यह महेन्द्र पर्वत माला उड़ीसा के उत्तर गंजाम जिले से गोन्दवन तक फैली हुई है। भारतवर्ष के सात कुलाचलो में से महेन्द्र पर्वत भी एक है।"

इससे विदित होता है कि जिन लोगो ने उडीसा स्थित 'शभल' को कल्कि का स्थान माना है उनके पास वैसा अनुमान करने का कोई कारण था। पर अन्य स्थानो वाले भी अपनी बात के लिये अन्य प्रकार के प्रमाण देते हैं। अभी बङ्गाल के स्वामी जगदीश्वरानन्द ने 'Kalki Comes in 1985' (कल्कि अवतार सन् १६८५ में होगा) नाम की पाँच सौ पृष्ठ की अगरेजी पुस्तक प्रकशित की है, जिसमे उन्होने लिखा है कि "हिन्दु शास्त्रो मे उल्लिखित दस अवतारो में से अब तक शेष रहे एक मात्र अवतार 'कल्कि', बीस वर्ष के बाद बङ्गान्द १३६२ बैशाख शुक्ल द्वादशी (सन् १६८५ ईसवी के प्रथमार्ध)

को मथुरा के एक ब्राह्मण वश में अवतीर्ण होगे ।" यद्यपि उन्होंने कल्कि के जन्म स्थान का श्रेय शभल के बजाय मथुरा को प्रदान किया है, पर उनके समस्त सहयोगी और सगे सम्बन्धी अधिकाश मे बङ्गाल के ही बतलाये हैं।

कुछ समय पूर्व हमने किसी मासिक पत्र के एक लेख मे यह भी पढा था कि 'शभल' वास्तव मे ईरान के किसी प्रदेश मे अवस्थित है, और 'कल्कि अवतार' वही से सम्बन्धित है। इस प्रकार विभिन्न सम्प्रदायो और विचारो के व्यक्ति 'शभल' के विषय मे विभिन्न मत प्रकट कर चुके हैं।

यही बात उनके अवतरण के सम्बन्ध मे है। प्राचीन परिपाटी के पण्डित तो उनके आविर्भाव का समय कलियुग के अन्त मे मानते हैं जिसमें अभी लाखो वर्ष शेष है। पर वर्तमान समय के अवतारवादी, जो कलियुग को १२०० वर्ष से अधिक का नही मानते, कल्कि अवतार का समय बिल्कुल निकट बतलाते है। वैसा हमने ऊपर लिखा है।

बङ्गाली स्वामी जी ने उनकी जन्मतिथि सन् १९८५ मे घोषित कर दी है। अमरीका की सन्त महिला जीन डिक्सन ने बतलाया है कि "५ फरवरी १९६५ को एक ऐसे बालक का जन्म हो चुका है जो संसार का नया कायाकल्प करेगा। सम्प्रदायो की सकीर्णता को वह मिटा देगा और एक सार्वभौम विश्वधर्म की स्थापना करेगा। सन् १९८० मे होने वाले विश्व युद्ध के पश्चात् वह बालक इतना शक्तिशाली हो जायगा कि ससार भर की सद्भावना उसे प्राप्त होगी और सब लोग उसके निर्देशो का पालन करेगे। सन् १९९९ मे इस बालक की प्रतिभा पूर्ण रूप से निखरेगी और उसके हाथो नये युग की आधार-शिला रखी जायगी।"

अन्य अवतारवादी सज्जन भी, जिनमे भारतवासी और विदेशी दोनो ही प्रकार के व्यक्ति हैं, 'अवतार' के प्रकट होने की निकट

भविष्य मे ही कल्पना कर रहे है। हमारा अनुमान इस विषय में इतना ही है कि वर्तमान घोर अव्यवस्था और विश्व का नाश करने वाले महायुद्ध की प्रतिदिन बढती हुई सभावना को देखते हुये किसी रूप मे 'दैवी शक्ति' का हस्तक्षेप अनिवार्य है। इस विश्व रक्षा के कार्य-क्रम का प्रत्यक्ष सचालक कोई भी हो, सर्व साधारण उसे "जगत उद्धारक" ही मानेगे।

उसे 'कल्कि', 'ईसा', 'मेहदी', मैत्रेय', (बौद्ध) या यहूदी, पारसी आदि मजहब वालो की मान्यता के अनुसार किसी नाम से पुकारा जाय। हमारा कोई आग्रह नही। और न हम उसके प्राकट्य की कोई तिथि नियत करने को उचित कह सकते हैं। 'दैवी' घटनाओं का निश्चयात्मक ज्ञान मनुष्य को नही हो सकता। वह उस सम्बन्ध में कुछ अनुमान ही कर सकता है। हमारे अनुमान का आधार यही है है कि जब जब संसार पर कोई ऐसा घोर सकट आया है, कि मानव-सभ्यता का अन्त होने का भय उपस्थित हो जाय, तभी कोई न कोई दैवी शक्ति किसी व्यक्ति या घटना अथवा विचार के रूप में सम्मुख आई है और उससे मानवता की रक्षा हो सकी है। गीता में भगवान कृष्ण के आश्वासन का अर्थ भी यही है कि वे सत्य और न्याय की पूर्ण रूप से हत्या नही होने दे सकते और समय रहते उसकी रक्षार्थ अवश्य प्रकट होते हैं। इसलिये अगामी दस-बीस-तीस वर्षों में ऐसी किसी शक्ति के आविर्भाव पर विश्वास रखना अनुचित नहीं कहा जा सकता।

'कल्कि पुराण' पर यदि घटनाओं की दृष्टि से विचार किया जाय तो वे सब प्राचीन-काल के वातावरण के अनुसार ही लिखी गई कथाएँ हैं और आज उनके उसी रूप मे घटित होने की कोई आशा नही की जा सकती। इसमे हर जगह बाण, तलवार, गदा आदि से युद्ध होने का वर्णन किया गया है जिनकी इस रायफल, मशीनगन, बम और

अणु-अस्त्रो के युग मे कोई सभावना नही। इसी प्रकार विवाह मे दहेज स्वरूप लाखो रथ घोडे, हाथी और युवती स्त्रियो के देने का जो वर्णन किया गया है, वह भी वर्तमान वातावरण मे निरर्थक है। आज-कल राजाओ को भी दहेज मे मोटरकार ही दी जाती है और हाथी की अपेक्षा उसका मूल्य भी अधिक होता है। 'बौद्धो' से युद्ध की भी अब कोई सम्भावना नही रही। भारतवर्ष के कीकट (मगध) आदि किसी प्रदेश मे अब बौद्ध नही पाये जाते। यदि चीन वालो से सघर्ष होने की कल्पना करे तो कम्यूनिष्टो ने वहाँ भी बौद्ध धर्म को मिटा दिया है और जो थोडे बहुत बौद्ध धर्म के मनुयायी बच भी रहे होगे, तो उनका देश के शासन में कोई हाथ नही। लका, बर्मा, श्याम, कोरिया आदि देशो मे थोडे बहुत बौद्ध हैं, पर वे भारतवर्ष से मिल कर ही रहते है। अल्प जन-सख्या वाले होने के कारण भारत से उनके युद्ध करने का कोई प्रश्न ही नही उठता।

कल्कि जी के अनेक विवाहो का होना, जङ्गलो और पर्वतो मे जाकर बहुसख्यक स्त्रियो के साथ बिहार करना, छोटे-बडे यज्ञ-समारोह रचाना, किसी पहाड़ी आश्रम जाकर वेद पुराणो की शिक्षा प्राप्त करना आदि ऐसी बातें है जो आज-कल व्यवहार मे से प्राय: उठ गई हैं और किसी सम्माननीय व्यक्ति के सम्बन्ध मे उनकी सम्भावना भी स्वीकार नही की जा सकती। इस समय जो व्यक्ति ससार का मार्ग दर्शक बनेगा और बडे-बड़े राष्ट्रो का प्रभावित करके नये-युग की स्थापना मे समर्थ होगा वह निश्चय ही आधुनिक ज्ञान-विज्ञान मे पारगत होगा और उसका रहन-सहन आधुनिक सभ्यता तथा शिष्टता के नियमो के पूर्ण अनुकूल ही होगा। ऐसे व्यक्ति के लिये यह कल्पना करना कि वह हजार-पाँच सौ वर्ष पुराने ढङ्ग के वस्त्र पहिनेगा और उसी समय का-सा रहन-सहन रखेगा, एक मनोरजक कल्पना ही हो सकती है।

इस समय जो भी 'अवतार' या ससार का 'मार्गदर्शक' आयेगा वह ऊपर से देखने और व्यवहार मे एक आधुनिक युग के सज्जन और

सभ्य पुरुष की तरह ही होगा। अगर 'अवतार' का कार्य-क्षेत्र अकेला भारतवर्ष ही होता तब भी थोडी देर के लिए इस सम्भावना पर विचार किया जा सकता था, पर इस समय जो कोई भी मानवता के उद्धार और उत्थान का प्रयत्न आरम्भ करेगा उसे समस्त समार के लोगो से सम्बन्धित रहना पडेगा और सब देश वालो के साथ आत्मीयता का व्यवहार करके उनका विश्वास प्राप्त करना होगा। ऐसा व्यक्ति यदि किसी एक देश की प्राचीन सभ्यता और रहन-सहन के भीतर आबद्ध हुआ तो अन्य देश तथा धर्म वालो को कदापि प्रभावित नही कर सकता।

इन सब बातो पर विचार करने से हम स्वभावतः इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि 'कल्कि पुराण' का मुख्य उद्देश्य कलियुग की दूषित भावना की बुराइयाँ दिखलाकर सर्व साधारण को उसके कुप्रभाव से बचाना है। यदि मनुष्यो के हृदय मे यह विचार जड जमा ले कि कलियुगी व्यवहार वास्तव मे अत्यन्त गर्हित और घृणित है और भगवान भी उसके विरुद्ध हैं, तो वे उससे दूर रहने की चेष्टा कर सकते हैं। पाप से बचने और पुण्य की तरफ आकर्षित होने का उपदेश यों तो सभी सद्ग्रन्थ और साधु देते हैं, पर सामान्य पाठको पर उसका प्रभाव कम पडता है। पर जब उसको कथा रूप मे कहा जाता है और पाप का कुपरिणाम तथा पुण्य का लाभ दायक परिणाम अन्य लोगो के उदाहरण के साथ वर्णन किये जाते हैं, तो वह बात उनकी समझ मे जल्दी आ जाती है। इसलिए यदि कल्कि पुराण के लेखक ने "कलियुग तथा कल्कि" की कथा को मनोरजक और प्रभाव शाली ढङ्ग से वर्णन किया, और उसे पुराने पुराणो की शैली पर ऐसे ढङ्ग से लिखा है कि जिससे धार्मिक तथा अन्ध-विश्वासी दोनो का ध्यान उधर आकर्षित हो और वे उसे श्रद्धा और भक्ति की दृष्टि से देखें, तो इसके लिये हम उसे किसी तरह दोष नहीं दे सकते। हमारा कर्तव्य है कि हम कथा के साथ ही उसके मूल उद्देश्य का भी ध्यान रखें, और जहाँ तक सम्भव हो धर्म के वास्तविक स्वरूप को समझ कर तदनुसार व्यवहार करें।

आठवां अध्याय

कल्कि पुराण और भक्ति-मार्ग

'कल्कि-पुराण' में भगवत्-प्राप्ति का मुख्य उपाय भक्ति ही है और राजा शशिध्वज के उपाख्यान द्वारा उसकी श्रेष्ठता सिद्ध की है। उसमे बतलाया गया है कि मनुष्य अपने को भगवान का सेवक समझ कर तदनुसार व्यवहार करने से ही भक्ति के उच्च आदर्श को प्राप्त कर सकता है। यो तो शास्त्रो मे ज्ञान को सर्वश्रेष्ठ कहा गया है और 'गीता' मे भी 'न हि ज्ञानेन सदृश पवित्र'मह विद्यते' कह कर ज्ञान को संसार की सर्वोच्च पदवी प्रदान कर दी है। पर यह प्रश्न यह होता है कि क्या सामान्य व्यक्ति ब्रह्मज्ञान को हृदयगम कर सकते है? सभी विद्वानो ने यह स्वीकार किया है कि ब्रह्म-ज्ञान अथवा आत्मज्ञान का समझ सकना पंडितो और शास्त्र विशारदो के लिए भी अति कठिन है। गीताकार ने ही इस बात को बहुत स्पष्ट रूप से कह दिया है—

आश्चर्यवत्पश्यति कश्चिदेनमाश्चर्यवद्वदति तथैव चान्यः।
आश्चर्यवच्चैन मन्य: शृणोति श्रुत्वाप्येन वेद न चैव
कश्चित् ॥२-२९॥

"कोई तो आश्चर्य पूर्वक इसकी ओर देखता है, कोई आश्चर्य रूप से इसका वर्णन करता है, कोई महान आश्चर्य की तरह इसे सुनता है। पर इस तरह देखकर, वर्णन करके और सुनकर भी कोई इसके तत्त्व को नही समझ पाता।"

उपनिषदों मे भी इस सम्बन्ध में एक कथा है कि बाष्कलि ऋषि ने एक ब्रह्मज्ञानी नृपति से पूछा—"महाराज! मुझे ब्रह्म की व्याख्या

बतलाइये ।' यह बात सुनकर राजा कुछ नही बोले । बाष्कलि ने फिर यही प्रश्न किया और राजा चुप ही रहे । जब चार-पाँच बार ऐसा ही हुआ तो उन्होने बाष्कलि से कहा—"मैं तो तुम्हारे प्रश्न का उत्तर बराबर दे रहा हू, परन्तु वह तुम्हारी समझ मे ही नही आता तो मैं क्या करूँ ? ब्रह्म स्वरूप किसी तरह समझाया नही जा सकता, इसलिये चुप रहना ही सच्चा ब्रह्म लक्षण है ।"

जब ज्ञान-मार्ग मे इतनी कठिनाई है और निराकार अथवा अव्यक्त ब्रह्म को समझ सकना विरले ही लोगो के लिए सभव है, तब सामान्य जन उसे किस प्रकार ग्रहण कर सकते हैं और कैसे उस मार्ग का अनुसरण करके भगवान को प्राप्त कर सकते है ? अव्यक्त अथवा निर्गुण ब्रह्म की उपासना का विवेचन करते हुए लो० तिलक ने लिखा है :–

'उपनिषदो मे जिस श्रेष्ठ ब्रह्म स्वरूप का प्रतिपादन किया गया है, वह इन्द्रीयातीत, अव्यक्त, अनन्त, निर्गुण और "एकमेवाद्वितीय' है, इसलिए उपासना का आरम्भ उस रूप से नही हो सकता । जब श्रेष्ठ ब्रह्म स्वरूप का अनुभव होता है तब मन अलग नहीं रहता, वरन् उपास्य और उपासक, ज्ञाता और ज्ञेय दोनो एक हो जाते हैं । निर्गुण ब्रह्म अन्तिम साध्य वस्तु है, साधन नही और जब तक किसी न किसी साधन से निर्गुण ब्रह्म के साथ एक रूप होने की पात्रता (योग्यता) मन को प्राप्त न हो जाय, तब तक श्रेष्ठ ब्रह्म स्वरूप का साक्षात्कार नही हो सकता । अतएव साधक की दृष्टि से जिसे ब्रह्म-स्वीकार किया जाता है वह दूसरी श्रेणी का अर्थात् सगुण होता है ।

मनुष्य के मन की स्वाभाविक रचना ऐसी है कि जो वस्तु अप्रत्यक्ष होती है अर्थात् जिसका कोई विशेष रूप रङ्ग आदि नहीं, उसका हमेशा चिन्तन कर सकना इसके लिए दुस्साध्य होता है । मन को स्वभाव से ही चचल माना गया है, इसलिये जब तक मन के सामने

आधार के लिये कोई इन्द्रिय गोचर स्थिर वस्तु न हो, तब तक यह मन बार-बार भूल जाया करता है कि उसका लक्ष्य क्या है ? जिस प्रकार 'रेखागणित' की शिक्षा देते समय यह जानते हुए भी कि रेखा की कोई चौडाई नही होती, वह वास्तव मे अप्रत्यक्ष या अव्यक्त ही है, उसको एक छोटा-सा नमूना स्लेट या काले तख्ते पर व्यक्त करके दिखाना ही पडता है। इसी प्रकार ऐसे परमेश्वर पर प्रेम करने के लिये जो सर्वकर्त्ता, सर्व शक्तिमान होते हुए भी निराकार और अव्यक्त है, मन के सामने किसी प्रत्यक्ष (नाम रूपात्मक) वस्तु के रहे बिना साधारण मनुष्यो का नाम चल नही सकता।

अब चाहे इसे कोई मनुष्य के मन का स्वभाव कहे या दोष, जब तक देहधारी मनुष्य अपने मन के स्वभाव को अलग नही कर सकता, तब तक उपासना के लिए उसे भगवान के सगुण स्वरूप को अपनाना ही पडेगा। यही भक्ति-मार्ग है।

इसी सिद्धान्त का समर्थन अनेक उपनिषदो मे और गीता में भी यह कह कर किया गया है :—

क्लेशोऽधिकतरस्तेषा अव्यक्तासक्त चेतसाम्।
अव्यक्ता हि गतिर्दुःख देहवद्भिरवाप्यते ॥१२-५॥

अर्थात् —'जो साधक निराकार ब्रह्म मे चित्त लगाकर उपासना करते हैं उनको बहुत क्लेश अथवा परिश्रम उठाना पडता है, क्योकि देहाभिमानी (स्थूल शरीर धारी) मनुष्यो द्वारा अव्यक्त विषयक भावना बडी कठिनाई से प्राप्त की जाती है।"

इससे स्पष्ट हो जाता है कि ज्ञान-मार्ग और भक्ति-मार्ग मे किसी प्रकार की प्रतिद्वन्दिता की कल्पना करना हमारा अज्ञान ही है। ये दोनो मार्ग अनादि हैं। इनकी साधन-प्रणाली भिन्न अवश्य है, पर दोनो के द्वारा मनुष्य एक ही लक्ष्य अर्थात् परमात्मा का सान्निध्य प्राप्त

करता है। अब इसमें यह विवाद उठाना कि "जब परमात्मा का वास्तविक स्वरूप निर्गुण या अव्यक्त है, तो ज्ञान-मार्ग ही अधिक ऊंचा है" व्यर्थ है। वास्तव मे महर्षियो ने दोनो मार्गों का प्रतिपादन मनुष्यो की भिन्न रुचि और योग्यता के आधार पर किया है। जैसा हम प्रतिदिन अनुभव करते हैं। अनेक मनुष्य 'बुद्धि-प्रधान' और अनेक 'श्रद्धा-प्रधान' देखने मे आते हैं। बुद्धिवादी लोग स्वभावतः ज्ञान-मार्ग की ओर जाते हैं और निर्गुण, निराकार ब्रह्म की उपासना द्वारा मुक्ति प्राप्त का प्रयत्न करते हैं। श्रद्धावान सगुण, साकार भगवान की भक्ति द्वारा उसी मुक्ति या सायुज्य स्थिति तक पहुंचने का उद्योग करते हैं। इसी तथ्य को कल्कि पुराण' में नारद जी द्वारा इस प्रकार कहलाया गया है—

"नेत्र, कान, नासिका, जिह्वा, त्वचा—इन पञ्च ज्ञानेन्द्रिय और मन को एक कर परम-ज्ञान का आश्रय ले गुरु के चरणो में आत्मसमर्पण करना चाहिए। जब गुरु प्रसन्न, सतुष्ट रहते हैं तो स्वय भगवान भी कृपालु हो जाते हैं। बुद्धिमान शिष्य को चाहिये कि प्रणवाग्नि के बीच 'ॐ' को अनन्य हृदय से स्मरण करते हुए सावधान होकर पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय आदि एव स्नानीय वस्त्र-भूषणो से युक्त कर एकाग्र चित्त से नारायण जी के चरणकमलो की पूजा करे। अनन्तर हृदय-कमल के बीच विराजमान रमणीय सर्वाङ्ग सुन्दर भगवान नारायण का चिन्तन करें। इस प्रकार ध्यान करके मन, वचन, बुद्धि एवं इन्द्रियो सहित आत्मा को नारायण में समर्पण करें। देव मूर्ति को भगवान विष्णु का अनन्त रूप मान जिन नामो को जानता हो उनका स्मरण करें। क्योकि नाम के सिवाय और कोई मार्ग लक्ष्य प्राप्ति का नही हैं।

भगवान कृष्ण सेव्य हैं, मैं सेवक हूं और समस्त जीव भगवान की ही मूर्ति (अंश) है—यह भेद-बुद्धि ज्ञान की दृष्टि से अविद्याजन्य

है, पर भक्ति मार्ग में सेव्य-सेवक रूप मे द्वैत-भाव का उदय हो ही जाता है। भक्त को उचित है कि वह सर्वत्र एकमात्र नारायण को ही देखे। भक्त विष्णु भगवान को स्मरण करता है, उनके नाम का गान करता है, एव उनके ही निमित्त समस्त कर्म किया करता है। यह सब वह इसलिए करता है कि इससे आनन्द की प्राप्ति होती है। जो नित्या प्रकृति है, जो ब्रह्म सम्पति है वही भक्ति के रूप मे प्रकाशित हुई है। यह भक्ति ही विष्णु, ब्रह्मा और शिव स्वरूपा है।"

'कल्कि पुराणकार' ने भक्ति की जो व्याख्या की है उसमें एक सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि उन्होने भक्ति का रूप केवल पूजा ही नही बतलाया है, वरन् इस भावना पर जोर दिया है कि 'भक्त अपने को भगवान का सेवक माने और सब प्राणियो को भगवान की मूर्ति समझे।' वास्तव मे वर्तमान समय मे भक्तिमार्ग ने जो स्वरूप ग्रहण कर लिया है, उसमे एक स्वतन्त्र विचारक को सिवाय 'नाचने-गाने और पूजा की घण्टी हिलाने' के अतिरिक्त कोई लोकोपयोगी अथवा कल्याणकारी भावना दृष्टि गोचर नही होती।

इसी कारण इस सम्बन्ध मे प्रायः यह आक्षेप किया जाता है कि भक्तिमार्ग ने लोगो को आलसी और विशेष स्वार्थी बना दिया है। वे लोग सासारिक सघर्ष और उद्योग से प्रायः यह कर किनाराकशी कर जाते हैं कि "भगवान की जैसी इच्छा होगी वही होगा।" अथवा हमने तो भगवान की शरण ग्रहण करली है, वे ही हमारा बेड़ा पार लगावेंगे।" निस्सन्देह इस प्रकार के उद्गार अकर्मण्यता की वृद्धि करने वाले होते हैं। भारतवर्ष मे आज लाखो साधु, वैरागी और पण्डा पुजारी आदि इसी 'सिद्धान्त' की आड़ मे निकम्मा जीवन बिता रहे हैं। पर ऊपर के उद्धरण मे पुराणकार कहते हैं कि भक्त के लिए केवल पाषाण, धातु या काष्ठ की मूर्ति की पूजा-अर्चा कर लेना ही पर्याप्त नही है, वरन् उसे समझना चाहिये कि भगवान तो घट-घट में समाये

हुए हैं और सब प्राणी एक प्रकार से उनकी ही मूर्ति हैं। इस लिये इन प्राणियो मे से किसी की भी सेवा-सहायता करना भगवान की सबसे श्रेष्ठ पूजा और भक्ति है।

हिन्दू धर्म के अन्तर्गत भिन्न-भिन्न सम्प्रदाय अपने पृथक-पृथक सिद्धान्तो का प्रतिपादन करते रहते है, जिनमें से कोई अद्वैत, कोई द्वैत, कोई त्रैत, कोई विशिष्टाद्वैत और कोई शुद्धाद्वैत कहलाता है। इन सब सिद्धान्तो की बारीकियो को समझना सामान्य लोगो को काम नही है। वे तो परम्परा पर चलते हुए भगवान की मूर्ति या किसी अन्य प्रतीक के सम्मुख विनीत भाव से अपना मस्तक झुका देना, कुछ भेट चढ़ा देना या पूजा आरती कर देना ही अपने कर्तव्य की इतिश्री मान लेते है। वे नही जानते कि उनकी यह उपासना-प्रणाली धर्मशास्त्रों के अनुसार भी सबसे निम्न कोटि मे आती है। 'योगवासिष्ठ' मे एक स्थान पर कहा गया है—

अक्षरावगमलब्धये यथा स्थूलवर्तुलदृषत्परिग्रहः।
शुद्धबुद्धपरिलब्धये तथा दारुमृण्मयशिलामयार्चनम्॥

अर्थात्—"अक्षर-ज्ञान कराने के लिये जिस प्रकार छोटे बच्चो को छोटे-छोटे कङ्कड़, रेत आदि रख कर आकार दिखलाना पडता है, उसी प्रकार (नित्य) शुद्ध-बुद्ध परब्रह्म का ज्ञान कराने के लिए लकड़ी, मिट्टी या पत्थर की मूर्ति को स्वीकार किया जाता है।"

इस प्रकार इस समय लोग भक्ति-मार्ग के इस वास्तविक अर्थ को भूल गये हैं कि "भगवान प्रत्येक प्राणी में समाया हुआ है, इसलिए प्राणियों की सेवा करना ही भक्ति का सबसे बड़ा लक्षण है।" गुजरात के महान भक्त नरसी मेहता के एक भजन की प्रथम पंक्ति में ही कहा गया है कि "वैष्णव जन तो तेने कहिये जे पीर पराई जाणे रे।" 'सच्चा विष्णु भक्त (वैष्णव) तो वही है जो पराये दुःख को अनुभव

करके उसको यथाशक्ति मिटाने मे सहायक बनता है ।' केवल जिह्वा से भगवान के नाम की रट लगाये रहना अथवा घण्टा-घड़ियाल बजा कर दिन मे दो-चार बार आरती कर देना तब तक सार्थक नही माना सकता जब तक वास्तविक दीन-दु खी लोगो की दशा सुधारने के लिए भी कुछ प्रयत्न न किया जाय ।

हिन्दुओ मे ही नही मुसलमान धर्म के ज्ञाताओ का भी ऐसा ही मत है । इसका प्रतिपादन करने के लिए एक कथा प्रसिद्ध है कि "अबूबिन अदहम नाम के सन्त दीन-दु खियो की सेवा मे सदैव सलग्न रहते थे, चाहे ईश-प्रार्थना का समय भी निकल जाय । एक दिन आधी रात के समय चाँदनी मे कुछ लिखता हुआ एक 'फरिश्ता' उनको दिखाई पड़ा । सन्त ने उससे कि तुम क्या लिख रहे हो ? उत्तर मिला कि इस पुस्तक मे ईश्वर भक्तो की सूची लिखी जा रही है । सन्त पूछा कि जरा महरबानी करके यह देख दीजिये कि मेरा नाम भी उसमे है या नही ? फरिश्ते ने तमाम किताब देख कर कहा—आपका नाम तो इसमें नही है । सन्त चुप हो गये और फरिश्ता भी चला गया । दूसरे दिन वह फिर उसी स्थान पर दिखाई पडा और उसके हाथ मे दूसरी छोटी किताब थी । पूछने पर मालूम हुआ कि इसमे उन व्यक्तियों की नामावली है जिनको स्वय ईश्वर प्यार करते हैं । यह कह कर उसने किताब को खोला तो सबसे प्रथम अबूबिन अदहम का ही नाम लिखा था ।"

यह कथा ईश्वर-भक्ति के सच्चे स्वरूप को बहुत स्पष्ट शब्दों मे प्रकट करती है । जो लोग ईश्वर से प्रेम रखते हैं, उसकी पूजा, उपासना प्रार्थना मे समय व्यतीत करते हैं और इस तरह अनेक बुरे कामो से बचे रहते हैं, वे अवश्य प्रशसनीय है । पर जिन भक्तो को ईश्वर भी प्यार करता है, जिनका महत्त्व वह भी स्वीकार करता ने वही माने जा सकते हैं जो पीडित मानवता की सेवा के लिए हृदय से निःस्वार्थ कार्य

करते हैं, बिना किसी प्रकार की स्वार्थ-भावना के समाज की प्रगति, उत्थान के लिए अपनी योग्यता और शक्ति को खर्च करते हैं। ईश्वर-भक्ति का सर्वोपरि लक्षण यह है कि मनुष्य अपनी शक्ति और साधनो का एक अंश अवश्य ही दूसरों की भलाई के लिए-समाज के उपकारार्थ खर्च करे।

भक्ति का स्वरूप और उसकी प्राप्ति--

भक्ति का यह परोपकार युक्त और प्रेममय रूप ही सर्वोत्कृष्ट और मनुष्य को देवता बना देने वाला है। जब मनुष्य अपने स्वार्थ को त्याग कर दूसरो के हित की कामना करता है, उनका कष्ट मिटाने के लिये स्वयं श्रम करना, कष्ट सहना स्वीकार करता है, और इसके उपलक्ष्य मे किसी प्रकार की कामना नही रखता, तभी वह 'भक्त' की पदवी का अधिकारी बनता है। ऐसा भक्त चाहे बिल्कुल सामान्य वेष मे रहे, माला, चन्दन, तिलक आदि कुछ भी धारण न करे, तो भी भगवान की दृष्टि मे वही सर्वाधिक शुद्ध और पवित्र प्रतीत होता है। उसी को शाश्वत शाति और आत्म-सुख का उपहार प्राप्त होता है। इस प्रकार की भक्ति की महिमा 'श्रीमद्भागवत' में भी वर्णन की गई है जिसे भक्ति-मार्ग का सर्वोपरि ग्रन्थ माना गया है और जिसका सम्मान सामान्य जन से लेकर बडे से बडे विद्वान् भी करते हैं। उसमे देवहूति और भगवान कपिल के सम्वाद मे भक्त के लक्षणो का वर्णन करते हुए तीसरे स्कन्द के अध्याय २९ में कहा है—

निषेवितेनानिमित्तेन स्वधर्मेण महीयसा।
क्रियायोगेन शस्तेन नातिहिंस्रेण नित्यश.॥
मद्धिष्ण्य दर्शन स्पर्श पूजास्तुत्यभि वन्दनै:।
भूतेषु मद्भावनया सत्त्वेनासङ्गमेन च॥

महतां बहुमानेन दीनानमनुकम्पया।
मैत्र्या चैवात्मतुल्येषु यमेन नियमेन च ॥
आध्यात्मिकानुश्रवणान्नामसङ्कीर्तनाच्च मे।
आर्जवेनार्य सङ्गेन निरहङ्क्रियया तथा ॥
मद्धर्मणो गुणैरेतैः परिसंशुद्ध आशयः।
पुरुस्याञ्जसाभ्येति श्रुतमात्रगुणं हि माम् ॥

"भगवान कपिल ने देवहूति से कहा—हे माता! निष्काम भाव से अपने नित्य-नैमित्तिक कर्तव्यो का पालन कर नित्य प्रतिहिंसा रहित, उत्तम क्रिया योग का अनुष्ठान करने, मेरी प्रतिमा का दर्शन, स्पर्श, पूजा, स्तुति और वन्दना करने, सब प्राणियो में मेरी (भगवान की) भावना करने, धैर्य और वैराग्य के अवलम्बन, महा-पुरुषो का सम्मान, दीनो पर दया और समान स्थिति वालो के प्रति मित्रता का व्यवहार करने, यम नियमो का पालन, अध्यात्मशास्त्रो का श्रवण, भगवान के नामो का कीर्तन करने से, तथा मन की सरलता सत्पुरुषो के सङ्ग और अहंकार के त्याग से भक्तजनो का चित्त शुद्ध होता है और वह भगवान की तरफ आकर्षित होकर सच्चे धर्म का अधिकारी बनता है।"

ऊपर के वर्णन पर अच्छी तरह ध्यान देने से मालूम होता है कि वर्तमान समय में भक्ति-मार्ग एकाङ्गी रहा गया है। 'भगवान की प्रतिमा का दर्शन स्पर्श, पूजा, स्तुति, वन्दना और नाम कीर्तन' आदि तो किये जाते हैं, पर उनके सहकारी अथवा आधारभूत कर्म जैसे सब प्राणियो को भगवान का अंश जान कर आत्मवत् समझना, महापुरुषो का सम्मान दीनों पर दया, बराबरी वालो से सच्ची मित्रता आदि की की तरफ ध्यान नही दिया जाता। इसके बजाय अधिकाश व्यक्ति दूसरो का सत्व अपहरण करने, उनके साथ छल-कपट का व्यवहार करने, क्रूरतापूर्ण कार्यों द्वारा दूसरो को कष्ट पहुचाने मे भी किसी प्रकार

का सकोच नही करते, और फिर भी वे अपने भक्त कहते रहते हैं । भागवतकार ने आगे चलकर स्पष्ट शब्दो मे कह दिया है कि बिना परोपकार वृत्ति के केवल मूर्ति की पूजा-अर्चा निरर्थक है—

यथा वातरथो घ्राणमावृक्ते गन्धआशयात् ।
एव योगरत चेत आत्मानविकारि यत् ॥
अह सर्वेषु भूतेषु भूतात्मावस्थितः सदा ।
तमवज्ञाय मांमर्त्य. कुरुते ऽर्चाविडम्बनम् ॥
यो मां सर्वेषु भूतेषु सन्तमात्मानमीश्वरम् ।
हित्वार्चां भजते मौढ्याद् भस्मन्येव जुहोति सः ॥
द्विषतः परकामे मां मानिनो भिन्नदर्शिनः ।
भूतेषु बद्ध वैरस्य न मनः शान्ति मृच्छति ॥

"जिस प्रकार पुष्प की गन्ध वायु द्वारा उड कर मनुष्य की नासिका तक पहुँचती है उसी प्रकार भक्तियोग मे तत्पर और राग-द्वेष विकारों से शून्य चित्त परमात्मा को प्राप्त कर लेता है । भगवान आत्मरूप से सभी जीवो मे स्थिर रहते हैं, इसलिये जो सर्वभूतस्थित परमात्मा का अनादर करके केवल प्रतिमा के रूप मे ही उसका पूजन करते हैं, वह पूजा स्वाँग मात्र है । जो इस प्रकार जीवित परमात्मा की उपेक्षा करके प्रतिमा पूजन मे ही लगा रहता है वह मानो भस्म मे ही हवन करता है । जो भेददर्शी और अभिमानी पुरुष दूसरे जीवो के साथ बैर बाँधता है, और इस प्रकार उनके शरीरो मे विद्यमान मुझ आत्मा से ही बैर करता है, उसके मन को कभी शान्ति नही मिल सकती ।"

इस उद्धरण मे भागवतकार ने 'भक्ति' का लक्षण सबका आदर करना, सबसे प्रेम भाव रखना, किसी को शत्रु मानकर चिन्तन न करना बतलाया है । इसमे सन्देह नही कि इस प्रकार की भावनाओ के बिना मनुष्य कितना भी पूजा-पाठ करे वह सब ढोंग ही है । एक तरफ भगवान के प्रति आदर, श्रद्धा का भाव दिखलाना और दूसरी तरफ

उसी की प्रति-मूर्ति अन्य प्राणियो से द्वेष करना, उनका अपमान करना, स्पष्टतया परस्पर विरोधी बाते है । इस प्रकार की दुरगी नीति वाला मनुष्य भगवान को कभी प्रिय नही हो सकता । वरन् वे तो ऐसे ढोगी, भक्ति को बदनाम करने वाले व्यक्ति को किसी प्रकार का शुभ फल न देकर दण्ड के योग्य ही मानेगे । इसीलिए 'भागवत' मे कहा गया है—

अहमुच्चावचैर्द्रव्यैः क्रिययोत्पन्नयानघे ।
नैव तुष्येऽर्चितोऽर्चायां भूतग्रामावमानिनः ।।
अर्चादावर्चयेत्तावदीश्वरं मां स्वकर्म कृत ।
यावन्न वेद स्वहृदि सर्वभूतेष्व वा स्थितम् ।।
आत्मनश्च परस्यापि य करोत्यन्तरो दरम ।
तस्य भिन्नदृशा मृत्युर्विदधे भयमुल्वणम् ।।
अथमां सर्वभूतेषु भूतात्मान कृतालयम् ।
अर्चयेद्दानमानाभ्या मैत्र्याभिन्नेन चक्षुषा ।।

अर्थात्—"जो दूसरे जीवो का अपमान करता है वह यदि बहुत-सी बढिया-धटिया सामग्रियो से अनेक प्रकार के विधि विधान के साथ मेरी मूर्ति का पूजन भी करे, तो भी मैं उससे प्रसन्न नही हो सकता । मनुष्य को चाहिये कि वह अपने धर्म का अनुष्ठान करता हुआ तब तक भगवान भी प्रतिमा आदि का पूजन करता रहे जब तक उसे अपने हृदय में एवं सम्पूर्ण प्राणियो मे स्थित परमात्मा का अनुभव न हो जाय । जो व्यक्ति आत्मा और परमात्मा के बीच थोडा भी अन्तर करता है उस भेददर्शी को मैं मृत्युरूप से महान भय उपस्थित करता हूँ । अतएव समस्त प्राणियो के भीतर निवास करते हुए उन प्राणियो के ही रूप मे स्थित मुझ परमात्मा का यथायोग्य दान, मान, मित्रता के व्यवहार तथा समदृष्टि के द्वारा पूजन करना चाहिये ।"

जो लोग सदैव पुराणो पर 'पाषाण' और 'काष्ठ पूजा' का ही आक्षेप करते रहते हैं उन्हे उपर्युक्त उद्धरण से समझना चाहिये कि उनमे केवल मूर्ति पूजा का विधान ही नही बतलाया गया है, वरन् कुछ और भी है। 'भागवत' जैसे पुराण मे, जिस पर न मालूम कितने और कैसे आक्षेप किये जाते हैं, स्पष्ट कहा गया है कि 'जब तक मनुष्य अपने हृदय मे तथा समस्त प्राणियो मे पाये जाने वाले परमात्मा का अनुभव करने की स्थिति को प्राप्त न हो जाय तब तक वह ईश्वर की प्रतिमा का पूजन करके ही धर्मानुष्ठान करता रहे।"

यही बात कितने ही अन्य पुराणो और सनातन धर्म ग्रन्थो के में कही गई है। उनमे साफ-साफ बतलाया गया है कि 'अप्सु देवा: बालानाम् दिवि देवता मनीषिणाम्"—अर्थात् बाल बुद्धि के (अशिक्षित और अनपढ) लोगों के लिए तीर्थों का जल और पाषाण आदि की मूर्तियाँ ही ईश्वर के रूप में उपासना के योग्य होती हैं। विद्वान् मनुष्य सूर्य, अग्नि, वायु आदि की ईश्वर रूप मे उपासना करते हैं, और जिनको ज्ञान दृष्टि अथवा योग-दृष्टि प्राप्त हो गई है वे केवल आत्मा को ही पर ब्रह्म स्वरूप स्वीकार करते हैं।" सच्चे भक्त का लक्षण यही बतलाया गया है कि वह सब जीवो मे परमात्मा का अस्तित्व समझकर उनकी सेवा, सहायता, उपकार का प्रयत्न करता रहे, मूर्ति पूजा भले ही करता रहे या न भी करे। उपरोक्त उद्धरण के अन्त मे भगवान कपिलदेव ने समस्त ज्ञान का साराश बतलाते हुए अपनी माता देवहूति से यही कहा है—

"सब प्रकार के लोगो की अपेक्षा मुझे वे व्यक्ति ही उच्च और श्रेष्ठ जान पडते हैं जो अपने सम्पूर्ण कर्म, उनके फल तथा अपने शरीर को भी मुझे ही अर्पण करके भेदभाव छोडकर मेरी उपासना करते हैं। इस प्रकार मुझे ही चित्त और कर्म समर्पण करने वाले अकर्ता और समदर्शी पुरुष से सर्वोपरि और कोई नही दीख पडता।

अत: यह मान कर कि जीव रूप से साक्षात् भगवान ही सब में अनुगत हैं, समस्त प्राणियो को बडे आदर के साथ मन से प्रणाम करे।"

विष्णु भगवान के परम भक्त कहे जाने वाले प्रह्लाद जी ने भी दैत्य बालको को यह उपदेश दिया था कि भगवान को प्राप्त करके ससार सागर से पार हाने का उपाय समस्त प्राणियो मे ईश्वर के दर्शन करके उनके साथ वैसा ही व्यवहार करना है। जो इस सिद्धान्त के अनुसार व्यवहार करेगा उसे संसार की श्रेष्ठ से श्रेष्ठ सभी वस्तुये स्वयव प्राप्त हो जायेगी। उन्होने कहा—

न ह्यच्युतं प्रीणयतो वह्वायासो ऽसुरात्मजाः।
आत्मत्वात् सर्वभूताना सिद्धत्वादिह सर्वतः ॥
परावरेषु भूतेषु ब्रह्मान्तस्थावरादिषु।
भौतिकेषु विकारेषु भूतेष्वथ महत्सु च ॥
गुणेषु गुणसाम्ये च गुणव्यतिकरे तथा।
एकएवपरोह्यात्मा भगवानीश्वरोऽव्ययः।
केवलानुभवानन्द स्वरूप परमेश्वरः।
माययान्तर्हितैश्वर्य ईयते गुणसर्गया ॥
ज्ञान तदेतदमलं दुरवापमाह
नारायणो नरसखः किल नारदाय।
एकान्तिनां भगवतस्तदकिन्चनानां
पादारविन्दरजसाऽऽप्लुत देहिमांस्यात् ॥

"प्रह्लाद जी ने अपने सहपाठियो से कहा—मित्रो ! भगवान को प्रसन्न करने के लिए कोई बहुत बडा परिश्रम या प्रयत्न नही करना पडता, क्योकि वे समस्त प्राणियो के आत्मा हैं और सर्वत्र सबकी सत्ता के रूप मे स्वय सिद्ध वस्तु हैं। ब्रह्मा से लेकर तिनके तक छोटे-बडे समस्त प्राणियो मे, पञ्चभूतों से बनी वस्तुओ में, सूक्ष्म तन्मात्राओं मे, महत्तत्व मे, तीनो गुणो मे और गुणो की साम्यावस्था प्रकृति मे

एक ही अविनाशी परमात्मा विराजमान हैं। वे ही समस्त सौन्दर्य, माधुर्य और ऐश्वर्यों की खान है। वे केवल अनुभव स्वरूप, आनन्द स्वरूप एक मात्र परमेश्वर ही है। गुणमयी माया के द्वारा ही उनका ऐश्वर्य छिप रहा है, इसके निवृत्त होते ही उनके दर्शन हो जाते हैं। यह निर्मल ज्ञान सर्वाधिक महत्त्व का है। इसका उपदेश सर्व प्रथम भगवान नर-नारायण ने नारद जी को किया था। पर जो लोग भगवान के अनन्त प्रेमी और अकिञ्चन (सम्पतिहीन) सच्चे भक्तो की चरणरज को शिरोधाय करते है (अर्थात् उनके उपदेश को स्वीकार करके व्यवहार मे लाते है) उनको यह ज्ञान सहज ही मे मिल जाता है।"

प्रह्लाद ने भगवान को समस्त ऐश्वर्यों, धन, सम्पत्ति, महल, राज्य आदि का भण्डार बताया, पर अन्त मे यह भी कह दिया कि जो कोई अपना जीवन दीन-हान और अत्यन्त गरीब, उपेक्षणीय लोगों की सेवा करने मे लगा देता है उसको सहज मे ही भगवान के वास्तविक स्वरूप का ज्ञान हो जाता है। उसका सब प्रकार का भ्रम मिट कर वह 'परम शक्तिशाली और सामर्थ्यवान' बन जाता है। मनुष्य जीवन को सार्थक बनाने और सब तरह की सासारिक सफलता प्राप्त करने का मार्ग यह नही है कि मनुष्य किसी एकान्त कोने मे घुस कर केवल भगवान का नाम लेता रहे, उनकी प्रतिमा पर फूल-पत्ता चढाता रहे, वरन् समाज के पददलित अङ्ग—गरीब लोगो के उद्धार—उत्थान के लिये प्रयत्न करते रहना ही भगवान को प्रसन्न करने और प्राप्त करने का सच्चा उपाय है।

पुराणो में जगह-जगह जो समदर्शी और आत्मवेत्ता होने का उपदेश दिया गया है, वह केवल ग्रन्थ में पढ लेने अथवा कथा सुन लेने मात्र की वस्तु नही है वरन् उसके अनुसार सदैव आचरण करने-उन सिद्धान्तो के अनुसार हमेशा व्यवहार करने से ही मनुष्य को मानव

जीवन की वास्तविकता का पता लग सकता है और वह दूसरों के साथ स्वय भी सर्वोच्च गति को प्राप्त कर सकता है। हमे स्मरण रखना चाहिये कि इस सच्चे धर्म का पालन ही इस लोक को स्वर्ग लोक मे परिणित कर सकता है, और तभी हम भगवान के ऐश्वर्य के प्रत्यक्ष दर्शन कर सकते हैं।

भक्ति और कर्तव्यनिष्ठा —

इतना ही नही कि भक्ति का रूप श्रद्धा, दया, परोपकारमय है, वरन् वह कर्तव्यनिष्ठा पर भी बहुत अधिक जोर देती है। अनेक व्यक्तियो का ख्याल है कि भक्ति-मार्ग पर चलने वाले मनुष्य स्वभाव से ढीले, कठिनाइयो से परांमुख और सघर्षमय जीवन के अयोग्य होते हैं। अपने इष्ट देव की कृपा पर ही पूर्णतया आश्रित रहने के कारण वे उद्योग, श्रम, साहस आदि गुणो की दृष्टि से पिछड़ जाते है और प्राय: भाग्यवादी बन कर जीवन सग्राम में असफल ही सिद्ध होते हैं। इतिहास के पाठक बतलाते हैं कि विदेशी मुसलमानो के आरम्भिक आक्रमणो के समय सोमनाथ और मथुरा जैसे तीर्थ स्थानो मे उन देवताओ के भक्तो और पुजारियो ने आक्रमणकारियो के प्रतिरोध का सामान्य प्रयत्न भी नही किया और अन्तिम समय तक यही कहते रहे कि "भगवान स्वयं इन दुष्टों का नाश कर देगे।" उनकी अकर्मण्यता और कर्तव्य विमुखता का परिणाम यह हुआ कि महमूद गजनवी अनेक बार सोमन थ और मथुरा के विशाल मन्दिरो को तोड और लूट कर करोड़ो का धन ले गया और उसने धार्मिक जनो की घोर दुर्दशा कर डाली।

पर सच पूछा जाय तो यह भक्ति कर विकृत रूप है। 'कल्कि-पुराण' में इस सम्बन्ध मे जो अभिमत प्रकट किया गया है, वह इससे सर्वथा भिन्न प्रकार का है। उसमें कही यह नहीं कहा गया है कि भक्त को लँगोटी पहिन कर या शरीर भर मे तिलक-छापा लगा कर

केवल भगवान का नाम जपते रहना चाहिये और सांसारिक कर्तव्यो की उपेक्षा कर देनी चाहिये। इसके विपरीत 'कल्कि' ने यही उपदेश दिया है कि मनुष्य का सबसे बडा धर्म और ईश्वर को प्रसन्न करने का उपाय प्राणपण से अन्याय और पाप कर्मों का विरोध करना उनको नष्ट करने के लिए जूझना ही है। इसका एक बहुत बडा उदाहरण राजा 'देवापि' और 'मरु' के साथ हुआ कथोप कथन है। वे लोग बहुत वर्षों से भगवान की प्राप्ति के लिए तपस्या कर रहे थे। जब अनेक ऋषि-मुनियो के साथ वे 'कल्कि' के समीप आये तो उनका दर्शन करके उन्होने अपने जन्म को सफल समझ लिया। उनको भक्ति-मार्ग द्वारा भगवान की उपासना करते हुए बहुत अधिक समय हो गया था और अब उनका वह उद्देश्य पूरा भी हो चुका था, इसलिए उन्होने कल्कि जी के पूछने पर यही कहा—

मरुणाऽनेन मुनिभिरेभिः प्राप्य पदाम्बुजम्।
तव काल करालास्याद्या स्यम्‍ात्मवतां पदम्॥

देवापि ने कहा—मैंने मरु और इन समस्त मुनियो के साथ आपके चरण कमलो के दर्शन प्राप्त कर लिये हैं। इसलिये हमारा विश्वास है कि अब हमको काल के कराल गाल मे—भव-बन्धन मे नही गिरना पडेगा और हमको आत्मवेत्ता-ब्रह्मज्ञानियो का पद प्राप्त हो जायगा।"

इस प्रकार 'देवापि' और 'मरु' ने भक्तों की परम्परानुसार भगवान से जीवन मुक्ति और वैकुण्ठ की प्राप्ति का 'वरदान' ही माँगा। उनका आशय यही था कि हम अनेक वर्षों से भगवान का अनुग्रह प्राप्त करने के निमित्त जप-तप कर रहे थे। आज आपका साक्षात्कार हो जाने से हम कृतार्थ हो गये और अब आप हमको अपने लोक में स्थान दीजिए।

पर 'कल्कि' ने उनकी इस भावना को समय और परिस्थिति के प्रतिकूल समझा। क्योकि वे देख रहे थे कि इस समय समस्त जगत मे पाप और पाखण्ड व्याप्त है, इसलिये भगवान के सच्चे भक्तो का कर्तव्य है कि उसके सुधार का प्रयत्न करे जिससे अन्य जीवो के लिये भी भक्ति और मुक्ति का मार्ग प्रशस्त हो। यदि केवल दस-पाँच व्यक्ति पुण्यमय जीवन बिता कर मुक्ति के अधिकारी बन गये और संसार के शेष मनुष्य उसी प्रकार पाप-कर्मो मे लिप्त रह कर नारकीय-जीवन का अनुभव करते रहे, तो इसका क्या महत्त्व हो सकता है ? इसलिए उन्होने उन दोनो से कहा—

युवां परम धर्मज्ञौ राजानौ विदिता बुभौ।
मदादेश करौ भूत्वा निज राज्य भरिष्यथः ॥
हत्वा कृत युगं कृत्वा पालयिष्याम्यं हप्रजाः।
तपोवेशवृतं त्यक्त्वा समारुह्य रथोत्तमम् ॥
युवां शस्त्रास्त्र कुशलौ सेनागरण परिच्छदौ।
भूत्वा महारथौ लोके मया सट चरिष्मथ ॥

"तुम दोनो धर्मतत्व के बड़े ज्ञाता राजवशीय पुरुष हो। इस समय मेरे आदेश को स्वीकार करके राज्य कार्य करो। मैं पापियो का सहार करके सत्ययुग की स्थापना तथा प्रजापालन की सुव्यवस्था करूँगा। इस अवसर पर तुम भी तपस्वी वेष को त्याग कर उत्तम रथ पर सवार हो जाओ। तुम लोग अस्त्र-शस्त्र के सचालन मे कुशल हो और बडे योद्धा हो इसलिए इस सत्ययुग की स्थापना के अभियान में हमारे सहयोगी बन कर रहना।"

कल्कि-चरित्र का यह प्रकरण 'भगवत गीता' मे वर्णित भगवान कृष्ण और अर्जुन के सम्वाद से मिलता-जुलता है। वहाँ भी अर्जुन सासारिक कर्तव्य की अपेक्षा बन मे रह कर तपस्या करने को ही महत्व दे रहा था। उसने यहाँ तक कह दिया था—

गुरूनहत्वा हि महानुभावान् श्रेयोभोक्तु भैक्ष्यमपीह लोके ।

अर्थात् "इन गुरुजनो से साथ सग्राम करके उनकी हिंसा करने की अपेक्षा तो भिक्षुक बन कर जीवन निर्वाह करना ही अच्छा है।" पर भगवान कृष्ण ने इस भावना को गर्हित और कर्तव्य विमुखता की द्योतक बतला कर कहा—"क्लैव्य मास्म गमः पार्थ नैयत्त्वय्युपपद्यते ।" 'हे अर्जुन ! इस प्रकार कर्तव्य से भागना तुमको शोभा नही देता ।' धर्म, भक्ति या ज्ञान का यह तात्पर्य नही कि सकट के समय, कठिनाई या हानि-लाभ की आशङ्का से कर्तव्य पालन से हटने की चेष्टा की जाय । वह भक्ति भूठी है जो मनुष्य को निष्क्रियता की ओर ढकेलती है । इसके विपरीत सच्ची भक्ति का लक्षण तो यह होना चाहिये कि जब स्वयं भगवान हमारा रक्षक है और हम प्रत्येक कार्य उसी के इङ्गित (इशारे) पर करते हैं तो हमको भय किस बात का ? 'गीता' मे भगवान ने स्वय स्पष्ट कर दिया है—

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति
भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढानिमायया ।
तमेव शरण गच्छा सर्वभावेन भारत ।
तत्प्रसादात् परा शान्ति स्थान प्राप्यसि शाश्वतम् ॥

(अ० १८-६१, ६२)

"हे अर्जुन ! मनुष्य के शरीर रूप यन्त्र मे आरूढ़ होकर अन्तर्यामी परमेश्वर सब प्राणियो को अपनी माया के द्वारा भ्रमित करता है, नचाता रहता है। इस लिए जो मनुष्य सब प्रकार से अनन्य भाव से उस परमेश्वर की शरण में जाता है वह उसकी कृपा से सच्ची शाति और स्थिरता को प्राप्त होता है ।"

सच्चे भक्त की स्थिति—मानसिक-भावना ऐसी ही होती है । वह अच्छी तरह समझता है कि इस संसार मे किसी एक व्यक्ति की, चाहे वह भौतिक दृष्टि से कितना भी बड़ा और शक्तिशाली क्यों न

हो—सिकन्दर और नैपोलियन की तरह सर्वत्र विजय प्राप्त करने वाला क्यो न हो, कोई हस्ती नही है। ईश्वरीय शक्ति देखते-देखते बडे-बड़े सम्राटो और चक्रवर्तियो को मसल कर रख देती है। इसलिए यह अपने को उसी विश्व नियन्ता के आश्रित समझ कर और उसी के विधान को सर्वोपरि मान कर निर्भय हो जाता है। वह फिर सासारिक दृष्टि से कैसी भी स्थिति मे रहे, चाहे अशेष धन सम्पदा का स्वामी बन जाय और चाहे अपनी इच्छा से खेतो मे से दाना बीन कर उदर पोषण करे, उसे अशान्ति, क्लेश, भय नही हो सकता।

ऐसे व्यक्ति की आत्मा सदैव निर्भय, निर्द्वन्द्व और उच्च अवस्था मे रहती है। पर ऐसी शान्ति का अर्थ जो लोग निष्क्रियता, दीनता-हीनता लगाते हैं, वे अवश्य ही बडी गलती करते है। ईश्वर कभी अपने भक्तो को दुर्दशा, हीनावस्था में नही रखना चाहते। वे इस ससार रूपी कर्मक्षेत्र मे उनको पूर्ण उद्योग, प्रयत्न करने का आदेश देते हैं और साथ ही विश्व-संचालक शक्ति का ध्यान (उपासना) करने की प्रेरणा करते है। जो कोई व्यक्ति इनमे से केवल एक ही मार्ग का अनुसरण करना चाहता है, उसका आचरण ईश्वरीय-विधान के प्रतिकूल माना जायगा और अन्त मे उसे हानि उठानी पडेगी। 'गीता' का यही सिद्धान्त है—

तस्मात्सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च।
मय्यर्पित मनो बुद्धिर्मामिवैष्यस्यसशयम् ।।

"इसलिये हे अर्जुन ! तू सदैव मेरा स्मरण कर और युद्ध भी कर। इस प्रकार जब तू अपने मन और बुद्धि को भगवदार्पण कर देगा तो निश्चय ही परम पद को प्राप्त कर लेगा।"

भगवान अपने भक्त से कभी यह नही चाहते कि वह लौकिक कर्मों को त्याग कर - घर-गृहस्थी की तरफ से लापरवाह होकर केवल माला ही फेरता रहे। अथवा साधु-वेष धारण करके भजन-पूजा के

नाम पर दूसरो के ऊपर भारस्वरूप बन जाय। वरन् वे भक्ति और में पूरी तरह समन्वय रखने को ही सर्वश्रेष्ठ मार्ग बतलाते हैं। वे कहते हैं कि न तो संसार के माया-मोह मे, लोभ-लालच मे इतने निमग्न हो जाओ कि तुमको आत्मा का भी ख्याल न रहे और धन, अधिकार की खातिर आत्मा का पतन करने वाले कार्य करने लग जाओ, और न जप-तप, भजन-उपासना मे ही इस तरह लीन हो जाओ कि जीवन-निर्वाह के साधनो के लिए भी तुमको दूसरो का मुख ताकना पड़े। बुद्धिमान का लक्षण यही है कि धर्म और कर्म दोनो पक्षो को अपनी परिस्थिति के अनुसार सँभालता रहे और सबका सूत्रधार उसी भगवान को समझ कर जैसी भी स्थिति आ जाय उसमे शान्त और निर्भय बना रहे।

इस सिद्धान्त की दृष्टि से 'कल्कि-पुराण' में वर्णित राजा शशिध्वज का उपाख्यान निस्सन्देह बहुत अधिक प्रेरणाप्रद हैं। वह भगवान का दृढ़ भक्त थो और कल्कि जी को भगवान का अवतार भी मानता था। पर जब वे दिग्विजय करते हुए उसके राज्य में पहुँचे तो उसने एक क्षत्रिय और राज्य का रक्षक होने की हैसियत से युद्ध करने में जरा भी आनाकानी नही की। यद्यपि उसकी रानी ने यह शंका की कि "कल्कि जी तो विष्णु ने अवतार हैं और हम विष्णु भगवान के उपासक 'वैष्णव' हैं। ऐसी दशा में आप उनके ऊपर शस्त्र-प्रहार कैसे करोगे ?"

पर राजा शशिध्वज का दृष्टिकोण इस सम्बन्ध में सदैव बहुत स्पष्ट रहा। उसने यही कहा कि "जब कल्कि जी मानव रूप में नर-लीला करते हुए हमारे सम्मुख आक्रमणकारी के रूप में उपस्थित हुए हैं तो हमको भी अपने धर्म-कर्तव्य का पालन करते हुए पूरी शक्ति से उनका सामना करना चाहिये। चाहे हम हृदय में कभी उनके प्रति शत्रु-भाव नहीं रख सकते, पर इस कारण अपने लौकिक कर्तव्य-पालन से पीछे हटना कदापि उचित नही।"

नौवाँ अध्याय

'कल्कि-पुराण' का माया वर्णन

भारतीय इतिहास, पुराण और अन्य धर्मग्रन्थो में ससारी जीवों को भ्रमित करने वाली माया का वर्णन अवश्य पाया जाता है। हमारे अध्यात्म-शास्त्र मे जीव को परमात्मा का अंश और शुद्ध-बुद्ध माना गया है। पर वही जीव इस संसार मे आकर, विशेषतः सर्वश्रेष्ठ कही जाने वाली मनुष्य-योनि को पाकर धन, सम्पत्ति, परिवार की माया मे ऐसा लिप्त हो जाता है कि अपने मूल स्वरूप को बिल्कुल भूल जाता है, और ऐसे-ऐसे कर्म करने लगता है जिनकी चर्चा करना भी उचित नही। इस अवस्था को देख कर अनेक लोग पूछा करते हैं कि परमात्मा का अंश होने पर भी जीव की ऐसी दुर्दशा, इतना पतन क्यो हुआ करता है?

प्राचीन भारतीय अध्यात्मवेत्ताओ ने इसका कारण 'माया' को ही बतलाया है। उनके कथनानुसार 'माया' ने ईश्वर तथा जीव के बीच एक ऐसा पर्दा डाल रखा है जिससे वह अपने चैतन्य तथा शुद्ध रूप को भूल कर सांसारिक प्रपञ्चो मे लिप्त होकर पतन की परि-स्थितियों मे पहुँच जाता है।

'कल्कि-पुराण' में माया का वर्णन अनन्त मुनि के उपाख्यान के रूप में किया गया है। जिस समय सिंहलद्वीप में राजकुमारी पद्मा के साथ 'कल्कि' का विवाह हो रहा था उसी अवसर वे राज-सभा में आ

पहुचे । आकाशवाणी के अनुसार उनको 'कल्कि' के दर्शन करके मुक्ति-लाभ करनी थी । कल्कि जी ने उनसे कहा—

कृत दृष्टं त्वया ज्ञातं सर्वं याह्य निवर्तकम् ।
अदृष्ट मकृतश्चेति श्रुत्वा हृष्टमनः मुनिः ॥

अर्थात्—"हमारे किये हुए समस्त कर्मों को तुमने देखा है और वे तुमको सब ज्ञात हैं । अदृष्ट (कर्मो) का खण्डन कोई नही कर सकता और बिना कर्म किये किसी को उसके फल की प्राप्ति भी नही होती । यह सुन कर अनन्त मुनि बहुत सतुष्ट हुए ।"

अनन्त मुनि ने बताया कि "मैं जन्म के समय क्लीव (नपुसक) पैदा हुआ । इस पर मेरे पिता ने शिवजी की आराधना करके उनसे वर प्राप्त करके मुझे पुंसत्व प्रदान कराया । पिता के देहान्त होने पर मैं बहुत दुःखी हुआ और विष्णु भगवान की आराधना करने लगा । उन्होंने मेरी भक्ति से सतुष्ट होकर स्वप्न में मुझ से कहा—

"इस ससार मे स्नेह, ममता आदि की भावना हमारी माया है । 'यह हमारे पिता हैं, यह हमारी माता है' ऐसी ममता से जिनका मन व्याकुल होता है, वह मेरी माया द्वारा शोक, दुःख भय, उद्वेग, जरा, मृत्यु आदि का क्लेश अनुभव किया करता है । भगवान की माया को देखने की कामना से मैं पुरुषोत्तम क्षेत्र मे आश्रम बनाकर रहने लगा और अपनी सद्गति के विचार से भगवान की उपासना, ध्यान, जप आदि में अधिकाश समय लगाने लगा । एक दिन मैं बन्धु-बान्धवो सहित द्वादशी का पारण करने के लिए समुद्र मे स्नान करने गया तो भयंकर लहरों में फँस कर दूर तक बह गया । दक्षिण दिशा मे बड़ी दूर जाकर किनारे लगा । वहाँ एक ब्राह्मण ने मेरी रक्षा क और कुछ समय तक मुझे अपने घर में रख कर अपनी कन्या का विवाह मुझसे कर दिया । उस स्थान मे भी बहुत वर्षों तक निवास

करके मैं एक प्रसिद्ध धनी-मानी बन गया और मेरे पांच पुत्र हो गये जिनमे से बडे पुत्र का विवाह मैं धूमधाम के साथ करने लगा। इस उप-लक्ष्य मे मैं फिर समुद्र मे स्नान करने गया, तो उसमे से बाहर निकलने पर मुझे फिर अपने सब पुराने बन्धु बान्धव दिखाई पडे जो स्नान करके द्वादशी का पारणा करने की तैयारी कर रहे थे। उन्होने मुझसे कहा— "अनन्त! तुम ऐसे व्याकुल क्यो दिखाई पड रहे हो। क्या तुमने जल के भीतर या स्थल मे कोई आश्चर्यजनक प्रसंग देखा है?"

अनन्त ने कहा—मैं कुछ कह नहीं सकता। मुझे श्री भगवान की माया ने विमूढ कर दिया है, जिससे मेरी इन्द्रियाँ व्याकुल हो रही हैं।" अब मैं अपने पुराने स्त्री-पुत्रो को सामने खडा देख रहा था और उधर मुझे अपनी नई भार्या, उसके पांच पुत्रो और बडे पुत्र के विवाह की चिन्ता सता रही थी। इस प्रकार मुझे पागल के समान अवाक् खडा देख कर मेरी स्त्री घबड़ा गई और कहने लगी— 'देखो, इनको क्या हो गया?'

उसी समय वहाँ एक तेजस्वी परमहस आ गये। उन्होने मुझ से कहा—'हे अनन्त! तुम्हारी चारुमती नाम की स्त्री, बुध आदि पाँच पुत्र तथा अटा-अटारियो से सुशोभित अपूर्व गृह, धन-भण्डार सब कहाँ गया? यहाँ तुम कैसे आ गये? आज तो तुम्हारे पुत्र का विवाह था और उसमे हमको भी निमन्त्रण दिया गया था? पर वहाँ तो तुम सत्तर वर्ष के वृद्ध दिखाई पड़ते थे और इस समय पच्चीस तीस के युवक जान पड़ रहे हो? और पास में तुम्हारी युवती पत्नी भी खड़ी है? यह क्या रहस्य है? क्या तुम वही अनन्त हो अथवा अन्य कोई हो? मैं भी क्या वही भिक्षुक हूँ अथवा अन्य कोई हूँ? हमारा तुम्हारा इस स्थान पर मिलना इन्द्र जाल के समान जान पडता है। तुम स्वधर्म-निष्ठ सम्मानीय गृहस्थ हो और मैं परमार्थ चिन्ता मे तत्पर ब्राह्मण हूँ। पर इन सब लोगो के समक्ष हमारी बातें बालको अथवा उन्मत्तों के

समान असङ्गत (बे सिर पैर की) जान पडती हैं। हे ब्रह्मन्! मुझे जान पडता है कि यह जगदीश्वर विष्णु की माया ही है। इससे ही त्रिलोकी के प्राणी मोहित हुए रहते हैं।"

पाठको को भी यह वर्णन असङ्गत-सा ही जान पडेगा कि कोई व्यक्ति एक ही घण्टे के भीतर सत्तर वर्ष का वृद्ध और पच्चीस वर्ष का युवक कैसे दिखाई पड सकता है ? साथ ही जितनी देर मे अनन्त के पुरुषोत्तम क्षेत्र निवासी बन्धु-बान्धव स्नान करके द्वादशी के पारणे की तैयारी ही कर रहे थे, उतने ही समय में उसने नई स्त्री से विवाह, पाँच पुत्रो का जन्म और बडे पुत्र के विवाह की तैयारियो की घटनायें एक स्वप्न की तरह कैसे देख ली ? वास्तव मे इस उपाख्यान से लेखक का आशय यही है कि इस ससार मे हम जो कुछ देखते, सुनते और करते हैं वह माया का एक खेल ही है। उसमे बहुत अधिक वास्तविकता मानना व्यर्थ है। यह दृश्य क्षण भर मे किसी दूसरे रूप मे बदल सकता है। इसलिए मनुष्य को सासारिक व्यवहार करते समय अनित्यता और अस्थिरता की भावना सदैव, ध्यान में रखनी चाहिए और संसार के प्रपञ्चो में इतना अधिक लिप्त कभी नही हो जाना चाहिये कि जिससे जीवन के असली लक्ष्य परमार्थ और परलोक-सुधार में बाधा पड़ जाय।

ज्ञानी मनुष्य वही कहा जा सकता है जो दुनिया में रह कर और उसके समस्त व्यवहारो को करता हुआ भी यहाँ की माया के फन्दे मे न फँसे और अपने को इस 'यात्री-निवास' मे एक यात्री की तरह ही समझता रहे, जहाँ से न मालूम कब उठ कर चला जाना पडेगा। इसी भाव को प्रकट करने के लिये पुराणकार ने कहा है—

मायया मायया जीव-पुरुषः परमात्मनः।
संसार शरण व्यग्रो न वेदात्मगतिं क्वचित्॥

अर्थात्—"परमात्मा की माया द्वारा सब प्रकार से ढके-बँधे रहने से यह प्राणी ससार के प्रपञ्चो मे लिप्त रहता है और अपने उद्धार का कुछ भी उपाय नही सोच पाता।"

अनेक व्यक्ति इस माया को जीतने के लिए कठोर तपस्या का अवलम्बन करते हैं। वे सब प्रकार के भोगो को त्याग कर इन्द्रियो का दमन करने का प्रयत्न करते हैं। पर इस प्रकार का आचरण उपयोगी नही होता। जो लोग इस मार्ग पर बहुत कठोरता के साथ चलते हैं प्रायः उनके शरीर का क्षय हो जाता है। तब या तो उनकी मृत्यु हो जाती है, जो एक प्रकार की आत्महत्या के सदृश्य होती है, अथवा वे जडवत् बन कर निकम्मा जीवन बिताते हैं। अनेक पौराणिक वर्णनो मे ऐसी तपस्याओ का वर्णन किया गया है जिनमे तपस्वी व्यक्ति का शरीर सूख कर लकडी हो गया, उसके शरीर पर मिट्टी जम गई और केवल साँस चलना ही जीवन का एक मात्र चिन्ह शेष रह गया। यदि इन बातों को सत्य ही मान लिया जाय, और हम जानते है कि प्राचीन समय मे कुछ 'ज्ञान मार्गी' सम्प्रदायो और अवधूत आदि श्रेणी के संन्यासियो मे ऐसे सिद्धान्तो का प्रतिपादन किया गया था, तो भी इससे उन तपस्वियो का अथवा ससार का कुछ हित हुआ हो, ऐसा विदित नही होता।

आज भी उस प्राचीन परम्परा का अनुसरण करके कुछ लोग वस्त्र तक त्याग कर बिल्कुल नग्न रहने लगते हैं, कठोर शीत और शरीर को झुलसा देने वाली गर्मी को सहन करते हैं, गर्मी मे जलती हुई बालू या पत्थरों पर खडे रह कर जप करते हैं और जाड़े में ठण्डे जल मे खड़े होकर ध्यान लगाते हैं, पर उनमें भी माया, मोह, अहङ्कार, क्रोध आदि की मनोवृत्तियाँ बनी ही रहती हैं। इस दृष्टि से ऐसी तपस्या आत्मोन्नति के लिए बेकार ही सिद्ध होती है और उससे मनुष्य परमात्मा का सान्निध्य प्राप्त नहीं कर सकता। इस तथ्य का समर्थन करते हुए राज-सभा मे उपस्थित राजाओ मे अनन्त मुनि ने कहा—

"भगवान की माया से इस प्रकार व्याकुल और भ्रमित होकर मैंने स्त्री, पुत्र, धन-धान्य सबका त्याग कर वन मे जाकर विधि-विधान सहित तप करना आरम्भ किया परन्तु किसी प्रकार से भी इन्द्रिय और मन को वशीभूत न कर सका। मैं वन मे बैठ कर जब परमात्मा का ध्यान करता, उस समय भी स्त्री, धन तथा अन्यान्य सासारिक बातें मुझे स्मरण हुआ करती थीं। मेरे अतःकरण मे स्त्री, पुत्र, ऐश्वर्य आदि का स्मरण होने से दु ख, शोक, भय आदि उत्पन्न होकर मेरा अन्तरात्मा अति व्याकुल हो जाता और इससे, ध्यान, धारणा मे विघ्न उपस्थित होने लगता। पुन मैंने इन्द्रियो को नाश करने का सङ्कल्प किया। मैंने विचारा कि इन्द्रियो को नष्ट करते ही मन वश में हो जायगा।

"जब इस प्रकार सङ्कल्पपूर्वक मैं इन्द्रियो का दमन करने लगा तो उन इन्द्रियो के अधिष्ठातृ देवगण मेरी ओर देखने लगे और कहा—हम दश इन्द्रियो के दश देवता हैं। हमको छिन्न-भिन्न तथा नष्ट करना तुम्हे उचित नही। क्या इस प्रकार से मन को वशीभूत करके तुम अपना कल्याण कर सकोगे? कदापि नही। इन्द्रियो के छिन्न-भिन्न करने से तुम्हारे मर्म मे व्यथा होने पर तुम मृत्यु को प्राप्त हो जाओगे। क्या तुम नही देखते कि जो अन्धे, बहरे और लूले-लङ्गडे व्यक्ति एकान्त मे पड़े रहते हैं उनका मन भी विषय-भोगो के लिए लोलुप होता है? जीव तो अपने-अपने 'कर्मों' के आधीन रहता है। मुक्ति और ससार-बन्धन का कारण मन है। जगदीश्वर की माया के अनुसार मन ही लोलुप जीव को ससार चक्र मे घुमाता रहता है। इसलिए हे अनन्त मुनि! तुम मन को वशीभूत करने के लिए विष्णु भगवान् की भक्ति करो। भक्ति ही निरन्तर समस्त कर्म का नाश करके सुख और मोक्ष प्रदान करती है। हरि-भक्ति से द्वैत-अद्वैत का ज्ञान हो जाता है। हरिभक्ति आनन्द-सन्दोह देने वाली है। हे महा-

मते ! हरिभक्ति से ही जीवकोष का दमन होगा और भगवान का सान्निध्य प्राप्त करके तुम कृतार्थ हो सकोगे।"

पुराणकर्ता ने इस उपाख्यान द्वारा स्पष्ट रूप से कठोर व्रतो और शरीर को सुखा देने वाली तपस्या के स्थान पर भक्ति-मार्ग का प्रतिपादन किया है जैसा कि उसने इसके अन्त में अलङ्कारमयी रचना द्वारा व्यक्त किया है—

संसाराब्धि-विलासलालसमतिः श्री विष्णुसेवादरो।
भक्त्यानमिदं स्वभेद-रहित निर्माय धर्मात्मना।
ज्ञानोल्लास-निशात-खड्गमुदितः सद्भक्ति दुर्गाश्रयः।
षड्वर्ग जयतादशेष जगतामात्म स्थित वैष्णवः॥

अर्थात्—'जो धर्मात्मा वैष्णव विष्णु सेवा परायण होने पर भी विलास-कामना से संसार मे आसक्त रहते हैं, वे इस आख्यान द्वारा अभेद ज्ञान-रूप उल्लसित तीक्ष्ण खड्ग को धारण कर भक्ति रूप दुर्ग के आश्रय से शरीर स्थित काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य इन छः शत्रुओ को पराजित करें।

कठोरता पूर्ण ज्ञान मार्ग और भक्ति मार्ग का यह विवाद बहुत पुराना है और हम इसका उल्लेख आज से ढाई हजार वर्ष पूर्व होने वाले भगवान बुद्ध के चरित्र मे स्पष्ट रूप से पाते हैं। उन्होने आरम्भ मे आत्मज्ञान प्राप्त करने के उद्देश्य से कठोर तपस्या का ही सहारा लिगा था और खान-पान का अत्यन्त कड़ा संयम करके शरीर को अशक्त बना डाला था। पर इससे भी जब किसी प्रकार की आत्मोन्नति के चिन्ह दृष्टिगोचर हुए तब उन्होने समझा कि शरीर तो एक यन्त्र के समान है जिसमे संचालक मन, बुद्धि आदि हैं। इसलिए जब तक ज्ञान और भक्ति के समन्वय द्वारा मन को सयत और आज्ञाकारी न बनाया जायगा तब तक इहलौकिक और पारलौकिक कल्याण की प्राप्ति होना असम्भव है। इसके बाद उन्होंने जङ्गल में रहकर तपस्या करने की

प्रणाली को त्याज्य मान लिया और लोकालय मे रह कर सद्ज्ञान और सत्कर्म द्वारा अपना और दूसरो का उपकार करने को ही आत्मोद्धार का मार्ग स्वीकार किया।

इस अनन्त उपाख्यान मे भी 'कल्कि' ने अनन्त मुनि को यही उपदेश दिया है कि 'बिना कर्म किये किसी को उसके फल की प्राप्ति नही हो सकती।' अगर तुम मोक्ष के अभिलाषी हो तो उसके लिए भी तुमको कर्म द्वारा ही उसके योग्य बनना पडेगा। हाँ, यह आवश्यक है कि उन कर्मों मे तुम आसक्त मत बनो, फल की आशा त्याग कर केवल कर्तव्य भाव से उन्हे करते रहो। इस प्रकार अनासक्त कर्म योग का साधन ज्ञान और भक्ति के समन्वय से ही उत्तमता पूर्वक हो सकता है और 'गीता' मे भगवान कृष्ण ने इसी का उपदेश दिया है। 'कल्कि पुराण' ने भी उसी सिद्धान्त को अनन्त मुनि की कथा के रूप मे प्रकट किया है और इसका माहात्म्य बतलाते हुए कहा है-

अनन्तस्य कथामेतामज्ञान ध्वान्त नाशिनीम्।
मायानियन्त्री प्रपठञ्छृण्वन्बन्धाद्विमुच्यते ॥

अर्थात्—"अनन्त की इस कथा के पाठ करने तथा सुनने से संसार की माया छूट जाती है, अज्ञान रूप अधकार दूर होता है और बधन से मुक्ति प्राप्त होती है।'

'भागवत' का पुरञ्जन-उपाख्यान्—

जैसा हम ऊपर लिख चुके है माया के बन्धनो और उससे छुटकारा पाने के विषय मे सभी पुराणकारो ने विचार किया है, क्योकि यह अध्यात्म-मार्ग की एक मुख्य समस्या है। अध्यात्म केवल कहने सुनने की चीज नही है वरन् उसका असली उद्देश्य सांसारिक माया-मोह से ऊपर उठकर कर्तव्य-भावना से जीवन के कर्तव्यो का पालन करना ही

है। ऐसा होने पर ही मनुष्य को क्रमशः आत्मज्ञान अथवा अद्वैत ज्ञान होना सम्भव होता है। 'भागवत' का पुरञ्जन उपाख्यान भी इसी अभिप्राय से कहा गया है। उसमें कर्मकाण्ड को ही विशेषता देने वाले प्राचीन 'वर्हि' नामक राजा को नारद जी द्वारा ज्ञान-मार्ग का उपदेश दिया गया। नारदजी ने उसे पुरजन नामक राजा का एक उपाख्यान सुनाया जो स सार की माया में अत्यधिक ग्रस्त होने के कारण बहुत अधिक दुःखों का भागी बना और अन्त में भगवान् की कृपा से ही उस दुरवस्था से छुटकारा पाने मे समर्थ हुआ।

'राजा पुरञ्जन समस्त स सार में घूमते हुए अपने निवास योग्य स्थान ढूँढ रहा था। अन्त मे उसे एक ऐसा नगर मिला जिसमे नौ द्वार थे और जो सब ओर से परकोटो, बगीचो, अटारियो, झरोखो और राजद्वारों से सुशोभित था। वहाँ एक सुन्दरी कन्या भी दिखलाई दे गई जिसके अनुपम सौन्दर्य ने उसे शीघ्र ही स्ववश कर लिया। बस, वह राजा उस कन्या को पत्नी रूप मे ग्रहण करके सौ वर्ष तक उसी पुरी मे निवास करता रहा। वह स्त्री और पुत्रो के कारण होने वाले मोह, प्रसन्नता एव हर्ष आदि विकारो का सदैव अनुभव करता रहा, उसका चित्त तरह-तरह के कर्मों में फँसा हुआ था और काम परवश होने के कारण वह मूढ रमणी द्वारा ठगा गया था। उसकी रानी जो-जो काम करती थी, वही वह भी करने लगता था। जब वह मद्यपान करती तब वह भी मदिरा पीकर उन्मत्त हो जाता, जब भोजन करती तब आप भी भोजन करने लगता, और जब कुछ चबती तब आप भी वही वस्तु चबाने लगता था। इसी प्रकार उसके गाने पर गाने लगता, हँसने पर हँसने लगता, बोलने पर बोलने लगता।

'इस प्रकार कामातुर चित्त से उसके साथ विहार करते-करते राजा पुरञ्जन की युवावस्था आधे क्षण के समान बीत गई। उस पुरञ्जनी से राजा पुरजन को अनेक सन्ताने हुई। इतने मे उसकी आयु

का आधा भाग निकल गया। तत्पश्चात् वह अपने पुत्र तथा कन्याओ का विवाह करने, गृह, कोश, सेवक, मन्त्री आदि के देख-रेख मे व्यस्त रहने लगा। उसने स्वर्गीय भोगो की कामना से अनेक यज्ञो की दीक्षा भी ली। इस प्रकार करते-करते वृद्धावस्था आ पहुँची।

"अब चण्डवेग नामक गन्धर्वराज ने, जिसके अधीन तीन सौ साठ महाबलवान गन्धर्व रहते थे, राजा पुरजन की पुरी को लूटना आरम्भ किया। तब पाँच फन के सर्प ने, जो उस पुरी का प्रधान रक्षक था, उसको ऐसा करने से रोका, और वह अकेला ही गन्धर्वों से वर्षों तक युद्ध करता रहा। इन्ही दिनो एक काल-कन्या वर की खोज में त्रिलोकी मे भटकती रही, फिर भी किसी ने उसे स्वीकार नही किया। वह काल-कन्या='जरा' बडी दुर्भाग्यपूर्ण मानी जाती थी और कोई उसे स्वीकार करना नही चाहता था। अन्त मे वह यवनराज 'भय' के पास गई और उससे अपनी व्यथा और कामना कह सुनाई। यवनराज भय ने उससे कहा—"मैने योगदृष्टि से देख कर तेरे लिए एक उपाय सोचा है। तू सबका अनिष्ट करने वाली है इसलिए किसी को अच्छी नही लगती। तू मेरी सेना लेकर जा, इसकी सहायता से सबको अपने अधीन करके इच्छानुसार भोग कर सकेगी, और कोई तेरा सामना न कर सकेगा।

"अब कालकन्या ने पुरजन की पुरी पर आक्रमण किया और वह बलात्कार से उस पुरी की प्रजा को भोगने लगी। इसके फल-स्वरूप राजा पुरञ्जन की सारी श्री नष्ट हो गई। उसने देखा कि गधर्व और यवनो ने उसका समस्त ऐश्वर्य लूट लिया है, सारा नगर नष्ट-भ्रष्ट हो गया है, पुत्र, पौत्र, भृत्य और अमात्य, वर्ग प्रतिकूल होकर अनादर करने लगे हैं, स्त्री स्नेह-शून्य हो गई और मेरी देह को काल-कन्या 'जरा' ने वश मे कर रखा है।

यह सब देखकर पुरंजन अपार चिन्ता मे डूब गया और उसे विपत्ति से छुटकारा पाने का कोई उपाय न दिखाई दिय । वह अपनी देह, परिवार मे 'मैं और मेरा' का भाव रखने से अत्यन्त बुद्धिहीन और दीन हो गया था । अब जब इनसे बिछुडने का समय आया तब वह अपने पुत्र, पुत्री, पौत्र, पुत्र--वधू, दामाद, नौकर घर आदि सबके लिए बडी चिन्ता करने लगा कि 'मेरे पश्चात् इन सबका क्या होगा ?' वह इसके लिए बहुत शोक करने लगा, पर उसका कुछ वश न चल सका और उसी समय यवन राज स्वयं आकर उसको बांध कर ले गया ।'

"क्योकि राजा पुरंजन की आसक्ति अन्त समय तक अपनी स्त्री मे रही थी, इसलिए उसने आगामी जन्म में विदर्भराज के यहाँ कन्या के रूप में जन्म लिया । युवती होने पर उसका वैदर्भी का महाराज मलय-केतु के साथ विवाह कर दिया गया । जब उनके पुत्र और पुत्रियो को उत्पन्न करके महाराज मलयकेतु तपस्या हेतु वन को चले तो उनकी स्त्री भी साथ जाकर वहाँ भी उनकी सेवा करती रही । पर आयु पूरी हो जाने पर मलयकेतु का देहान्त हो गया तो वह अत्यन्त शोक करने लगी और एक चिता बनाकर स्वयं भी उनके साथ जलने को प्रस्तुत हो गई । उस समय पुरंजन का एक मात्र पुराना मित्र 'अविज्ञात' ब्राह्मण वेश मे वहाँ आया और उसने शोक करती वैदर्भी से कहा—

"तू कौन है ?' किसकी पुत्री है ? जिसके लिए तू शोक कर रही है, यह लेटा हुआ पुरुष कौन है ? क्या तू मुझे नही जानती ? मैं वही तेरा मित्र हू जिसके साथ पहले तू विचारा करती थी । सखे ! क्या तुम्हें यह याद नही आता कि किसी समय मैं तुम्हारा 'अविज्ञात' नाम वाला सखा था ? तुम पृथ्वी के भोग भोगने के लिए निवासस्थान की खोज मे मुझे छोड़कर चले गये थे । आर्य ! पहले मैं और तुम एक दूसरे के मित्र और मानसरोवर निवासी हंस थे और सहस्रो वर्षों तक बिना स्थान के ही रहे थे । किन्तु मित्र ! विषय भोगो की इच्छा से

मुझे छोड़कर यहाँ पृथिवी पर चले आये । यहाँ घूमते-घूमते तुमने एक स्त्री का रचा हुआ स्थान देखा। भाई ! उस नगर मे उसकी स्वामिनी के फन्दे में पड कर, उसके साथ विहार करते-करते तुम भी अपने स्वरूप को भूल गये और इसी से तुम्हारी यह दुर्दशा हो गई।

"देखो, तुम न तो विदर्भराज की पुत्री हो और न यह मलय-केतु तुम्हारा पति है। जिसने तुम्हे नौ द्वारो के नगर मे बन्द किया था उस पुरंजनी के पति भी तुम नही हो। पहले जन्म मे तुम अपने को पुरुष मानते थे और अब सती स्त्री मानते हो—यह सब मेरी फैलाई हुई माया है। हम दोनों तो 'हंस' है, हमारा जो वास्तविक स्वरूप है, उसका अनुभव करो। मित्र ! जो मैं (ईश्वर) हूँ वही तुम (जीव हो। तुम मुझसे भिन्न नही हो और तुम विचारपूर्वक देखो तो मैं भी वही हूँ जो तुम हो।"

इस प्रकार 'भागवत' में पुरजन के उपाख्यान के रूप में जीवात्मा के ससार की माया मे फँसने का वर्णन किया गया है। यह 'कल्कि-पुराण' के 'अनन्त उपाख्यान' से मिलता-जुलता ही है। 'अनन्त ब्राह्मण' और 'पुरंजन राजा'—दोनों ही विषयासक्त होकर स्त्री, परिवार और ऐश्वर्य की ममता से दुखी और दुरवस्था को प्राप्त हुए थे और अन्त मे सच्चा ज्ञानोपदेश मिलने पर उपसे छुटकारा पा सके। इन दोनों उपाख्यानो का आशय यही है कि मनुष्य को संसार मे आकर अपना सब कार्य कर्तव्य पालन की बुद्धि से और अनासक्त भावना रख कर करना चाहिये। उसे सदैव यह ध्यान रखना चाहिए कि यह सब नाशवान् सासारिक प्रपञ्च क्षणिक है किसी भी समय यह बदल सकता है या नष्ट हो सकता है। ज्ञानी पुरुष उसी को कहा जा सकता है जो इसके बीच मे रहकर भी निर्लिप्तता का भाव रखे।

'विष्णु--पुराण' का जड़भरत उपाख्यान—

पौराणिक कथानको के अनुसार चोबीस अवतारो मे से पाँचवे अवतार माने जाने वाले ऋषभदेव के पुत्र राजर्षि भरत बडे योगी और ज्ञानी थे। वे अपना राज्य पुत्रो को देकर तपस्या हेतु वन मे निवास करने लगे थे और बहुत वर्षों तक उन्होने तपस्या और आत्म चिन्तन किया था। पर फिर भी एक हिरन के बच्चे की माया में पड जाने से उनको बन्धन मे पडना पडा। इसकी जो कथा 'विष्णु-पुराण' मे श्री पराशर ऋषि ने वर्णन की है उसका साराश इस प्रकार है—

'राजा भरत ने भगवान का ध्यान करते हुए चिरकाल तक शालग्राम क्षेत्र में निवास किया था। गुणियो मे श्रेष्ठ उन भरत ने अहिंसादि गुणो के पालन पूर्वक, मन को सयम मे रखकर परम श्रेष्ठता प्राप्त की। वह आसक्ति रहित योगी और तपस्वी राजा प्रभु पूजन के निमित्त समिधा, पुष्प और कुशा मात्र एकत्र करते और इसके अतिरिक्त अन्य कोई कर्म नही करते थे। एक दिन उन्होने नदी पर स्नान करते समय एक हरिणी को जल पीते देखा। वह उस समय आसन्न प्रसवा थी। उस समय जङ्गल मे से सिंहनाद का भयङ्कर शब्द आया। बहुत ऊँचे स्थान तक उछालने के कारण उसके गर्भ का बच्चा निकल कर नदी में गिर पड़ा और हिरनी भी पृथिवी पर गिर कर मर गई। वह दृश्य देख राजर्षि भरत को बड़ी करुणा हुई और वे उस मृग शावक को अपने आश्रम मे लाकर पालन-पोषण करने लगे। जब वह कुछ बडा हो गया तो चरते-चरते जङ्गल में भी चला जाता। भरत से भी वह बड़ा प्रेम रखता था और भरत को भी उस असहाय को देखकर उससे हार्दिक स्नेह उत्पन्न हो गया था। इसलिए जब कभी उसे जङ्गल से लौटने में देर होती तो वे उसके लिए चिन्तित होने लगते कि उसे कोई भेड़िया या सिंह खा न गया हो।

जो राजा भरत अपना विशाल राज्य, पुत्र, कलत्र सब कुछ छोड़ चुके थे वे एक हिरन के मोह में पड गये और इससे आत्म-ध्यान में विघ्न होने लगा। समय आने पर जब राजा भरत ने प्राण त्याग किया तो मृग-बालक उनके समीप खडा दुःखित भाव से उनको देखता रहा और वे भी उसकी चिन्ता करते रहे। इसके फलस्वरूप वे आगामी जन्म में मृग होकर ही जन्मे। पर उनको तपस्या के फल से पूर्व जन्म की याद बनी रही। उन्होने उस योनि को भी सदा सूखी घास और पत्ते खाकर तपस्वी के समान ही बिताया और शीघ्र ही प्राण त्याग कर ब्राह्मण के घर मे उत्पन्न हुए।

"अपनी पुरानी भूल को याद करके इस जन्म मे वह पूर्णतः अनासक्त और विरक्त जीवन व्यतीत करते। उनको पूर्व जन्म का ही सब कुछ ज्ञान था, इसलिए उन्होने गुरु के यहाँ भेजे जाने पर भी उससे वेद तथा अन्य शास्त्र नही पढ़े। जब उनसे कोई प्रश्न किया जाता, तब वह सदा सस्कारहीन, स्वरहीन अथवा ग्रामीण वाक्य मिले अस्फुट वचन कहते थे। इससे उनका नाम 'जड-भरत' पड गया और लोग प्रायः उनका अपमान किया करते थे। वह अति सामान्य अन्न कणों को बीन कर आहार करते हुए समय व्यतीत करते।

"एक दिन जड़-भरत के ग्राम के समीप होकर सौवीर नरेश कहीं जा रहा था। उसके सेवको को राजा की पालकी ढोने वाले श्रमिको की आवश्यकता हुई तो उन्होने अन्य कुछ लोगो के साथ जड़ भरत को भी बेगार के लिए पकड लिया। जड भरत ने इसका कुछ प्रतिकार नही किया, वरन् वह इसको अपने किसी पापमय प्रारब्ध को क्षय करने का साधन समझकर पालकी उठाकर चलने लगे। पर जहाँ अन्य बेगारी मजदूर शीघ्रतापूर्वक चल रहे थे, जड़ भरत पृथ्वी को देखते हुए धीरे-धीरे पग उठा रहे थे। इससे पालकी की गति में असमानता आती थी और राजा को असुविधा जान पडती थी। उसने

कहा—'अरे यह क्या करते हो ? इस प्रकार विषम भाव से क्यों चल रहे हो ?' राजा द्वारा बार-बार टोके जाने पर श्रमिको ने कहा—'हम मे से यह एक व्यक्ति बहुत मन्द गति से चलता है । इसी कारण गति में समानता नही आती ।' राजा ने कहा—'अरे, तूने तो अभी पालकी को बहुत थोडी दूर ही ढोया है, क्या इतने मे ही थक गया ? देखने मे तो तू इतना मोटा-ताजा है, फिर क्या तू इतना परिश्रम भी नही कर सकता ?' जडभरत ने कहा—"राजन् ! मैं न तो मोटा-ताजा हू और न मैंने आपकी पालकी ही उठाई हुई है, न मैं थका हूँ और न मुझे परिश्रम ही करना पड रहा है ।" राजा ने कहा—'अरे, तू तो प्रत्यक्ष ही मोटा-ताजा दिखाई पड रहा है, इस समय भी यह पालकी तेरे कन्धे पर रखी है और भार वहन करने से परिश्रम भी होता ही है ।"

जड़ भरत ने कहा—"राजन् ! तुम प्रत्यक्ष क्या देख रहे हो ? यही मुझे बताओ । तुम्हारा यह कहना बिल्कुल ठीक नही कि पालकी मेरे कन्धे पर रखी है । अब इस सम्बन्ध मे मेरा मत सुनो । पृथ्वी पर दोनो पाँव, पाँवो पर जाघें, जाघो पर ऊरु और ऊरु पर उदर स्थित है । उदर पर वक्षस्थल, बाहु और कन्धे हैं और उन कन्धो पर यह पालकी रखी है, तो इसका भार मेरे ऊपर कहाँ है ? इस पालकी मे तुम्हारा बताया जाने वाला देह रखा है । यथार्थ मे तो तुम वहाँ हो और मैं यहाँ हूँ ।

'हे राजन् ! तुम या अन्यान्य सब प्राणी पञ्चभूतो द्वारा ही वहन किये जाते है और यह भूत-वर्ग भी गुणो के द्वारा प्रवाहित हो रहा है । यह सत्त्वादि तीनो गुण कर्मों के अधीन हैं और कर्मों की उत्पत्ति अविद्या अथवा माया से होती है । परन्तु आत्मा तो, जिसे 'मैं' कहा जाता है, शुद्ध, अक्षर, शान्त, गुणरहित तथा प्रकृति से परे हैं, तथा सब प्राणियों में एक ही तत्त्व ओत-प्रोत है, इसलिए उसकी न कभी वृद्धि है और न क्षय है । तब तुम किस आधार पर कह सकते हो कि

'तू तो मोटा-ताजा है ।' यह पालकी यदि मेरे लिए बोझ-रूप हो सकती है तो यह तुम्हारे लिए भी उसी प्रकार हो सकती हैं । जिस पञ्च-भूत द्वारा यह पालकी बनी है, उसी से तुम्हारा, मेरा और अन्य सभी का शरीर भी बना हैं, जिसमें ममता का आरोप माना है ।'

जड भरत के ये अध्यात्म-सिद्धान्त-प्रकाशक वचन सुनकर सौवीर नरेश तत्काल पालकी त्याग कर भूमि पर उतर आये । उन्होने ब्राह्मण के चरण पकड लिए और कहा—"हे भगवन् ! आप इस छद्म वेश मे कौन है ? यहाँ किस कारण आये हैं ? मुझे आपके विषय मे जानने की बडी इच्छा हो रही है । जडभरत ने कहा—"हे राजन् ! मैं कौन हूँ, यह कह नही सकता । इसके अतिरिक्त तुमने मेरे यहाँ आने का कारण पूछा तो आवागमनादि क्रियाये कर्म-फल भोगने के लिए ही होती है । धर्म-अधर्म से उत्पन्न सुख दु ख का भोग करने के लिए ही यह शरीर बनता है । हे राजन् ! ये धर्म-अधर्म ही सब जीवो की समस्त अवस्थाओ के कारण होते हैं, फिर मेरे ही आने का कारण पूछने की क्या विशेषता है ?'

इस प्रकार 'जड भरत उपाख्यान' मे माया का जीव को बधन-ग्रस्त करने वाला प्रभाव दिखलाया है और अध्यात्म-सिद्धान्त की दृष्टि से उसके स्वरूप का विवेचन भी अच्छी तरह किया है । राजा भरत के चरित्र से यह उपदेश मिलता है कि मनुष्य चाहे कितना ही ऊँचा क्यो न पहुच जाय सासारिक माया-मोह यह अच्छे ज्ञानियो को थोडी-सी भूल हो जाने पर अपने पजे में फँसा लेना है । यद्यपि राजर्षि भरत का मृग शावक की रक्षा का कार्य अत्यन्त दया भाव से प्रेरित था और उनकी सहृदयता की सब कोई प्रशसा ही करेंगे । पर अपनी थोडी-सी हार्दिक कमजोरी के कारण वे उस मृग-बालक की सुरक्षा मे आसक्त रहने लग गये और इसी बहाने माया ने उसको फांस लिया । हमको परोपकार और परमार्थ अवश्य करना चाहिये, पर उसकी उचित सीमा

का भी ध्यान रखना चाहिए। परोपकार एक साधन ही है, उसे साध्य नहीं बना लेना चाहिए।

'कल्कि पुराण' का माया-स्तव—

पर माया भली और बुरी दोनो तरह की होती है। जहाँ वह विषय-विकारो में फँसाकर मनुष्य को पतनोन्मुख करती हैं, वहाँ उसके प्रभाव से तरह-तरह के धर्म कार्य करके अनेक जीवो के साथ उपकार किया जा सकता है और उसके फलस्वरूप स्वय भी उच्च गति को प्राप्त कर सकता है। वास्तव मे भला-बुरा मनुष्य स्वय होता है, माया तो उसके लिए एक निमित्त बन जाती है। यदि धन के सम्बन्ध में ही विचार करें तो मालूम होता है कि अनेक व्यक्ति उसे पाकर तरह-तरह के विकारों में ग्रस्त हो जाते हैं, अपने और दूसरो के पतन का कारण बनते हैं। पर अन्य व्यक्ति धन से बहुत से सत्कर्म करते हैं और अपने को तथा अन्य बहुत से जीवो को सुख पहुँचाते हैं। इसलिए धन को बुरा या भला कहना ठीक नही, उसका सदुपयोग या दुरपयोग मनुष्य की मनोवृत्ति पर निर्भर है।

यही विचार करके 'कल्कि पुराण' के लेखक ने यद्यपि आरम्भ में 'माया' की तुलना वेश्या से की है, पर अन्त मे उसे एक दैवी विभूति ही बतलाया है और उसके द्वारा संसार के कल्याण का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। इसमें राजा शशिध्वज द्वारा एक माया स्तव कहलाया है। जिसमें माया के ऊँचे स्वरूप की कल्पना की गई है और उसे सबके लिए हितकारी कहा है—

'शशिध्वज ने कहा—'हे माया ! तुम शुद्ध सत्वगुणमयी, विशुद्धरूपिणी एवं ब्रह्मा, विष्णु, शिव की भी माता हो। वेद मे तुम्हारी ही महिमा प्रतिपादित हुई है। तुम्हारी कुक्षि मे भूतगण और पञ्च-तन्मात्रा स्थिति हैं। देव, गन्धर्व, सिद्ध और विद्याधर-गण तुम्हारी

बन्दना करते हैं। तुम लोक से परे हो, तुम्हारे स्वरूप मे द्वैत-भाव लगाया गया है। व्यास आदि मुनिगण तुम्हारी वन्दना करते हैं। विष्णुजी तुम्हारा स्तव सङ्गीत गान करते हैं। तुम ही कलि रूपी समुद्र की कल्लोल मे लहराती हो, जिससे समस्त प्राणी सांसारिक प्रपञ्च मे पड़ जाते हैं सृष्टि के आदि, मध्य और अन्त मे तुम ही विराजमान हो। तुम सब प्राणियो को आश्रय प्रदान करती हो। द्वैत अथवा पूर्ण भाव से उपासना करने पर तुमको प्राप्त किया जा सकता है। तुम देवता, तिर्यक और मनुष्य जाति मे अनेक प्रकार से विभिन्न प्रकार से विभक्त हो रही हो। तुम सारे ससार की आधार हो। तुम ब्रह्म स्वरूपिणी हो। तुम्हारे प्रभाव से ही त्रिजगत भूतपञ्चक करके प्रकाशित हो रहा है। तुम्हारे प्रकाश के बिना काल, देव, कर्म उपाधि आदि विधाता का नियत किया हुआ कोई भाव प्रकाशित नही होता। तुम उसी प्रभा से प्रभावती हो रही हो।"

माया वास्तव मे प्रकृति का ही एक नाम है। उस रूप मे माया ही इज ससार का मूल है परमात्मा तो अपमे मूल स्वरूप मे पूर्णतः निस्पृह है। उसे जगत की रचना अथवा उसके कल्याण-अकल्याण से कोई प्रयोजन नही। संसार की उत्पत्ति, रचना और सञ्चालन माया द्वारा ही सम्भव होता है। काल, दैव, कर्म आदि ही वे बातो हैं जिनसे यह ससार स्थित जान पड़ता हैं, आगे बढ़ता रहता है और तरह-तरह के दृश्य उपस्थित करता है।

माया का मूल रूप शुद्ध और कल्याणकारी ही है, पर जब जीवात्मा विषयासक्त हो जाता है तब 'माया' उसके लिए पतनकारी बन जाती है। माया तो अग्नि, जल, वायु आदि जैसी शक्तियो की तरह है, जिनसे मनुष्य का जीवन कायम है और समस्त व्यवहार सभव हो रहे हैं, पर इन्ही को अनेक लोग नाशकारी उद्देश्यो के लिए भी प्रयुक्त करते रहते हैं। अग्नि लगाकर किसी के घर को भस्मसात् किया

जा सकता है, जल मे ढकेल कर मारा जा सकता है वायु को रोक कर प्राणान्त किया जा सकता है। इसी प्रकार माया का अच्छा और बुरा दोनो प्रकार का प्रभाव होता है, जिसे लोग अपनी रुचि के अनुसार ग्रहण करते हैं। विषयासक्त सौन्दर्य का अनुभव वेश्याओ के कुटिल हावभावो से करता है और पवित्र भाव वाला उसका दि' दर्शन अपनी सती-स्वाध्वी धर्म-पत्नी के प्रेमपूर्ण हाव-भाव मे करता है। एक माता अपने पुत्र को स्वर्गीय स्नेह प्रदान करके उसका हर तरह से कल्याण करती है और अनेक विरोधी भाव रखने वाली महिलाये या पुरुष झूठा स्नेह प्रकट करके किसी सम्बन्धी का सर्वस्व अपहरण कर लेने भी स कोच नही करते।

इसीलिए पुराणकार ने माया को स्वर्गीय और नारकीय दोनो रूपो में बतलाया है। आगे चलकर उसके सर्वव्यापी विविध रूपो का वर्णन करते हुए 'माया-स्तव' मे कहा गया है

"तुम चिदाभास रूप से भूमि मे गन्ध, जल मे रस, तेज मे रूप पवन में स्पर्श और आकाश मे शब्द—इस प्रकार अनेक रूपो से विराजमान होकर ससार मे प्रवेश कर रही हो, अतएव तुम विश्वरूपिणी हो। तुम ब्रह्म रूपिणी सावित्री हो, भूतेश्वर की भवानी हो, नारायण की लक्ष्मी हो, इन्द्र की इन्द्रानी हो। हे माया ! समस्त गगन में तुम इसी प्रकार भासमान हो रही हो। तुम्ही स्त्रियो को शैशवावस्था मे बाला, यौवनकाल में युवती और वृद्धावस्था मे वर्षीयसी के रूप से परिणत करती हो। तुम काल से कल्पित हो, ज्ञान से परे और कामरूपिणी हो। एवं अनेक प्रकार की मूर्त्तियाँ धारण करके प्रकाशमान हो रही हो। यज्ञ और योग से तुम्हारी पूजा की जाती है। तुम उपासको को वर और अभीष्ट प्रदान करती हो। सब लोग तुम्हारा सम्मान करते हैं। तुम्ही चण्डी, दुर्गा, कालिका आदि नाम धारण करके समयानुसार अनेक रूप और वेशो मे प्रकाशित होती हो।'

निस्सन्देह 'माया' विविध रूपधारिणी है। श्रीरामकृष्ण काली देवी से कहा करते थे—"माँ! तू ही गृहस्थ के घर का सती-साध्वी नारी है और तू ही बाजार के कोठे पर बैठने वाली वेश्या है। एक रूप मे तू माता बनकर मुझे स्नेह प्रदान करती है और दूसरे रूप मे पत्नी बनकर रुचिकर भोजन बनाकर खिलाती है। 'इसका आशय यही है कि ससार मैं कुछ भी यथार्थ रूप से भला-बुरा नही है, मनुष्य अपनी भावना से प्रत्येक वस्तु मे भलाई-बुराई का भाव आरोपित कर लेता है। जो चादनी रात सब को सुन्दर जान पडती है वही चोर को बुरी जान पड़ती है। ससार के सब मनुष्य मे लड़ाई-झगडा, शत्रुता, सङ्घर्ष हत्या आदि का कोई कारण नही है, तत्त्व की दृष्टि से वे सब एक ही चैतन्य सत्ता के अंश रूप है और सबकी अन्तिम गति भी एक-सी होती है। पर केवल मनोवृत्तियो की भिन्नता के कारण एक मनुष्य अन्य लोगो को अपना विरोधी मानने लगता है और उनके साथ अधिक से अधिक क्रूरता का व्यवहार करता हैं। दूसरा मनुष्य उन्ही परि-स्थितियो मे रहता हुआ सबको मित्र, आत्मीय मानता है और सबके हित साधन के लिए यथाशक्ति प्रयत्नशील रहा करता है। इसे हम 'माया' की लीला ही कह सकते हैं।

आजकल के नवाशिक्षित और विज्ञानवादी मनुष्य 'माया' को एक काल्पनिक और धर्म शास्त्रो मे वर्णित कथा-कहानियो का विषय ही मानते हैं। निस्सन्देह अनन्त मुनि, पुरञ्जन, जड़भरत के उपाख्यान लोगो को माया का स्वरूप और उसका भला-बुरा प्रभाव समझने के लिए ही रचे गए हैं, पर उनमे प्रदर्शित सिद्धान्तो को गलत नही बतलाया जा सकता। मनुष्य भ्रम, स्वार्थ और मूढता के वशीभूत होकर बिना किसी यथार्थ कारण के भय, क्रोध, काम आदि का वातावरण उत्पन्न कर लेता है और परिणाम स्वरूप अपने और दूसरो के लिए तरह-तरह के सङ्कट उत्पन्न कर लेता है। इसे यदि 'माया' की लीला कहे तो क्या अनुचित है ?

हम तो यहाँ तक कह सकते हैं कि पुराणकर्त्ताओ के समय मे तो 'माया' का प्रभाव मनुष्यों पर व्यक्तिगत रूप से ही हुआ करताथा, वे झूठ-मूठ के कारणो से दु:ख या सुख का अनुभव करने लगते थे। पर आज तो बडे-बडे प्रगतिशील और सर्व-साधन सम्पन्न राष्ट्र भी वैसा ही उदाहरण उपस्थित कर रहे हैं। रूस और अमरीका मे लडाई-झगडे का कोई कारण नही है, दोनो ही जीवन-निर्वाह के साधनो और आवश्यक धन सम्पत्ति से सम्पन्न हैं, पर केवल ससार मे 'प्रधानता' प्राप्त करने के लिए अपने समस्त साधनो को सैनिक तैयारी के लिए झोक रहे हैं। उनके उदाहरण से चीन, फ्रान्स, इङ्गलैण्ड आदि अन्य अनेक देश भी उसी मार्ग पर चल रहे हैं। परिणाम यह होता है कि ससार के आधे साधन युद्ध की निरर्थक तैयारी मे खर्च हो रहे है और फलस्वरूप इन्ही देशो के करोड़ो व्यक्ति उचित भोजन और वस्त्र से भी वञ्चित रहकर दु:ख सहन करते हैं तब वे तरह-तरह के अनैतिक और हानिकारक उपायों का अवलम्बन करके अपनी आवश्यकताओ को पूरा करने का प्रयत्न करने लगते हैं। इससे अन्य सैकडों प्रकार की समस्यायें और उलझने पैदा होती हैं और मनुष्य स्वनिर्मित भय, भ्रम और मूढता के कारण स्वर्ग सदृश्य पृथ्वी को नर्क के रूप मे परिणित कर देते हैं।

वह बात हमी नही कहते, स्वयं योरोप, अमरीका के अनेक विचारशील व्यक्ति अपने देशवासियो की स्वार्थपरतापूर्ण मनोवृत्ति और भौतिक यन्त्रो के लिए पागलपन की दौड को देखकर बडे चिन्तित हो रहे हैं और बार-बार चेतावनी दे रहे हैं कि यदि वहाँ के कर्ता-धर्ता और प्रमुख व्यक्ति इस प्रकार की हानिकारक प्रवृत्ति के निरोध का का कोई प्रयत्न न करेंगे तो उनकी सभ्यता शीघ्र ही नष्ट-भ्रष्ट होकर प्रतीत की वस्तु बन जायगी। इस सम्बन्ध में 'Human Destiny', (मनुष्य का भाग्य) नामक पुस्तक के लेखक "Lecomte Du

Nouy" (लकाम्ते द नॉय) ने, जो स्वयं एक अच्छा वैज्ञानिक है, कई वर्ष पहले लिखा था—

"मानव जाति ने अभी अपने इतिहास के अन्धकारमय युगों मे से एक को पार किया है। वह सबसे अधिक दुखान्त भी हो सकता है, क्योकि सघर्ष ससार के कोने-कोने प्रवेश पा चुका है। मनुष्य को अपनी जिस सभ्यता पर इतना अधिक गर्व था उसकी दृढ़ता और स्थिरता को अभूतपूर्व हिंसा ने नष्ट कर दिया है। वर्तमान यान्त्रिक उन्नति का एक हानिकारक पहलू बड़े और खतरनाक युद्ध भी हैं। अब यह आवश्यक नही कि दुश्मन पडोस मे हो, वह दुनिया के किसी भी कोने मे हो सकता है। अब वायुयान और राकेटो द्वारा किसी भी स्थान पर कुछ ही घण्टो मे मार की जा सकती है। इन युद्धो के कारण मनुष्यो को बडी दुर्दशा मे रहना पडता है। राष्ट्र का अधिकाश धन शस्त्रो के निर्माण मे खर्च हो जाता है और बहुसंख्यक लोगो को पूरा भोजन भी नही मिल पाता। यह तब तक होता रहेगा, जब तक मनुष्य विश्व बन्धुत्व की व्यापक भाषा में नही सोचेगा, जब तक सबके समान आदर्श न होगे। अभी इस अवस्था तक पहुचने में समय लगेगा, पर निराशा का कोई कारण नही है। यदि हम समय के लक्षणो को ठीक-ठीक समझ सकें तो हम यह कह सकते हैं कि मानव-जाति की मुक्ति 'धर्म' मे ही मिलेगी।'

अमरीका की "New History Socity" (नवीन इतिहास समिति) के प्रमुख नेता डा० एच० सी० ऐंजिलब्रेट युद्धो के बड़े विरोधी हैं और उन्होने "Merchants of death" (मृत्यु के सौदागर) नाम की पुस्तक मे हथियार बनाने वाले पूंजीपतियो की चालो का पूरी तरह भण्डाफोड़ किया है। उनका कहना है कि ये गोला-बारूद बनाने वाले 'राजा लोग' अनेक देशो की सरकारो को अपने नियन्त्रण मे ही नही रखते, वरन् उनकी नीति और कार्य प्रणाली को भी स्वयं

निर्धारित करते हैं। इस प्रकार वे गोला-बारूद बेचकर इतना नफा कमाते हैं जिस पर जल्दी विश्वास करना कठिन होता है। उन्होने योरोप अमरीका के शासनो की स्वार्थपरता पूर्ण नीति की आलोचना करते हुए कहा था —

"हम सबके सिरो के ऊपर एक विश्व-व्यापी सङ्घर्ष का खतरा मँडरा रहा है। हम बराबर सुनते रहते हैं कि एक ओर विश्व युद्ध अनिवार्य है और लोग उसकी प्रतीक्षा करते ही रहते है। प्रत्येक देश मे राष्ट्र की समस्त शक्तियाँ 'हत्या के साधनो' के प्रस्तुत करने मे लगाई जा रही हैं, जिससे अन्य राष्ट्रो मे रहने वाले अपने 'मानव-भाइयो' को मारा जा सके। शिक्षा-सस्थाओ के खर्च में कमी जा रही है और सार्वजनिक सेवा के विभिन्न मदो का व्यय भी घटाया जा रहा है, ताकि किसी प्रकार इन 'मौत के यन्त्रो' की कीमत चुकाई जा सके।"

"इससे भी शोचनीय बात यह है कि विभिन्न राष्ट्रो के बीच भय और घृणा की दीवारें खड़ी की जा रही हैं। अनेक देशों में तो स्वय सरकार ही इस प्रकार के अविश्वास का भाव फैला रही है और सहृदयता तथा भ्रातृभाव के कुये को विषाक्त बना रही है। समाचार पत्र भी घातक-प्रचार-कार्य में सरकार के सहयोगी बने हुए हैं। परिणाम यह होता है कि अनेक राष्ट्रो में सिवाय कठोर शब्द और निन्दा की बातो के सिवा और कुछ सुनाई नही पड़ता। यही दूषित भावना-प्रवाह किसी भी समय भी समय युद्ध के रूप में फूट पडने को तैयार रहेगा और जगह-जगह सामूहिक नर-संहार के वीभत्स दृश्य दिखलाई पडने लगेगे। न मालुम कब तक लोग इस घातक प्रक्रिया में लगे रहेगे और अन्त में एक दिन उनको होश आयेगा कि उन्होने एक विकृत मस्तिष्क शराबी की तरह अपने ही घर मे आग लगादी है और अनेक व्यक्तियो को जिनमे उनके प्रिय सम्बन्धी भी हैं, मार दिया है।'

यह एक चित्र है आधुनिक सभ्यता और विज्ञान का अहंकार करने वाले राष्ट्रों का। इस प्रकार विश्वव्यापी नर-संहार में सभी राष्ट्रों के अपार क्षति उठानी पडती है और अनेकों की तो कमर ही टूट जाती है। तब उनके साधनों का शोषण करके अन्य नृशंस राष्ट्रों का उत्थान होता है। आज सर्वाधिक बुद्धिमान और ज्ञान-विज्ञान में अग्रणी लोग ही जब इस प्रकार का विपरीत आचरण कर रहे है तो इसे दैवी-माया के प्रभाव के अतिरिक्त क्या कहा जाय ? एक तरफ तो मनुष्य चन्द्रलोक तथा अन्य लोको तक पहुँचने के असम्भव माने जाने वाले कार्य मे सफलता प्राप्त कर रहा है और दूसरी तरफ अपनी सामाजिक-प्रणाली मे ऐसा सुधार भी नही कर सकता जिससे जीवन निर्वाह की सामग्री का उचित बँटवारा हो सके और किसी 'मानव-भ्राता' को अकारण भूखा और नङ्गा न रहना पडे। इसी परिस्थिति के कारण विभिन्न देशो की जनता मे असन्तोष और विद्रोह की उत्पत्ति होती है और षडयन्त्र, क्रान्ति तथा शासन-सत्ता के उलटने के दृश्य प्रतिदिन दिखाई पड रहे हैं। इन बुद्धिमान और विद्वान व्यक्तियो द्वारा अपने ही पैरो मे आप कुल्हाडी मारने वाले कार्यों को यदि हम 'ईश्वरीय लीला' कहे तो इसमे क्या गलती है ?

सत्य तो यह है कि गत पाँच सौ वर्षों से योरोप के गोरे लोग' अमरीका के मूल निवासी 'रेड इण्डियन्स' (लाल रंग वालो,) अफ्रीका के हबशियो काले रङ्ग वालो) और ऐशियाई देशो के अश्वेत लोगो की हत्या और शोषण कर रहे हैं। इन देशो के निवासी प्राकृतिक जीवन बिताने वाले और सीधे-साधे थे, जिनको दानव स्वभाव के गोरो ने बन्दूक, तोप और घातक अस्त्र-शस्त्रो के बल पर मनमाना लूटा, सताया और अनेको का नाम निशान ही मिटा दिया। वे तो समझते थे कि हम इन सबको मिटाकर अथवा गुलाम बनाकर स्वय ही स्वर्गीय भोग भोगेगे, पर ईश्वर के दरबार मे ऐसी नीति सदैव नही चल सकती। जिस दैवी-

सत्ता ने हिरनाकुश, रावण, कस और दुर्योधन जैसे प्राचीन शोषण-कर्त्ताओ का मान मर्दन करके जडमूल से नष्ट कर दिया वही अपनी माया से आज 'एटम बम' और 'हायड्रोजन बम' के अभिमानी राष्ट्रो की बुद्धि को विपरीत करके पारस्परिक सङ्घर्ष द्वारा उनके गत पाँच सौ वर्षों के पापो का दण्ड देने का आयोजन कर रही है। अगर हमको आँखें हो और पुरातन ऋषि-मुनियो के अध्यात्मज्ञान का एक अंश भी हमको प्राप्त हुआ हो तो हम योरोप अमरीका की घातक 'वैज्ञानिक उन्नति' में परमात्मा की माया के प्रत्यक्ष दर्शन कर सकते हैं।

दसवाँ अध्याय

अवतार का प्रचार और उसकी प्रतिक्रिया

संसार की वर्तमान अभूतपूर्व हलचल, चारों तरफ फैली हुई मार-काट, चन्द्रलोक-यात्रा तथा डाक्टरो के 'दिल बदल' जैसी ईश्वरीय सत्ता को चुनौती देने वाले आविष्कारो ने 'संसार भर के धार्मिक लोग' के दिमाग मे एक उथल-पुथल पैदा करदी है। हमारे भारतीय बन्धु तो सदा से 'भगवान् की लीला' के आगे नमस्तक होते ही आये हैं और उसके आगे आत्म-समर्पण को ही उन्होने उद्धार और रक्षा का एकमात्र मार्ग स्वीकार किया है। चाहे इन विचारो को 'आधुनिकता' के रङ्ग मे रंगे हुए लोग 'दकियानूसी' ही क्यो न कहे, पर भारतीय-सस्कृति में पला हुआ व्यक्ति ऐसी सङ्कट की घडी मे 'भगवान' से बढकर आश्रय और किसी को नही मान सकता। उसका यही आन्तरिक विश्वास होता है कि चाहे भौतिकता के अभिमानी कितनी ही उछल कूद क्यो न मचा ले, पर जब दैवी-चक्र चलेगा तो क्षण भर मे धराशायी होते ही दिखाई देगे।

भारतीय-धर्म के अनुयायिओ की बात छोड भी दें तो आज योरोप, अमरीका के प्रगतिशील लोगो मे से भी करोडो नर-नारी प्रति-दिन होने वाली सनसनीपूर्ण घटनाओ तथा हलचल से प्रभावित होकर किसी बहुत बडे परिवर्तन की आशा करते हैं। ईसाइयो की 'बाइबिल' मे एक स्थान पर कहा गया है—

'जब अन्त समय (युग-परिवर्तन का अवसर) आयेगा तब चारों तरफ लड़ाइयाँ होने लगेगी और लड़ाई की अफवाहे सुनाई देने

लगेगी। एक मुल्क दूसरे मुल्क के और एक राज्य दूसरे राज्य के के विरुद्ध खडा होगा। उस समय अकाल पडेंगे, महामारी फैलेगी और जगह-जगह भूकम्प आयेंगे। यह दशा आरम्भ मे होगी और इसके बाद भी भयङ्कर कष्ट भोगने पडेगे।' (रिवेलेशन)

'बाइबिल' की भविष्य वाणियो के वक्ता महात्मा जान को एक योगी पुरुष माना गया है। उनका जो चित्र ईसाई धर्म की पुस्तको में प्राप्त होता है उसमे वे जटाजूट और श्मश्रु [लम्बी दाढी] से युक्त कम्बल लपेटे हुए किसी प्राचीन ऋषि की तरह ही दिखाई पडते है। अब तो विद्वानो ने यहाँ तक सिद्ध कर दिया है कि भारतवर्ष मे आकर उन्होने नाथ सम्प्रदायो वालो से योग की शिक्षा प्राप्त की थी और उनका नाम भारतीय-मठो मे सुरक्षित 'नाथ-नामावली' की हस्त-खित पुस्तको मे मौजूद हैं। उन्होने बाइबिल' मे 'रिवेलेशन' [दिव्य-वाणी] नाम का पूरा अध्याय ही लिखा है, जिसमे भविष्य-कथन के रूप 'युग-परिवर्तन' की समस्त घटनाओ का विस्तारपूवक वर्णन किया है और बतलाया है कि महायुद्ध और दैवी-प्रकोप से होने वाले नाश के पश्चात् दैवी-शक्ति (अवतार) का आविभाव हागा और वह अव्यवस्था को मिटाकर न्याय-शासन (रामराज्य) की स्थापना करेगी।

क्या अन्तिम समय आ पहुँचा ?

वर्तमान समय में युद्धो की अधिकता और भीषणता से घबडा-कर अधिकाश धार्मिक ईसाई महात्मा जान की प्राचीन भविष्यवाणी के सत्य होने मे विश्वास करने लगे हैं और जगह-जगह यह विचा प्रकट किये जा रहे हैं कि अब 'ससार के उद्धारकर्ता' के प्रकट होने का समय बिल्कुल समीप आ पहुँचा है। इन विचारो का प्रचार करने वाले ईसाई धर्म के मासिक पत्र "New Jerusalem fellowship" (न्यू जरूशलम फैलोशिप) के मई १९६७ के अङ्क मे श्री जान ब्रोकिस नामक सज्जन मे निम्न सम्मत्ति प्रकट की है—

'क्या अन्तिम समय आ पहुंचा है। हमारे चारो तरफ अन्धकार गहरा होता जाता है, झण्डे झुक गये हैं, पाप की वृद्धि हो रही है और संसार 'न्यायकर्ता' (भगवान्) के सम्मुख फैसले के लिए बढता जा रहा है। लोगो मे तरह-तरह के अनुचित कर्मों के साथ समझौते की प्रवृत्ति बढ रही है। अब धर्म विरोधी अभियान चोटी पर पहुँच चुका है। इस अवसर पर भगवान् ही सत्य-मार्ग दिखलाकर हमारी रक्षा कर सकते हैं, अन्यथा हम पूरी तरह से शैतानियत (दानव-राज्य) मे डूब जायेंगे।'

'शैतान का सबसे बड़ा हथियार लोगो को बहकाना है। वह असत्य के सहारे ही अपने समस्त कार्यक्रमो को पूरा करता है। इस समय ससार के राष्ट्र इतने अधिक हथियार बन्द होते जाते हैं, जैसे पहले कभी नही थे, क्योकि सबने इस 'असत्य' पर विश्वास कर लिया है कि हम जितना अधिक अणु—बम तैयार करके रखेंगे उतना अधिक शान्ति कायम रह सकेगी। इस समय युद्ध के समर्थको द्वारा चारो तरफ प्रचार किया जा रहा है—'तुम्हारा विरोधी दहाडते हुए शेर की तरह चारो तरफ घूम रहा है कि वह किसको खा जाय। इसलिए तुम भी जल्दी से जल्दी अपनी रक्षा का उपाय करो।' ऐसे प्रचार के प्रवाह मे बडे-बड़े धार्मिकों और ईश्वर-भक्तों के भी वह जाने की सम्भावना हो जाती है।

'यह अत्यावश्यक है कि ऐसे अवसर पर हम शान्ति चित्त से विचार करे और सोचे कि हमारा क्या कर्तव्य है ? हम जो कुछ निर्णय करेंगे वही हमारे भाग्य का फैसला करने वाला होगा। इस समय हम चौराहे पर खडे हैं, और सही तथा गलत रास्ते का चुनाव करना हमारे ही ऊपर निर्भर है। अगर हम सत्य-मार्ग पर चले तो भगवान् के राज्य मे पहुंच जायेंगे और गलत मार्ग ग्रहण किया तो धर्म विरोधी दल के भयङ्कर कुचक्र मे फंसकर नष्ट हो जायेंगे।'

इस उद्धरण मे धार्मिक ईसाइयो की चिन्तापूर्ण मन स्थिति स्पष्ट प्रकट होती है। इस समय युद्ध की तैयारी करने वाले प्रमुख राष्ट्र ईसाई धर्म के अनुयायी ही माने जाते हैं। इङ्गलैण्ड, फ्रान्स, अमरीका, जर्मनी के सभी लोगो की गिनती ईसाई मजहब वालो मे ही की जाती है और उन्ही मे से कुछ लोग इस तरह युद्ध का प्रचार करके समस्त संसार को युद्धाग्नि की भट्टी मे झोकने की तैयारी कर रहे हैं। वहाँ अधिकाश जनता ईसा-मसीह के प्रेम-सन्देश और क्षमा-भावना को समझते हुए भी झूठी राष्ट्रीयता के प्रवाह मे बहकर युद्ध की तैयारी में सहयोग कर रही है। इसी से व्यथित होकर उक्त सज्जन ने अपने भाइयो को यह चेतावनी दी है।

संसार की समस्या को भगवान् ही सुलझायेगा—

इससे भी अधिक महत्वपूर्ण और अवतार मे विश्वास रखने वाले उद्गार पादरी जान मेलार्ड के हैं, जो इङ्गलैण्ड से Healing Life (हीलिंग लाइफ) नामक पाक्षिक पत्रिका प्रकाशित करते है और आध्यात्मिक विषयो पर अपने भाइयो का मार्ग दर्शन करते रहते हैं। उन्होने वर्तमान सभ्यता और लोगो की स्वार्थपरता को लक्ष्य करके कहा है—

'ससार की समस्या मनुष्य की बुद्धि द्वारा नही सुलझाई जा सकती। यह विशाल कार्य मनुष्य की ताकत के बाहर है। वर्तमान अवस्था ऐसी उलझनपूर्ण है, और अन्याय, अत्याचार इतने बढ़ गए हैं कि उनका सुधार कर सकना साधारण मनुष्य के लिए असम्भव है। तो भी हम निराश अथवा उत्साहीन नही होते वरन् आशा से प्रसन्नचित्त हो रहे हैं। क्योंकि ऐसे ही समय मे—ऐसी ही हालत में भगवान की शक्ति प्रकट होती है, संसार मे एक महान् जागृति होती है और सच्चा कल्याण हो सकता है। हम मे से बहुत से लोग धर्म-राज्य की

फिर से स्थापना होने की आशा कर रहे है। हम अच्छी तरह समझ रहे है कि आवश्यकता एक ऐसे 'अवतार' की है जिसमे ईश्वर का पूरा प्रकाश मौजूद हो। वही उन हृदयो को प्रकाशित कर सकता है जो ईश्वर के लिए व्याकुल होकर पुकार रहे हैं और जो पृथ्वी पर मनुष्य मात्र मे भ्रातृभाव की स्थापना के अभिलाषी हैं। आज ससार के सभी देशो मे ऐसे अनेक व्यक्ति "दैवी अवतरण' की राह देख रहे हैं। एक अन्य लेख मे पादरी मेलार्ड ने अवतार के विषय में अपनी दृढ श्रद्धा व्यक्त की है—

'एक महान प्रकाश के लिए हमको तैयार हो जाना चाहिये। उस अवसर के आने में अब अधिक देर नही है। हालत दिन पर दिन खतरनाक होती जाती है, आसमान मे काले बादलो के दल इकट्ठे हो रहे हैं और इन बादलो के कारण प्रकाश की किरणें निरन्तर क्षीण पडती जाती हैं।

'पर ऐसे समय में दुनिया वाले क्या कर रहे हैं? हम में से अधिकाश ऐसे है जो भगवान् की इच्छानुसार चलने के बजाय भगवान को अपनी इच्छा के अनुकूल चलाना चाहते हैं। बहुतो को तो यह भी पता नही कि हमारे लिए और संसार के लिए भगवान के पास कोई विशेष योजना है। अनेक यह भी स्वीकार नही करते कि यह संसार ईश्वर का बनाया है और इसका न्याय तथा प्रेमयुक्त शासन वही परम पिता कर सकता है। इस समय हमारी एक-मात्र आशा भरोसा यही है कि परमात्मा की शक्ति फिर से प्रकट होकर संसार का कल्याण करेगी।'

यह सज्जन यह भी विश्वास करते है कि अब जो अवतार होगा वह सभी जातियो और देशो का होगा। वह ईसाइयो मे ही होगा और ईसाइयो का ही मार्ग-दर्शन

करेगा ऐसी उनकी धारणा नहीं है । अन्य सच्चे धार्मिकों की भी ऐसी ही सम्मत्ति हो सकती है ।

आकाश की शक्तियाँ विचलित हो रही हैं–

इसी प्रकार श्री जे० एच० कोनीवियर नामक विद्वान ने अपनी "Civilisation or choas" (सभ्यता अथवा अव्यवस्था) नामक नामक पुस्तक मे संसार मे भीषण घटनायें होने के पश्चात् अवतार के आगमन की भविष्यवाणी की है उन्होने 'बाइबिल' के 'लूक' शीर्षक अध्याय की एक भविष्यवाणी का उल्लेख करते हुए कहा है—

"'उस समय सूर्य, चन्द्रमा और तारो मे चिन्ह प्रकट होंगे, ससार के देशो में कष्ट और हलचल बहुत अधिक बढ़ जायगी, समुद्र और उसकी लहरें भी गर्जने लगेगी। मनुष्य संसार में होने वाली घटनाओ को देख सकने का भी साहस न कर सकेंगे, क्योंकि उस समय आकाश की (दैवी) शक्तियाँ विचलित हो जायेगी। इसके पश्चात् 'मानव-पुत्र' शक्ति तथा शोभा के साथ आकाश से उतर कर संसार का उद्धार करेगा :'

'इस उद्धरण की बाते जो 'ईश-पुत्र' महात्मा ईसा ने दो हजार वर्ष पहले कही थी, अवश्य सत्य होने वाली है और उसके बतलाये हुए चिन्ह दृष्टिगोचर होने लग गये हैं। ज्योतिष-विज्ञान के ज्ञाता सूर्य और चन्द्रमा में होने वाले नवीन परिवर्तनों को प्रत्यक्ष देख रहे हैं। एटम और हाइड्रोजन बमो के जल मे परीक्षण किए जाने के कारण समुद्र मे भी हलचल पैदा हो जाती है और करोड़ो जल जन्तु नष्ट हो जाते हैं। समस्त देशो मे इतने अधिक आन्दोलन और खूनी क्रान्तियाँ हो रही हैं कि उनसे आकाशी शक्तियाँ विचलित हो रही हैं । वे समस्त ससार पर आने वाले भयङ्कर परिणाम की सूचना दे रही हैं। इस नाशकारी घटनाओ के बाद 'मानव-पुत्र' पृथिवी पर अवतरित होगा ।'

आस्ट्रेलिया की रहने वाली एक आध्यात्मिक-भाव सम्पन्न महिला मिप एडिलवेयर ने वर्तमान सकटपूर्ण स्थिनि से बचने के लिए एक खुले पक्ष के रूप मे अपने अनुयायिओ तथा सभी धर्म प्रेमी सज्जनो से कहा था कि 'अब पूर्ण रूप से मिलकर सहयोगपूर्वक काम करने का समय आ गया है। अब ऐसा जमाना आ रहा है कि आपको आपस के सब भेद-भाव और विरोधी विचार त्यागकर एकता पर ही जोर देना चाहिये। इस 'नये युग' में ऐसे लोगो का अस्तित्व कायम रह सकना कठिन होगा जिनमे आत्मिक शक्ति की कमी या अभाव पाया जायगा यद्यपि वे टिके रहने की कोशिश करेगे पर उनको अधिक समय तक ठहर सकने मे सफलता प्राप्त न होगी। आकाश से आने वाली 'विश्व-किरणें' उनके लिये 'तीव्र औषधि' काम करेगी। स्थिति की भयङ्करता को देखते हुए हमारा एकमात्र कर्तव्यो यही है कि भगवान् पर पूर्ण विश्वास करके अपने को उसके भरोसे उसी प्रकार छोड दें जैसे बालक माता के विश्वास पर सर्वथा निश्चित हो जाता है। भगवान ऐसे ही बच्चे की-सी दृढ श्रद्धा रखने वाले लोगो को ही नवीन आकाश और नई दुनिया मे स्थान देंगे।'

नई दुनिया की रचना अवश्यम्भावी है—

इस प्रकार सभी देशो के विचारको मे यह भाव फैल रहा है कि वर्तमान समय मे मानव-सभ्यता अग्रसर होते-होते ऐसे स्थान पर आ पहुँची है जहाँ उसकी गति रुद्ध हो गई है और इसलिए उसमें तरह-तरह के दोष उत्पन्न होकर ससार को सङ्कटजनक परिस्थिति मे डाल रहे हैं। जिस प्रकार बहता हुआ पानी किसी बडे गढ्ढे मे रुक जाता है तो कुछ ही समय मे उसमे काई और तरह-तरह के हानिकारक कीटाणु उत्पन्न हो जाते हैं, उसी प्रकार वर्तमान समय मे कुछ थोड़े से लोगो के हाथ मे ससार की समस्त शक्ति और साधन आ जाने से

समाज मे असन्तुलन उत्पन्न हो गया है। इसके परिणामस्वरूप मानव-जाति सृष्टि रचना को दैवी योजना के अनुसार अपने लक्ष्य की तरफ नही बढ़ सकती, वरन् एक स्थान पर अटक कर किंकर्तव्य विमूढ हो गई है और ऐसे कार्य करने लग गई है जो ईश्वरीय नियमो के प्रतिकूल है। निश्चय ही ऐसी अवस्था अधिक समय तक कायम नही रह सकती। भारतवर्ष के अध्यात्मशक्ति सम्पन्न साधको ने इस समस्या पर भली प्रकार विचार किया है और अब से कुछ वर्ष पूर्व ही भारत के महान आध्यात्मिक नेता श्री अरविन्द ने इस सम्बन्ध में एक घोषणा की थी—

'मुझे भय है कि जो लोग इस समय संसार की सङ्कटपूर्ण परि-स्थिति पर दुःखी हो रहे है, उनको मैं कोई विशेष सान्त्वना की बात नही कह सकता। इस समय हालत बुरी है, निरन्तर अधिक बुरी होती जाती है और सम्भव है किसी भी समय वह अधिक से अधिक बुरी बन जाय। अब इस अशान्तिपूर्ण जगत मे कोई भी बात, चाहे वह कितनी भी विपरीत अथवा असङ्गत क्यो न जान पड़ती हो, असम्भव नही, है।

'इस परिस्थिति में सबसे अच्छी बात यही है कि हम विश्वास रखें कि अगर ससार में एक नया और श्रेष्ठ युग आना है, तो उसके लिए हमारी सब बुराइयो को प्रकट होकर निकल ही जाना चाहिए। यह एक वैसी ही प्रणाली है जैसे योग-साधन मे अपने भीतर की हीन वासनाओ को प्रकाश में लाकर उसके साथ सङ्घर्ष करके दूर कर दिया जाता है। शुद्धि का यही तरीका है। इसके सिवाय हमको यह कहावत भी याद रखनी चाहिए कि प्रभात होने से पहले रात्रि का अन्धकार सबसे अधिक घनीभूत हो जाता जान पड़ता है।

'मैं यह बतला देना चाहता हूँ कि जिस नये ससार के आगमन की हम आशा कर रहे हैं वह उसी सामग्री का बना न होगा, जिसका

कि वर्तमान संसार दिखाई पड़ रहा है, वरन् उसका निर्माण भिन्न प्रकार के साधनों और तत्वो से ही होगा। इस समय बाहरी चीजो का ही ज्यादा महत्व है जब कि उस नये जगत मे आन्तरिक शक्तियो की ही प्रधानता होगी। इसलिये यदि इस समय धन,सम्पत्ति, शान-शौकत जैसी बाहरी वस्तुओ मे दोष उत्पन्न होकर वे नष्ट होती जाती हैं तो इस पर ज्यादा ध्यान देने या चिन्ता करने की आवश्यकता नही है। इनके स्थान मे लोगो को अपनी आत्मिक शक्तियो के विकास का उद्योग करना चाहिए जिससे वे नये-युग के उपयुक्त बन सकें।

'संसार की वर्तमान स्थिति पर दृष्टिपात करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि यह दुनिया अब बहुत पुरानी हो गई है और अब उसकी कायापलट होने की आवश्यकता है। उसकी एक-एक शृङ्खलायें जर्जरता के कारण टूट रही हैं। न तो आज कोई समाज ही अपने स्थान पर अडिग है और न कोई सरकार ही। समाज का बन्धन धीरे-धीरे अज्ञात किन्तु स्पष्ट रूप से टूटता जा रहा है। एक के बाद दूसरी सरकारें असफल होती जा रही हैं। मानव-समाज खतरे मे हैं। मनुष्य की आजादी, देशो तथा राष्ट्रों की स्वतन्त्रता नष्ट हो रही है। सम्पूर्ण विश्व की अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियाँ, पारस्परिक सम्बन्ध, सामजस्य सभी हिल उठे हैं। निर्धनता, अत्याचार, अज्ञान भीरुता आदि का सारा जगत शिकार बन चुका है। ससार की इस अस्वाभाविक अवस्था के कारण गत चालीस वर्षों के भीतर दो बार भयङ्कर विश्व-युद्ध हो चुके हैं और तीसरे प्रलयकारी युद्ध की सम्भावना प्रतिदिन निकट आती चली जाती है।'

इस भयङ्कर अवस्था का—इस क्रमशः नाश की प्रक्रिया का इलाज आखिर क्या है? मानव-जाति को नष्ट-भ्रष्ट करने वाली इस व्यापक सङ्कटपूर्ण परिस्थिति को किस प्रकार बदला जा सकता है? सामाजिक और आर्थिक क्षेत्र में जानकारो ने इसके लिए अनेक प्रकार

के सुझाव सामने रखे हैं राजनैतिक नेताओ ने जितने भी उपाय इस अवस्था के मिटाने के लिए बतलाये है वे सभी असङ्गत है । वे सफल कैसे हो सकते है ? जब राजनीनिज्ञो का मस्तिष्क स्वय अपनी भावनाओ पर ही नियन्त्रण नही रख सकता, तब सारे विश्व की व्यवस्था को सुधारने के लिए वह कैसे कोई उपाय खोज सकता है ?

यदि इन सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक विचारको को छोड कर धार्मिक वर्ग पर निगाह डालते हैं तो मालूम होता है कि धर्म के स्वच्छ दर्पण पर, बीते हुये युगो की धार्मिक शिक्षा पर, पडित, पुजारी पादरी, मुल्ला कहे जाने वाले लोगो ने अन्याय की छाया डाल दी है, जिससे मनुष्य की दिव्य-दृष्टि नष्ट हो गई हैं। सडी-गली प्रथाये, धर्म के नाम पर होने वाले झूठे पाखण्ड और समाज के टूटते हुए बन्धन सभी व्यर्थ हैं। न तो इनसे विश्व का कोई हित हो सकता है और न अब इसकी आवश्यकता है।

अन्त मे श्री अरविन्द ने नये युग का स्वागत करते हुये कहा है—

"वह दिन कितना धन्य होगा जब मानवता एक नये युग मे प्रवेश करेगी। वह युग जिसमें शान्ति होगी, प्रेम का शासन होगा, एकता होगी, सुख होगा और मानव-जीवन की सफलता होगी। उस दिन संसार के कण-कण मे सुख और शान्ति व्याप्त हो जायगी। उस युग का एक दिन भी पिछले युगो की शताब्दियों की तुलना का होगा।"

पर यह भी निश्चित है कि इस नवयुग में प्रवेश करने से पूर्व मनुष्य जाति को एक बार अग्नि-परीक्षा मे होकर गुजरना पड़ेगा। युग परिवर्तन के समय क्रान्ति का होना अनिवार्य है। जब एक युग मृत्यु के मुख में विलीन होता है तथा नया युग कर्मक्षेत्र मे प्रवेश करता हैं, तब

दोनो मे तुमुल-स ग्राम होना स्वाभाविक ही है। 'कल्कि पुराण' मे इसी भीषण सङ्घर्ष का रूपको तथा कथाओ के रूप मे उल्लेख किया गया है। जो व्यक्ति इस सङ्घर्ष मे धर्म-पक्ष का सफलतापूर्वक नेतृत्व करके वर्तमान अन्याय, अनीति और भ्रष्टाचार का अन्त कर सकेगा उसे 'अवतार' मानने से कौन इन्कार करेगा ?

युग-परिवर्तन तथा 'अवतार' अवश्यम्भावी हैं-

यद्यपि राजनीति के क्षेत्र मे चालबाजी और कूटनीति को प्रशसनीय बतलाया गया है तो भी कितने ही राजनीतिज्ञ सत्य के उच्च आदर्श को पूर्णतया ठीक समझते हैं और अवसर आने पर उसका प्रतिपादन और समर्थन भी करते हैं। गत वषो मे भारतीय-राष्ट्र के कर्णधार प० जवाहरलाल नेहरू और अमरीका के प्रेसीडेण्ट केनेडी इसी कोटि के महापुरुष हुये हैं। यद्यपि अमरीका अस्त्र शस्त्र की दौड़ मे सबसे आगे हैं और उसने इस कार्य मे कितना धन खर्च किया होगा इसकी कोई गिनती नहीं की जा सकती। पर प्र० केनेडी विश्व शान्ति के सिद्धान्त को कल्याणकारी मान निश्वस्त्रीकरण के लिये तैयार हो गये थे और उन्होने अपने प्रतिद्वन्दी रूस से कहा था कि 'अब तक तुम शस्त्र निर्माण मे हमारे साथ दौड़ लगाते रहे तो अब निशस्त्रीकरण मे भी हमारे साथ दौडो।' पर अमरीका के सबसे बडे पूंजीपति, जो हथियारो का व्यापार करके प्रति वर्ष अरबो रुपया कमाते हैं ऐसी बात को कब सहन कर सकते थे ? परिणाम यह हुआ कि थोडे ही समय बाद केनेडी की गुप्त घातक द्वारा हत्या करदी गई। विश्व-श न्ति के नाम पर एक महामानव का बलिदान हो गया।

पुरानी दुनिया अवश्य मरेगी-

प० जवाहर लाल नेहरू जी भी बहुत सयय से राजनीतिक आन्दोलन के साथ नये युग और नये स सार के निर्माण की चर्चा करते

आये थे। वे इतिहास के बहुत बडे ज्ञाता थे और प्राचीन घटनाओ के प्रकाश में आगामी घटनाओं के स्वरूप का बहुत कुछ सही अनुमान कर सकते थे। उनका दृढ विश्वास था कि वर्तमान दुनिया अब ज्यादा दिन तक इस हालत मे नही रह सकती और मानव-जाति शीघ्र ही एक नये युग मे प्रवेश करेगी। इसका विवेचन करते हुये उन्होने २५ वर्ष पूर्व लिखा था—

"इस समय दुनिया मे बडे जोरदार परिवर्तन हो रहे है, तो भी दिन पर दिन यही दिखलाई पडता है कि वे आने वाली घटनाओ के लक्षण मात्र है। हम इस समय एक ऐसे महान् क्रान्तिकारी युग मे जीवित हैं जिसकी तुलना का युग अब तक के इतिहास मे शायद ही मिल सके। यह क्रान्ति अपना नियत कार्यक्रम पूरा करके ही रहेगी। तब तक हमारी पृथिवी पर शान्ति या समझौते की कोई आशा नहीं।

'हमे समझ रखना चाहिये कि पुरानी दुनिया अवश्य मरेगी, चाहे यह बात हमको पसन्द हो या न हो। जो लोग इस पुरानी दुनिया के सबसे बड़े समर्थक थे, नष्ट होकर भूतकाल की चीज बन चुके हैं। हमको यह भी समझ लेना चाहिये कि एक युग समाप्त हो चुका है और इस खून-खराबी के बीच में होकर हम नये युग में प्रवेश कर रहे हैं। मैं यह तो नही कह सकता कि यह नया युग अवश्य ही बहुत अच्छा होगा, पर मैं इतना जानता हूं कि वह बिल्कुल भिन्न प्रकार का होगा। संसार के नर-नारी भाग्य के खिलौने बन गये हैं और नाश के भँवर में खिचते चले जा रहे हैं। हम नही जानते कि हम किधर जा रहे हैं। फिर भी इतना तो हम कह ही सकते हैं कि हमारी आज की दुनिया हमारी आँखो के सामने ही तेजी से बदल रहा है, और कोई नही कह सकता कि इसकी जगह हमे क्या देखने को मिलेगा।"

नेहरूजी ने एक अन्य अवसर पर इस महान् परिवर्तन के सञ्चालनकर्ता (अवतार) के विषय मे भी अपने विचार प्रकट किये थे—

"मनुष्य-समाज के उद्धार के लिये समय-समय पर इस देश और दूसरे देशो मे भी महापुरुष पैदा होते रहते हैं। पर ऐसे किसी महापुरुष की अपेक्षा वह भावना बडी है, जिसको वह अपने जीवन के व्यवहार मे पूरी करके बनाता है। ऐसे महापुरुषो को लोग 'अवतार' कहते हैं। इस युग का 'अवतार' वह भावनाएँ ही है, जो कि मनुष्य-समाज के सुधारने के लिये प्रकट हो रही है। आज भी वह भावना जिसको अवतार कहा जा सकता 'सामाजिक-न्याय' की है। आइये, इस भावना रूपी अवतार के सन्देश को हम सुने और उसके द्वारा होने वाली सामाजिक क्रान्ति के हम उपयुक्त साधन बने। इससे मनुष्य का जीवन बदल जायगा और यह ससार मनुष्यो के निवास के योग्य अधिक उपयुक्त बन जायगा।"

नेहरूजी ने अवतार को प्रधानतया भावना के रूप मे बतलाया हैं और उसमे कुछ गलती नही है। जब तक लोगो की भावनाये जागृत नहीं होगी तब तक वे किसी महापुरुष के पीछे चलने को तैयार न होगे। यह जनता की भावना ही हैं जिसके आधार पर वे एक अपने जैसे नरतन धारी को अपने से बहुत ऊँचा, ईश्वर के समान मान लेते हैं। पर उपर्युक्त उद्धरण मे जो यह कहा गया है कि भावना अवतार से बड़ी होती है, उसमे दो पक्ष हैं और दोनो ही ठीक हैं। जैसे ईश्वर को निराकार माना जाता है और अधिकाश ज्ञानी पुरुष निराकार-पक्ष का ही समर्थन करते हैं, पर सामान्य मनुष्य निराकार ईश्वर की उपासना अर्चना, भक्ति ठीक ढङ्ग से नही कर सकता, इसलिए वह उसके साकार रूप को ही मानता है, चाहे उसमे वास्तविकता का अंश कितना ही हो। यही बात 'अवतार' के विषय मे है। चाहे भावना ही मुख्य वस्तु

हो, पर जन-सामान्य उस सूक्ष्म और केवल बुद्धिगम्य तत्त्व को ठीक तरह हृदयंगम नही कर सकते, इसलिये भावना को तभी स्वीकार करते है जब उसकी प्रेरक शक्ति को प्रत्यक्ष रूप मे देख लेते हैं। दोनो स्थितियो मे कार्य एक ही होता है पर ज्ञानी भावना की उच्चता से अधिक प्रभावित होता है और सामान्य बुद्धि वाला उसके सञ्चालक अथवा नेता को प्रमुख मानकर उसका अनुसरण करता है।

सूर्योदय पूर्व दिशा में ही होगा--

महाकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर एक दिव्य दृष्टि रखने वाले महा-मानव थे। वे मानवता के पतन को देखकर बडे खिन्न होते थे और आध्यात्मिकता की भाषा मे लोगो को पाप से मुक्त होने की प्रेरणा देते रहते थे। वे संसार की वर्तमान अवस्था को बहुत बचनीय और एक धार्मिक व्यक्ति की दृष्टि से कलङ्कपूर्ण मानते थे। उनकी सम्मति थी कि—

'पाप के भार से लदी हुई वसुन्धरा की कलुषित धूल पर आज नभ से रक्त की धारा बरस रही है। पाप का पक हलाथे मानस को कलुपित कर रहा है और रुधिर के चिन्ह हमारे हाथो पर दीख पड़ने लगे हैं। रुधिर के इन धब्बो को हम कब तक धोते रहेगे ?'

निस्सन्देह युद्ध और किसी भी देश के निरपराध व्यक्तियों का हत्याकाण्ड धार्मिक कहलाने वाले मनुष्य के लिए कलंक स्वरूप ही है। ऐसे व्यक्ति कभी भगवान की दृष्टि में पाप मुक्त नही माने जा सकते।

महाकवि ने 'अवतार' के सम्बन्ध में भी यह विश्वास प्रकट किया है कि वह भारतवर्ष मे ही प्रकट होकर संसार के उस भ्रम और अज्ञान को दूर करेगा, जिसके कारण आज यह दुनिया सर्वनाश के

अथाह के गढ़े मे कूदने की तैयारी कर रही है। उन्होने अपनी ८० वी वर्षगाँठ पर एक सन्देश देते हुये कहा था—

"एक समय था जब कि मैं यह विश्वास करता था कि सभ्यता का स्रोत योरोप के भीतर से उत्पन्न होगा। पर आज मैं इस नाशवान जगत को छोडने की तैयारी कर रहा हू, मेरे उस दृढ विश्वास के टुकडे-टुकडे हो चुके हैं। आज मेरी एकमात्र अन्तिम अभिलाषा यही है कि 'उद्धारकर्ता' का आविर्भाव इस 'अकिंचन देश' में ही होगा। पूर्व दिशा से ही उसका सन्देश समस्त संसार मे फैलेगा और मानव-जाति ने हृदयो को पूर्णतया आशा से भर देगा।"

'जैसे-जैसे मैं आगे बढता जाता हू, पीछे की तरफ मुझे आधुनिक सभ्यता का भवन टूटकर खण्डहर बनता दिखलाई पडता है। वह मानवीय असफलता के एक बहुत बडे घूरे की तरह जान पडता है। पर यह देखकर भी मैं मनुष्य मे अश्रद्धा नहीं कर सकता। ऐसा करना बहुत बडा पाप होगा। इसके विपरीत मैं आशा करता हूँ कि जब पश्चिम के सत्ताधारियो का युद्धोन्माद समाप्त हो जायगा और ससार का वातावरण स्वच्छ होकर सेवा और त्याग की भावना का उदय होगा, तो ससार के इतिहास मे एक नया ही अध्याय आरम्भ होगा।

"सम्भवत: प्रभात इसी पूर्वीय क्षितिज पर होगा, जहाँ से सूर्योदय होता है। तब एक नया दिन आयेगा जब कि मनुष्य समस्त विघ्न-बाधाओ को नाँधकर अजेय भाव से फिर अपने प्राचीन गौरव के मार्ग पर अग्रसर होगा और अपने खोये हुये उत्तराधिकार को प्राप्त करेगा।"

भारतीय सन्तों के उद्गार—

भारत के धार्मिक क्षेत्र वाले व्यक्ति तो, चाहे वे बडे हो या छोटे, विद्वान् हो या सामान्य, किसी न किसी तरह प्रत्यक्ष अवतार में विश्वास रखते ही हैं। जब तक देश मे राम-कृष्ण और शिव की भक्ति धारा प्रवाहित है, तब तक यहाँ 'अवतारों' मे श्रद्धा का अभाव नही हो

सकता । जिन लोगो का अटल विश्वास है कि भगवान हाथी के पुकारने पर उसकी रक्षार्थ आये थे, उन्होने ध्रुव, प्रह्लाद जैसे बालकों की प्रार्थना को स्वीकार किया था, द्रौपदी की लाज बचाने को एक के स्थान पर हजारो साडियाँ उपस्थित करदी थी, वे यह क्यो नही मानेगे कि यदि भक्तों पर आपत्ति आयेगी तो भगवान आज भी उनकी रक्षार्थ उसी प्रकार अवश्य खडे होगे ? इस लिए यहाँ के धार्मिक जन और साधु-महात्मा सदैव भगवान के आगमन की राह देखते ही रहते हैं और आज कल तो ससार मे दानवता की प्रबलता देखकर उनका विश्वास और भी सुदृढ हो रहा है ।

सूरदास आदि प्राचीन सन्तो के सतयुग और अवतार सम्बन्धी भविष्य कथनो की चर्चा तो लोग करते ही रहते हैं, पर आजकल भी अनेक भगवद्-भक्त, तपस्वी महापुरुष यही कहते कि ससार की दुर्दशा को मिटाने और धर्म राज्य की स्थापना करने के लिए 'दैवी-शक्ति' का आविर्भाव शीघ्र ही होगा । इस सम्बन्ध में पञ्जाब प्रदेश के एक महापुरुष का नीचे उद्धृत विवेचन हमको विशेष रूप से युक्तियुक्त जान पडता है जो हमने अपने 'सतयुग' मासिक पत्र में अब से कितने ही वर्ष पूर्व प्रकाशित किया था—

'प्रत्येक युग मे दूसरा युग वर्तता है, यह प्रकृति का नियम है। सतयुग में भी कलियुग वर्ता था । इसी प्रकार अब कलियुग मे सतयुग वर्तेगा । सृष्टि की वर्तमान अवस्था ऐसी हो गई है कि यदि अब सतयुग न आवे तो यह अधिक समय तक स्थिर नही रह सकती । मनुष्यो की शक्तियाँ और मनोवृत्तियाँ ऐसी हीन होती जा रही हैं कि अब यदि नया युग न आवे तो मानव-जाति सौ-दो सौ वर्ष मे नष्ट प्रायः हो सकती है । और यह भगवान को इष्ट नही । इसलिये काल-चक्र के कायम रहने के लिये भगवान बीच मे 'सतयुग' रूपी टेका (सहारा) लगाकर इसे स्थिर रखने की व्यवस्था करेंगे ।

"घोर कलियुग का एक मुख्य कारण संसार की जन-संख्या का बहुत अधिक बढ जाना भी है। संसार मे शान्ति स्थापना करने के लिए सबसे पहली बात यह है कि यह बढी हुई जनसंख्या कम हो। इसके लिये मनुष्य यदि विवेक से काम लेवें तो स्वयं भी सतयुग ला सकते हैं। और यदि उन्होने विवेक और संयम से काम न लिया तो भगवान अपनी प्रकृति द्वारा स्वयं नये युग की स्थापना करेंगे।

"ऐसा परिवर्तन होने से रोटी का झगडा खत्म हो जायगा और तब दूसरे देशो को विजय करने की लालसा ही शेष नही रहेगी। सबको स्वराज्य प्राप्त हो जायगा, मजहबो के झगडे खत्म हो जायेंगे, ऊँच-नीच का प्रश्न हल हो जायगा। इसलिये सामाजिक वैमनस्य भी न रहेगा। सबको मनुष्य समझा जायगा। भ्रातृभाव की स्थापना हो जायगी। और राजनैतिक तथा आर्थिक गुत्थियाँ ऐसी हल हो जायेंगी कि न तो कोई भूखा रहेगा न किसी पर अन्याय हो सकेगा। फिर एक बार धर्म-राज्य स्थापित हो जायगा।"

श्री विश्वरञ्जन ब्रह्मचारी ने 'जीवन-लक्ष्य' नामक बंगला ग्रन्थ मे लिखा है—

"जगदीश्वर की जिस प्रकार की प्रेरणा मिली है उससे अब हमको हताश होने का कोई हेतु नहीं। इस घोर मिथ्यायुग (कलि-युग) मे ही सत्य-युग का प्रकाश बिखर जायगा। अब पुनः इस देश मे ऋषि-युग आयेगा। फिर यज्ञधूम से भारत-गगन पवित्र होगा। पुन त्यागी, तपस्वीयो ब्राह्मणो के प्रणवनाद से, अमोघ आशीर्वाद से लोगो के प्राण संजीवित हो उठेंगे। फिर यह भारत ही समग्र वसुधा को ज्ञान-प्रकाश द्वारा 'अमृत' का पथ-प्रदर्शन करा देगा—लक्ष्य वस्तु का का अनुसन्धान बता देगा। वह दिन आयेगा, अवश्य ही आयेगा।"

हिमालय के सिद्ध महात्मा स्वामी शान्तानन्दजी ने यह आशा-जनक सन्देश दिया है कि 'साधना मे संलग्न कलि जीव इस समय

विकास-क्रम के उच्च शिखर पर आरोहण करके आगामी धर्म-युग के आगमन के अवसर पर भगवान-चरण वन्दना की प्रतीक्षा मे है। प्रभु प्रेम-भक्ति-शरणागति रूपी नौका को स्वयं कर्णधार बनकर पार लगायेंगे। हमे बालक बन कर उस परम-पिता का आश्रय ही ग्रहण करना आवश्यक है।"

राधास्वामी सम्प्रदाय के प्रधान गुरू स्वामी ब्रह्मशंकर (हजूर महाराज) ने भी आध्यात्मिक-जगत की सूक्ष्म गति का निरीक्षण करके बतलाया है कि 'हमारा विश्वास है कि निकट भविष्य मे ही आध्यात्मिक क्षेत्र में से निकलकर शक्तिशाली लहरे पृथिवी पर आधिपत्य जमाने वाली हैं। इस समय हम जितनी आपत्तियो का अनुभव कर रहे हैं, तब वे सब गायब हो जायेगे और 'सतयुग' से भी बढ़ कर प्रेम, आनन्द और कल्याण की दशा सर्वत्र व्याप्त हो जायगी। जो आध्यात्मिक शक्तियाँ इस समय छिपी पड़ी हैं तब वे बहुत कुछ प्रकट हो जायेगी।'

बङ्गाल के भगवन्नाम प्रचारक तथा पतितोद्धारक महाप्रभु जगद्‌बन्धु के उद्‌गार है—"माँ! महाप्रलय आने वाली है। तेरे नाम की रट लगे तो काल-पाश का जाल कटे और सृष्टि की भी रक्षा हो। कलियुग की अवधि पूरी हो चुकी अब तनिक भी देर न लगा। अब हजार वर्ष मेरी लीला चलेगी। इस बार मैं सबको भगवान का नामामृत चखाऊँगा, तभी मेरा नाम 'जगद्‌बन्धु' सार्थक होगा। मेरे इस महाव्रत का उद्यापन इसी बीसवी शताब्दी के भीतर पूर्ण रूप से हो जायगा।'

पूर्वीय-भारत के एक प्रसिद्ध आध्यात्मिक नेता स्वामी असीमानन्द सरस्वती का कहना है कि—'संसार मे जितने भी दल, मजहब, जातियाँ हैं वे सब मेरे ही हैं। जब ऐसे विभिन्न प्रकार के व्यक्ति मेरे पास आते हैं तो वे सब मुझे अपने आत्मस्वरूप ही जान पड़ते हैं। मुझे इस

समय भगवान की अनुपम सत्ता प्रसारित होती जान पडती है और वह दिन समीप ही है जबकि समस्त संसार प्रेम, समता और भ्रातृभाव के सन्देश से गूँज उठेगा। यह दैवी-संगीत इस भारत-भूमि से ही आरम्भ होगा।'

ईश्वर एक ही रहेगा–

सर्व धर्म सम्मेलन' के सभापति सर फ्रान्सिस यंगहस्वैण्ड ने एक घोषणापत्र द्वारा नवयुग आगमन का सन्देश दिया है और इसके लिये धार्मिक मतभेदो को त्यागने की सम्मति दी है —

'संसार का पुनर्संङ्गठन सूक्ष्म-जगत में आरम्भ हो गया है। इसके पहले एक श्रेष्ठ संसार की रचना के लिए इतना अधिक उत्साह और तत्परता कभी दिखलाई नही पड़ी थी। संसार में नवीन युग की स्थापना के लिये सबसे आवश्यक बात सब धर्मों के अनुयायिओं की आध्यात्मिक प्रेरणा ही है। जिस प्रकार यह 'नवयुग' किसी एक देश के निवासियो की कोशिश से नहीं आयेगा वरन् उसके लिये सभी देश वालो को चेष्टा करनी पड़ेगी, इसी प्रकार यदि संसार के सब धर्मों के अयुयायी विश्व-कल्याण के लिये आध्यात्मिक शक्ति उत्पन्न करना चाहते हैं तो उनको भी मिलकर एक होना पड़ेगा। इस सम्बन्ध में फ्रान्स के महान दार्शनिक 'हेनरी-वर्गसाँ' का यह कथन बहुत ही महत्व का है कि 'तमाम मनुष्यों का ईश्वर एक ही है। उसकी एक ही झलक द्वारा, जो सबको प्राप्त हो सकनी सम्भव है—पारस्परिक कलह और युद्ध का अन्त हो जायगा।'

बर्गसन के कथन से एक बहुत महत्वपूर्ण निष्कर्ष यह भी निकलता है कि नये 'अवतार' को संसार मे नया युग स्थापित करने के लिये किसी प्रकार की हिंसा और मार-काट का आश्रय नहीं लेना

पडेगा। वरन् उनके आध्यात्मिक प्रभाव से ही सब युद्ध-प्रिय व्यक्ति अभिभूत हो जायेंगे और संसार मे शान्तियुग का आगमन सम्भव हो जायगा। हिन्दू धर्म मे जितने अवतारो का वर्णन है उनमें बुद्धदेव के अतिरिक्त सबको दुष्ट-दमन करके ही धर्म की रक्षा करनी पडी है। पर मालूम होता है कि नया अवतार, जिसे बर्गसाँ सम्भवतः ईसामसीह का द्वियीय आगमन मानता हो और भारतवासी जिसका नामकरण 'कल्कि' करना पसन्द करते हैं, अपनी आध्यात्मिक शक्ति और प्रेम-भावना द्वारा ही सभी देशो और धर्मों के अनुयायिओ को स्ववश कर लेंगे।

'कल्कि पुराण' मे उनके युद्धो का जो वर्णन किया गया है उसे अधिकांश विचारक अलकारात्मक मानते हैं और उसमे दिये गये योद्धाओ नामो का अर्थ भी भिन्न रूप से करते हैं। उदाहरण के लिये एक धर्मप्रेमी सज्जन ने 'शशिध्वज' का अर्थ 'चन्द्र जिसकी ध्वजा मे हो' अर्थात् वाणासुर या महाकाल किया है। इसी प्रकार 'रुधिराश्व' अर्थ 'जिसका घोडा रक्त जैसा लाल हो' होता है। इसका आशय प्रातः और संध्या के उस समय से है जबकि आकाश में लाली छा जाती है। 'शैयाकर्ण' अर्थात् 'जिसके दोनो कान शैया जैसे हो अर्थात् 'दिवस' 'सुशान्ता' अर्थात् जिसकी गोद मे महाशान्ति प्राप्त होती हो अर्थात् कालरात्रि मृत्यु। इसी प्रकार 'कल्कि' की पत्नी 'पद्मा' के मातापिता के लिए 'बृहद्रथ' का अर्थ 'मन', 'कौमुदी' का इच्छा और 'सिंहल' का 'वक्षस्थल' लगाया गया है।

हम यह नही कहते कि पाठक इन्ही अर्थों को ठीक मान ले, पर इसको लिखने से हमारा प्रयोजन इतना ही हैं कि 'कल्कि पुराण' में 'कल्कि' के युद्धों का जो वर्णन किया गया है उसे स्थूल जगत से ही सम्बन्धित नही समझना चाहिए चाहिए। अनेक उच्चकोटि के विद्वानो ने भी यह सम्मति प्रकट की है कि 'कल्कि' के हाथो में जिस,

खड्ग (तलवार) का होना शास्त्रो मे लिखा गया है, वह लोहे से बनी साधारण तलवार नही है वरन् 'ज्ञान रूपी खड्ग' है, जिससे संसार भर के लोगो के मस्तिष्क को एक ही साथ बदला जा सकता है। इसको अलकार की भाषा मे 'मस्तष्क काटना' भी लिख सकते हैं। इसलिए हमको बर्गसाँ के इस कथन मे बहुत कुछ सार दिखाई पडता है कि निकट भविष्य में कोई ऐसा महामानव प्रकट होना सर्वथा सम्भव है, जिसकी एक ही झलक लोगो की पारस्परिक कलह और युद्धो का अन्त कर देगी।

अवतादवाद की प्रतिक्रिया—

'अवतार' के प्रकट होने की इस नवीन भावना ने हमारे देश में गत पचास वर्षों के भीतर विशेष जोर पकडा है और इसी बीच में अनेक विचारको, साधको और धार्मिक सज्जनो का ध्यान इधर आकर्षित हुआ है। हिन्दी भाषी सामान्य पाठको मे इसका प्रचार 'चेतावनी' नामक छोटी-सी पुस्तिका से हुआ, जो सन् १९३० के आस-पास प्रकाशित हुई थी। इसमें महाभारत के एक श्लोक के आधार पर यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया गया था कि वर्तमान कलियुग १ अगस्त १९४३ को समाप्त होकर उस समय से 'सतयुग' आरम्भ हो जायगा। लोगो को यह बात कुछ अनोखी-सी जान पड़ी। क्योकि आमतौर से वे यही सुनते आये थे कि कलियुग चार लाख ३२ वर्ष का होता है और उसमे से अभी पाँच हजार वर्ष के लगभग ही व्यतीत हुये हैं। इसलिये जहाँ सर्व-साधारण इस पुस्तिका को कौतूहलपूर्वक पढने लगे वहाँ पुराने ढङ्ग के पण्डित उसका 'विरोध' भी करने लग गये और 'सतयुग और कल्कि अवतार' की बात का प्रचार करने वालो तथा उस पर विश्वास करने वालो को 'मूर्ख' की पदवी देने लगे। इस वाद-विवाद मे उक्त पुस्तिका का प्रचार काफी हो गया और जगह-जगह उसकी चर्चा सुनाई पड़ने लगी।

पर यह ख्याल ठीक नही कि 'कल्कि' का प्रचार 'चेतावनी' के लेखक ने ही प्रारम्भ किया। कल्कि अवतार' का उल्लेख तो 'भागवत' तथा सभी पुराणो से मिलता है और साथ में यह भी कह दिया है कि वह भविष्य मे होगा। इस आधार पर हमेशा ही उनके प्रकट होने की भावना किसी न किसी व्यक्ति के मन मे उत्पन्न हो जाती थी, और उसकी बातें सुनकर सर्व-साधारण मे उसकी चर्चा होने लग जाती थी।

इस प्रकार की चर्चाओ का फैलने या फैलाने का तरीका पुराने जमाने में यह था कि ऐसा व्यक्ति एक चिट्ठी लिखकर बाँटता रहता था कि भगवान ने मुझे अवतार लेने का सन्देश दिया है और उसका प्रचार करने का आदेश दिया है। इसलिए जिसे यह चिट्ठी मिले वह भी इस प्रकार की कम से कम दश चिट्ठी लिखकर बाँट दे। जो ऐसा न करेगा उसे पाप लगेगा।' पिलखुवा (मेरठ) निवासी भक्त राम शरण दासजी ने अवतार सम्बन्धी एक लेख मे बतलाया है कि 'जब मैं बाल्यावस्था में अपने माता-पिता के साथ तीर्थ-यात्रा को गया था तो सम्भल (मुरादाबाद) में हमने बाजार मे एक छोटी सी पुस्तक बिकती देखी जिसका नाम था 'भगवान का अवतार हो गया है।' इसके कुछ समय बाद जब मैं एक पाठशाला मे पढता था तो किसी मनुष्य ने मुझे एक चिट्ठी दी। उसमें लिखा था 'एक पहाड़ पर सर्प निकला। उसने कहा कि अब भगवान का अवतार हो गया है और वे दुष्टो को मारेंगे' अखीर में लिखा था कि 'जो इसे पढ़े इसी प्रकार की दश चिट्ठी बाँटे, नहीं तो गोहत्या का पाप लगेगा।' हमने गोहत्या के पाप से डरकर दस चिट्ठियाँ लिखकर बाँटी।

अब भी इस प्रकार की एक सूचना हमारे सामने है। यह एक छपे पर्चे के रूप में है जो लगभग एक मास पूर्व हमको एक बालक से मिल गया था। इसमें लिखा है —

'साक्षात् बैंकुण्ठनाथ भगवान बालाजी (आन्ध्र प्रदेश) के मंदिर मे एक बडा सर्प बाहर से आया। उस समय भगवान की पूजा करने वाले वही पर थे। वे उस सर्प को देखकर भय से अन्दर ही किवाड़ की आड़ मे छिप गये। तब सर्पराज ने एक वृद्ध पुरुष का रूप धारण करके, उन छिपने वाले भक्तो को सामने बुलाकर कहा, मेरे प्यारे भक्तो ! तुम मेरे से मत डरो, मैं कुछ ही दिनो के भीतर कलियुग मे अवतार धारण करूँगा और दुष्ट पाप-कर्म करने वालो को कुचल कर न्याय का पालन करूँगा।' और भी कई बातें लिखी है। और अन्त मे यह भी कह दिया गया है कि जो 'इसकी २ हजार या कम से कम २५ प्रतियाँ बाँटेगा तो २५ दिन मे उसकी मनोकामना पूर्ण होगी।'

धार्मिक बातो के प्रचार करने का यह एक पुराना तरीका है। इन बातो के सत्य अथवा झूठ होने के सम्बन्ध मे विवाद उठाना तो निरर्थक है, पर इससे इतना प्रकट हो जाता है कि भारतीय जनता की मनोभावना पर 'अवतार' का प्रभाव बहुत समय से चला आया है।

दिल्ली का 'निष्कलङ्की-दल–

इसका एक प्रत्यक्ष उदाहरण दिल्ली और आस-पास के स्थानों में पाया जाने वाला 'निष्कलङ्की-दल' है। इसकी स्थापना को तो अब अस्सी वर्ष लगभग हो गये होंगे पर सन् १९३८—३९ के लगभग जब सतयुग-आन्दोलन बढ़ा तो इसकी भी अनेक शाखाये खुल गई और जगह-जगह धूमधाम से कीर्तन-समारोह होने लग गये। इस प्रकार का एक कीर्तन, जो रात भर होता रहा, मैंने भी दिल्ली मे देखा था। करीब ४०—५० नवयुवक, अधेड और वृद्ध बडे जोश और भक्ति-भाव से 'कल्कि भगवान' के एक बड़े चित्र के सम्मुख घण्टो तक तरह-तरह के भजन गाते रहे। उनके उत्साह, तल्लीनता और आन्तरिकता को देखकर यही प्रतीत होता था कि उनको 'कल्कि' के प्राकट्य का पूरा विश्वास है और वे उनके नाम पर कुछ त्याग, परमार्थ करने

करने को सहर्ष तैयार है। जब मैं वहाँ पर पहुंचा तो वे गा रहे थे—

बोलो जय जय जय कल्कि प्यारे।
मुकुट की शोभा अति प्यारी है जय जय जय सम्भल वारे ।
मस्तक पर मलयागिरि चन्दन जय गौअन के रखवारे ।।
कानन कुण्डल अति प्रिय लागे जय घोड़े चढने वारे।।
कल्कि मण्डल नित प्रति गावे, प्रकटो युग पलटन हारे।।

मैंने देखा कि उनमे से अधिकांश श्रमजीवी वर्ग के अल्पशिक्षित व्यक्ति थे, जो उच्च धार्मिक सिद्धान्तो के विषय मे प्राय: अनजान थे। पर इस प्रकार कीर्तन और अवतार मे भक्ति-भाव पैदा हो जाने से उनका थोडा बहुत सुधार अवश्य हुआ था और भावो में शुद्धता आई थी। अनेक व्यक्ति इस तरह के आयोजनो को व्यर्थ और समय का अपव्यय बतलाते हैं, पर मैं नही समझता अगर वे महीना मे एकाध दिन ऐसे कीर्तन में सम्मिलित हो जाते है तो इसमें लाभ के बजाय कोई हानि कही जा सकती है। भारत के सुप्रसिद्ध क्रान्तिकारी नेता श्री शचीन्द्र नाथ सान्याल भी उस दल के सञ्चालको से परिचित थे और उन्होंने इस सम्बन्ध मे एक लेख बङ्गला भाषा की मासिक पत्रिका 'बङ्गवाणी' में सन् १९२४ मे प्रकाशित कराया था। उसमे उन्होने इस दल की कार्यवाही मे कोई हानिकारक बात नही बतलाई थी। उस लेख में कहा गया है—

'दिल्ली में एक 'निष्कलङ्की दल' का आविर्भाव हुआ है। आज प्राय: ३० साल से यह दल दिल्ली में है 'सतनामी सम्प्रदाय' की तरह यह दल भी बहुत ही क्षुद्र' (अल्पसंख्यक) है। आज तीस साल से यह दल भारत में सतयुग लाने के लिये परमात्मा से प्रार्थना करता आया है। वे विश्वास करते हैं कि कलियुग समाप्त हो गया है और शीघ्र

ही कल्कि भगवान प्रकटहोगे। किन्तु इस 'शीघ्र' का अर्थ क्या है — अर्थात् किस ठीक समय पर भगवान प्रकट हो जावेगे, यह बात वे लोग नही कह सकते।

'वे यह भी कहते हैं कि इस अवतार का आचरण ऐसा होगा कि जिस पर देश विदेश मे कोई उँगली न उठा सकेगा। अन्यान्य युगो के अवतारी पुरुषो के आचरण ऐसे नही थे कि उनमे कोई दोष न दिखाया जा सके। पर इस बार उनका आचरण ठीक भगवान की तरह कलंकरहित होगा। इसी कारण उनको 'निष्कलङ्की अवतार' कहा जाता है। नये अवतार तलवार धारी होने पर भी किसी को अपने हाथ से नही मारेगे। वे किसी के विरुद्ध अस्त्र-शस्त्र ग्रहण न करेंगे। खल प्रकृति के लोग आपस मे ही लड-भिड़कर खत्म हो जायेगे। जो बचेगे उनको रोग-महामारी और अकाल हजम कर जायेगे। तरह व्यथित पृथ्वी भारमुक्त हो जायगी और केवल सतोगुणी प्रकृति के जीव ही बचेगे।'

'निष्कलकी दल' के सस्थापक प० से बालमुकुन्दजी एक दिन मेरी (श्री सान्याल की) मुलाकात हुई थी। उनको पबलिक 'हनूमान जी' कहा कहती थी। वे कभी-कभी दिल्ली की सडको पर पुकार उठते थे — 'भगवान का अवतार हो गया है। पापी लोगो ! सावधान। सज्जनो ! अन्तः-करण से भगवान की शरण हो जाओ। जो पाप कर चुके हो उसके लिये माफी माँगो और आगे के लिए तोवा करो। मगर पापियो का निस्तार नही।'

श्री० सान्याल की भेट बालमुकुन्द जी से सन् १९१४–१५ के लगभग हुई थी। पर वे सन् १८८५ के आसपास से ही दिल्ली में 'कल्कि अवतार' की उपासना और प्रचार कर रहे थे। उन्होने अपने घर में कल्कि भगवान की एक पीतल की मूर्ति स्थापित कर रखी थी। नित्य प्रति उसकी पूजा करते और यह भजन गाते —

आवन-आवन कह गये जी तुम कर गये कौल अनेक ।
माधुरी मूरत मुख रेख, सम्भल वाले आना हमारे देश ।।
देखत-देखत बाट थारी म्हारे रूपा हो गये केश ।
गिनत-गिनत म्हारी घिसी अँगुरियों की रेख ।।
माधुरी मूरत लम्बो केश ।
सम्भल वाले आना हमारे देश ।।

बालमुकुन्दजी बड़े गोभक्त भी थे और वास्तव मे उनके प्रचार कार्य का मुख्य उद्देश्य गो रक्षा ही था । वे प्राय हनुमान जी की सी गदा कन्धे पर रखकर शाम के वक्त बाजारो मे निकलते और यह ऐलान करते थे—

'सृष्टि तू गौओ से द्रोह करना छोड दे वरना तुझे विनाशकारी महाभारत का सामना करना पडेगा । कल्कि भगवान गौओं की रक्षा विरद के साथ घोर विध्वंसकार रूप में आ रहे हैं। वे सतयुग की स्थापना करेगे । जो लोग भगवान के नाम के नशे में चूर होगे वे आत्मिक ऐश्वर्य से भरे पूरे हो जायेगे । माद्दा-परास्त (भौतिकवादी) कूडा-करकट की तरह झाडू से बुहारे जायेगे ।'

बालमुकुन्दजी का यह भी कहना था कि 'भगवान महाराज' के प्रकट होने के पहले हजारो व्यक्ति ऐसे निकलेगे जो कहेगे कि हमी कल्कि हैं । सच बात प्राय. यह भी देखने में आई कि 'गुरुगीरी' की कामना वालो को कल्कि भगवान के नाम से विशेष घबराहट होती है, क्योकि वे स्वय 'भगवान' बन कर चेलो को मूडना चाहते हैं । 'कल्कि' के प्रकट होने पर ये सब 'नकली भगवान' खतरे में पड़ जायेंगे, इसमें सन्देह नही ।'

ठाकुर दयानन्द का अरुणाचल मिशन—

विश्व-प्रेम के प्रचारक ठाकुर दयानन्द का आविर्भाव आसाम के

'सिलचर' नामक स्थान हुआ था और वहीं उन्होने सन् १६०६ में 'अरुणाचल आश्रम' की स्थापना की। इसमे 'आनन्दमयी' (काली) और 'अरुणाचलेश्वर' (शङ्कर) की मूर्तियाँ) स्थापित की गई। वे ब्राह्मण और अछूत, स्त्री तथा पुरुष, छोटे तथा बडे के भेदभाव के विरुद्ध थे और उन्होने अपने कार्यक्रम मे सब को भाग लेने का समान रूप से अधिकार दिया था। उनका मुख्य उद्देश्य 'संकीर्तन' द्वारा जनता मे आध्यात्मिक भावो की वृद्धि करना था।

उनके आश्रम मे कितने ही आधुनिक शिक्षा प्राप्त नवयुवक सम्मिलित हो गये। उनमे से अधिकाँश ने सन्यास ग्रहण कर लिया। कुछ महिलायें भी सन्यासिनी बन गई। जब इनका दल गाँवों मे घूमकर भगवद्-भक्ति के साथ ही समाज-सुधार, समान अधिकार, राजनैतिक, स्वाधीनता आदि का प्रचार करने लगा तो सरकारी अधिकारियो की वक्रदृष्टि इन पर पडी। उधर 'ऊँची जातियो' के कितने ही लोग, विशेषत: 'ब्राह्मण पण्डित' नामधारी भी इनकी अस्पृश्यता निवारण, नारी स्वतन्त्रता जैसी 'समाज विरोधी' मानी जाने वाली प्रवृत्तियो के विरोधी बनकर सरकारी अफसरो को और भी भडकाने लगे। परिणाम यह हुआ कि दो चार वर्ष के भीतर सरकार ने पुलिस और सेना द्वारा इनका आश्रम भङ्ग करा दिया और बहुसख्यक लोगो को पकडकर जेल भेज दिया।

पर ठाकुर दयानन्द पर इन घटनाओ का कुछ प्रभाव न पडा। वे जेल मे रहकर भगवान' का कार्य करते रहे। छुटकारा पाने पर उन्होने फिर सकीर्तन प्रचार आरम्भ किया और देश विदेशो मे विश्व-शान्ति का आन्दोलन करने लगे। ठाकुर दयानन्द ने विश्व-प्रेम का जो पौधा लगाया था वह साठ वर्ष का दीर्घकाल व्यतीत हो जाने पर भी अभी तक पनप रहा है। उनका 'अरुणाचल मिशन' कई स्थानो मे अपनी शाखायें स्थापित करके मनुष्य मात्र मे भ्रातृभाव के सिद्धान्त का प्रचार

कर रहा है। उन लोगो का विश्वास है कि 'यद्यपि ठाकुर के भौतिक शरीर का तिरोधान अब से बीस वर्ष पूर्व हो चुका है, पर वे वास्तव अमर है और निरन्तर अपने भक्तो के द्वारा 'विश्व-प्रेम' की ज्योति को प्रकाशित रखेंगे।' ये सब 'भक्तगण' ठाकुर दयानन्द को एक दैवी सत्ता के रूप में ही मानकर अभी तक उनके 'मिशन' को जीवित रखे हुए हैं।

माता आनन्दमयी–

यद्यपि माता आनन्दमयी ने सार्वजनिक रूप से 'अवतार' जैसी कोई घोषणा या कार्य नहीं किया है और वे अपने अनुयायिओ को धार्मिक उपदेश ही दिया करती हैं, पर उनके सम्बन्ध में उनके सहकारियो ने कितनी ही ऐसी चमत्कारपूर्ण बाते प्रचारित कर रखी हैं, जिनसे हजारो लोग उनको आदि शक्ति जगदम्बा का अवतार ही मानते हैं। कहा जाता है कि – 'विवाह होकर अनेक वर्ष तक पति के साथ रहने पर भी कभी उनका दाम्पत्य सम्बन्ध सम्भव न हो सका।'

माता आनन्दमयी के आध्यात्मिक उपदेश काफी सारगर्भित होते है, यद्यपि वे बाल्यावस्था मे पढी-लिखी अथवा सुशिक्षिता नहीं थीं। जिस प्रकार श्री रामकृष्ण परमहंस अनपढ होने पर भी आत्म-ज्ञान की ऊँची से ऊँची शिक्षा देते रहते थे और सामान्य बातचीत मे ही धर्म के सूक्ष्म तत्त्वो का निरूपण कर देते थे, कुछ उसी प्रकार की स्थिति माता आनन्दमयी की है। इसलिये अनेक बड़े-बडे शिक्षित और पदाधिकारी व्यक्ति और उच्च पदाधिकारी व्यक्ति उनके अनुयायी बन गये हैं, जिनमें एक बहुत बड़ा भाग बङ्गालियो का ही है।

सत्य समाज का अवतारवाद–

'अवतारवाद' का सबसे नया उदाहरण वर्धा (मध्य प्रदेश) के 'सत्य समाज' और उसके सञ्चालक 'स्वामी सत्यभक्तजी' का है। हम तो समझते थे कि गत तीस वर्षों में कई सौ 'अवतारो' के हो जाने पर

अब यह आन्दोलन समाप्त हो गया होगा, पर 'सत्य-समाज' के मुखपत्र 'जङ्गम' को देखने से पता चलता है कि उसके सञ्चालक स्वामी सत्यभक्त जी ने इन दो चार वर्षों मे ही 'अवतार' की पदवी धारण की है। वैसे हमने स्वामीजी की लिखी पुस्तके बहुत वर्षों पहले से पढ़ी हैं और उनके धार्मिक विषयो के बुद्धिवादी विवेचन से सभी पाठक बहुत प्रभावित होते हैं। वे धर्म के उसी रूप को मानते हैं जो तर्क और विज्ञान की कसौटी पर सत्य और उपयोगी सिद्ध हो सके। पर न मालूम क्या सोचकर इधर कुछ समय से वे और उनके 'भक्तगण' उन्हे अवतार अथवा पैगम्बर के रूप मे प्रकट करने की चेष्टा कर रहे हैं। दिसम्बर १९६८ मे 'सङ्गम' पर जो 'जयन्ती विशेषाङ्क' प्रकाशित हुआ है उसमे पृष्ठ २७० प॰ एक कविता मे कहा गया है—

नर नारायण दयामय सत्यभक्त सरताज।
जन्म धार कर रख लई विश्व-जनों की लाज॥
सत्य शरण का कर दिया सद्गुरु ने उद्धार।
सर्वेश्वर है दास के सत्यभक्त अवतार॥

दिसम्बर १९६७ के अङ्क मे भी 'अवतार' शीर्षक कविता प्रकाशित हुई है जिसकी कुछ लाइने इस प्रकार है—

वसुधा पर गुञ्जित कलित नियति क्षण,
विहग वृन्द उड़ा करने नभ चीर पोषण॥
भानुरश्मि दौडी करने छिन्न सानी को,
बिखेरने अमिट स्नेहोज्ज्वल वाणी को॥
जागृतार्थ सत्येश्वर इत सत्यभक्त प्रकटा।
बन मानवता हमदर्दी दुर्गुणो पर झपटा।
सत्य-समाज प्रवर्तक आया फैलाने सुवास।
सन् अठारह सौ निनानवे के एकादश मास॥
युग-युग जीवो युग पुरुष सत्य ज्योति दातार।
युग सृष्टा युग देव तुम सत्यभक्त अवतार॥

हम स्वामी जी से बहुत समय से परिचित है। हममे और उनमे नाम की साम्यता भी है, जिससे भ्रम मे पडकर अनेक व्यक्ति दोनो को एक समझने लगते है। इसलिए एक शुभ चिन्तक की हैसियत से हम उनको बतलाना चाहते है कि 'पुराणो' मे जैसी 'अवतारो' की महानता' गाई है, वैसी ही समय-समय पर उनकी छीछालेदर भी की गई है। इस 'शोक' को त्याग देने मे ही भलाई है पुराने जमाने मे तो ऐसी बातो किसी हद तक चल भी जाती थी पर इस बीसवी शताब्दी मे 'अवतार' बनने वालो की व्यङ्ग-विद्रूप और जिल्लत के सिवा और कुछ नही मिल सकता।

जिनकी नीयत पर हमको सन्देह नहीं—

सन् १९३९ से १९५० तक 'सतयुग' को प्रकाशित करते हुए अनेक 'अवतारी' सज्जनो का परिचय मिला था जिनमे से कुछ प्रमुख का वर्णन हमने यहाँ तक किया। इसके अतिरिक्त पञ्जाब के स्वामी भोलानाथ जी तथा पटना के 'श्रीनिवास' आदि और भी दो-चार सज्जन ऐसे थे जिनकी नीयत पर हम सन्देह नही करते। वे चाहे 'अवतार' हो या न हो, पर हमारा ख्याल है कि वे किसी अन्त: प्रेरणा से ही अपने को ऐसी 'दैवी-सत्ता' समझ बैठे या दूसरो के द्वारा कहे जाने लगे। उन्होने लोगो को धर्म और सदाचार की शिक्षा भी दी। यद्यपि उनकी बातो की आलोचना की जा सकती है और अनेक 'बुद्धिवादी' उन पर तीक्ष्ण व्यग-प्रहार कर भी चुके हैं, तो भी हम उन पर दोषारोपण नही करते। हम यही मानते हैं कि किसी सामायिक प्रेरणा, सदुद्देश्य के प्रति उत्साह अथवा भ्रम हो जाने के कारण ही वे ऐसा करने लग गये।

ढोंगी अवतारों का पोलखाता--

'पर 'अवतार' की गद्दी पर दावा करने वालो मे एक बडी सख्या ऐसे व्यक्तियो की है जो आचरण, चरित्र, उद्देश्य की दृष्टि से किसी प्रकार एक 'आध्यात्मिक गुरु' या 'दैवी पुरुष' नही माने जा सकते

उन्होने केवल ढोग और प्रोपैगेण्डा के जोर से अपने को इस रूप में प्रसिद्ध कर दिया और इस आधार कुछ लोगो के अनुयायी बनाकर अपने को पुजवाते। और रकम इकट्ठी करके ऐश आराम की जिन्दगी व्यतीत करते रहे। हम इस प्रकार के अनाधिकार कार्यो की अधिक चर्चा करना अच्छा नही समझते, पर वे लोग जिस प्रकार धोखाधडी का व्यवहार करके धर्मप्रेमी जनता को भ्रम और भुलावे मे डाल रहे है वह धर्म तथा नैतिकता की दृष्टि से पतनकारी है। धर्म-भाव का ह्रास तो अनेक कारणो से हो ही रहा, ये स्वार्थी लोग केवल 'धर्मध्वजी' का ही 'भगवान्' का रूप धारण करके उसे और भी बदनाम कर रहे हैं। इसलिए हम 'अवतार वाद' की प्रतिक्रिया के इस पहलू पर कुछ प्रकाश डालना आवश्यक समझकर कुछ नमूने यहाँ उपस्थित करना चाहते हैं।

ब्रह्म कुमारियों के दादा गुरु--

इस समय हमारे देश मे जो लोग 'अवतार' या उससे भी बढकर साक्षात् ब्रह्मा और विष्णु-शिव होने का दावा कर रहे हैं उनमें सबसे प्रसिद्ध 'ब्रह्मकुमारी ईश्वरीय विश्वविद्यालय' के संस्थापक दादा लेखराज हैं, जिनका पूर्व नाम खूबचन्द कृपलानी था और अब अपने को 'त्रिमूर्ति ब्रह्मा' कहते हैं। इन्होने सरकारी नौकरी से रिटायर होकर सन् १९३७ मे 'ओम् मण्डली' नाम की सस्था की स्थापना की। इनकी योजना सम्भवत: आरम्भ से ही स्त्रियो द्वारा अपनी सस्था का कार्य-सञ्चालन कराना थी, इसलिये ये हमेशा अनेक स्त्रियो को प्रभावित करने की चेष्टा करते रहे। सबसे पहले इन्होने एक विधवा स्त्री माया देवी को चेली बनाया और वह इनका प्रचार करने लगी कि 'ये हमारे भगवान हैं, हम इनकी गोपियाँ हैं। परन्तु कुछ लोगो ने इन पर इल्जाम लगाये जिनके कारण इन पर लाहोर की अदालत में मुकदमा चला और इनको माफी माँगकर पीछा छुडाना पडा। सन् १९४० ये बिहार के एक गाँव मे रहने लगे और वहाँ भी अनेक स्त्रियों की चेली

बना लिया। वहाँ के एक हरिजन की स्त्री 'धनिया' को लेकर चल दिये। जिसके लिये उसके पति ने मुकदमा चला दिया। धनिया और दादा लेखराज दोनो को अदालत से क्षमा माँगनी पडी।

फिर आप हैदराबाद (सिन्ध) मे जाकर जम गये और वहाँ अपनी संस्था का कार्य खूब फैलाया, जब इस रास-लीला की ओट मे दुराचार बहुत अधिक फैलने लगा तो सिन्ध के प्रसिद्ध लोक सेवी साधु टी० एल० वास्वानी ने इनके कार्यालय पर धरना दिया। इसके लिए वास्वानी को जेल भी जाना पडा।

देश का विभाजन होने पर ये भारत चले आये और आबू पहाड पर एक कोठी लेकर संस्था का कार्य चलाने लगे। इसमे इनको अच्छा सफलता मिली। इस समय देश मर मे इनकी संस्था की १३० शाखाये काम कर रही हैं जिनके सञ्चालन मे चार-पाँच सौ स्त्रियाँ और कुछ पुरुष भी भाग ले रहे हैं। समय-समय पर ये आध्यात्मिक विषयो का प्रचार करने के उद्देश्य से चित्र-प्रदर्शनी भी करते रहते हैं। पर इनकी बाते ऐसी अंट-शट और अपनी अजीब-भाषा मे होती हैं कि कोई उनका आशय जल्दी समझ नहीं सकता। उदाहरण के लिये इन्होने अपना परिचय देते हुए लिखा है—

"श्री कृष्ण की आत्मा ५००० वर्षों में ८४ जन्म लेती है—सतयुग (१२५० वर्ष) मे सूर्यवंशी देवता कुल मे सतोप्रधान एव पूज्य महाराजान् के रूप मे आठ जन्म, (त्रेतायुग १२५० वर्ष) में, चन्द्रवंश मे राज्य-भाग्य सहित १२ सती गुणी जन्म, द्वापर और कलियुग (१२०० वर्ष) में शिरोमणि भक्त राजा अथवा प्रजा के रूप मे ६३ जन्म। अब 'सङ्गम-काल' मे, जबकि वह अपने ८४ वें जन्म के भी अन्तिम काल मे है तो उस वृद्ध तन मे परम पिता परमात्मा ज्योति-लिङ्गम शिव ने प्रवेश किया है और उनका नाम 'ब्रह्मा' रखा है। यही 'ब्रह्मा' स्थापन हो रहे सतयुग के आदि मे पुनः श्रीकृष्ण के रूप में जन्म लेगें।"

इस प्रकार दादा लेखराज इस समय मनुष्यो के लिए 'ज्ञान और योग' की शिक्षा देकर मुक्ति प्रदान करने के ठेकेदार बन गये है। पर वह अपनी 'ब्रह्म कुमारियो' द्वारा अपने चगुल मे फँसने वालो को कैसा 'योग' सिखा रहे हैं, इस सम्बन्ध मे ज्यादा न लिखना ही अच्छा है।

मेहर बाबा का अद्भुत मौन-व्रत-

अहमदनगर (महाराष्ट्र) में रहने वाले मेहर बाबा के (जो जन्म से पारसी हैं) के सम्बन्ध में शिकायत तो कोई सुनने में नही आई पर तीस चालीस वर्ष से 'मौनी' बनकर अवतार का ढोंग उन्होने भी खूब किया है। जिस समय वे पूना के कालेज में पढते थे एक वृद्धा फकीरनी 'बाबा जान' के सम्पर्क मे आकर वे कोई योग क्रिया करने लगे जिससे दिमाग मे खराबी आ गई और पढना-लिखना सब छोड़ बैठे। कुछ समय पश्चात् 'अध्यात्म-मार्ग' मे ठोकरें खाने पर वे 'सिद्ध योगी' बन गये। उन्होने मौन-व्रत धारण कर लिया और घोषित किया कि जिस दिन मैं अपना मौन भंग करूँगा उसी दिन संसार मे खण्ड-प्रलय होकर नवीन युग की स्थापना होगी। इसलिये जो लोग अपना कल्याण चाहते हैं और उस भयङ्कर काल मे सुरक्षित रहकर सतयुग के नागरिक बनना चाहते है वे मेरे आदेशानुसार काम करे।"

मेहर बाबा ने गत तीस-चालीस वर्षों मे इतने बार अपना मौन तोड़ने और उसी दिन 'नया युग' आरम्भ होने की घोषणायें की हैं कि समाचार पत्रो के पाठक उनको एक तरह का मजाक समझने लगे हैं। सन् १९५८ में अपने ऐसी घोषणा एक पर्चे के रूप में छपवाकर सर्वत्र बँटवाई जिसमें कहा गया था—

"मैं सिखलाने के लिए नही बल्कि जगाने के लिये आया हूँ। अनादि काल से मै सिद्धान्तो तथा उपदेशो के मुताबिक चलना सिखाता आ रहा हूँ, लेकिन इन्सान ने इसकी कोई परवाह नही की। इसलिए

मैंने अपने वर्तमान अवतारिक स्वरूप में मौन धारण कर रखा है। जितनी बाते तुमने मुझसे चाही उतनी तुम्हे बताई गईं। अब उनके मुताबिक जीवन बिताने का समय आ गया है। मेरी कृपा से तुम्हे अपना सकुचित-भाव त्यागना सम्भव है। मै उसी कृपा की धारा बहाने आया हूँ।"

वह समय भी कभी का बीत गया, पर मेहर बाबा का मौन उसी प्रकार कायम है। वे जब ससार में हलचल को बढते देखते हैं तभी ऐसा ही 'मौन तोडने' का वायदा कर देते है। ऐसे हो वायदे करते-करते हाल ही में उनका अन्त हो गया, पर दुनिया की दुर्दशा जैसी की वैसी मौजूद है।

कल्कि अवतार के गुरु

'अवतारवाद' मे बडा आकर्षण है और उसमे बडे-बडे दावेदार पैदा हो जाते हैं। हवडा के बगाली स्वामी जगदीश्वरनन्द को जब 'अवतार' की आवश्यकता जान पडी तो उन्होने कुछ जोड-तोड़ करके एक कल्कि मन्दिर बना दिया। उनका कहना है कि कल्कि भगवान सूक्ष्म जगत मे अनेक बार उनके सामने सूक्ष्म रूप मे प्रकट होते रहते हैं। उनका जन्म सन् १९८५ मे होगा और उनके माता-पिता इसी समय मथुरा मे निवास कर रहे हैं। स्वामी जगदीश्वरानन्द के आश्रम मे रहने वाली संन्यासिनी महागौरी कल्कि देव की बाल्यावस्था मे उनकी गुरु होगी। कल्कि भगवान के प्रभाव से इसी समय समस्त देवता और प्राचीन युगो के ऋषि मुनि जगदीश्वरानन्द जी के आश्रम मे आकर उनको अपना परिचय देते रहते हैं। उन्होंने इस सम्बन्ध में 'डायरी' लिखने के ढग पर कल्कि भगवान के प्रकट होने की पचासो घटनायें लिखी हैं और उनको इकट्ठा करके पाच-छै सौ पन्ने की एक अंग्रेजी पुस्तक छाप डाली है।

पर इस प्रकार की कहानियो से किसी का कोई लाभ हो सकेगा यह हमको नही जान पडता। अधिक से अधिक उनको कुछ अनुयायी मिल सकते हैं, और उनकी सहायता से आश्रम का काम चल सकता है। पर लोगो के अध्यात्मिक भावो को ऐसी मनगढन्त बातें बहुत अधिक सुनने से धक्का ही लगता है, और वे उसकी सभी बातो पर अविश्वास करने लगते हैं।

कादियाँ के गुलाम अहमद—

अनेक पाठको के लिए यह एक आश्चर्य का विषय जान पड़ेगा कि अवतार के विषय मे एक मुसलमान का नाम कैसे आ गया। पर आजकल की कृत्रिमतापूर्ण दुनिया मे सब कुछ सम्भव है। हम उनको बतलाना चाहते हैं कि एक नही बीसियो मुसलमान सैकड़ो वर्ष से हिन्दुओ से धर्मगुरु बनने की कोशिश करते रहते हैं और उन्ही मे से कई आजकल 'कल्कि अवतार' की गद्दी का दावा कर रहे हैं। इनमे से आगा खाँ का नाम तो जनता में बहुत प्रसिद्ध है और गुजरात तथा दक्षिण अफ्रीका मे कई लाख हिन्दू उनके अनुयायी बन चुके हैं। गुलाम अहदम ने भी शायद इन आगाखाँ के उदाहरण से ही प्रेरणा लेकर यह जाल फैलाया हो।

जो कुछ हो अब से बहुत वर्ष पूर्व गुलाम अहमद के कई प्रचारक हमसे प्रयाग के कुम्भ मेला के अवसर पर मिले थे और उनके कुछ पर्चे देकर 'सतयुग'मे उनके सम्बन्ध मे कुछ प्रकाशित करने का अनुरोध किया था। उन पर्चों मे स्पष्ट रूप से लिखा था कि गुलाम अहमद भगवान कृष्ण के अवतार हैं और वही अब कल्कि अवतार होगे—

"प्रिय हिन्दू भाइयो! हम सब एक ही देश में फले फूले हैं और हमारी बोलचाल की भाषा भी प्राय: एक ही है। परमात्मा के बनाये चांद और सूर्य हम सबको समान रूप से प्रकाशित करते हैं। जब

ईश्वर की दयालुता ने हम सब मे कोई भेद नही किया तो फिर हमारा ईश्वर के प्रेम करने मे क्यो भेद हो ?

'इस समय भगवान का जो अवतार हुआ है वह किसी खास जाति का नही है। वह 'मेहदी' भी हैं क्योकि मुसलमानो को मोक्ष का आदेश लाया है। वह 'ईसा' भी है क्योकि ईसाइयो के उद्धार की सामग्री लाया है। वह 'निष्कलङ्क अवतार' भी हैं, क्योकि आपके लिए हाँ मेरे हिन्दू भाइयो! आपके लिए ईश्वरीय प्रेम के प्रकाश को लाया है। इस 'निष्कलंक अवतार' का शुभ नाम श्री 'मिर्जा गुलाम अहमद' है, जो कादियाँ जिला गुरुदासपुर (पञ्जाब) मे प्रकट हुए हैं। ईश्वर ने उनके हाथ पर अपने हजारो चिन्ह प्रकट कराये हैं। उनके द्वारा समार को न्याय तथा सत्य से परिपूर्ण करता चलता है।

इस प्रकार की न जाने कितनी दम दिलासा की बात उन पर्चों मे दी गई हैं। कितने ही प्रान्तो में बहुसख्यक हिन्दू उनको अवतार मानने भी लग गये हैं। पर यह आश्चर्य की बात ही मानी जायगी कि स्वय हिन्दुओ मे इतने 'अवतार' होते हुए भी वे अन्य धर्म वाले अवतारो के 'भक्त' बनने को भी तैयार हो जाते हैं। हम तो इसे उनका अद्भुत 'अवतार प्रेम' ही कह सकते है!

अवतारों की भीड़—

महाभारत में युग परिवर्तन का जो -ग्रहयोग लिखा है वह अनेक विद्वानो के कथनानुसार सन् १९४३ मे आया था। उसी को आधार बनाकर 'चेतावनी' पुस्तिका द्वारा 'कलियुग का अन्त और सतयुग आगमन' का आन्दोलन देश भर मे फैलाया गया था। उससे कुछ ऐसी हवा बहने लगी कि चारो ओर से अवतार निकल पडे। जिन लोगों में एक चिट्ठी लिख सकने की भी योग्यता नही थी और जो सामान्य नोन-तेल बेचने की दुकान करके या मामूली नौकरी या मजदूरी करके जीवन-निर्वाह करते थे वे भी अपने को 'अवतार' घोषित

करने लग गये । हमने साधारण सरकारी नौकरो और भीख मागने वाले साधुओ को 'अवतार' होने का दावा करते देखा था । इस तरह के सब लोगो की सख्या पाँच सौ से भी ऊपर हो तो कोई आश्चर्य नही। उनमे से सौ-पचास को नो हम स्वय जान गये थे । ऐसे लोगो मे से कुछ को सफलता भी मिल गई और वे हजार-पाच सौ अनुयायियो के सहारे अभी तक अपना नाम कायम रखे हुये है । अधिकाश उस उत्साह की लहर के ठण्डा हो जाने पर जहा के तहा पहुँच गये । अनेक अवतार बनते-बनते ही काल के गाल मे समा गये । इस प्रकार स्वार्थी अथवा अविवेकी लोगो ने उस समय 'अवतार' के नाम पर एक तमाशा खडा कर दिया और एक उच्चकोटि के धार्मिक और शास्त्रीय विषय को सर्व साधारण की निगाह मे हास्यास्पद बना डाला ।

इससे प्रकट होता है कि यहा की जनता ऊपर से 'धर्म-धर्म' पुकारते रहने पर भी वास्तव मे धर्म से कितनी परे और केवल अन्ध-विश्वास के आधार पर चलने वाली है । अन्यथा यह कैसे सम्भव था कि सामान्य साधुओ से लेकर मोटर ड्राइवर और मजदूर तक अपने को 'भगवान का अवतार' कहने का साहस करने लगते । ईसाई, मुसलमान, यहूदी, पारसी आदि किसी धर्म वालो मे अभी तक ऐसी छूट नही है कि हर एक अपने को 'भगवान' बता सके । उनमे ऐसा करते ही उस व्यक्ति पर चारो तरफ से लानत-मलामत की बौछार होने लगेगी और उसका समाज मे रह सकना भी असम्भव हो जायगा । पर जो हिन्दू आध्यात्मिकता के सब से अधिक जानकार बनते है वे धार्मिक-क्षेत्र मे हर प्रकार के ढोग और धूर्तता को सहन ही नही कर लेते वरन् उसे सहयोग देने को भी तैयार हो जाते है। यह अवस्था कदापि श्रेयस्कर नही मानी जा सकती ।

हमने इस तरह के नकली अवतारो मे से दो-चार का वर्णन ऊपर दिया है। अब से २५-३० वर्ष पहले इस तरह के बीसियो बनावटी लोगो का हाल हमने अपने 'सतयुग' मासिक पत्र मे प्रकाशित किया था । उनकी लीलाएे इतनी अधिक है कि यदि पूरा लिखा जाय तो व्यर्थ में

पचासो पन्ने भर जायेगे । इस लिये आगे हम बहुत सक्षेप मे ही ऐसे कुछ 'अवतारो' का परिचय देते है ।

[१] कृष्णानन्दजी दादा धूनी वाले—

सुना जाता है कि धूनी वाले दादाजी वास्तव मे उच्च कोटि के साधक और सन्त थे । परन्तु उनके देह त्याग के पश्चात् उनके कुछ शिष्यो ने उन्हे साक्षात् शकर का अवतार बताना शुरू कर दिया—

इस पर भक्त कहे दादा के यहा यही है शिव अवतार ।
आदि मैथुनी-सृष्टि-पिता ये बाबा आदम के दातार ।।
आदिम एडम यही इन्ही को स्वय प्रभु ने कहा पुकार ।
मानो चहे न मानो कोई दादा निश्चय है अवतार ।।

[२] स्वामी प्रणवानन्द—

बगाल के स्वामी प्रणवानन्दजी के सम्बन्ध मे 'कल्याण' के एक अक मे लिखा है कि आरम्भ मे वह बहुत वर्षोंतक साधन और तपस्या करते रहे और एक निस्पृह साधु पुरुष थे । पर कुछ समय पश्चात् उनकी तरफ से 'पूजाराधना पद्धति' पुस्तिका प्रकाशित की गई जिसमे लिखा था—"इस युग मे फिर मुक्ति-पिपासु भक्त नरनारी के आर्तनाद से भगवान स्वय जगद्गुरु रूप मे स्वामी प्रणवानन्द के शरीर मे अवतीर्ण हुए है । लाखो भक्त नर-नारियो ने उनके चरण-कमल की शरण लेकर, जीवन सार्थक किया है । चारो ओर यह समाचार बिजली की भाँति फैल गया है ।"

[३] हंसावतार—

इन दिनों 'हसावतार' जी की दिल्ली आदि नगरों मे बडी धूम रही । उनके जूतो पर बताशे चढाये जाते थे, जिन्हे 'भक्त लोग' खाते थे । इनका यह कार्य पिछले पच्चीस तीस वर्ष से चल रहा था । उसी समय उनके प्रचारक ने हमारे एक परिचित सज्जन से कहा था—"जो त्रेता मे राम बने थे और द्वापर मे कृष्ण बने थे वही भगवान अब 'हसावतार' है । इनके बिहार, बगाल मे लाखो शिष्य है, जो इनके बताये 'सोहं' मंत्र का जप करते हैं । यह असली मत्र है । इस जप से

तमाम समार मे परिवर्तन हो रहा है। राक्षस भी इसी से मारे जा रहे हैं।"

[४] आनन्द-मार्ग के संस्थापक—

अभी हमने समाचार पत्रो मे 'आनन्द मार्ग' के विषय मे पढा था कि दिल्ली और भारतवर्ष के अनेक नगरो मे ही उसका प्रचार नही हो रहा है वरन् जर्मनी तक मे उसकी शाखाये स्थापित हो गई है।' यह "आनन्द मार्ग" रेलवे की नौकरी से रिटायर होने वाले एक सज्जन ने पच्चीस–तीस साल पहले चलाया था और उनका कहना था—

"आनन्द मार्ग मे भगवान की साकार और निराकार दोनो शक्तियो को माना गया है। जब हम भगवान् को सर्वशक्तिमान मानते है तो अवतार से इनकार कैसे कर सकते है ?"

[५] अखिल ब्रह्माण्डपति—

हमको 'कल्कि ब्रह्मवाणी' नाम की मासिक पत्रिका का एक विशेषाक प्राप्त हुआ था, जिसके ऊपर यह पद्य दिया गया है—

विश्व-शान्ति का दिव्य-भाव मानव मन मे साकार हुआ।
व्याकुल वसुधा की पुकार से पुनः 'कल्कि अवतार' हुआ।।

इस 'कल्कि अवतार' का जन्म सन् १९२१ बाराबकी मे(उ०प्र०) के एक गाँव मे हुआ' था। वे ही आजकल अपने को 'अखिल ब्रह्माण्डपति' कहने लगे है और कुछ मूर्खो को 'भारतपति' 'एशियापति' 'आस्ट्रेलिया-पति' आदि की उपाधियाँ दे रहे है।

इसी प्रकार के अवतार नाम धारियो के बीसियो किस्से हमारे पास मौजूद हैं जिनमे से कुछ को तो पूरा पागल या ठग ही कहा जा सकता है। कोटपूतली (राजस्थान) के एक मजदूर ने एक पर्चा छपाया और उसमे लिखा—"हम हैं श्रीमहान भगवान और हमको ही कल्कि भगवान कहते है।" अम्बाला (पजाब) के एक रिटायर्ड रेलवे गार्ड ने घोषणा की "माघ बदी अष्टमी को भगवान प्रकट होगे और मैं राधा बन जाऊँगी।" खानदेश (महाराष्ट्र) के रामदास भील ने अपने को 'अवतार' और

'भीलो का राजा' घोषित कर दिया । मान्धाता (मध्य प्रदेश) मे एक साधु मायानन्द चैतन्य अपने को 'बुद्धावतार' कहने लगे । दरभगा की तरफ का एक बालक कृष्ण के समान वेषभूषा बनाकर मध्य प्रदेश के रायपुर आदि स्थानो मे भेट-पूजा ग्रहण करने लगा । इस प्रकार 'चेतावनी' की 'भविष्यवाणी' को आधार बना कर सन् १६४३ के आसपास देश मे 'अवतारो' की बाढ ही आ गई ।

नकली अवतारो से बचो—

उपर्युक्त नकली अवतारो की लीलाओ को पढते-पढते पाठक कही मुझे भी कोई 'अवतारी' न समझने लग जाये ! शायद वे कहे कि ये भी विभिन्न अवतारो से मिलजुल कर अपना स्थान बनाने की चेष्टा मे लगे होगे ! अन्यथा इतने अवतारो को ढूँढते फिरने की क्या आवश्यकता थी ? इस सम्बन्ध मे मैं बतलाना चाहता हूँ कि दिल्ली के 'अवतार-भक्तो' ने मुझे भगवान का अवतार तो नही पर उनका कोई छोटा-मोटा सहकारी अवतार बनाने का प्रस्ताव अवश्य किया था ! पर मैने अपने को किसी भी प्रकार 'अवतार' के योग्य नही समझा और इस कारण मै आज तक सामान्य मनुष्य ही बना रहा । इतना ही नही 'सतयुग' मासिक पत्र मे अनेक छोटे-बडे अवतारो का परिचय देते हुए मैं पाठको को इस सम्बन्ध मे सावधान भी करता रहता था कि वे ऐसे मामलो मे अपनी विवेक बुद्धि से काम ले और किसी 'नकली भगवान' के फेर मे न पडे । वास्तव मे यदि कभी 'अवतार' होगा तो उसको यह प्रचार कराने की जरूरत न पडेगी कि 'वह अवतार है ।' वरन् सारा ससार खुद ही उसे जान जायगा और उसके सम्मुख झुक जायगा । 'मई' १६४२ के अक मे "अवतार के सम्बन्ध मे एक भ्रम पूर्ण धारणा" लेख के अन्त मे हमने लिखा था—

"हम यह नही कहते कि 'अवतार' एक व्यर्थ कल्पना है, पर जिन लोगों ने उसको कहानी किस्से की चीज, या एक 'गुप्त भेद' बना डाला है, उनकी भर्त्सना हम अवश्य करते हैं । यह कहना कि 'अवतार को' किसी रेगिस्तान या पहाड़ मे छिपाकर रखा गया है" ना समझीकी बात

है । अभी तक परशुराम, रामचन्द्र, कृष्णचन्द्र, गौतमबुद्ध आदि जितने 'अवतार' बतलाये गये है, उनमे से कोई अठारह बीस साल की उम्र तक छिपाकर नही रखा गया था । तब 'कल्कि अवतार' के विषय मे ही ऐसी बात फैलाने की क्या आवश्यकता है ? इसे हम न तो धार्मिकता कह सकते है और न भक्ति-भाव ।"

अगस्त १९४३ के 'सतयुग' मे "सच्चा अवतार अभी दूर है" शीर्षक लेख मे तरह-तरह के अवतारो के प्रकट होने का रहस्य इन शब्दो मे प्रकट किया गया था—

"यो कहने के लिए अवतारों की कमी नही है । एक नही पचासों बड़े और छोटे, मोटे और पतले, अमीर और गरीब, साधू और गृहस्थी, शिक्षित और अशिक्षित, सुन्दर और बदसूरत, हिन्दू और मुसलमान—साराश यह कि सब तरह के और सब श्रेणियो के व्यक्ति अवतार बनने को लालायित हो रहे है । पर शोक के साथ कहना पडता है कि वे भी हम साधारण मनुष्यो की तरह नोन, तेल, लकडी की समस्या मे ही उलझे रहते है । वे भी धनवानो की खुशामद करके कुछ पाने की चेष्टा करते रहते है । वे दूसरो का उद्धार क्या करेगे, स्वय उनका उद्धार सर्व साधारण से दान पाये बिना असम्भव है ।

"ऐसी दशा हमारे देश की ही नही है । सदा से जब कभी सकट का समय आया है और लोग व्याकुल होकर किसी 'उद्धारकर्ता' को खोजने लगते है तो ऐसे अवसर से लाभ उठाने वाले अनेक लोग उठ खडे होते हैं । ऐसे मनुष्यो की करतूते देखकर ईसामसीह ने कहा था—

"झूँठे नबियो (पैगम्बरो या अवतारो) से खबरदार रहो । वे भेड की खाल ओढ कर आते है, पर वास्तव मे हिसक भेडिये होते है । तुम उनके कर्मों से उन्हे पहिचानो ।"

"जब हम किसी रास्ते चलते हुए व्यक्ति को अपने लिये 'अखिल ब्रह्माण्डपति' 'त्रिलोकेश्वर' 'परमात्मा का मत्री' आदि विशेषण प्रयोग करते देखते है, या किसी को जीवन और मृत्यु का ठेकेदार बनते पाते है या किसी को स्वर्ग लोक का टिकिट बेचते सुनते है, तो हमको यही

विचार आता है कि हो न हो उक्त व्यक्ति के दिमाग का कोई पुर्जा ढीला पड़ गया है ! अथवा किसी कारण वश उसे कोई मानसिक धक्का लगा है जिससे ऐसी 'सनक' सवार हो गई है। ऐसे व्यक्ति हमारे देश मे ही नही पाये जाते। योरोपियन मनोविज्ञान ज्ञाताओ ने अपने ग्रन्थो मे ऐसे अनेक दिमागी बीमारों या खब्तियो का जिक्र किया है और उनकी पूरी तरह से जाँच पडताल करके यह निष्कर्ष निकाला है कि वे लोग अवतार तो क्या किसी पागलखाने मे निवास करने योग्य है। एक समय जरूशलम मे ही ऐसे चार व्यक्ति थे जो ईसामसीह का अवतार होने का दावा करते थे।

"हम 'अवतार' के विरोधी नही है। धन्य है वह युग जिसमे ऐसा कोई महापुरुष पृथ्वी पर चरण रखता है और सौभाग्यशाली हैं वे लोग जो उसके सदुपदेशो से अपना जीवन कृतार्थ करते है। ऐसा महामानव अपनी लोकोत्तर प्रतिभा, अतुल त्याग और विश्वकल्याण की अमोघ कामना के आधार पर इस पद को प्राप्त करते है। वे राम की तरह राजसिंहासन को ठुकरा देते हैं और धर्म रक्षार्थ काँटो भरे मार्ग पर सहर्ष चलते है। वे कृष्ण की तरह छोटे से छोटे 'ग्वाल-बालो' के साथ भ्रातृभाव का व्यवहार करते है और सर्वोच्च पदवी पाकर भी लोक हित के लिये सारथी का दर्जा स्वीकार कर लेते है। वे बुद्ध की तरह राजसी भोगो को त्याग कर कठिन तपस्या द्वारा अपने शरीर को सुखा डालते है और अपनी साधना का फल स्वेच्छा से जनता के उद्धार के लिये अर्पण कर देते है। कहाँ वे अवतार और कहाँ आजकल के ये 'स्वयम्भू अवतार' जिनका प्रधान लक्षण शिष्यो से दक्षिणा वसूल करके आराम की जिन्दगी व्यतीत करना ही है।"

हमको ये शब्द धर्म के नाम पर अधर्म का प्रसार होते देखकर ही विवशतापूर्वक लिखने पडे थे। अवतार कब होगा, कहाँ होगा, क्या करेगा, आदि बातो के सम्बन्ध मे भावुकतावश कोई अनुमान लगावे तो उसमे कोई खास बुराई नही, पर कुछ भी योग्यता, शक्ति और उच्च आदर्श न होते हुए अपने को 'परमात्मा' या 'ईश्वर' कहने लगना कहाँ

तक उचित है ? हमको यह देख कर आश्चर्य होता है कि ससार मे अगर कोई व्यक्ति नकली थानेदार, कलक्टर, रेलवे का टी टी.आई. भी बनकर लोगो को धोखा देता है तो उसे गिरफ्तार किया जाता है और कडी कैद की सजा दी जाती है, पर ''नकली भगवान'' बनने की कोई सजा नही ! श्रीमद्भागवत मे एक कथा आती है कि करुष देश के राजा पौण्ड्रक ने घोषणा की थी कि मै भगवान विष्णु का अवतार 'वासुदेव' हूँ। श्रीकृष्ण को वासुदेव कहना या मानना बिल्कुल गलत है। उसने अपने दो नकली हाथ लगाकर उनमे शख, चक्र, गदा पद्म भी धारण कर लिये थे। उसने अपना दूत द्वारका भेजकर कृष्ण जी से कहलवाया—

वासुदेवोऽवतीर्णोऽहमेक एव न चापर.।
भूतानामनुकम्पार्थं त्व तु मिथ्याभिधात्यज ॥

अर्थात्—एक मात्र मै ही वासुदेव हूँ, दूसरा कोई नही हो सकता। प्राणियो पर कृपा करने के लिए मैंने ही अवतार ग्रहण किया है। तुमने तो झूठमूठ अपना नाम 'वासुदेव' रख लिया है, अब उसे छोड़ दो।''

श्रीकृष्ण ने दूत द्वारा उत्तर भिजवाया कि मैं तुम्हारे पास आकर ही 'वासुदेव' नाम तथा विष्णु के चिन्हो को छोड़ूँगा। दूसरे ही दिन वे रथ पर चढकर उसके सामने पहुँच गये और कुछ देर युद्ध करके उसको इष्ट-मित्रो तथा सेना सहित यमपुर भेज दिया। 'नकली अवतार' बनने के शौक मे पौण्ड्रक अपने प्राण और राज्य सब कुछ खो बैठा। हम भी 'अवतार' बनने के शौकीनो को बतला देना चाहते है कि आज नही तो कल उनकी भी बुरी हालत हो सकती है।

यह दशा देश, धर्म, समाज और व्यक्ति के लिए हितकर नही कही जा सकती। ससार को इस समय निस्सन्देह 'अवतार' (मार्गदर्शक) की बडी आवश्यकता है—उसके बिना हमारा अस्तित्व कायम रह सकना कठिन है। पर उसके लिए ऐसे स्वाँग रचने या 'सनक' मे पडने की आवश्यकता न होगी, वरन् जब वह प्रकट होगा तब उसे पहचानने मे किसी को देर न लगेगी।

———

ग्यारहवाँ अध्याय

अवतार की आवश्यकता और हमारी आशा–

अब तक हमने जो लिखा है यदि उस पर 'गम्भीरता पूर्वक विचार किया जाय तो उस सबका यही निष्कर्ष निकलेगा कि यदि ससार मे किसी को 'अवतार' कहा जाय तो उसका मुख्य उद्देश्य मानव जाति का मार्ग-दर्शन करना ही है। वैज्ञानिको के मतानुसार पृथ्वी पर डेढ अरब वर्ष से जीवन का विकास हो रहा है और इस बीच मे छोटे से छोटे प्रत्यक्ष मे जड जान पडने वाले–जीवधारी से लेकर मनुष्य तक के उत्पन्न होने मे अनेक 'युग' व्यतीत हो चुके है। इन विभिन्न युगो के प्राणियो की जाच करने पर विद्वान् लोग इस नतीजे पर पहुचे है कि प्रत्येक भूगर्भीय-काल मे ऐसे जीव उत्पन्न हुए, जो अपने समय मे सृष्टि के सर्वोत्तम प्राणी समझे जाते थे। फिर भी आगामी 'युग' मे उनसे भी और अच्छे प्राणी उत्पन्न हो गये। हमारे यहाँ मत्स्य, कूर्म (कछुआ), वाराह, नरसिह आदि को जो अवतार की पदवी दी गई है, उसका मुख्य कारण यही है कि उस युग मे सबसे अच्छे (विकसित) प्राणी वे ही थे।

सृष्टि के आरम्भ से लाखो तरह के जीवो का आविर्भाव होते–होते वर्तमान युग मे बुद्धि, विवेक और ज्ञान से सम्पन्न मनुष्य का आविर्भाव हुआ है। हमारे यहा जो यह कहा जाता है कि ८४ लाख योनियो मे भ्रमण करके मनुष्य का शरीर मिलता है, वह बहुत कुछ सत्य ही है। जहाँ तक पता लगाया गया है मनुष्य को पृथ्वीतल पर उत्पन्न हुए दस–पाँच लाख वर्ष से अधिक समय नही हुआ। इसके पहले करोडो वर्षों मे जीवात्मा क्रमशः जलचर, थलचर, नभचर, कीडा, मकोडा, पतिगा, मछली, साप, चौपाये, पक्षी आदि अनेक रूपो मे प्रकट हो चुका है। उन योनियो मे से गुजर कर ही वह मनुष्य के दर्जे तक पहुचा है। और आगे चलकर उसके और भी उन्नति करने की पूरी सभावना है।

मानव-जाति के नष्ट होने की सभावना–

जब तक जी वाला पशु–पक्षी की योनियो तक सीमित था, उसे खाने, पीने, सोने, प्रजनन आदि की प्रेरणा स्वय प्रकृति से ही प्राप्त होती थी। उसके विपरीत वह न तो कुछ सोच सकता था और न कर सकता था। उसका कार्य क्षेत्र और प्रभावक्षेत्र अत्यन्त सीमित था। पर जब से मानव का आविर्भाव होकर उसने विचार शक्ति प्राप्त की है तब से वह प्रकृति से प्रेरणा नही लेता वरन् निरन्तर उस पर अधिकार जमाकर व्यक्तिगत और सामूहिक हित के लिये उसका प्रयोग करने की चेष्टा कर रहा है। इसके फल से अनेक समस्याये और उलझने पैदा होती है, जिनके कारण मनुष्यो मे मतभेद, कलह और सघर्ष की वृद्धि होने लगती है। यह स्थिति बढते–बढ़ते अब कहाँ तक पहुँच चुकी है, इस सम्बन्ध भारत के महान् विचारक श्री सर्वपल्ली राधा-कृष्णन ने लिखा है—

"हम मानव जाति के इतिहास मे एक सबसे अधिक निर्णायक समय मे रह रहे है। मानव इतिहास के अन्य किसी भी समय मे इतने लोगो के सिर पर इतना अधिक बोझा नही था और न वे इतने अधिक अत्याचारो और मनोवेदनाओ से कष्ट पा रहे थे। हम इस समय ऐसे ससार मे जी रहे है जिसमे विषाद सर्वव्यापी है परम्पराये, सयम और कानून सर्वथा शिथिल हो गये है। ससार गलतफहमियो, कट्टरताओ, और सघर्षो से विदीर्ण हो गया है। सारा वातावरण सदेह, अनिश्चि-तता और भविष्य के भय मे भरा है। जडता के कारण सारे ससार मे एक ऐसी भावना जाग रही है जो वास्तव मे क्रांतिकारी है। 'क्रान्ति' शब्द का अर्थ सदा भीड की हिंसा और शासक वर्ग की हत्या ही नही समझा जाना चाहिए। सभ्य–जीवन के मूल आधारो मे तीव्र और प्रबल परिवर्तन की उग्र लालसा भी क्रान्ति का ही रूप है।

किसी भी समय को परिवर्तन के कारण 'क्रातिकारी' नही कहा जा सकता, क्योकि परिवर्तन ता इतिहास मे सदा होता ही रहता है।

पर जब परिवर्तन की गति अत्यन्त तीव्र हो जाती है तब उसे 'क्रान्तिकारी' कहा जाता है। वर्तमान युग क्रान्तिकारी है, क्योकि इसमे परिवर्तन की गति बहुत तीव्र है। चारो ओर हमे वस्तुओ के टूटने–फूटने और सब प्रकार की सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक सस्थाओ मे उथल-पथल की आवाज सुनाई दे रही है। बुद्धिमान, और अनुभूतिशील मनुष्यो का विश्वास है कि इस समय राजनीति, अर्थशास्त्र और उद्योग–धन्धो से सम्बन्ध रखने वाली सस्थाओ (नियर्मो) मे कही न कही कुछ बडी गलती है। यदि मनुष्यता को बचाना है तो हमे इस गलती को दूर करना होगा।

"विज्ञानवेत्ता हमे वे विभिन्न सभावनाऐ बतलाते है जिनसे यह पृथ्वी नष्ट हो सकती है। उदाहरणार्थ कभी सुदूर भविष्य मे चन्द्रमा के बहुत निकट आजाने या सूर्य के ठण्डा पड जाने से यह नष्ट हो सकती है। कोई पुच्छल तारा या उलका पृथ्वी से आकर टकरा सकता है, या स्वय धरती मे से ही कोई जहरीली गैस निकल सकती है। परन्तु ये सब सभावनाऐ तो बहुत दूर की है, जब कि अधिक सम्भावना इस बात की है कि मानव जाति अपसे ही जान बूझकर किये गये कार्यों से या अपने मूर्खतपूर्ण स्वार्थ के कारण स्वय ही अपना सर्वनाश कर लेगी।"

वास्तव मे यह बडे खेद और लज्जा की बात है कि मनुष्य अपने को 'बुद्धि–सागर' समझता हुआ भी अपने पैरो मे आप ही कुल्हाडी मार रहा है और इस प्रकार अपनी मूर्खता का स्वय प्रदर्शन कर रहा है। सेमुअल बटलर नामक विद्वान् ने इस दशा को देखकर कहा है कि 'मनुष्य के सिवाय और सब प्राणी यह समझते है कि उनका उद्देश्य जीवन का आनन्द लेना ही है। इसी से वे घास-पात, गड्ढो और नदियो का जल जैसे अत्यन्त साधारण साधन पाकर भी सदा उछलते-कूदते और किलोल करते रहते है। पर मनुष्य उनसे हजारो गुना श्रेष्ठ साधन रखते हुए भी क्रोध और आवेश मे भरकर विनाश का ताडव चलने दे रहा है। यदि वह इस तरफ से शीघ्र ही सावधान नही हुआ

तो निश्चय ही नाश के गहरे गढे मे एक ऐसी छलांग लगा लेगा जिससे उसकी अब तक की समस्त उपलब्धियाँ और उन्नति नष्ट हो जायगी और वह सैकडो वर्षो के लिये वर्बरता के युग मे पहुच जायेगा।

नये नेतृत्व की आवश्यकता—इस शोचनीय अवस्था का मुख्य कारण यही है कि मानव-जाति का मार्ग दर्शन करने वाला कोई सच्चा नेता इस समय नही है। आजकल जिन लोगो के हाथ मे राष्ट्रो की बागडोर है वे प्राय. अपने सकीर्ण स्वार्थों मे फंसे रहने के कारण वास्तविकता की तरफ से आँखे फेरे हुए है। वे मानते है कि इस समय ससार ने इतनी वैज्ञानिक और आर्थिक उन्नति करली है कि अगर सब देशो के कर्णधार मिल-जुलकर चले और समझदारी से काम लेकर सेना और अस्त्र-शस्त्रो मे किये जाने वाले अपार खर्च को समाप्त करदे तो दुनिया का प्रत्येक मनुष्य सुखी और सन्तुष्ट जीवन बिता सकता है। पर जातीय अहकार अथवा दूसरो का शोषण करने की पुरानी मनोवृत्ति उनका पीछा नही छोडती और वे जान बूझ कर नाश के मार्ग पर ही अग्रसर हो रहे है।

यह भयकर दृश्य देखकर मानवता के अनेक शुभचिन्तक इसके सुधार की तरह-तरह की योजनाएं बना रहे है, जिनका अनुसरण करने से सबके साथ न्याय हो सके और दुनिया के लोग लड-भिड़कर नष्ट हो जाने के बजाय अपने परिश्रम और सहयोग के द्वारा इस पृथ्वी को स्वर्ग बना सके। यद्यपि ऐसे शुभ विचार वालो के हाथ राज्य की शक्ति न होने से अभी वे अपने विचारो को व्यवहारिक रूप नही दे सकते, तो भी उनके विचारो का प्रचार किया जाना आवश्यक है। ऐसा करने से जन समुदाय सच्चे मार्ग को समझने लगेगा और समय आने पर उनको अमल मे लाने की भी चेष्टा करेगा। इस सम्बन्ध मे अमरीका की 'निओ—क्रिश्चियन' नामक सस्था ने यह प्रश्न किया था कि 'ऐसा कौनसा उपाय है जो इस समय विनाशोन्मुख मानव-समाज को आशा का सन्देश दे सके ?' फिर स्वय ही इसका उत्तर देते हुए उसने अपना मत इस प्रकार प्रकट किया—

"क्या शिक्षा द्वारा यह कार्य पूरा हो सकता है, क्योंकि आधुनिक समाज मे सभ्यता का सबसे बडा प्रसाद यही माना गया है ? पर आजकल बाह्य-शिक्षा का बहुत अधिक प्रचार हो जाने पर भी उसमे 'जीवन-विद्या' का वह गुण नही पाया जाता जिससे मनुष्य मे नैतिकता तथा सामाजिक एकता की वृद्धि होती हो।"

'क्या मजहब इस समस्या को हल कर सकता है ? आजकल के कट्टरपथी और जीवन-शून्य 'धार्मिक' कहे जाने वालो मे वह शक्ति और साहस नही होता जिससे स्वार्थपरता और अन्ध–विश्वास की ताकतो का मुकाबला किया जा सके। इन्ही दोनो ने मनुष्य जाति को गुलाम बना रखा है।"

"क्या राजनीति हमारा मार्ग–दर्शन कर सकती है ? किसी भी राष्ट्र के 'प्रतिनिधि' कहे जाने वाले आजकल अपनी स्वार्थ सिद्धि मे ही लगे रहते है और लोक कल्याण के आदश के सर्वथा पीछे डाल देते है। वे लोग इस समय जनता का विश्वास कदापि प्राप्त नही कर सकते।"

"क्या अर्थशास्त्र ससार की रक्षा कर सकता है ? अर्थशास्त्री आय-व्यय के कोरे सिद्धान्तो मे डूबे रहते है और मानव-जीवन के वास्तविक मूल्यो की तरफ से आँखे बन्द कर लेते है। इसलिए वे उन शक्तियो को बिल्कुल नही समझते जो मनुष्य के भीतर काम करती रहती है"

"तब सभवत परिवार का उदार आदर्श मानव–सभ्यता की रक्षा कर सकेगा ? यद्यपि परिवार हमारे समाज का मूलभूत आधार माना गया है, पर अब उसमे अपनी रक्षा और धन की भावना ही प्रमुख बन गई है।"

"क्या सस्कृति की वृद्धि होने से हमारा उद्धार हो सकेगा ? यद्यपि संस्कृति का महत्व बहुत अधिक है, पर वह मनुष्य की अन्तरात्मा तक प्रवेश नही कर सकती। आजकल सस्कृति का महत्व बाह्य सौष्ठव की वृद्धि करना रह गया है। केवल उसके द्वारा मानव को स्वार्थपरता पर विजय प्राप्त करके आध्यात्मिकता की स्थिति प्राप्त करना संभव नही।"

"शायद विज्ञान मानवता के लिये मुक्तिदाता सिद्ध हो सके ? इसमें कोई सन्देह नही कि विज्ञान मानव–समाज की सर्वोच्च सफलता है। इस क्षेत्र मे इस समय भी मनुष्य अभूतपूर्व चमत्कार दिखला रहा है। अगर मनुष्य केवल देह रूपी यत्र तक ही सीमिति होता तो विज्ञान से उसकी उचित व्यवस्था हो सकती थी। पर मानव की सत्ता इससे कुछ अधिक है। उसमे भावनात्मक, मानसिक, आध्यात्मिक शक्तियाँ भी पाई जाती है, जिनमे विज्ञान अभी तक प्रविष्ट नही हो सका है। इसलिये वह समाज का उद्धार नही कर सकता।"

इस प्रकार जब हम मानवता की प्रगति के सब क्षेत्रो पर दृष्टिपात कर चुकते है तो हम को सर्वत्र निराशा ही जान पडती है। पर यह दोष इन सब उपायो का नहीं है। ये ही सब मिलकर हमारे सर्वाङ्ग-पूर्ण जीवन के आधार बनते है। वास्तव मे दोष तो उन 'नेताओं' अथवा 'सचालकों' का है जो इन सामाजिक-शक्तियो का ठीक सचालन नही करते।

अन्त मे हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते है कि इस समय मानवता को एक 'नवीन नेतृत्व' की आवश्यकता है। पुराने नेता असफल सिद्ध हुये है। हमारे वर्तमान नेता केवल नाम के नेता है। वे तरह-तरह के सिद्धान्त उपस्थित करते है, आदर्शो की बाते करते है, पर उनमे मानव-समाज को ठीक मार्ग पर चला सकने की समझ, बुद्धिमत्ता और शक्ति नही है। अथवा यो कहना चाहिये कि वे स्वय अपने तुच्छ स्वार्थों मे लिप्त रहते हैं। तब एक अन्धा दूसरे अन्धे का रास्ता कैसे दिखला सकता है ?

अवतार (विश्व नेता) की विशेषताएँ—

अब एक ऐसे नेता के प्रकट होने की आवश्यकता है जो समस्त सामाजिक धाराओ अर्थात् विज्ञान, राजनीति, सस्कृति, मजहब, परिवार, आर्थिक व्यवस्था को एकसूत्र मे समन्वित कर सके। एक ऐसे नेता की आवश्यकता है जो जीवन और मानव-प्रकृति के सतुलित रूप को समझकर इन सब विभागो का एकीकरण कर सके और वह भी केवल

सिद्धान्त रूप मे नही वरन प्रत्यक्ष जीवन-व्यवहार मे । उसके विचारो की गहनता, उसके मस्तिष्क की महानता और हृदय की उदारता उसे अपने अनुयायियो से पृथक दिखला देगी । उसका अपना जीवन ही ऐसा होगा कि वह जनता का सच्चा शिक्षक, आध्यात्मिकता का उदाहरण और जीवन-विद्या का वैज्ञानिक होगा । राजनीतिक दृष्टि से वह विश्व-नागरिक होगा, आर्थिक दृष्टि से मानवीय गुणो को भौतिक सम्पति से अधिक महत्व देने वाला होगा । उसका परिवार वास्तिविक रूप मे समस्त ससार होगा । वह जीवन विद्या का सबसे बडा ज्ञाता होगा ।

हमको खोज करनी चाहिए कि क्या ऐसा नेता वर्तमान समय मे मिल सकता है ? प्राचीन समय मे बुद्ध, कनफ्यूशस, ईसा, स्पिनोजा आदि ऐसे नेता उत्पन्न हुए थे, पर लोगो ने उनका महत्व कितनी ही पीढियो के बाद जान पाया । क्या इस बार हम ऐसी ही भूल करेंगे ? निश्चय ही महान नेताओ के चरित्र प्रेरणादायक होते है, पर मानवता उद्धार सुखद सस्मरणो से ही नही हो सकेगा । हमको ऐसे नेता के प्रत्यक्ष मार्ग-दर्शन की आवश्यकता है । हमको आशा करनी चाहिए कि ऐसा नेता अपनी वर्तमान पीढी मे मिल सकेगा जो इस सर्वनाशी सकट से मानव-समाज को सुरक्षित आश्रय-स्थल तक पहुँचा सके ।

‘अवतार’ क्या नही कर सकता—

ऐसे ‘नेता’ को हम ‘अवतार भी कह सकते हैं । इन दोनो शब्दो मे केवल लौकिक और धार्मिक भावनाओ का अन्तर है । जो इस समस्या पर केवल सांसारिक दृष्टि से विचार करते है, उनको ऐसा व्यक्ति सामाजिक अथवा राजनीतिक ‘नेता’ जान पडता है । कितने ही राजनैतिक नेता अथवा विजेता भी इस दृष्टिकोण से अपने जो ईश्वर कहने लगते है । पौराणिक काल मे हिरण्यकश्यप का अपने को ही ‘भगवान’ बतलाना और राम नाम लेने पर अपने पुत्र प्रह्लाद को मारने का प्रयत्न करना शायद इसी भाव का द्योतक हो । वर्तमान समय मे भी नैपोलियन और हिटलर की आश्चर्यजनक विजयो को देख कर उन देशो के कुछ अन्ध विश्वासी इनको ‘दैवी अवतार’ मानने लग गये थे । पर ‘अवतार’ ऐसा क्षणस्थायी

और भीषण कर्म करने वाला नही होता । 'अवतार' की विशेषताओ पर एक धार्मिक दृष्टि कोण से विचार करने वाले विद्वान् ने लिखा है—

"महापुरुषो का अवतार समाज की सबसे बडी घटनाओ मे से होना है । मानव-जाति के प्रत्येक महान सकट मे, जब सत्य का अनुभव धुँधला पड जाता है और मनुष्य न्यायनिष्ठ-कार्य करने मे अक्षम हो जाता है—जब कभी मानवता अपने असत् कर्मों के दलदल मे फँस जाती है—जब कभी वह अपनी ही उत्पन्न की हुई उलझन के कारण किंकर्तव्य विमूढ हो जाती है—जब कभी उसे मुक्ति दिलाकर नये पथ पर नये सिरे से गति देने की आवश्यकता होती है, तभी किसी महान आत्मा का मानव रूप मे 'अवतार' होता है । मानवता 'उसे' भूल जाती है, पर 'वह' सकट के अवसर पर मानवता को सहायता देने की बात को नही भूलता ।"

युग-परिवर्तन का आशय—

किसी ऐसे महापुरुष का आविर्भाव मानव-जाति के लिये 'नवयुग' का प्रारम्भ है । नई व्यवस्था और नई सभ्यता जिसका वह पूर्वाभास देता है, तब कल्पना की बाते नही रहती बल्कि जीवन का सत्य बन जाती है । अपने विचार, जीवन और कार्यों से वे नवयुग की सृष्टि और स्थापना करते है । अत: उनका व्यक्तित्व भी एक बहुत बडी चीज होता है । वह सर्वथा कर्मशील रहते है और इसी माध्यम से सारी जाति के चिंतन, जीवन और कर्मो को प्रभावित करते है । उनके विचार और चिन्तन समस्त जगत मे व्याप्त हो जाते है । प्रत्येक भूभाग की ग्रहणशील आत्माएँ उनकी वाणी को ग्रहण करती है और वह वाणी उनके जीवन-कार्यो मे अभिव्यक्ति पाती है । इन प्रमुख विचारको के चिन्तन और विचार फिर उनके चारो ओर रहने वाले साथियो के पास पहुँचते हैं और इस प्रकार मानव-जाति के चिन्तन और विचारो का धरातल ऊँचा होता जाता है । चिन्तन और विचारो के परिवर्तन के साथ कार्य भी बदलते जाते है । इस तरह क्रमश: नई अवस्थाओ की सृष्टि होती है, नये सम्बन्ध स्थापित होते हैं, नई सस्थाए

अस्तित्व मे आती रहती है, और एक बिलकुल नई व्यवस्था दृष्टिगोचर होने लग जाती है। यही 'युग-परिवर्तन' होता है।

नवयुग-आगमन का यही एक तरीका है। इसका प्रारम्भ छोटा, अस्पष्ट और प्राय अनाकर्षक होता है, लेकिन इसका परिणाम बहुत दूरव्यापी होता है। किसी भी 'महापुरुष' की यही कार्य प्रणाली होती है। आरम्भ मे वे अकेले ही चुपचाप और शान्ति पूर्वक कार्य आरम्भ कर देते है। धीमी उन्नति से कभी अधीर नही होते। वे एकदम निश्चित और सन्देह रहित होते है, क्योंकि उनके हाथो मे सब से शक्ति-शाली यन्त्र—उनका चिन्तन होता है। मनुष्यो के विचार, जीवन पद्धति और कार्य पूर्ण रूप से उनकी पकड मे होते हैं। आरम्भ मे वह अपने को पर्दे के पीछे अपरिचित और अनजान रखते है। पर जैसे-जैसे आध्यात्मिक पुनर्जागरण होता जाता है वैसे-वैसे ही अधिक सख्या मे लोग उनकी तरफ आकृष्ट होते जाते हैं। जब सम्पूर्ण जाति ऊचे दर्जे की आध्यात्मिक स्थिति प्राप्त कर लेती है सब कोई उनके महान उद्देश्य की सराहना करने लग जाते है।

अगर ऐसे 'महापुरुष' के अवतरण की आवश्यकता भूतकाल मे महान थी तो आज वह महानतर है। सच पूछा जाय तो इस समय वह महानतम् होती जाती है। मनुष्य को कभी भी आध्यात्मिक-प्रकाश की आवश्यकता इससे अधिक नही थी। प्राचीन युग मे ससार के भिन्न-भिन्न खण्ड बहुत कुछ एक दूसरे से पृथक और स्वावलम्बी थे। उनमे प्राय एक ही जाति और नस्ल के लोग रहते थे। इसलिये उस समय उनके अस्तित्व की समस्या आज से कही कम जटिल थी। आज सारा ससार स्थल जल और आकाश के रास्ते एक हो गया है। हर राष्ट्र एक दूसरे से मिल गया है, एक दूसरे के जीवन मे प्रवेश कर गया है। राष्ट्रो के हित परस्पर मिश्रित हो गये हैं। वैयक्तिक समस्याओ का तब तक सही हल नही हो सकता जब तक सारे राष्ट्र की समस्या हल नही की जाय और प्रत्येक राष्ट्रीय-समस्या विशाल अन्तर्राष्ट्रीय समस्या का एक अग है। इसलिये समस्त विश्व की समस्या का हल होना, पृथ्वी पर

स्वर्गीय-राज्य की स्थापना ही इसका एक मात्र हल है। इस कार्य को कोई दैवी व्यक्ति ही कर सकता है।

सब समस्याओ का एक ही हल—

पर 'दैवी सत्ता' सब काम अपने हाथ से ही नही किया करती। ईश्वर भक्तो की यह निश्चित धारणा है कि 'जब कभी ईश्वर किसी रूप मे पृथ्वी पर प्रकट होते है तब वह अकेले नहीं आते। प्रत्येक देश मे कुछ ऐसे 'दैवी कार्यकर्ता' होते है जो 'अवतार' के साथ—और कुछ पहले भी उनके आगमन का सदेश लेकर भूमि तैयार करने लगते है, जिसमे वह बीज बोकर नई फसल तैयार कर सके।' इस सिद्धान्त के अनुसार 'अवतार' मुख्यत: कुछ विशेष व्यक्तियो को प्रेरणा देगे, जनता का मार्ग-दर्शन करेगे, तो उसके प्रभाव से परिवर्तन और नव निर्माण का चक्र स्वय घूमने लगेगा।

यह तो प्रत्यक्ष ही है कि इस समय समस्त मनुष्य जाति बडे शोक, कष्ट, अभाव, भुखमरी की परिस्थितियो मे ग्रस्त है। आप किसी भी तरफ निगाह उठा कर देखिये प्रगति का द्वार अवरुद्ध ही मिलेगा। समस्त मानव जाति एक विश्व व्यापी सकट का अनुभव कर रही है। जीवन का प्रत्येक विभाग अस्त-व्यस्त हो गया है। अब यह अच्छी तरह प्रकट हो गया है कि कोई भी जातियाँ राष्ट्र इन समस्याओ को अकेला हल नही कर सकता। कारण यह कि इस युग मे समस्त मनुष्य और जातियाँ, समस्त व्यापार और उद्योग-धन्धे एक दूसरे के आश्रित हो गये हैं। इससे सभी राष्ट्रो को अब यह अनुभव होता जा रहा है कि ससार मे वे मनमानी नही कर सकते, वरन् उनके बराबर इस बात का ध्यान रखकर होगा कि अन्य लोग उनके विषय मे क्या सोचते है और कैसी सम्मति रखते है। यद्यपि इस समय ससार मे बडी हलचल और अशान्ति की स्थिति दिखलाई पड़ रही है फिर भी एक अदृश्य शक्ति विभिन्न देशो के निवासियो को इस बात के लिये बाध्य कर रही है कि वे परस्पर मे सहयोग की वृद्धि करें, एक तरह के विचार रखे, एक तरह से बात करें और समान रूप से कार्य करे। उनके सामने ऐसी

परिस्थितिया उत्पन्न होती जाती हैं कि यदि वे अपने पृथक-पृथक परस्पर विरोधी मार्गों का त्याग न करेंगे तो उनका सर्वनाश हो जायगा ।

विश्वबन्धुत्व की भावना–

ऐसे लोगो की भी कमी नही है जो इस प्रकार की 'विश्व–बन्धुत्व' की भावना को—ससार व्यापी सहयोग, मेल–मिलाप की चर्चा को एक असम्भव बात अथवा मन को खुश करने वाला स्वप्न मात्र मानते है ऐसे लोगो से हम कहना चाहते है कि जब मनुष्य पृथ्वी के गर्भ मे घुसकर सोना और रेडीयम जैसी बहुमूल्य चीजे निकाल लाता है, अथाह समुद्र मे गोता लगाकर अनमोल मोती ढूँढ लाता है, आकाश मे उड सकता है, उपग्रहो और ग्रहो तक की छलाँग मार सकता है, अगर वह देश और काल पर विजय प्राप्त करके अपने कमरे के भीतर लेटा हुआ ही ससार भर के दृश्य देख सकता है और हजारो कोस दूर बैठे मित्रो से बातचीत कर सकता है, तो वह एक ऐसी आदर्श जीवन-पद्धति–राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक प्रणाली क्यो नही खोज सकता जिसमे सब मनुष्य अपना न्याययुक्त भाग पाकर सुख और शान्ति से रह सकें ? क्या छल कपट, षडयन्त्र और अभेद्य स्थानो मे प्राणो को हाथ मे लेकर प्रविष्ट होकर लूटमार कर लाना सहज है, और भगवान तथा प्रकृति ने जो कुछ दे रखा है तो उसे सहयोग और प्रेम पूर्वक मिल जुलकर उपभोग करना इतना कठिन है ?

हमको तो इसमे कुछ भी असभव नही जान पडता, तनिक मनुष्य की बुद्धि को मोड देने की आवश्यकता है । इसी कार्य के लिये 'अवतार' की आवश्यकता है । उसका कार्य आरम्भ हो चुका है, उसकी शक्ति मे विश्वास रखने वाले आज भी अनेक स्थानो मे उसके लिए सचेष्ट हैं और ससार की गति को देखते हुए वह दिन निश्चय ही निकट आ पहुँचा है जब कोई "दैवी शक्ति" प्रकट रूप मे इसे पूरा कर दिखायेगी । इस बात को भारत के 'भक्त' लोग ही नही कह रहे है, योरोप और अमे

रीका के विश्वविद्यालयो के बहुत बड़े अध्यक्ष सर माइकेल सैडलर जैसे आधुनिक ज्ञानी व्यक्ति भी स्वीकार कर रहे है—

"हम इस समय 'प्रतीक्षा' के युग मे जीवित रह रहे है ? लोग अनुभव कर रहे हैं कि ससार मे जो बड़े-बड़े परिवर्तन हो रहे हैं वे निकट भविष्य मे इससे भी बहुत बड़े परिवर्तनो के पूर्वाभास है । इतिहास का एक अध्याय पूरा हो चुका है और दूसरे का प्रथम पृष्ठ अभी आधा ही खुला है । इसमे सन्देह नही कि'प्रतिक्षा'के युग मे मनुष्यो को अदभुत भावनात्मक अनुभव होने अनिवार्य है और निश्चय ही भावी-जगत उससे बहुत भिन्न होगा जैसा कि हम अब तक उसे देखते और जानते आये हैं।"

समस्त महापुरुषो मे एकता—

आज ससार के विभिन्न धर्मो (मजहबो) में काफी वैमनस्य और झगड़े होते दिखाई पड़ते है । आज से दो-चार सौ वर्ष पहले यह इससे भी भयकर रूप मे प्रकट होते थे और मजहब नाम पर कत्लआम होते थे, खून की नदिया बहाई जाती थी ! यद्यपि इन कार्यो के करने वाले 'धर्म और ईश्वर' के नाम पर ही ऐसा करते थे, पर वे मानो भ्रम मे पड़े होते थे पर मक्कारी से अपना स्वार्थ सिद्ध करना चाहते थे। अन्यथा दैवी बिधान के अनुसार पृथ्वी पर प्रकट होने वाले 'विश्व-सचालक' 'पैगम्बर' आदि कभी मनुष्यों को अन्य लोगो से द्वेष करने, उनको मारने-लूटने की प्रेरणा नही दे सकते । 'धर्म' का नाम लेकर मारकाट और लूटमार करना केवल चालाकी या धूर्तता का प्रमाण है । ऐसे लोग धर्म के नाम पर बहका कर जन-समूह को अपना अनुयायी बना लेते हैं और उसकी सहायता से अपना मतलब पूरा करते है ।

आप किसी भी धर्म के मूल ग्रन्थ मे दिये गये सिद्धान्तो और उपदेशो को देख लीजिये उनमे सत्य, न्याय, मानव-सेवा की बात ही मिलेगी । यो 'धर्म' को नष्ट करने वाले दुराचार और पाप कर्मों की वृद्धि करने वालो को दण्ड देने का भी विधान है, जैसा कि 'गीता' जैसे ससार मे पूजनीय ग्रन्थ मे भी कहा गया है—"विनाशायच दुष्कृताम्' अर्थात

भगवान् के 'अवतार' का उद्देश्य दुष्टो को नष्ट करना होता है। पर वह विशेष परिस्थिति मे पालन करने योग्य विशेष धर्म ही होता है। दुष्टो का अन्त हो जाने पर उसकी आवश्यकता नही रहती। सामान्य रूप से सभी धर्मों के प्रचारको के उद्देश्य और आदर्श लोक हितकारी भावना से ही प्रेरित होते है, इस लिये तात्विक रूप से उनमे कोई अन्तर नही होता।

इतना ही नही धर्म और ईश्वर के सच्चे ज्ञाताओ और विभिन्न धर्मो के प्रचारको और स्थापनकर्ताओ मे पूर्ण एकता की ही भावना रहती है। वे जानते है कि विभिन्न मजहबो मे जो अन्तर दिखलाई पडता है उसका कारण देश और काल की भिन्नता है। ईश्वर का प्रतिनिधि धर्म प्रचारक जिस भूखण्ड और समय मे प्रकट होगा वह अपने अनुया-यिओ को उस स्थिति के लायक ही व्यवहारोपयोगी मार्ग बतलायेगा। पर वह सब सामयिक होता है। समय और परिस्थिति के बदल जाने पर वे नियम भी बदले जा सकते हैं। जिन स्थानो मे जल का अभाव था वहाँ के 'कर्म काण्ड' मे लोगो को भस्म—स्नान' अथवा मिट्टी से ही शुद्धि की अनुमति देदी गई। पर इसका यह आशय नही कि जब तुम्हारे यहाँ नहरो और नल कूपो से पानी की समुचित व्यवस्था हो जाय तब भी तुम जल द्वारा शुद्धि और स्वच्छता न करो।

ईश्वर के यहां भेदभाव नही--

ससार मे अभी तक जितने महान धर्म-सस्थापक हुए है उन सब ने यही मत प्रकट किया है कि ईश्वर के यहाँ किसी प्रकार का भेदभाव नही है। जो व्यक्ति जिस किसी विधि से, मन मे सत्य-भाव रखते हुए, भगवान की पूजा-उपासना करता है, वही भगवान् को स्वीकार होती है। इसी प्रकार वे यह भी कहते है कि ससार का कोई 'धर्म' या धर्म-सस्थापक अन्तिम नही है, उनके पश्चात् भी जैसा समय आयेगा उसके अनुसार धर्म का प्रतिपादन करने वाले 'महापुरुष' उत्पन्न होंगे। भग-वान् बुद्ध ने इस बात को अपने निर्वाण के अवसर पर बहुत स्पष्ट रूप

से कहा था। जब उनका प्रधान शिष्य आनन्द उनके वियोग की कल्पना से बहुत व्याकुल हुआ और कहने लगा कि इसके बाद हमको धर्म का उपदेश कौन देगा तो बुद्ध ने कहा—

"मैं सब से पहला 'बुद्ध' नही हू जो ससार मे आया हूँ और न मैं अतिम 'बुद्ध' ही कहा जा सकता हूँ। जब समय आयेगा तो ससार मे दूसरा 'बुद्ध' प्रकट होगा, जो बहुत पवित्र, बहुत अधिक ज्ञानी, बुद्धि सम्पन्न, उदार विचारो वाला और ससार का पूर्ण ज्ञाता होगा। वह मनुष्यो का एक अनुपम नेता होगा। वह तुमको उसी शाश्वत सत्य की शिक्षा देगा जिसकी मैने दी है। वह उस 'धर्म का प्रचार करेगा जो आदि, मध्य और अन्त मे निश्चयात्मक रूप से महान् और श्रेष्ठ होगा।"

जिस इस्लाम को अत्यन्त कट्टर और धर्म के सम्बन्ध मे घोर अन्ध विश्वासी बतलाया जाता है उसके धार्मिक ग्रन्थ 'कुरान' मे भी सब धर्मो और धर्म-सस्थापको की एकता का प्रतिपादन किया गया है। उसके एक अध्याय सूरत यासीन' मे कहा गया है—

"एक आदमी की तरह एक उम्मत (मजहब या सम्प्रदाय) की उम्र भी निश्चित होती है। जब बचपन, युवावस्था और बुढापे की सीढियाँ पार करके उम्मत मर जाती है, तब खुदा नई उम्मत पैदा करता है। खुदा ने सब पैगम्बरो से वचन लिया है कि जब तुम्हे किताब पैगम्बरी दी जाय और तुम्हारे बाद खुदा की तरफ से दूसरा पैगाम लाने वाला प्रकट हो तो उस पर ईमान लाना और उसकी सहायता करना तुम्हारा कर्तव्य है।"

सत्य यही है कि ससार मे जो विशेष दैवी शक्ति सम्पन्न महापुरुष होते है वे विश्व-कल्याण और विश्व प्रेम के ही प्रचारक होते हैं। सच्चे आत्मज्ञानी होने के कारण वे जानते है कि इस ससार में जीवन और चैतन्यता का स्रोत एक ही है, इस लिये मनुष्यो मे किसी भेद-भाव की कल्पना करना या परस्पर शत्रु-भाव रखना निश्चय ही

अबुद्धिमत्ता अथवा दुष्ट स्वभाव का प्रमाण है। वे अपने अनुयायिओं को प्राणीमात्र से प्रेम रखने और उदारता का व्यवहार करने का उपदेश देते है। यह बात दूसरी है कि अधिकाश मनुष्य अभी पूर्व जन्मो की पाशविक परिस्थितियों और प्रभाव से मुक्त नही हो सके हैं, इस लिये इन उपदेशो का उन पर अधिक असर नही होता और वे प्राय: नीचता और क्रूरता के कार्य करने लग जाते है।

हृदय परिवर्तन 'अवतार' ही करेगा—

पर अब वह समय आचुका है जब कि इस अवस्था मे 'क्रान्तिकारी परिवर्तन' होगा और मानव-जाति व्यक्तिगत, साम्प्रदायिक और जातीय सकीर्णताओ को त्याग कर एक 'विश्व मानव समाज' बनाने को आगे बढ़ेगी। यद्यपि इस समय भी यू० एन० ओ० (राष्ट्र-सघ) के रूप मे उसकी चेष्टा की जा रही है, पर वह अधिकाश मे ऊपरी तथा जबर्दस्ती लादी जाने वाली है। ऐसी चेष्टा कभी अधिक फलदायक नहीं हो सकती। इसके लिये अनिवार्य है कि सभी राष्ट्रों के प्रमुख नेताओं का हृदय परिवर्तन हो और वे इस प्रकार के सगठन—एकता को सर्वोपरि कार्य मान कर उसके लिये तन-मन-धन से तैयार हो जाये।

जब ससार भर के राजनीतिज्ञ, उद्योगपति, विद्वान अपने—पराये का भाव त्याग कर केवल मानब जाति की कल्याण भावना से एकता के लिये तैयार हो जायेंगे और इस कार्य के लिये जो भी छोटा या बडा त्याग करना हो उसमे सकोच न करेगे, तभी कुछ सफलता की आशा की जासकती है। इस प्रकार के युग परिवर्तन के लिये कैसी श्रद्धा और भक्ति की भावना वाले व्यक्तियो की आवश्यकता है, इसकी एक झलकी इंगलैण्ड के श्री डब्लू० ई० ओरचार्ड के लेख से मिलती है—

" हे राष्ट्रों के उद्धारक, चिरवाञ्छित भावी अवतार ! तुम हमारे बीच मे अपने वैभव के साथ कब प्रकट होगे ? पिछली बार तुम दीन वेष (ईसा मसीह के रूप मे) प्रकट हुये थे, तो उससे कुछ लोगों को

असीम आनन्द और शान्ति प्राप्त हुई थी। पर संसार के लोगो में से बहुत कम तुम्हारे आने की बात जानते है और जो तुम्हारे दिखलाये रास्ते पर चलते है उनकी सख्या तो बहुत ही कम है। पर चूँकि तुमने इससे कही अधिक देने का आश्वासन दिया था, इसलिए मनुष्य तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे है।

"पर सैकडो वर्ष बीत गये और लोग बार-बार पूछते हैं कि क्या 'अवतार' के लक्षण दिखाई देते है ? युद्ध बराबर होते ही रहते है, मनुष्य अन्धकार और अशान्ति मे जीवन व्यतीत कर रहे है। किसान खेतो को बोते है, पर उनकी फसल को दूसरे ही लोग खा जाते है। कारीगर घर बनाते हैं, पर उनमे रहता कोई और है। दर्जी कपडे सीते है, पर उनको कभी पहिन नही पाते। मनुष्यो ने बार-बार अपनी बेडियो को तोड़कर स्वाधीन होने की चेष्टा की है, पर उनकी विजय उनके हाथों से निकल जाती है और उनकी बेडियाँ फिर से मजबूत कर दी जाती है।

"तो भी हमारा विश्वास है कि तू अब पास ही है। अभी तक हमारी यह आशा बलवती है। मार्ग सुन्दर बनाया जा रहा है, उसमे से रोडे-पत्थर हटाये जा रहे है। मनुष्य इस विश्वास के साथ कि 'मुक्ति का समय' पास आ चुका है अपना सर उठा रहा है।

"हमे शोक है कि इस समय भिन्न-भिन्न राष्ट्रो मे गलतफहमी और सन्देह का भाव बढ रहा है और इसके फल से वे हथियार इकट्ठे करने मे जुटे हुए है। विभिन्न श्रेणियो मे पृथकता और कलह का भाव बढता जाता है। अब कृपा करके पधारिये, हमारे भेदभावों को दूर कीजिये। हे दैवी प्रेम के सागर ! हमारे ऊपर ऐसी कृपा करो कि हमारे हृदय के द्वार आपके स्वागत के लिए सदैव खुले रहे। भगवन् ! आओ और हमारे मध्य अपना राज्य स्थापित करके पृथ्वी पर शान्ति का प्रसार करो।"

यह एक ऐसे हृदय की भावना और प्रार्थना है जो मानवीय प्रयत्नों से संसार के सुधार की आशा न देखकर अपने को पूर्णत. भगवान के भरोसे छोड देता है। हमारे शास्त्रो का मत है कि ससार मे अधिकांश

लोगों की भक्ति और उपासना इसी कारण फलदायक नहीं हो पातीं, क्योंकि वे पूर्णत. भगवान के आगे आत्मसमर्पण नही करते वरन् भगवान से सहायता की प्रार्थना करते हुए मन मे अपना भरोसा भी करते रहते है। यद्यपि यह एक मशहूर कहावत है कि 'भगवान उनकी मदद करता है जो अपनी मदद आप करते हैं।' यह नियम सामान्य परिस्थिति और जीवन-निर्वाह के नित्य के कार्यों के लिए है। पर जब मनुष्य पर कोई बहुत बडी और सामर्थ्य से सब तरह बाहर विपत्ति आ पडती है तो भगवान की शरण लेने के सिवाय और कोई उपाय कारगर नही होता। ऐसे ही अवसरों पर जब पृथ्वी पर शोषणकर्ता 'असुरों' का आतङ्क छा जाता है और कोई उनका प्रतिकार करने मे समर्थ नही होता, मानवता कष्टो के मारे त्राहि-त्राहि करने लगती है तो पृथ्वी व्याकुल होकर 'विश्व सचालक' की शरण जाती है, और वे उसके उद्धार के लिए 'प्रकट' होते है।

पृथ्वी के भगवान की शरण मे जाने का जो अलकारिक वर्णन रामायण तथा अन्य पुराणो मे किया गया है उससे मालूम हो सकता है कि मनुष्य को अत्यन्त विषम परिस्थिति आ जाने पर किस प्रकार एक-मात्र भगवान का ही सहारा लेना पड़ता है। वही दशा इस समय ससार की दिखलाई पड रही है। युद्धशील देशो की अस्त्र-शस्त्रो की शक्ति इतनी अधिक हो गई है कि वे जब चाहे मानव-जाति का नाश कर सकते हैं। अणुशक्ति, जहरीली गैस, रोगो के कीटाणु आदि अनेको ऐसे नाशकारी उपाय निकाल लिए गये है जिनसे करोडो मनुष्य कुछ घण्टो मे मारे जा सकते है।

अब तो कई-कई हजार टन के विस्फोटक सामग्री से भरे गोले अतरिक्ष मे सैकडो मील ऊपर भेजे जा सकते है और वहाँ से संसार के किसी भी देश के ऊपर गिराकर कुछ ही क्षणो मे जीवित नर-नारियो से भरे पूरे नगरों और ग्रामो को भस्म की ढेरी मे परिणित किया जा सकता है। ससार की कोई ताकत ऐसे अस्त्रो को निवारण नही कर

सकती । तब मानव जाति के सामने केवल 'भगवान' को पुकारने का ही उपाय शेष रह जाता है और वे ही परिस्थिति के अनुसार 'असुरों' के असुरत्व से ससार की रक्षा की कोई योजना कार्यान्वित करके समस्या को हल करते है ।

सभी धर्म 'दैवी सत्ता' पर विश्वास करते हैं—

ससार की भयकर हलचल पूर्ण अवस्था से भयभीत होकर तो मनुष्य का ध्यान किसी 'दैवी सहायक' की तरफ मुड ही रहा है । ससार के सभी धर्मों मे 'अवतार' का सिद्धान्त स्वीकार किया गया है, और उनका यह विश्वास है कि मानव-जाति पर कोई सर्वनाशी संकट आ पडने पर ईश्वरीय शक्ति द्वारा ही उसका निवारण होना सभव होता है । कुछ वर्ष पहले इङ्गलैण्ड की पार्लियामेट के दो सदस्यो—श्री डब्लू० ट्यूडरपोल और वैलड्रोन स्मिथर्स ने एक घोषणा पत्र मे कहा था—

'पूरब और पश्चिम के सभी महान सम्प्रदायो के अनुयायी ईश्वरीय दूत के आने की राह देख रहे है। ईसाई मजहब वाले ईसा के 'दूसरे आगमन' की बात कहते है । यहूदी आशा करते है कि उनके 'ममीहा' मनुष्य रूप मे प्रकट होगे । मुसलमान 'इमाम मेहदी' के आगमन की आशा कर रहे है । 'बौद्ध देशो' (जापान, चीन, भारत आदि) मे महान आत्माओ के आविर्भाव की चर्चा सुनाई पडती रहती है । अमरीका मे भी ऐसा ही विश्वास फैला हुआ है । इसमे सन्देह नही कि नवीन जगत का निर्माण आध्यात्मिकता पर ही होगा और इस सम्बन्ध मे कितने ही लोगो को यह दृढ विश्वास है कि 'ईश्वर के आगमन' का रहस्य अब ससार मे प्रकट होने ही वाला है ।"

हम इससे पहले भी ससार के अनेक विद्वानो तथा आध्यात्मिकता के अनुयायिओ के कथन उद्धृत कर चुके हैं जिनमे 'दैवी शक्ति' के प्रकट होने की बात जोरो के साथ कही गई है । इसका कारण यही है कि जब ससार के ऊपर कोई भीषण विपत्ति आती है और लोगो को अपने अस्तित्व मे शका होन लगती है तो उनका ध्यान स्वभावतः किसी 'दैवी-

रक्षक' की तरफ जाता है और वे प्राचीन ग्र थो मे से इस तरह के वर्णनो की तरफ विशेष रूप से आकर्षित होने लगते है ।

यद्यपि हमारे लिये तो 'अवतार' का सिद्धान्त 'गीता' से बढकर स्पष्ट और तर्कसम्मत कही नही मिला, पर अन्य धर्म और देशो वाले भी अपने-अपने ढ ग और विश्वास के अनुसार उस सम्बन्ध मे खोज और विचार कर रहे है, यह कम महत्व की बात नही है । उर्दू भाषा मे एक कहावत है कि 'आवाजे' खल्क को आवाजे खुदा जानो' अर्थात् जिस बात की चर्चा सब मनुष्य करने लगे और उस पर विश्वास रखे तो समझनी चाहिये कि यह बात 'दैवी प्रेरणा' से ही हो रही है और सत्य होकर रहेगी । इसलिए जब हम ससार के दूरवर्ती भागो मे रहने वाले और एक-दूसरे से अनजान लोगो को 'अवतार' और 'युग परिवर्तन' के सम्बन्ध मे एक ही बात कहते और उस पर विश्वास करते देखते है तो हमको उसे एक 'तथ्य' के रूप मे स्वीकार करना ही उचित प्रतीत होता है ।

'अवतार' का आधार अन्धविश्वास पर न हो––

इस प्रकार पूरब और पश्चिम के बहुसख्यक विद्वानो की सम्मतियों का विश्लेषण करके हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि 'अवतार' कोई अन्धविश्वास अथवा अन्धश्रद्धा का विषय नही है, वरन् वह सामाजिक विकास और इतिहास की प्रगति का एक अग ही है । अन्तर यही है कि भौतिकतावादी उसे 'महामानव' अथवा 'जन नेता' के रूप मे देखते हैं और धार्मिक-भावना रखने वाले उसे ईश्वरीय दूत या 'अवतार' की पदवी प्रदान करते है । यदि हम नामो के पीछे झगडना छोड दे तो दोनों प्रकार के मतो मे कोई खास अन्तर नही है और दोनो का आशय लगभग एक ही हैं । दोनो ही मानते है कि ससार मे विकृति के बढ़ जाने अथवा समाज की प्रगति में कोई बहुत बडी बाधा उत्पन्न हो जाने पर ही ऐसे विशेष प्रभाव युक्त व्यक्ति की आवश्यकता होती है और वह सामने आ भी जाता है ।

वह महापुरुष जनता और ससार के उद्धार के लिये नि:स्वार्थ भाव से कार्य करके सकट को निवारण करता है, और इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये किसी प्रकार कष्ट या हानि की चिन्ता नही करता। उसकी इसी 'महानता' तथा अन्य लोगो मे न पाई जाने वाली अनुपम उदारता को देखकर धार्मिक-भावना रखने वाले लोग उसे 'देव–पुरुष' की सज्ञा देते है, क्योकि उनके मतानुसार निस्स्वार्थ भाव से किसी का उपकार करना 'देव' अथवा ईश्वर का ही कार्य है। इस प्रकार की भावना मे हमे कोई आक्षेपजनक बात नही जान पडती। 'धर्म–प्रधान' तथा 'भौतिकता प्रधान' भावनाओ वाले व्यक्तियो के दो दल सदा से रहे हैं और अभी बहुत समय तक रहेगे।

रह गई अवतार सम्बन्धी कथा–कहानियो और चमत्कारो की बात वह बौद्धिक दृष्टि से निम्नस्तर की जनता मे सदा से पाई जाती है। राम, कृष्ण और अन्य अवतारो की बात तो छोड दीजिये 'धर्म को अफीम' बतलाने वाले कम्यूनिस्ट लेनिन के सम्बन्ध मे भी रूस के किसानो मे उसकी मृत्यु के बाद यह किम्वदन्ती फैल गई थी कि वह रात के समय अपनी समाधि (मुसोलियम) से निकल कर जनता की दशा और कम्यूनिस्ट पार्टी के कार्यकताओ की गति विधि जानने के लिये घूमता रहता है और अन्त मे किसी दिन पुन: उठकर शासन-कार्य करने लगेगा! इसी प्रकार महात्मा गाँधी के विषय मे सन् १६२१ मे ही यह अफवाह फैली थी कि खद्दर का प्रचार करने के लिये उनके प्रभाव से सब प्रकार के पेडो पर रुई उत्पन्न होने लग गई है।

अवतारो की संख्या ६४ हजार:—

इस प्रकार की 'धार्मिक' अफवाहो का 'खण्डन' करने को हम कभी विशेष उत्सुक नही होते। क्योकि हम जानते हैं कि अशिक्षित जनता प्रत्येक विषय को जो उसकी समझ और बुद्धि से बाहर होता है, तोड-मरोड कर किसी प्रकार का दैवी–चमत्कार बना ही देती है। पर हम धार्मिक तत्वो की वास्तविकता पर सदा से प्रकाश डालते आये है। सन्

१६४२ मे ही जब अवतार का जनता मे बडा दौर दौरा था और लाखो व्यक्ति उसके प्रकट होने पर दृढ विश्वास करके प्रतीक्षा मे थे 'सतयुग' (मासिक पत्र) मे 'अखड ज्योति' सचालक ने ऐसे अन्ध विश्वास के सम्बन्ध मे चेतावनी देते हुए लिखा था—

"अब तक हिन्दू धर्म मे चौबीस मुख्य अवतार हो चुके है और अंशावतारो की सख्या इससे कही अधिक है। जैन धर्म के तीर्थंकरो की भी एक बडी सख्या बताई जाती है। ईसाई, बौद्ध, पारसी, मुसलमान आदि भी अपने धर्मों मे अनेक पैगम्बरो, 'दैवी आत्माओ' का प्रादुर्भाव हो चुका मानते है। इसके अतिरिक्त हजारो की सख्या मे प्रचलित अन्य सम्प्रदायो मे अपने-अपने विश्वासानुसार हजारो अवतार हुए है। 'विश्व-सर्व धर्म सम्मेलन' के नेता सर हार्ल्डलस्ट ने विभिन्न धर्मों के मूल ग्रन्थो (जिन्हे उन धर्मों के अनुयायी ईश्वरीय वाणी मानते है) के आधार पर करीब ६३००० 'अवतारो' का परिचय सग्रह किया था। यह अवतार सौ-डेढ सौ वर्ष पहले तक के है। इसके बाद के वर्षों मे भी 'अवतारो' की कमी नही रही है। इस तर्क प्रधान युग के दो सौ वर्षों मे यद्यपि 'अवतारो' को विशेष महत्व नही मिला है, तो भी ससार के विभिन्न भागो मे करीब १४०० व्यक्ति ऐसे हुये है, जिन्हें 'अवतार' के रूप मे पूजा गया है और स्वय उन्होने अपने आप मौखिक या लिखित रूप मे अपने ईश्वर होने की घोषणा की है।"

"कई व्यक्ति यह कहते सुने जाते हैं कि कल्कि अवतार हो चुका है या होने वाला है। मुरादाबाद जिले का सभल कस्बा या मगोलिया के रेगिस्तान वाला सम्भल उनका जन्म स्थान घोषित किया गया है। उनके माता-पिता, बहन-भाई सब का नाम बता दिया गया है और वे क्या-क्या करेगे यह भी लिखा हुआ मिलता है। कोई कहते है कि कल्कि भगवान प्रकट हो चुके हैं और उन्हे परशुराम जी महेन्द्र पर्वत पर धनुष विद्या सिखाने को ले गये है, अब वे २१ वर्ष के हो चुके हैं और शीघ्र ही बंगाल के किसी स्थान पर प्रकट होगे।

हमारा विश्वास है कि ये किम्बदन्तियाँ कभी फलितार्थ नही हो सकती । ऐसे कोई 'कल्कि-भगवान्' अवतार नही लेगे जैसी कि रूपरेखा गढकर तैयार कर्दी गई है । बेशक भगवान का 'अवतार' बहुत शीघ्र प्रकट होने वाला है, वह अपने कार्य मे सलग्न है, पृथ्वी पर से पाप का बोझ कम करने मे वह प्रयत्नशील है । इसमे सन्देह नही कि दुनिया की यह दुर्दशा अधिक समय तक इसी प्रकार बनी नही रह सकती । मनुष्य के जन्म के समय उसकी मृत्यु भी पैदा होती है । जैसे-जैसे वह बड़ा होता जाता है वैसे ही वैसे मृत्यु के निकट पहुँचता जाता है । इसी प्रकार पाप के साथ उसका विनाश भी जन्म लेता है । आज 'कलि' का ताण्डव-नृत्य हो रहा है, पर इस भस्मासुर को भी जलाने वाले शकर मौजूद है ।"

'अवतार क्या है ?' इम प्रश्न के उत्तर मे यह जान लेना चाहिए कि दृश्य जगत का मूल अदृश्य जगत मे रहता है । ससार मे जब दुष्टता और अनाचार के कार्य बढते है तब अदृश्य-लोक का वातावरण भी दुष्टता की वृत्तियो से भरा रहता है । जब अदृश्य लोक मे दुर्भावनाये भर जाती हैं तो उनको हटाने के लिये प्रतिक्रिया स्वरूप विरोधी भावनाओ की एक लहर आती है । यह लहर उतनी ही जोरदार होती है जितनी कि उसकी प्रतिपक्षी लहर थी । गेद को जितने जोर से जमीन पर पटका जाता है वह उतने ही जोर से ऊपर को उछलती है । प्रकृति के अन्तराल मे से दुर्भावनाओ के विधि मे जो सद्वृत्ति उदित होती है, उसकी शक्ति भी पूर्व-वृत्तियो के समान ही होती है ।

"अदृश्य जगत मे बुराइयो के विरोध स्वरूप जब कम्प लहरे उठती है तो उनका प्रभाव उन दिव्य आत्माओ पर होता है जिनकी आध्यात्मिक चेतना जागृत और सशक्त होती है । घरो मे रक्खे हुए लोहे-लकडी के रेडियो सेट आकाशवाणी स्टेशन से ब्राडकास्ट आरम्भ होते ही बोलने लगते हैं, किन्तु उसी कमरे मे रक्खे हुए लकडी और लोहे के कैश-बुक्स मे से कोई आवाज नही निकलती । युग-परिवर्तन की लहरे जब

सूक्ष्म जगत में बहती है तो जागृत आत्माएँ उन्हे तुरन्त पकड लेती है और उसी स्वर मे बोलने लगती है, फिर चाहे वे उस समय किसी भी स्थिति का जीवन क्यो न व्यतीत कर रही हो।

" 'अवतार' शब्द की व्याख्या इस प्रकार की जाय तो अनुचित न होगा कि "समाज को गिरी हुई दशा से उन्नति की ओर ले जाने वाला महा मानव नेता" यह तो प्रत्यक्ष ही है कि ऐसा असाधारण कार्य कर सकने वाला, ईश्वरीय शक्ति से समन्वित होता है। वैसे तो जीव मात्र ईश्वर का अवतार (अ श) है, पर कुछ चैतन्य आत्माओ मे दैवी तेज अधिक होता है। उसी तेज के अनुपात से उस अवतार की कलाएँ निर्धारित की जाती हैं। उच्च जागृत आत्माएँ ईश्वरीय आदेश को शिरोधार्य करके परम पिता की इच्छा पूरी करने के लिये अविलम्ब तैयार हो जाती है और लीलापति का साधन बन कर परम सौभाग्य का अनुभव करती है। वे अपने पीछे अनन्त यश और अखण्ड श्रद्धा छोड जाते है। जन समुदाय उनको ईश्वर का दूत, ईश-पुत्र या साक्षात् भगवान ही मानने लगता है-वे ही अवतार भी कहे जाते है।"

अवतार की इस परिभाषा मे कोई ऐसी बात नही जिससे उसकी कोई त्रुटि या हीनता प्रकट होती है। यद्यपि पौराणिक कथाओ के अनुयायी ऐसे 'अवतारो' के भक्त बनना कदाचित् ही पसन्द करे, पर हमारे मूल धर्म-ग्रन्थो, वेदो और उपनिषदो मे परमात्मा और जीव का जो लक्षण बताया गया है उससे अवतार विशिष्ट जीवो की श्रेणी में आते है।

हमारी सम्मति मे अवतार के विषय मे यह विवाद उठाना कि वह वास्तव मे भगवान ही होते है अथवा किसी उपयुक्त व्यक्ति मे भगवद् शक्ति प्रविष्ट हो जाती है, कुछ भी महत्व नही रखता। ऐसी बातों में सर खपाने वाले वे ही व्यक्ति होते हैं जिनको कुछ करने-धरने के बजाय बहस-मुबाहिसे और 'खण्डन' मे ही मजा आता है। यह तो कोई कह नहीं सकता कि जिस समय पृथ्वी पर अवतार हुये थे उस समय 'वैकुण्ठ धाम' भगवान से खाली हो गया था। फिर सर्व व्यापी ईश्वर के लिये

यह विवाद उठाना कि वह कब कहाँ रहते है अपनी अज्ञता का परिचायक है। जब जीवमात्र भगवान के ही अश हैं और वे साधन करके जीवन मुक्त बन सकते है, जो भगवान की तरह ही इच्छा मात्र से ससार के अनेक कार्यों की पूर्ति कर सकते है जब कोई ज्ञानी व्यक्ति अवतार की उपर्युक्त परिभाषा से किसी प्रकार की विरोध प्रकट नही कर सकता।

जैसा गोस्वामी तुलसीदास जी ने लिखा है कि निराकार और साकार की विवाद उठाना अबुद्धिमत्ता का परिचायक है, क्यो कि सर्वशक्तिमान भगवान दोनो ही रूपो मे ससार का सचालन कर सकता है, उसी प्रकार अवतार कई तरह से हो सकते है और उनकी शक्ति तथा दर्जे मे भी अन्तर हो सकता है। अवतारो की जो कम या ज्यादा कला मानी गई हैं, उसका कारण यह अवतारी शक्ति-की न्यूनता और अधिकता ही है। शास्त्रो मे अशावतारो का वर्णन बड़े विस्तार से मिलता है और यही कारण है कि कपिल, ऋषभ देव हयग्रीव परशुराम आदि की उस तरह उपासना नही की जाती जैसीकि राम और कृष्ण की की जाती है। बुद्धदेव की नाम यद्यपि भागवत मे भी दश मुख्य अवतारो मे दिया गया है, पर अनेक धार्मिक व्यक्ति उनको अवतार नही मानते।

इस प्रकार अवतार के सम्बन्ध मे थोडा-बहुत मतभेद तो प्राचीन समय से चला आया है। इस सम्बन्ध मे मुख्य विचारणीय विषय यह नही है कि स्वय भगवान अवतार लेने के लिये आते है अथवा किसी उपयुक्त जीवात्मा मे अपनी विशेष शक्ति का संयोग करके उसके द्वारा 'भूतल का भार हलका करने' का उद्देश्य पूरा कराते है? वरन् मुख्य बात यह है कि अवतार का जो स्वरूप पुराने रूढिवादी मानते हैं वह ठीक है अथवा उसका तर्क और बुद्धि सगत रूप जो उस महान उद्देश्य के अनुकूल जान पडे उसे स्वीकार किया जाय। उपर्युक्त लेख मे अवतार के वास्तविक उद्देश्यो पर विचार करके अन्त मे अवतार सम्बन्धी विचार धारा के दो पक्षो को अलग-अलग उपस्थित किया है और पाठको से प्रश्न किया है कि आप इन दोनो मे से किसको अधिक उपयुक्त और हितकारी समझते है—

[प्रथम पक्ष]

(१) एक अवतारी विशेष आत्मा राम,कृष्ण, बुद्ध आदि की तरह प्रकट होता है। वही अपने पौरुष से पृथ्वी का भार हल्का कर देता है।

(१) अवतारी मे इतनी सामर्थ्य होती है कि अपने आप जो चाहे कर सकता है।

(३) ईश्वर एक शक्ति को अवतार बना कर भेज देता है। उसमे ऐसी योग्यता और शक्ति होती है कि वह अनायास अपने अनुयायी उत्पन्न कर लेता है।

(४) अवतारी के काम अत्यन्त विचित्र और चमत्कार तथा जादू की तरह होते हैं।

(५) अवतार बुरे व्यक्तियो का वध करने आता है। दुष्टो का सहार ही उसका उद्देश होता है।

(६) अवतार की शरण मे जाने से सारे पाप छूट जाते है और अनायास स्वर्ग मिल जाता है।

(७) अवतार अमुक देश मे, अमुक जाति मे और अमुक काल मे ही होते है।

(८) अवतार सर्वथा स्वतत्र होते है। वे उचित-अनुचित सभी काम कर सकते हैं।

(९) अवतारो के दर्शन, कीर्तन, स्तवन, ध्यान से ही भक्तो का उद्धार हो जाता है।

अब इन नौ बातो का मुकाबला दूसरे पक्ष की नौ बातो से नम्बर-वार करिये।

दूसरा पक्ष

(१) समय की दूषित प्रवृत्तियो को बदलने के लिये एक भावना उत्पन्न होती है, जिससे प्रेरित होकर एक, दो या अधिक व्यक्ति उस समय की आवश्यकता को पूरा करने के लिये संलग्न होते हैं। तब 'अवतार' का उद्देश्य पूरा होता है।

(२) उच्च भावना से प्रेरित होकर अनेक 'अवतारी' व्यक्ति मिलकर किसी महान उद्देश्य की पूर्ति करते हैं।

(३) सबसे पहले कार्यारम्भ करने वाले या विशेष योग्यता वाले की पूजा होती है। पर वास्तव मे उस भावना मे प्रेरित होकर सद्धर्म का प्रसार करने वाले सभी व्यक्ति 'अवतार' ही होते है।

(४)असाधारण शीघ्रता पूर्वक जो परिवर्तन होते है, वे जादू की तरह प्रतीत होते है। अवतार नवीन व्यवस्था बनाने आते है, बाजीगर का खेल करने नही आते ।

(५) अवतार बुराइयो को हटाने आता है। वह पाप पूर्ण विचारो को नष्ट कर देता है। यह आवश्यक नही कि वह शरीरो का वध ही करे। गम और बुद्ध दोनो के उदाहरण आवश्यकतानुमार उचित हैं।

(६) अवतार के उदार और आदर्श विचारो का अनुसरण करने से तत्काल ससार की बहुत बडी सेवा होती है। पुण्य-पर्व पर तीर्थ स्नान के समान उसका महान फल होता है।

(७) अवतार किसी प्रतिबध मे बँधे नही होते। अधर्म और अविवेक जहाँ और जब भी बढता है तभी उसको दूर करने के लिये 'अवतार' ईश्वरीय शक्ति के रूप मे प्रकट होते है।

(८) अवतार वर्तमान समय मे प्रचलित कुप्रथाओ को तोडने के लिये कोई असाधारण काम कर सकते हैं। पर वे मनुष्यता की मर्यादा को तोडने वाला कोई कार्य, जिसे उद्धतता कहा जा सके कभी नहीं करते।

(९) अवतार के आदर्श और उपदेशो के अनुसार आचरण किये बिना किसी का कुछ लाभ नही हो सकता।

× × ×

इन दोनों प्रकार की अवतार सम्बन्धी धारणाओ मे से रूढिवादी धारणा अब असामयिक हो गई है। सभव है अब से सैकड़ो वर्ष पूर्व जब जन समुदाय मे शिक्षा का प्रचार नही हुआ था, लोग ऐसी चमत्कारी बातो से ही अधिक प्रभावित होते थे और इसलिये उस समय के

धर्म प्रचारक अपने उपदेशो और धार्मिक कथा—कीर्तन आदि मे वैसा ही पुट देते थे। पर इस समय विज्ञान—युग के मनुष्य पर उन अलकार और अतिशयोक्ति पूर्ण बातो के विपरीत हो प्रभाव पडता है । आज जब मनुष्य चन्द्रमा के धरातल पर पहुँच कर उसकी मिट्टी और अन्य पदार्थों की जाँच कर रहा है, उसे केवल एक देवता मानना तथा उसके सम्बन्ध मे तरह-तरह की रोचक कहानियाँ सुनाना कहाँ तक प्रभाव शाली हो सकता है ? यद्यपि भगवान आज भी वही है जो आज से पाँच—दस हजार वर्ष पहले श्रीकृष्ण और श्री रामचन्द्र के जमाने मे था, पर वह आज जिस 'अवतार' को भेजेगा, या जिसमे उसकी 'युग-परिवर्तनकारी' शक्ति का प्रवेश होगा वह आजकल की परिस्थितियो के अनुकूल ही होगा। उसके लिये यह कल्पना करना कि वह वन मे गाय चरायेगा या वानर—भालुओ की सेना बनावेगा, भोलापन ही है।

आज कला का 'अवतार' भी जेट विमान पर एक हजार मील प्रति घण्टा की चाले से यात्रा करने वाला और रेडियो तथा टेलीविजन द्वारा समस्त संसार मे अपना सदेश फैलाने वाला होगा । इस लिये पुराने और नये अवतारों मे शक्ल—सूरत, पहिनाव—उढ़ाव, खान—पान, बोल-चाल की समानता ढूँढना निरर्थक है। वरन् उन दोनो मे जो एकता होगी वह आध्यात्मिक भावों की होगी। वह भी वर्तमान भौतिकतावाद मे भूले हुये संसार को भगवान कृष्ण की भाँति 'गीता' का उपदेश देगा कि—"

यह बाह्य रूप—रग और आकृतियाँ वास्तविक और महत्त्वपूर्ण नहीं हैं वरन् सत्य वह है जो इनके अन्तर में प्रतिष्ठित है । सासारिक सुख—सुविधाओ और पाशविक श्रम के स्थान पर सर्वोपयोगी यन्त्रो का प्रयोग करना बुरा नही है, पर भौतिकता की माया मे पड कर आत्मा और उसके कल्याण को भूल जाना बहुत बडी गलती है । क्योंकि वास्तविक सुख और प्रसन्नता भौतिक पदार्थों और यंत्रों में नही है चाहे वे कैसे भी सुन्दर और आकर्षक हो, वरन् इसका आधार मनुष्य के मन और आत्मा में है। यदि वह शुद्ध, पवित्र और संतुष्ट होगी तो सब छोटे और बड़े

पदार्थों में आनन्द आयेगा, और यदि वह कलुषित हो गई तो 'सर्च लाइट' के प्रकाश मे भी अन्धकार ही जान पड़ेगा। इसलिये भौतिकता और आध्यात्मिकता का समन्वय करके आत्म–कल्याण के मार्ग पर चलो। आज आध्यात्मिकता को –भगवान को भूल जाने से ही मनुष्य अपनी शक्ति का दुरुपयोग करके सर्वनाश की तरफ अग्रसर हो रहा है। इस लिये आत्मा को पहिचानो और समस्त सासारिक वैभव को अपनी नही वरन् परत्मात्मा की देन—धरोहर समझ कर इसका न्यायानुकूल व्यवहार करो। जिस क्षण से ऐसा करने लगोगे उसी क्षण से इस पृथ्वी पर ही स्वर्ग दिखाई पडने लगेगा।

नई सभ्यता का आविर्भाव–

जो लोग आँखें खोलकर संसार की दशा का निरीक्षण करते रहते हैं और उसकी हलचल पूर्ण स्थिति के वास्तविक कारणो पर विचार किया करते है, उनसे यह बात छिपी नही है कि इन दिनों सर्वत्र जो घोर अशान्ति और उथल–पुथल दिखाई पड रही है, उसका मूल कारण यही है कि अब ससार मे एक नई सभ्यता, नवीन समाज और नये मनुष्य का आविर्भाव होने को है। इस समय दुनिया की हालत एक नये शिशु के जन्म लेने के समान हो रही है। यद्यपि माता–पिता की दृष्टि मे यह समय बड़े सौभाग्य और प्रसन्नता का होता है, पर जब तक प्रसव क्रिया पूरी नही हो जाती तब तक चारो तरफ हलचल, अनिश्चित और सकट का–सा वातावरण बना रहता है। अनेक बार माता की सुरक्षा सन्देह मे पड जाती है और उसे अपार कष्ट सहन करना पड़ता है। जब यह स्थिति पार हो जाती है और लोग नये शिशु के सुन्दर और पवित्र मुख को देख लेते है तो वातावरण एकदम बदल जाता है और चारो तरफ़ आनन्द के मगल गीत और वाद्य सुनाई पड़ने लगते है।

ठीक यही हालत आज दुनिया की हो रही है। गत सौ–पचास वर्षों के भीतर ससार में ज्ञान–विज्ञान और साथ ही उद्योग-धन्धों ने इतनी तरक्की की है कि एक नई दुनिया और नई सभ्यता का निर्माण किया

जा सकना सभव हो गया है। पैदावार और कारखानो मे उपयोगी सामग्री बनाने के क्षेत्र मे इतनी प्रगति हो चुकी है कि यदि बुद्धिमत्ता और न्याय के साथ उसका सचालन और व्यवस्था की जाय तो ससार के प्रत्येक मनुष्य को भरपूर भोजन—वस्त्र और अन्य सुख—सामग्री सहज मे प्राप्त हो सकती है। पर ससार के अधिकाश देश इस प्रगति और वृद्धि का उपयोग सही ढगसे न करके एक मात्र स्वार्थपरता की निगाह से करना चाहते है। ऐसे उदाहरण मिले है जब कि अमरीका मे अन्न की अधिक पैदावार होने के कारण लाखो मन गेहू तथा अन्य खाद्य सामग्री जान बूझकर जला दी गई, नष्ट कर दी गई और उसी समय पास के दूसरे देश मे लोग अन्नाभाव से भूखो मरते रहे। व्यापार के क्षेत्र मे प्रतिस्पर्धा होने के कारण अनेक युद्ध हो चुके है और सीमा सम्बन्धी विवादो के कारण आज भी भयकर सघर्ष हो रहे है।

संसार के एकीकरण की सभावनाएँ—

आध्यात्मिक दृष्टिकोण से ही ससार का एकीकरण आवश्यक और सभव नही जान पडता, वरन् एतिहासज्ञ और दार्शनिक क्षेत्र के प्रमुख विचारको का यही मत है कि अब जगत मे जो परिस्थितियाँ उपलब्ध हैं उनको देखते हुये सब देशो और जातियो का सहयोग और प्रेम के सूत्र मे बँधकर रहना सर्वथा सभव और लाभदायक है। इसका विवेचन करते हुये माननीय श्री राधाकृष्णन ने कहा था—

हमारे सामाजिक जीवन की एक मात्र व्याधि का मुख्य कारण हमारी सामाजिक संस्थाओ और विश्व के उद्देश्य बीच मे उत्पन्न हो गया भेद ही है। प्रकृति ने अनेक जातियाँ बनाई हैं जिनकी भाषाएँ धर्म और सामाजिक परम्पराएँ भिन्न हैं और उसने मनुष्य को यह काम सोपा है कि वह मानव-जगत में व्यवस्था उत्पन्न करे और जीवन का ऐसा रास्ता खोजनिकाले, जिससे विभिन्न समूह बिना लडे—झगडे शान्ति-पूर्वक रह सके। यह ससार युद्धप्रिय राष्ट्रो का युद्ध—क्षेत्र होने के लिये नहीं रचा गया है; वरन् एक ऐसा राष्ट्र-मडल बनने के लिये रचा गया है, जिसमे

विभिन्न समूह सबके लिये गौरव, अच्छा जीवन और समृद्धि प्राप्त करने के लिए परस्पर सहयोग कर रहे हो।

"ससार के एकीकरण के लिये आवश्यक दशाएं अब विद्यमान है। केवल मनुष्य की इच्छा—सद्‌भावना का अभाव है। ससार के विभाजन के बडे-बडे कारण—महासागर और पर्वत अब प्रभावहीन हो गये है। परिवहन और सचरण की इस समय उपलब्ध सुविधाओ के कारण यह ससार एक छोटा-सा पडोस बन गया है। धार्मिक और सामाजिक प्रथाओ के विपरीत, जो कि प्राय: एक दूसरे से पृथक और स्थानीय ढग की होती है, विज्ञान राजनीतिक या सामाजिक सीमाओ को नही मानता और वह ऐसी भाषा मे बात करता है जिसे सब समझते है।

"औद्योगिक क्रान्ति ने ससार के आर्थिक सम्बन्धो को इतना अधिक बदल दिया है कि अब हम एक विश्व-समाज बन गये है जिसकी अपनी विश्व अर्थ-व्यवस्था है और जिसकी माँग है कि एक विश्व-राजनैतिक-व्यवस्था कायम की जाय। विज्ञान ने मानव-जीवन का आधार एक ही ब्रह्माण्ड-तत्त्वो को बतलाया है। दर्शन मे भी यह कल्पना की गई है कि प्रकृति और मानवता के पीछे एक सर्वव्यापी चेतना है। धर्म भी हम सबके लिये एक सम्मिलित आध्यात्मिक आदर्श और लक्ष्य की ओर सकेत करता है।"

इस प्रकार धार्मिक वैज्ञानिक और दार्शनिक क्षेत्र के प्रमुख विचारको मे लक्ष्य की एकता होने से एक विश्वव्यापी-सगठन बनना बहुत सभव है। अब एकमात्र बाधा राजनीतिज्ञो की है, जो लोगो की भिन्न राष्ट्रीयता और जातीयता की भावनाओ का उद्दीपन करके मानव प्रगति की मुख्य धारा को स्वाभाविक मार्ग से मोड कर सकीर्ण मार्गों की ओर प्रवाहित करते रहते हैं। आज प्रजातन्त्रवादी, नाजी, फासिस्ट, कम्यूनिस्ट कोई भी क्यो न हो सबमे किसी न किसी रूप मे यह सकीर्ण राष्ट्रीयता की मनोवृत्ति पाई जाती है और यही विश्व एकता के मार्ग

मे सब से बड़ा रोड़ा है। सभव है इसका अन्त एक आगामी विश्व युद्ध द्वारा ही हो जिसमे जाति और मानव सभ्यता का अभूतपूर्व नाश हो ।

पर इसमे भी घबडाने की कोई बात नही । भगवान के ढग निराले ही होते है। लोग कहते है कि भगवान कृष्ण ने महाभारत रचा कर भीष्म, द्रोण, कर्ण, अभिमन्यु जैसे अनगिनती वीरो को कटवा दिया और हजारो गुणी, विद्वान्, कलाविद् व्यक्तियो का अन्त करा दिया इसी से भारतवर्ष को पतन का मुख देखना पडा। पर वे नही जानते कि जब भगवान कृष्ण ने देख लिया कि ये सैनिकतावादी और राज्य के भूखे लोग जब तक कायम रहेगे तब तक जनता सुख से नही रह सकती। ये लोग अपनी सैनिक तैयारी और युद्धो के लिये जनता को चूसते ही रहेगे, तो उन्होने सामाजिक प्रगति के लिये यही हितकर समझा कि इन अहकारी और दुराग्रही राजनायको का अन्त हो जाय।

ठीक ऐसी ही दशा आजकल हो रही है। आज वैज्ञानिक प्रगति की बदौलत उत्पादन के साधन नित्य प्रति बढ़ते जाते है, पर सैनिक व्यय के कारण जनता को अभावग्रस्तता का ही जीवन बिताना पड रहा है। यह स्थिति तब तक नही बदल सकती जब तक राजी से या विवशता से इन सैनिकता के उन्मादियो का अन्त नही हो जायगा। यही विचार करके एक विचारक ने कहा है-"सभव है कि भावी कुरुक्षेत्र ही धर्मक्षेत्र बन जाय।" और 'कल्कि उपाख्यान का मनन करके हम कह सकते हैं कि यही सभावना अधिकाश मे सत्य सिद्ध होगी।

पूँजीवाद और सायम्यवाद का सघर्ष

जसा हम कह चुके हैं इस समय ससार की समस्या इतनी अधिक उलझ गई है कि अब उसकी गति रुद्ध हो जाना ही निश्चय है। सब से बढकर पूँजीवाद (कैपीटलिज्म) और साम्यवाद (कम्यूनिज्म) का सघर्ष दुनिया को दो समान शक्तिशाली दलो मे विभक्त करके एक सब से बड़ी क्रान्ति की सभावना उत्पन्न कर रहा है। यद्यपि पूँजीवाद अभी तक ससार का प्रधान सचालक रहा है और अब भी दुनिया के सब से प्रसिद्ध देश—अमरीका इगलैण्ड, फ्रास आदि मे उसी की सत्ता

मानी जा रही है, तो भी अब वह घटती पर है और साम्यवाद वृद्धि की ओर अग्रसर हो रहा है। एक लेखक के मतानुसार "साम्यवाद एक नव जीवन सम्पन्न शक्ति है जबकि पूँजीवाद दिन पर दिन क्षीण होकर समाप्त होने वाली शक्ति है। साम्यवाद आक्रमण करने वाला है, पूँजीवाद आत्मरक्षा के लिये प्रयत्नशील है। साम्यवाद के सामने पूरा करने के लिये एक लक्ष्य (मिशन) है, पर पूँजीवाद के सामने कोई विशेष लक्ष्य नही है। इस समय पूँजीवाद के लिये इतना ही कर्तव्य शेष रह गया है कि वह साम्यवाद (कम्यूनिज्म) को हिंसक और उन्मत्त हो जाने से तब तक रोकता रहे जब तक कि परमात्मा मे विश्व-पिता और मनुष्य मात्र मे भ्रातृत्व की भावना रखने वाला 'नया साम्यवाद' ससार के सम्मुख न आजाय।"

जिस अवतार की अनेक लोग चर्चा कर रहे है उसका सब से बडा काम यही होगा कि वह कैपिटलिज्म (पूँजीवाद) और कम्यूनिज्म (साम्यवाद) मे समन्वय करके ससार के लिये एक आदर्श सामाजिक-प्रणाली की स्थापना करें। न तो 'पूँजीवाद' को सर्वथा बुरा बतलाया जा सकता है और न 'साम्यवाद' को पूर्ण रूप से निर्दोष कहा जा सकता है। ये दोनो ही अपने युग की आवश्यकतानुसार ठीक थे। पूँजीवाद का मुख्य दोष यही है कि वर्तमान समय मे जब परिस्थितियो के बदल जाने से उसकी उपयोगिता समाप्त होचुकी है, तब भी वह संसार का स्वामी और कर्ता धर्ता बना रहना चाहता है। कम्यूनिज्म की सब से बड़ी त्रुटि यह है कि वह मनुष्य के अन्तर से उत्पन्न नही हुआ है वरन् ऊपर से जबर्दस्ती लादा जा रहा है और उसने मनुष्य के आध्यात्मिक-पक्ष की बिल्कुल उपेक्षा कर दी है।

अब अपनी इन त्रुटियो को दोनो पक्ष (पूँजीवादी और साम्यवादी) समझ भी चुके है, पर प्रत्येक अपनी सत्ता और प्रमुखता को सिद्ध करने के लिए हठधर्मी कर रहे है और मानव जाति के लिये कल्याणकारी मार्ग की उपेक्षा कर रहे हैं। अवतारी-सत्ता अपनी विराट आत्मशक्ति के प्रभाव से इस तथ्य को इस प्रकार और ऐसे रूप मे दोनो को समझा

देगा कि उनकी बुद्धि 'शुद्ध' हो जायगी और वे नाश के मार्ग को त्याग कर निर्माण के मार्ग पर चल पडेगे । चाहे आज के भौतिकतावादी सघर्ष की कटुता और अनियन्त्रित उत्साह मे पड कर भगवान को भूल गये हो पर भगवान उनको नही भूल सकता । हम जानते है कि समस्त ससार और विशेष रूप मे आध्यात्मिक सस्कृति की गोद मे पली हुई भारतीय जनता 'ईश्वर रहित' साम्यवाद को स्वीकार नही कर सकती पर 'नया अवतार' उसको 'शुद्ध और पवित्र' बनाकर मनुष्य मात्र मे समता के साथ ही भ्रातृभाव की भी स्थापना करेगा और तब उसका प्रचारित नवीन सिद्धान्त 'आध्यात्मिक साम्यवाद' के रूप मे ससार का जीवन-दाता मार्ग बन जायगा ।

भगवान भावरूप मे अथवा प्रत्यक्ष रूप मे प्रकट होकर मानव-जाति का मार्ग-प्रदर्शन करके विषमता के स्थान पर समता, अन्याय के स्थान पर न्याय और अधर्म के स्थान पर धर्म की स्थापना करे यही इस समय मानव-अन्तरात्मा की प्रार्थना है ।

'कल्कि पुराण' का सार यही है । यह उसकी बहुत बडी विशेषता है कि अन्याय और असमानता के युग मे उसने एक 'कथा' के रूप मे 'सत्य-धर्म' की स्थापना की कल्पना की और 'कल्कि' द्वारा उसे सभव बतला कर प्रचारित किया । इसमे तो सन्देह ही नही कि ऐसे विराट और विश्वव्यापी परिवर्तन सामान्य मानवीय शक्ति द्वारा सभव नही हो सकते । उसके लिये 'अतिमानवीय' या दैवी शक्ति की आवश्यकता होती है और वह 'परमात्म शक्ति' के अतिरिक्त अन्य कोई नही हो सकती ।

—सत्यभक्त

कल्किपुराण

प्रथम अंश

प्रथम-अध्याय

सेन्द्रा देवगणा मुनीश्वरजना लोका. सपाला. सदा ।
स्व स्व कर्म सुसिद्धये प्रतिदिन भकत्या भजन्त्युत्तमा. ।
त विघ्नेशमनन्तमच्युतमज सर्वज्ञसर्वाश्रय ।
वन्दे वैदिकतान्त्रिकादिविविधै शास्त्रैः पुरोवन्दितम्॥१॥
नारायण नमस्कृत्य नरञ्चैव नरोत्तमम् ।
देवी सरस्वतीञ्चैव ततो जयमुदीरयेत् ॥ २ ॥
यद्दोर्दण्डकरालसर्पकवलज्वालाज्वलद्विग्रहाः
नेतु. सत्करवालदण्डदलिता भूपा.क्षितिक्षोभकाः ।
शश्वत् सैन्धववाहनो द्विजजनि कल्कि परात्मा हरिः
पायात्सत्ययुगादिकृत्स भगवान्धर्मप्रवृत्तिप्रियः ॥ ३ ॥
इति सूतवचः श्रुत्वा नैमिषारण्यवासिन ।
शौनकाद्या महाभागा पप्रच्छुस्त कथामिमाम् ॥ ४ ॥
हे सूत! सर्वधर्मज्ञ ! लोमहर्षणपुत्रक ! ।
त्रिकालज्ञ ! पुराणज्ञ ! वद भागवती कथाम् ॥ ५ ॥
क कलिः ? कुत्र वा जातो जगतामीश्वर प्रभुः ।
कथ वा नित्य धर्म्मस्य विनाश कलिना कृतः ? ॥ ६ ॥
इति तेषा वचः श्रुत्वा सूतो ध्यात्वा हरिः प्रभुम् ।
सहर्षपुलकोद्भिन्न सर्वाङ्गः प्राह तान्मुनीन् ॥ ७ ॥

प्राचीन काल मे वैदिक तान्त्रिक आदि विविध शास्त्रो के द्वारा आराधित इन्द्र सहित देवता, मुनीश्वर और लोकपालो द्वारा स्वकार्य-सिद्धि के लिए भक्तिपूर्वक सतत उपासित, विघ्नेश, अनन्य, अच्युत, अजन्मा, सर्वज्ञ एव सर्वाश्रय स्वरूप भगवान् विष्णु का वन्दन करता हूँ ॥१॥ नर, नारायण कहे जाने वाले नरोत्तम को एव भगवती सरस्वती को नमस्कार करके उनकी जय बोलता हूँ ॥२॥

जिनके भयकर भुज भुजग के विष ज्वाल मे पडकर अपने घोर अत्याचारो से भूमडल की शान्ति भग करने वाले राजागण भस्म हो जायगे और जिनके भयकर खड्ग की तीक्ष्ण धार से राजाओ के देह मर्दित होगे, वे ब्राह्मण वश मे उत्पन्न होकर, युग-युग मे अवतार धारण करने वाले भगवान् श्री हरि कल्कि रूप मे रक्षा करे ॥३॥

सूतजी के यह वचन सुन कर नैमिषारण्य निवासी शौनकादि महाभागो मे उनसे पूछा ॥४॥ हे सूतजी ! हे सर्व धर्मों के ज्ञाता, हे लोमहर्षण-पुत्र ? हे त्रिकालज्ञ ? हे पुराणो के भली प्रकार जानने वाले ? अब आप भगवान् की कथा को विरतृत रूप से कहिये ॥५॥ कलि कौन है ? वह कहाँ उत्पन्न हुआ ? वह किस प्रकार पृथिवी का अधीश्वर बन गया ? तथा उसने नित्यधर्म को किस प्रकार विनष्ट कर दिया ? यह सब हमारे प्रति कहिये ॥६॥ महर्षियो के यह वचन सुनकर सूतजी ने भगवान् श्री हरि का ध्यान किया और फिर पुलकित अग होकर कहने लगे ॥७॥

शृणुध्वमिदमाख्यान भविष्य परमाद्भुतम ।
कथि ब्रह्मणा पूर्व नारदाय विपृच्छते ॥ ८ ॥
नारद प्राह मुनये व्यासायामिततेजसे ।
सव्यासो निजपुत्राय ब्रह्मराताय धीमते ॥ ९ ॥
स चाभिमन्युपुत्राय विष्णुराताय ससदि ।

प्राह भागवतान्धर्मानिष्टादशसहस्रकान ।। १० ।।
तदा नृपे लय प्राप्ते सप्ताहे प्रश्नशेषितम् ।
मार्कण्डेयादिभि. पृष्टः प्राह पुण्याश्रमे शुक ।। ११ ।।
तत्राह तदनुज्ञात. श्रुतवानस्मि या कथा ।
भविष्या. कथयामीह पुण्या भागवती. शुभा ।। १२ ।।

सूतजी बोले—हे मुनीश्वरो ! प्राचीन समय की बात है—इस परम अद्भुत उपाख्यान कोपूछने पर ब्रह्माजी ने नारदजी से जो कहा था, वही मे आपके प्रति कहता हूँ ।।८।। फिर नारद जी ने इसका वर्णन व्यासजी से किया, जिसे व्यासजी ने अपने मेधावी पुत्र ब्रह्मरात को सुनाया ।।९।। ब्रह्मरात ने उसे अभिमन्यु-पुत्र विष्णुरात के प्रति अट्ठारहं सहस्र श्लोको मे सभा मडप के मध्य मे सुनाया ।।१०।। उस समय प्रश्न होते-होते राजा विष्णुरात ने एक सप्ताह मे शेष प्रश्नो को पूर्ण कर लिया और लय को प्राप्त हो गये । उसी कथा के शेष अ श अर्थात् सक्षिप्त रूप को शुकदेवजी ने मार्कण्डेय प्रभृति मुनियो के प्रश्न करने पर कहा ।।११।। भगवान् श्री शुकदेवजी द्वारा वर्णित उसी सक्षिप्त पुण्यमय, भागवत उपाख्यान को, जो भविष्य मे घटित होने वाला है, आपसे कहता हूँ ।।१२।।

ता: शृणुध्वमहाभागा समाहित धियोऽनिशम् ।
गते कृष्णे स्वनिलय प्रादुर्भूतो यथा कलि ।। १३ ।।
प्रलयान्ते जगत्स्रष्टा ब्रह्मा लोकपितामह ।
ससर्ज घोर मलिन पृष्ठदेशात स्वपातकम् ।।१४।।
स चाधर्म इति ख्यातस्तस्य वंशानुकीर्त्तनात ।
श्रवणात्स्मरणाल्लोक सर्वपापै प्रमुच्यते ।। १५ ।।
अधर्मस्य प्रियारम्या मिथ्या मार्जारलोचना ।
तस्य पुत्रोऽतितेजस्वी दम्भ. परमकोपनः ।। १६ ।।

स मायाया भगिन्यान्तु लोभः पुत्रश्च कन्यकाम् ।
निकृति जनयामास तयो क्रोध सुतोऽभवत् ॥ १७ ॥

भगवान् श्रीकृष्ण के अपने लोक को पधारने के पश्चात् जिस प्रकार कलि की उत्पत्ति हुई, उस सब को कहता हूँ, आप लोग समाहित चित्त सुने ॥१३॥ जब प्रलयकाल व्यतीत हो गया तब ससार-स्रष्टा, लोक पितामह ब्रह्माजी ने अपनी पीठ से घोर मलीन पातक को उत्पन्न किया ॥१४॥ उसी पातक का नाम अधर्म हुआ, उस अधर्म के वश का श्रवण, स्मरण एव रहस्य जानने से प्राणीमात्र सब पापो से मुक्त हो सकते है ॥१५॥ उस अधर्म की पत्नी बिल्ली जैसे नेत्र वाली, अत्यन्त रम्या हुई, जिसका नाम मिथ्या हुआ । फिर अधर्म के सयोग से अति तेजस्वी, महाक्रोधी एक पुत्र हुआ, जिसका नाम दभ था ॥१६॥ अधर्म और मिथ्या ने माया नाम की एक कन्या भी उत्पन्न की । दंभ और माया के सयोग से लोभ नामक पुत्र और निकृति नाम की कन्या हुई । लोभ और निकृति के सयोग से क्रोध नामक पुत्र हुआ ॥१७॥

सहिंसाया भगिन्यान्तु जनयामास त कलिम् ।
वामहस्त धृतोपस्थ तैलाभ्यक्ताञ्जनप्रभम् ॥ १८ ॥
काकोदर करालास्यं लोलजिह्वं भयानकम् ।
पूतिगन्ध द्यूतमद्यस्त्री सुवर्णकृताश्रयम् ॥ १९ ॥
भगिन्यान्तु दुरुक्त्या स भय पुत्रश्च कन्यकाम् ।
मृत्यु स जनयामास तयोश्च निरयोऽभवत् ॥ २० ॥
यातनाया भगिन्यान्तु लेभे पुत्रायुतायुतम् ।
इत्थ कलिकुले जाता बहवो धर्मनिन्दका ॥ २१ ॥
यज्ञाध्ययनदानादिवेदतन्त्रविनाशका ।
आधिव्याधिजराग्लानिदुःखशोकभयाश्रया. ॥ २२ ॥

क्रोध की सयोनि हिंसा हुई । उन दोनो के सयोग से ससार को नष्ट वाले कलि की उत्पत्ति हुई । इस वाम कर मे उपस्थ धारण करने वाले कलि की देह कान्ति काजल के समान काली हुई ॥१८॥ काकोदर, कराल, चचल जिह्वा वाले, भयानक दुर्गन्ध युक्त शरीरधारी इस कलि

ने द्यूत, मद्य, स्त्री और स्वर्ण मे निवास किया ॥१६॥ कलि की सगर्भा दुरुक्ति हुई। उन दोनो ने भयानक नामक पुत्र और मृत्यु नाम की कन्या उत्पन्न की। मृत्यु ने उसके द्वारा निरय नामक पुत्र को उत्पन्न किया ॥२०॥ निरय की सगर्भा यातना हुई। इन दोनो के सयोग से हजारो पुत्र उत्पन्न हुए। इस प्रकार कलि के कुल मे बहुतेरे धर्म-निन्दको की प्रवतारणा हुई ॥२१॥ यह सभी आधि व्याधि बुढापा, ग्लानि दु ख शोक और भय के आश्रय को प्राप्त होकर यज्ञ, अध्ययन, दानादि एव वैदिक तथा तात्रिक कर्मो का नाश करने वाले हुए ॥२२॥

कलिराजानुगाश्चेरुर्यूथशो लोकनाशका- ।
बभूवुः कालविभ्रष्टा- क्षणिका; कामुका नराः ॥ २३ ॥
दम्भाचारदुराचारास्तातमातृविहिसका- ।
वेदहीना द्विजा दीनाः शूद्रसेवापरा- सदा ॥ २४ ॥
कुतर्कवादबहुला धर्मविक्रयिणोऽधमा- ।
वेदविक्रयिणो व्रात्या रसविक्रयिणस्तथा- ॥ २५ ॥
मासविक्रयिण- क्रूरा- शिश्नोदरपरायणा- ।
परदाररता मत्ता वर्णसङ्करकारका- ॥ २६ ॥
ह्रस्वाकारा- पापसारा- शठा मठनिवासिनः ।
षोडशाब्दायुषः श्यालबान्धवा नीचसङ्गमा ॥ २७ ॥

लोकाचरण का नाश करने वाले, कलिराज के अनुचर यूथों ने चंचल, क्षण-भगुर और कामुक मनुष्य-देह धारण किये ॥२३॥ यह घोर दम्भी, दुराचारी, मातृ-पितृ-हिसक अनुचरगण ब्राह्मण कुल मे जन्म लेकर भी वेद-विहीन, दरिद्री और शूद्रो के सेवा-परायण हुए ॥२४॥ कुतर्कवाद की बहुलता से युक्त, धर्म, वेद, रस, माँस आदि के विक्रय मे तत्पर, सस्कार-विहीन, शिश्नोदर-परायण, परदार-परायण, उन्मत्त एव वर्णशकर सन्तानो के उत्पन्न करनेवाले हुए ॥२५-२६॥ यह नाटे आकार के, पापी, शठ, मठो मे निवास करने वाले, सोलह वर्ष की परम आयु वाले, यह कलि के सेवकगण साले को भाई के समान

मानने वाले और नीचो की सगति करने वाले हुए ॥२७॥

विवादकलहक्षुब्धा केशवेशविभूषणा ।
कलौ कुलीना धनिनः पूज्या वार्द्धुषिका द्विजाः ॥ २८ ॥
सन्यासिनो गृहासक्ता गृहस्थास्त्वविवेकिन ।
गुरुनिन्दापरा धर्मध्वजिन साधुवञ्चकाः ॥ २९ ॥
प्रतिग्रहरता शूद्रा परस्वहरणादरः ।
द्वयो स्वीकारमुद्वाह शठे मैत्री बदान्यता ॥ ३० ॥
प्रतिदाने क्षमाशक्तौ विरक्तिकरणाक्षमे ।
वाचालत्वञ्च पाण्डित्ये यशोऽर्थे धर्मसेवनम् ॥ ३१ ॥
धनाढ्यत्वञ्च साधुत्वे दूरे नीरे च तीर्थता ।
सूत्रमात्रेण विप्रत्व दण्डमात्रेण मस्करी ॥ ३२ ॥

विवाद-कलह से क्षुब्ध रहने वाले, केश विन्यास में आसक्त, धनवान, ब्याज से जीविका चलाने वाले एवं कुलीन कहलाने वाले यह ब्राह्मण ही कलिकाल मे पूजनीय हुए ॥२८॥ सन्यासी गृहस्थ-धर्म परायण हो गए, गृहस्थो मे विवेचन शक्ति का अभाव होगया, शिष्य गुरु निन्दक और धर्मध्वजी साधु वचक होगए ॥२९॥ शूद्र दान लेने और पर-सम्पत्ति के हरण करने वाले हुए, स्त्री-पुरुष की सहमति ही विवाह हुआ, मित्र शठ हुए, प्रतिदान ही दानशीलता होगया, न्यायाधीश दण्ड देने मे असमर्थ होकर क्षमाशील होगए, दुर्बल के प्रति उदासीनता होने लगी, अधिक बोलने वाले ही पडित कहे जाने लगे तथा यश की कामना से ही लोग धर्म का सेवन करने लगे ॥३०-३१॥ धनवान ही साधु पुरुष माने जाने लगे, दूर का लाया हुआ जल ही तीर्थ का जल होगया, यज्ञोपवीत मे ही ब्राह्मणत्व निहित होगया और दण्ड धारण सन्यासी का लक्षण रह गया ॥३२॥

अल्पशस्या वसुमती नदीतीरेऽवरोपिता ।
स्त्रियो वेश्यालापसुखा स्वपुंसा त्यक्तमानसा ॥ ३३ ॥
परान्नलोलुपा विप्राश्चण्डालगृहयाजका ।

स्त्रियो वैधव्यहीनाश्च स्वच्छन्दाचरणप्रिया. ॥ ३४ ॥
चित्रवृष्टिकरा मेघा मन्दशस्या च मेदिनी ।
प्रजाभक्षा नृपा लोका. करपीडाप्रपीडिताः ॥ ३५ ॥
स्कन्धे भार करे पुत्रं कृत्वा क्षुब्धाः प्रजाजन ।
गिरिदुर्ग वन घोरमाश्रयिष्यन्ति दुर्भगा. ॥ ३६ ॥
मधुमासैर्मूलफलैराहारै प्राण धारिण ।
एव तु प्रथमे पादे कले कृष्णविनिन्दका ॥ ३७ ॥

पृथिवी अल्पशस्या होगयी, नदियाँ अन्यान्य स्थानो मे बहने वाली हुईं, नारियाँ वेश्यालय मे सुख मानने लगीं और भार्याओं का पति मे अनुराग नही रहा ॥३३॥ पराये अन्न की कामना वाले ब्राह्मण शूद्रो के यहाँ यजन करने लगे, विधवाओ ने वैधव्य का आचरण त्याग दिया और स्वच्छन्द आचरणवाली होगई ॥३४॥ मेघ,खण्ड-वृष्टि वाले हुए, पृथिवी मन्दशस्या हुई, राजागण प्रजा-भक्षक होगये, जिससे प्रजा करों के भार से उत्पीडित हो उठी ॥ ३५ ॥ अत्यन्त क्षुब्ध हुए प्रजाजन कन्धो पर बोझऔर हाथ में पुत्र लेकर दुर्गम पर्वत और घोर वनो में जाकर आश्रय खोजने लगे ॥ ३६ ॥ मधु,मास मूल और फल का भोजन ही प्राण धारण का सहारा बन गया । कलि के प्रथम पाद मे ही मनुष्यगण श्री कृष्ण-निन्दक हो गये ॥ ३७ ॥

द्वितीये तन्नामहीनास्तृतीये वर्णसङ्कर. ।
एकवर्णश्चतुर्थे च विस्मृत.च्युतसत्क्रियाः ॥ ३८ ॥
निःस्वाध्या-स्वधा-स्वाहा-वौषडोंकार-वर्जिता. ।
देवा सर्वे निराहारा. ब्रह्माण शरण ययु ॥ ३९ ॥
धरित्रीमग्रत कृत्वा क्षीणां दीनां मनस्विनीम् ।
ददृशुर्ब्रह्मणो लोक वेदध्वनिनादितम् ॥ ४० ॥
यज्ञधूमै समाकीर्ण मुनिवर्य्यै निषेवितम् ।
सुवर्ण वेदिकामध्ये दक्षिणावर्त्त मुज्ज्वलम् ॥ ४१ ॥
वह्नि यूपाङ्कितोद्यान-वन-पुष्प-फलान्वितम् ।

सरोभि· सारसैर्हंसैराहूयन्त मिवातिथिम् ॥ ४२

कलि के द्वितीय पाद में लोग श्रीकृष्ण नाम को भी भूल गए, तीसरे पाद मे वर्ण सकर उत्पन्न हुए और चौथे पाद मे तो जाति-पाँति ही कुछ न रही, लोग सत्कर्म और ईश्वर को भी भूल गये ॥ ३८ ॥ स्वाध्याय, स्वधा, स्वाहा, वषट्कार और ओंकारादि का लोप हो गया जिससे सभी देवता आहार न मिलने के कारण पीडित होकर ब्रह्माजी की शरण मे गये ॥ ३९ ॥ सभी क्षीणता को प्राप्त हुए दीन देवगण चिन्तिता पृथिवी को आगे करके ब्रह्म-लोक को गये । वह लोक उन्हे वेद-ध्वनि से गूँजता हुआ दिखाई दिया ॥ ४० ॥ वहाँ यज्ञ का धुआ फैल रहा था, मुनिगण उपासना एव यज्ञ कर रहे थे, स्वर्ण-वेदी के मध्य दक्षिणाग्नि प्रज्वलित थी, उद्यान वन-पुष्पों और फलो से परिपूर्ण थे, सरोवर में सारस और हसो के मधुर स्वर ऐसे लग रहे थे, मानों अतिथियो का स्वागत कर रहे हों ॥ ४१-४२ ॥

वायु लोललताजालकुसुमालिकुलाकुलै· ।
प्रणताह्वान-सत्कार-मधुरालापवीक्षणै ॥ ४३ ॥
तद्ब्रह्मसदन देवा: सेश्वरा· क्लिन्नमानसा· ।
विविशुस्तदनुज्ञाता निजकार्य निवेदितुम् ॥ ४४ ॥
त्रिभुवनज·.कं सदासनस्थ सनक-सनन्दन-सनातनैश्चसिद्धै:
परिसेवित पादकमल ब्रह्माण देवता नेमु: ॥ ४५ ॥

चचल पवन लता-जालो को झकोर रहा था, अलि अवलि कलियों का रस-पान करते गूँज रहे थे, मानों यह सभी प्रणाम, आह्वान, सत्कार आदि के लिए मधुर वाणी का प्रयोग कर रहे हों ॥ ४३ ॥ अपने स्वामी इन्द्र के सहित खेद युक्त मन वाले सब देवता ब्रह्माजी की आज्ञा प्राप्त करके अपना दु:ख निवेदन करने के लिए ब्रह्म-सदन में प्रविष्ट हुए ॥ ४४ ॥ वहाँ जाकर सनक, सनन्दन और सनातन से अपने चरण-कमलो की सेवा कराते हुए एवं श्रेष्ठ आसन पर आसीन ब्रह्मा-जी को उन देवताओं ने नमस्कार किया ॥ ४५ ॥

द्वितीय अध्याय

उपविष्टास्ततो देवा ब्रह्मणो वचनात्पुरः ।
कलेर्दोषाद्धर्महानिं कथयामासुरादरात् ॥ १ ॥
देवानां तद्वचः श्रुत्वा ब्रह्मा तानाह दुःखितान् ।
प्रसादयित्वा तं विष्णुं साधयिष्याम्यभीप्सितम् ॥ २ ॥
इति देवैः परिवृतः गत्वा गोलोकवासिनम् ।
स्तुत्वा प्राह पुरो ब्रह्मा देवानां हृदयेप्सितम् ॥ ३ ॥

सूतजी बोले—हे मुनीश्वरो ! वहाँ जाकर वे सभी देवता ब्रह्माजी की आज्ञा से उनके समक्ष बैठ गये । फिर उन्होने कलि के दोषो से जो धर्म की हानि हुई थी, उसका सम्पूर्ण वृत्तान्त निवेदन किया ॥ १ ॥ दुःखित हृदय वाले देवताओं के वचन सुनकर ब्रह्माजी बोले—मैं भगवान् विष्णु की आराधना करके तुम्हारा सब मनोरथ सिद्ध करता हूँ ॥२॥ यह कर ब्रह्माजी ने देवताओं को साथ लिया और गोलोक निवासी भगवान् श्री हरि की सेवा में जा पहुँचे । वहाँ उन्होंने स्तुति की और फिर देवताओं की कामना निवेदन की ॥३॥

तच्छ्रुत्वा पुण्डरीकाक्षो ब्रह्माणमिदमब्रवीत् ॥
शम्भले विष्णुयशसो गृहे प्रादुर्भवाम्यहम् ।
सुमत्यामातरि विभो ! पत्नीयां त्वन्निदेशतः ॥ ४ ॥
चतुर्भिर्भ्रातृभिर्देव ! करिष्यामि कलिक्षयम् ।
भवन्तो वान्धवा देवाः स्वांशेनावतरिष्यथ ॥ ५ ॥
इयं मम प्रिया लक्ष्मीः सिंहले संभविष्यति ।
बृहद्रथस्य भूपस्य कौमुद्यां कमलेक्षणा ।
भार्यायां मम भार्येयं पद्मानाम्नी जनिष्यति ॥ ६ ॥

यात यूय भुव देवा स्वाशावतरणेरता ।
राजानौ मरुदेवापी स्थापयिष्याम्यह भुवि ।। ७ ।।

पुण्डरीकाक्ष भगवान् ने देवताओ की दु ख-गाथा सुनकर ब्रह्माजी से कहा— हे विभो ! मै शम्भल ग्राम मे विष्णुयश के यहाँ, उनकी पत्नी सुमति के गर्भ से उत्पन्न हूँगा ।।४।। हे ब्रह्मन् ! हम चारो भाई मिलकर उस कलि को नष्ट कर डालेगे । अब सभी देवताओ को भी अपने-अपने बाँधवो सहित पृथिवी पर अवतार लेना है ।।५।। मेरी प्रिया लक्ष्मी सिंहल द्वीप मे महाराज बृहद्रथ की रानी कौमुदी के गर्भ से उत्पन्न होगी, इसका नाम पद्मा होगा ।।६।। मरु और देवापि नामक दो राजाओ को भी पृथिवी पर उत्पन्न करूँगा । हे देवगण ! अब तुम भी शीघ्रही अपने-अपने अ श के सहित भूमडल पर अवतार धारण करो ।।७।।

पुन कृतयुग कृत्वा धर्मान्सस्थाप्य पूर्ववत् ।
कलिव्याल सनिरस्य प्रयास्ये स्वालय विभो ।। ८ ।।
इत्युदीरितमाकर्ण्य ब्रह्मा देवगणैर्वृ त ।
जगाम ब्रह्मसदन देवाश्च त्रिदिव ययु ।। ९ ।।
महिमा स्वस्य भगवान्निजजन्मकृतोद्यम ।
विप्रर्षे ! शम्भलग्राममाविवेश परात्मक ।। १० ।।

हे विभो ! जब पृथिवी पर सत्ययुग का पुन आविर्भाव कर दूँगा और धर्म का पूर्ववत् स्थापन तथा कलिकाल रूपी नाग को नष्ट कर डालूँगा, तब पुन अपने इस लोक मे आ जाऊँगा ।।८।। देवताओ से घिरे हुए ब्रह्माजी ने भगवान् की यह आज्ञा सुनकर ब्रह्मलोक को प्रस्थान किया और सब देवता अपने स्वर्ग लोक को चले गये ।।९।। हे ऋषियो ! अपनी महिमा से महिमान्वित भगवान् विष्णु इस प्रकार शम्भल ग्राम मे स्वय अवतार धारण करने के लिए प्रविष्ट हुए ।।१०।।

सुमत्यां विष्णु यशसा गर्भमाधत्त वैष्णवम् ।
ग्रह–नक्षत्र–राश्यादि–सेवित—श्रीपदाम्बुजम् ।। ११ ।।

सरिसमद्रा गिरयो लोका सस्थाणुजङ्गमा ।
सहर्षा ऋषयो देवा जाते विष्णौ जगत्पतौ ॥ १२ ॥
बभूवु सर्वसत्वानामानन्दा विविधाश्रया ।
नृत्यन्ति पितरो हृष्टास्तुष्टा देवा जगुर्यश ॥ १३ ॥
चक्रुर्वाद्यानि गन्धर्वा ननृतुश्चाप्सरोगणा ॥ १४ ॥
द्वादश्या शुक्लपक्षस्य माधवे मासि माधव ।
जात ददृशतु पुत्र पितरौ हृष्टमानसौ ॥ १५ ॥

भगवान् श्रीहरि विष्णुयश के द्वारा उनकी पत्नी के गर्भ में प्रविष्ट होकर भ्रूण रूप हुए ॥११॥ यह जानकर कि विष्णु पृथिवी पर आ गये है, सभी सरिता, समुद्र, पर्वत, स्थावर जगम प्राणी, ऋषिगण और देवगण आदि सभी प्रसन्न हो उठे ॥१२। तथा सभी जीव विभिन्न प्रकार से हर्ष प्रकट करने लगे, पितर नाचने लगे और देवता प्रभु के गुणगान मे तत्पर हुए ॥१३॥ गधर्व बाजे बजाने और अप्सरायें नृत्य करने लगी ॥१४॥ वैशाख शुक्ला द्वादशी के दिन भगवान् ने अवतार लिया। उनको प्रकट होतें हुए देखकर माता-पिता पुलकित हो उठे ॥१५॥

धातृमाता महाषष्ठी नाभिच्छेत्री तदम्बिका ।
गङ्गोदकक्लेदमोक्षा सावित्री मार्जनोद्यता ॥ १६ ॥
तस्य विष्णोरनन्तस्य वसुधाऽधात्पय सुधाम् ।
मातृका माङ्गल्यवच कृष्णजन्मदिने तथा ॥ १७ ॥
ब्रह्मा तदुपधार्याशु स्वाशुग प्राह सेवकम् ।
याही त सूतिकागार गत्वा विष्णु प्रबोधय ॥ १८ ॥
चतुर्भुजमिद रूप देवानामपि दुर्लभम् ।
त्यक्त्वा मानुषवद्रूप कुरुनाथ ! विचारितम् ॥ १९ ॥
इति ब्रह्मवचा श्रुत्वा पवन सुरभि सुखम् ।
सशीत प्राह तस्मा ब्रह्मणो वचनादृत ॥ २० ॥

भगवान् के प्रकट होने पर महाषष्टी धात्री हुई, अम्बिका ने नाल छेदन किया, गङ्गाजी ने अपने जल से गर्भक्लेद को हटाया और सावित्री ने भगवान् के शरीर का मार्जन किया ॥१६॥

कृष्ण-जन्म के समान ही अनन्त भगवान् के अवतार लेने पर वसुन्धरा ने दुग्धसुधा की धारा प्रवाहित कर दी, मातृकाओ ने मगलाचार किया ॥१७॥ शम्भल ग्राम मे भगवान् के अवतरित होने का समाचार जानकर ब्रह्माजी ने वायु को आज्ञा दी कि तुम सूतिकागार मे जाकर भगवान् से इस प्रकार कहो ॥१८॥ कि आपके चतुर्भुज स्वरूप का दर्शन तो देवताओ के लिए भी दुर्लभ है, अतः हे नाथ ! इस चतुर्भुज रूप को छोडकर मनुष्य रूप बनाइये ॥१६॥ सुशीतल, सुखद, सुगन्धित वायु ने यह वचन सुनकर द्रुतगति से सूतिकागार मे जाकर भगवान् से निवेदन किया ॥२०॥

तच्छ्रुत्वा पुण्डरीकाक्षस्तत्क्षणाद्द्विभुजोऽभवत् ।
तदा तत्पितरौ दृष्ट्वा विस्मयापन्नमानसौ ॥ २१ ॥
भ्रमसस्कारवत्तत्र मेनाते तस्य मायया ।
ततस्तु शम्भलग्रामे सोत्सवा जीवाजातय ।
मङ्गलाचारबहुला पापतापविवर्ज्जिता. ॥ २२ ॥
सुमतिस्त सुतलब्ध्वा विष्णु जिष्णु जगत्पतिम् ।
पूर्णकामा विप्रमुख्यानाहूयाद्गवा शतम् ॥ २३ ॥
हरे कल्याणकृद्विष्णुयशा शुद्धेन चेतसा ।
सामर्ग्यजुर्विद्भिरग्रैचस्तन्नामकरणे रत ॥ २४ ॥
तद राम कृपो व्यासो द्रौणिर्भिक्षुशरीरिण ।
समायाता हरि द्रष्टु बालकत्वमुपागतम् ॥ २५ ॥

ब्रह्माजी का सदेश प्राप्त होने पर भगवान् ने अपना स्वरूप दो भुजाओ से युक्त बना लिया। यह लीला देखकर माता-पिता विस्मित रह गये ॥२१॥ प्रभु की माया मे मोहित हुए माता-पिता ने समझा कि

भ्रम से ही हमने अपने पुत्र को चार भुजा देखा था। फिर उस शम्भल ग्राम मे सभी पाप-ताप नष्ट होकर नित्य नवीन मगलाचार होने लगे ।।२२।। भगवान् को पुत्र रूप मे प्राप्त करके पूर्णकामा सुमति ने ब्राह्मणो को एक सौ गौय दान दी ।।२३। पवित्र हृदय वाले विष्णुयशजी ने अपने पुत्र के मगल की कामना से ऋक्, यजु और सामवेदी ब्राह्मणो को नामकरण के लिए नियुक्त किया ।।२४।। भगवान् के शिशुरूप का दर्शन करने के लिए परशुराम, कृपाचार्य, वेदव्यास और द्रोणाचार्यजी के पुत्र अश्वत्थामा भिक्षुक वेश मे वहाँ आये ।।२५।।

तानागतान्समालोक्य चतुरः सूर्यसन्निभान् ।
हृष्टरोमा द्विजवर पूजयाञ्चक्र ईश्वरान् ।। २६ ।।
पूजितास्ते स्वासनेषु सविष्टा स्वसुखाश्रया ।
हरि क्रोडगत तस्य ददृशु सर्वमूर्त्तय. ।। २७ ।।
तबालक नराकार विष्णु नत्वा मुनीश्वरा ।
कल्कि कल्कविनाशार्थमाविर्भूतं विदुर्बुधा. ।। २८ ।।
नामाकुर्वस्ततस्तस्य कल्किरित्यभिविश्रुतम् ।
कृत्वा सस्कारकर्माणि ययुस्ते हृष्टमानसा. ।। २९ ।।
तत स ववृधे तत्र सुमत्या परिपालित ।
कालेनाल्पेन कसारि शुक्लपक्षे यथा शशी ।। ३० ।।

सूर्य के समान तेजस्वी उन ईश्वर स्वरूप आगन्तुको को देखकर द्विजवर विष्णुयश ने उनका पूजन किया ।।२६।। भले प्रकार सुपूजित हुए वे मुनिगण श्रेष्ठ आसनो पर सुखपूर्वक विराजे, तब उन्होने अपने पिता की गोद मे बैठे हुए भगवान के दर्शन किए ।।२७।। उन ज्ञानी मुनीश्वरो ने मनुष्य रूप मे शिशु स्वरूप भगवान् को नमस्कार किया और तब उन्होने जान लिया कि कलिकाल के विनाशार्थ भगवान् श्री कल्कि का अवतार हुआ है।।२८।। फिर उनका सस्कार करते हुए उनका कल्कि नाम रखकर प्रसन्न मन से वे मुनीश्वर चले गये ।।२९।। फिर कसारि भगवान् माता सुमति के द्वारा भले प्रकार लालित-पालित

होते हुए शुक्लपक्ष के चन्द्रमा के समान प्रतिदिन वृद्धि को प्राप्त होने लगे ॥३०॥

कल्केर्ज्येष्ठास्त्रय शूरा कवि प्राज्ञ सुमन्त्रका ।
पितृमातृप्रियकरा गुरुविप्रप्रतिष्ठिता ॥ ३१ ॥
कल्केरशा पुरो जाता. साधवो धर्म्मतत्परा ।
गार्ग्यभर्ग्यविशालाद्या ज्ञातयस्तदनुव्रता ॥ ३२ ॥
विशाखयूप भूपाल पालितास्तापवर्ज्जिता ।
ब्राह्मणा कल्किमालोक्य परा प्रीतिमुपागता. ॥ ३३ ॥
ततो विष्णुयशा पुत्र धीर सर्वगुणाकरम् ।
कल्कि कमलपत्राक्ष प्रोवाच पठनाद्दतम् ॥ ३४ ॥
तात ते ब्रह्मसस्कार यज्ञसूत्रमनुत्तमम् ।
सावित्री वाचयिष्यामि ततो वेदान्पठिष्यसि ॥ ३५ ॥

भगवान् कल्कि के उत्पन्न होने से पहले माता-पिता को प्रिय, गुरु-ब्राह्मण का हित करने वाले इनके तीन भाई और उत्पन्न हो चुके थे। उनके नाम कवि, प्राज्ञ और सुमन्त्रक थे। भगवान् के ही अ श से उनकी जाति मे, उनके अनुगामी, साधु स्वभाव वाले एव धार्मिक प्रवृत्ति वाले गार्ग्य, भर्ग्य और विशाल आदि भगवान् से पहिले ही उत्पन्न हो चुके थे ॥३१-३१॥ विशाखयूप-नरेश द्वारा परिपालित यह सभी ब्राह्मण भगवान् का दर्शन करके सम्पूर्ण पाप-ताप से छूटकर अत्यत हर्षित हुए ॥३३॥ फिर अपने कमलनयन एव सर्वगुण सम्पन्न पुत्र को अध्ययन करने के योग्य वय वाला हुआ देखकर विष्णुयश उनसे बोले ॥३४॥ हे पुत्र ! मै तुम्हारा श्रेष्ठ ब्रह्म सस्कार, उपनयन और सावित्री का श्रवण कराऊँगा, फिर तुम वेदाध्ययन करना ॥३५॥

को वेद का च सावित्री केन सूत्रेण सस्कृताः ।
ब्राह्मणा विदिता लोके तत्तत्त्व वद तात माम् ॥ ३६ ॥
वेदो हरेर्वाक् सावित्री वेदमाता प्रतिष्ठिता ।

त्रिगुणश्च त्रिवृत्सूत्र तेन विप्रा प्रतिष्ठिता ॥ ३७ ॥
दशयज्ञै सस्कृता ये ब्राह्मणा ब्रह्मवादिन ।
तत्र वेदाश्च लोकाना त्रयाणामिह पोषका ॥ ३८ ॥
यज्ञाध्ययन दानादि तप स्वाध्याय सयम ।
प्रीणयन्ति हरि भक्त्या वेद तन्त्र विधानत ॥ ३९ ॥
तस्माद्यथोपनयन कर्मणोऽह द्विजै सह ।
सस्कर्त्तु बान्धप्रवजनैस्त्वामिच्छामि शुभे दिने ॥ ४० ॥

पिता के वचन सुनकर कल्कि भगवान् ने पूछा—वेद क्या है । सावित्री क्या है । किस सूत्र से सस्कारित पुरुष ब्राह्मण सज्ञक होता है ? हे तात ! यह सब मुझे बताइये ॥३६॥ पिता बोले—वेद भगवान् विष्णु की वाणी है, सावित्री ही प्रतिष्ठा एव वेद-माता है । त्रिगुण-सूत्र को त्रिवृत्ताकार करके धारण करने पर ब्राह्मण नाम से प्रतिष्ठित होता है ॥३७॥ तीनो लोको के पोषक एव दशयज्ञ द्वारा सस्कृत ब्रह्म-वादी जो ब्राह्मण है, उन्ही के पास वेद निवास करते है ॥३८॥ यही दश सस्कार वाले विप्र वेद, तन्त्र और शास्त्रादि के विधान से यज्ञ, अध्ययन, दान, तप, स्वाध्याय, सयम आदि के सहित भक्ति करते हुए भगवान् को प्रसन्न करते है ॥३६॥ इसी लिए ब्राह्मणो, बाँधवो आदि के सहित किसी शुभ दिन मै तुम्हारा उपनयन सस्कार करना चाहता हू ॥४०॥

के च ते दश सस्कारा ब्राह्मणेषु प्रतिष्ठिता ।
ब्राह्मणा केन वा विष्णुमर्चयन्ति विधानत ॥ ४१ ॥
ब्रह्मण्या ब्राह्मणाद्यातो गर्भाधानादिसस्कृत ।
सन्ध्यात्रयेण सावित्री-पूजा-जप-परायणः ॥ ४२ ॥
तपस्वी सत्यवाग्धीरो धर्मात्मा त्राति ससृतिम् ।
विष्णवर्चनमिद ज्ञात्वा सदानन्दमयो द्विज ॥ ४३ ॥
कुत्रास्ते स द्विजो येन तारयत्यखिल जगत् ।
सन्मार्गेण हरिप्रीणन्कामदोग्धा जगत्त्रये ॥ ४४ ॥

कल्कि भगवान् बोले—ब्राह्मण के लिए निश्चित किये गये वे दश-सस्कार कौन-कौन से है ? किस विधान से ब्राह्मण भगवान् विष्णु की अर्चना किया करते है ? ।।४१।। विष्णुयश बोले—हे पुत्र ! ब्राह्मण के द्वारा ब्राह्मणी मे गर्भाधान सस्कार आदि से सस्कृत, त्रिकाल सध्या एव सावित्री की पूजा और जप मे परायण, तपस्वी, सत्यवक्ता, धीर धर्मात्मा ब्राह्मण भगवान् विष्णु की अर्चना विधि को भले प्रकार जानकर आनन्द मे निमग्न रहता हुआ सदैव इस सृष्टि क रक्षक होता है ।।४२-४३।। भगवान् ने कहा—हे तात ! जो ब्राह्मण सम्पूर्ण विश्व का उद्धारक, साधुमार्ग-परायण, भगवान् विष्णु को उपासना द्वारा प्रसन्न करने वाला और तीनो लोको की कामना पूर्ण करने वाला है, वह ब्राह्मण कहाँ है ? ।।४४।।

कलिना बलिना धर्म घातिना द्विज पातिना ।
निराकृता धर्मरता गता वर्षान्तरान्तरम् ।। ४५ ।।

ये स्वल्पतपसो विप्रा स्थिता कलियुगान्तरे ।
शिश्नोदरभृतोऽधर्मनिरता विरत क्रिया ।। ४६ ।।
पापसारा दुराचारास्तेजोहीना कलाविह ।
आत्मान रक्षितु नैव शक्ता शूद्रस्य सेवका ।। ४७ ।।
इति जनकवचो निशम्य कल्कि. कलिकुलनाशमनोऽ भिलाषजन्मा
द्विजनिजवचनैस्तदोपनीतोगुरुकुलवासमुवास साधुनाथ. ।। ४८ ।।

पिता बोले—धर्मघाती और ब्राह्मणो के हिंसक महाबली कलि के द्वारा पीडित हुये विप्र गण अन्य देश को चले गये ।।४५।। स्वल्प तप वाले जो ब्राह्मण इस कलिकाल मे यहाँ स्थित रहे, वे सब शिश्नो-दर धर्मी होकर धर्म और कर्म से विरत हो गये ।।४६।। पाप युक्त, दुराचारी एव तेज-रहित ब्राह्मण इस कलिकाल मे आत्म-रक्षा मे अशक्त एव शूद्रो के सेवक बन गये है ।।४७।। पिता के यह वचन सुन कर कल्कि भगवान् ने कलि को नष्ट करने का निश्चय किया। ब्राह्मणो ने अपनी वाणी द्वारा उनका उपनयन सस्कार किया। और तब भगवान् कल्कि गुरुकुल में निवास हेतु गये ।।४८।।

तृतीय अध्याय

ततो वस्तु गुरुकुले यान्त कल्कि निरीक्ष्य स ।
महेन्द्रद्रिस्थितो रामः समानीयाश्रम प्रभु ।१।
प्राह त्वा पाठयिष्यामि गुरू मा विद्धि धर्मत ।
भृगु वश समुत्पन्न जामदग्न्य महाप्रभुम् ।।२।।
वेद वेदाङ्ग तत्वज्ञ धनुर्वेद विशारदम् ।
कृत्वा नि क्षत्रिया पृथिवी दत्वा विप्राय दक्षिणाम् ।।३।।
महेन्द्राद्रौ तपस्तप्तु मागतोऽहद्विजात्मज ।
त्व पठात्र निज वेद यच्चान्यच्छास्त्रमुत्तमम् ।।४।।
इति तद्वच आश्रुत्य सप्रहृष्टतनूरुह ।
कल्कि. पुरो नमस्कृत्य वेदाधीती ततोऽभवत् ।।५।।

सूतजी बोले—भगवान् कल्कि को गुरुकुल वास के लिए जाते देख कर महेन्द्र पर्वत निवासी परशुराम उन्हे अपने आश्रम मे ले गये ।१। वहाँ पहुँच कर परशुराम ने उनसे कहा—मैं भृगु वश मे उत्पन्न, महर्षि जमदग्नि का पुत्र, वेद-वेदाग के तत्व की जानने वाला, धनुर्वेद-विद्या-विशारद परशुराम हूँ ।२। मैंने इस पृथिवी को क्षत्रिय-विहीन करके ब्राह्मणो को दक्षिणा स्वरूप दे डाली थी । अब तुम मुझे धर्म पूर्वक गुरु मानो, मैं तुमको शिक्षा दूँगा । हे द्विजात्मज ! मैं इस महेन्द्र पर्वत पर तपस्या करने के लिए आया हूँ, तुम यहाँ अपना वेदाध्ययन करो तथा अन्य जो भी कोई शास्त्र पढना चाहो, उसे पढो ।३-४। यह सुन कर भगवान् कल्कि ने आनन्द से गद्गद् होकर परशुराम को प्रणाम किया और फिर वेदाध्ययन करने लगे ।५।

साङ्ग चतुःषष्टिकलां धनुर्वेदादिकञ्च यत् ।
समधीत्य जामदग्न्यात्कल्किः प्राह कृताञ्जलिः ।।६।।
दक्षिणां प्रार्थय विभो ! या देय तव सन्निधौ ।
ययामे सर्वसिद्धिः स्याद्या स्यात्व तोषकारिणी ।।७।।
ब्रह्मणा प्रार्थितो भूमन् ! कलिनिग्रहकारणात् ।
विष्णुः सर्वाश्रयः पूर्णः स जातः सम्भले भवान् ।।८।।
मत्तो विद्या शिवादस्त्रं लब्ध्वा वेदमय शुकम् ।
सिहले च प्रिया पद्मा धर्मान्संस्थापयिष्यसि । ९।।

जब भगवान् कल्कि चौसठ कलाएं और सम्पूर्ण धनुर्वेद का ज्ञान प्राप्त कर चुके तब उन्होंने हाथ जोड कर परशुराम से कहा— ।६। हे विभो ! जिस दक्षिणा के देने से मुझे सर्वसिद्धि की प्राप्ति होगी और जिस दक्षिणा की प्राप्ति से आप संतुष्ट हो सकेंगे, वह दक्षिणा मुझे बताने की कृपा करिये ।७। परशुराम बोले— हे भूमन् ! कलिकाल का नाश करने के लिए ब्रह्माजी ने जिन भगवान् श्री हरि से निवेदन किया था, वे ही आप भगवान् विष्णु शम्भल ग्राम मे अवतरित हुए हैं ।८ और मुझसे विद्या भगवान शकर से शस्त्र और वेदमय शुक तथा सिंहल देश से अपनी पत्नी पद्मा को प्राप्त करके भूमण्डल पर धर्म की स्थापना करेंगे ।९।

ततो दिग्विजयेभूपान् धर्महीनान् कलिप्रियान् ।
निगृह्य बौद्धान् देवापिं मरुञ्च स्थापयिष्यसि ।१०।
वयमेतैस्तु संतुष्टाः साधुकृत्यैः सदक्षिणाः ।
यज्ञं दानं तपः कर्म करिष्यामो यथोचितम् ।११।
इत्येतद्वचनं श्रुत्वा नमस्कृत्य मुनिं गुरुम् ।
बिल्वोदकेश्वरं देवं गत्वा तुष्टाव शंकरम् ।१२।
पूजयित्वा यथान्याय शिवं शान्त महेश्वरम् ।
प्रणिपत्याशुतोषं तं ध्यात्वा प्राह हृदिस्थितम् ।१३।

फिर दिग्विजय द्वारा धर्म-विहीन और कलिप्रिय राजाओ और बौद्धो का सहार कर मरु और देवापि को प्रतिष्ठित करोगे। तुम्हारा यह साधुकृत्य ही मुझको सतुष्ट करने वाली दक्षिणा होगी, क्योंकि तब हम तप, यज्ञ, दान, ध्यान,आदि सभी कर्म भले प्रकार से कर सकेंगे।१०-११। यह सुन कर और गुरुवर परशुरामजी को नमस्कार करके कल्कि भगवान् बिल्वोदकेश्वर महादेव के मन्दिर मे गये और उन्हे सन्तुष्ट करने लगे।१२। हृदय मे स्थित उन आशुतोष शान्त स्वरूप शिवजी का उन्होने विधिवत् पूजन किया और प्रणाम तथा ध्यान के पश्चात् निवेदन किया।१३।

गौरीनाथ विश्वनाथ शरण्यंभूतावास वासुकीकण्ठभूषम्।
त्र्यक्ष पञ्चास्यादिदेव पुराणं वन्दे सान्द्रनन्दसन्दोहदक्षम्।
योगाधीश कामनाश कराल गङ्गासङ्गाक्लिन्नमूर्द्धानमीशम्।
जटाजूटाटोपरिक्षिप्तभाव महाकाल चन्द्रभाल नमामि॥
श्मशानस्थभूतबेतालसङ्ग नानाशस्त्रै. खड्गशूलादिभिश्च।
व्यग्रात्युग्रा बाहवो लाकनाशे यस्य क्रोधोद्धूतलोकोऽनमेति।
यो भूतादि पञ्चभूतंसिसृक्षु. तन्मात्रात्मा काल कर्मस्वभावे
प्रहृत्येद प्राप्य जोवत्वमीशो ब्रह्मानन्दो रमते त नमामि॥
स्थितौ विष्णु सर्वजिष्णुः सुरात्मा लोकान् साधून् धर्मसेतून्
विभर्ति। ब्रह्माद्याशे योऽभिमानी गुणात्मा शब्दाद्यङ्गैस्तपरेश
नमामि। यज्ञस्या वायवो वान्ति लोके ज्वलत्याग्नि सविता
यातितप्यन्। शीतांशु खेतारकैः सग्रहैश्च प्रवर्तते त परेश
प्रपद्ये। यस्याश्वासात् सर्वधात्री धरित्री देवो वर्षत्यम्बु काल.-
प्रमाता। मेरुमध्ये भुवनानाञ्च भर्त्ता तमीशानविश्वरूप
नमामि।१४-२०।

कल्किजी ने कहा—हे गौरीपते! हे विश्वेश्वर! हे शरणागत-वत्सल! हे सर्वभूताश्रय! हे वासुकी नाग का कण्ठभूषण धारण करने

वाले प्रभो ! हे त्रिनेत्र ! हे पचवदन ! हे पुराण पुरुष ! हे सघन आनन्द-दक्ष आदिदेव ! आपको नमस्कार है ।१४। हे योगाधीश्वर ! आप कामदेव का नाश करने वाले, कराल दशन, गगतरग से समुज्वल मूर्द्धा वाले, जटाजूट टोप युक्त, परिक्षिप्त भाव वाले महाकाल है। हे चन्द्रभाल ! आपको नमस्कार है ।१५। हे प्रभो ! आप भूत वेतालो के सहित श्मशान मे निवास करते हैं। आप अपनी भयानक भुजाओ मे विभिन्न प्रकार के शस्त्रास्त्र धारण करते हैं। प्रलय काल मे यह समस्त विश्व आप की ही क्रोधानल मे भस्मीभूत हो जाता है ।१६। आप ही भूतादि तन्मात्रा रूप पच भूत एव काल-कर्म-स्वाभानुसार सृष्टि रचना करते और अत मे प्रलय करके जीवत्व को प्राप्त होकर ब्रह्मानन्द मे रमण करते है, ऐसे आपको मेरा नमस्कार है ।१७। आप ही सुरात्मा विश्व के पालनार्थ विष्णु स्वरूप लेकर धर्म सेतु स्वरूप साधुओ की रक्षा करते हैं। आप ही शब्दादि अवयवो के द्वारा सगुण रूप ब्रह्मा जी के अश रूप होते है। ऐसे आप परमेश्वर को नमस्कार है ।१८। आपकी आज्ञा से, वायु बहता, अग्नि प्रज्वलित होता, सूर्य प्रकाशित होता और तारागण के सहित चन्द्रमा उदित होता है। ऐसे आपको मैं शरण लेता हूँ ।१९। जिन की आज्ञा से पृथिवी विश्व को धारण किये है और मेघ समय पर वर्षा करते हैं तथा जो सब लोको का भरण करने वाले हैं, ऐसे आप ईशान एव विश्वरूप भगवान शकर को नमस्कार करता हूँ ।२०।

इति कल्किस्तव श्रुत्वा शिवः सर्वात्मदर्शनः
साक्षात् प्राह हसन्नीश. पार्वतीसहितोग्रत ।२१।
कल्के. सम्पृश्य हस्तेन समस्तावयवं मुदा ।
तमाह वरय श्रेष्ठ ! वरं यत्तेऽभिकांक्षितम् ।२२।
त्वया कृतमिद स्तोत्र ये पठन्ति जना भुवि ।
तेषां सर्वार्थसिद्धिः स्यादिह लोके परत्र च ।२३।
विद्यार्थी चाप्नुयाद्विद्यां धर्मार्थी धर्ममाप्नुयात् ।
कामानवाप्नुयात् कामी पठनाच्छ्रवणादपि ।२४।

त्व गारुडमिद चाश्व कामग बहुरूपिणम् ।
शुकमेतञ्च सर्वज्ञ मया दत्त गृहाण भो ।२५।

भगवान् कल्कि का स्तोत्र सुन कर सर्वात्मा भगवान् शकर पार्वती सहित साक्षात् रूप मे प्रकट हुये—उन्होने आनन्दित होकर भगवान् कल्कि के देह पर कर स्पर्श करते हुए और मुसकराते हुए कहा—हे श्रेष्ठ ! अपना इच्छित वर मागो ।२१-२२। तुम्हारे द्वारा रचित इस स्तोत्र का का भू-मण्डल मे जा भी कोई पाठ करेगा, उसकी इहलौकिक और पारलौकिक सभी कामनाएँ पूर्ण होगी ।२३। इस स्तोत्र के पढने सुनने से विद्यार्थी को विद्या, धर्मार्थी को धर्म और अन्य कामना वाले को उसकी उसी कामना की प्राप्ति होती है ।२४। हे कल्कि ! मैं तुम्हे यह शीघ्रगामी, अनेक रूप धारी, गरुड़ अश्व युक्त सर्वज्ञ शुक प्रदान करता हूँ, इन्हे ग्रहण करो ।२५।

सर्व शास्त्रास्त्रविद्वास सर्व वेदार्थपारगम् ।
जयिन सर्वभूताना त्वां वदिष्यन्ति मानवा ।२६।
रत्नत्सरु करालञ्च करवाल महाप्रभम् ।
गृहाण गुरुभारायाः पृथिव्या भारसाधनम् ।२७।
इति तद्वच आश्रुत्य नमस्कृत्य महेश्वरम् ।
शम्मलग्राममगमत् तुरगेण त्वरान्वित. ।२८।
पितर मातर भ्रातृन् नमस्कृत्य यथाविधि ।
सर्व तद्वर्णयामास जामदग्न्यस्य भाषितम् ।२९।
शिवस्य वरदानञ्च कथयित्वा शुभा. कथा ।
कल्किः परमतेजस्वी ज्ञातिभ्योऽथवदन्मुदा ।

हे कल्कि ! मनुष्यो मे तुम सर्व शास्त्रज्ञ, सर्व शस्त्रास्त्र विशारद, सर्व वेदो मे पारगामी एव सर्व भूतो मे विजयी कहे जाओगे ।२६। यह रत्नसरु नामक महा कराल, अत्यन्त चमकती हुई, अत्यन्त भारी और पृथिवी के भार को सँभालने वाली तलवार ग्रहण

करो ।२७। भगवान महेश्वर के वचन सुन कर कल्कि ने उन्हे प्रणाम किया और अश्व पर आरूढ होकर द्रुतगति से शंभल ग्राम मे जा पहुचे ।२८। वहाँ पहुँच कर उन्होने अपने पिता, माता, भ्राता आदि को विधिवत् नमस्कार कर परशुराम जी के कहे हुए सब वचन उन्हे सुनाये ।२९। फिर शिवजी द्वारा प्राप्त हुए वरदान की चर्चा की और अपने जाति वालो के मध्य स्थित होकर प्रसन्न हृदय से श्रेष्ठ कथा कहने लगे ।३०।

गार्ग्यभर्ग्यविशालाद्यास्तच्छ्रुत्वा नन्दिता स्थिता. ।
कथोपकथन जात शम्भलग्रामवासिनाम् ।३१।
विशाखयूपभूपाल श्रुत्वा तेषाञ्च भाषितम् ।
प्रादुर्भाव हरेर्मेने कलिनिग्रहकारकम् ।३२।
माहिष्मत्या निजपुरे यागदानतपोव्रतान् ।
ब्राह्मणान् क्षत्रियान् वैश्यान् शूद्रानपि हरे प्रियान् ।३३।
स्वधर्मनिरतान् दृष्ट्वा धर्मिष्ठोऽभून्नृप. स्वयम् ।
प्रजापाल: शुद्ध मना: प्रादुर्भावात् श्रिय: पते: ।३४।
अधर्मवश्यास्तान् दृष्ट्वा जनान् धर्मक्रियापरान् ।
लोभानृतादयो जग्मुस्तद्देशाद्दुखिता भयम् ।३५।

उनके द्वारा वर्णित कथा सुन कर गार्ग्य, भर्ग्य और विशाल आदि अत्यन्त प्रसन्न हुए । कथा शंभल ग्राम मे परस्पर कही जाती हुई अधिक प्रचारित हो गई ।३१। शंभल ग्राम के लोगो से ही यह चर्चा विशाखयूपराज ने सुनी और उन्होने जान लिया कि भगवान् कल्कि ने कलि का निग्रह करने के लिए पृथिवी पर अवतार ले लिया है ।३२। उसकी माहिष्यमती नगरी मे यज्ञ, दान, तपस्या और व्रतादि करने वाले सभी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र भगवान के प्रीति पात्र हुए ।३३। रमापति भगवान् के अवतार लेने पर सभी वर्ण अपने-अपने धर्म मे तत्पर हुए तथा राजा भी प्रजापालक, पवित्र मन वाला, धार्मिक हुआ ।३४। उस नगरी के निवासियों को धर्म मे तत्पर देख कर लोभ,

असत्य और अधर्म के वशज भय से दु खित होकर वहाँ से पलायन कर गये ।३५।

जैत्र तुरगमारुह्य खड्गञ्च विमलप्रभम् ।
दशित, सशरं चापं गृहीत्वागात् पुराद्बहि ।३६।
विशाखयूपभूपाल: प्रायात् साधुजनप्रिय: ।
कल्कि द्रष्टु हरेरशमाविर्भतञ्च शम्भले ।३७।
कवि प्राज्ञ सुमनञ्च पुरस्कृत्य महाप्रभुम् ।
गार्ग्य-भर्ग्य विशालैश्च ज्ञातिभि परिवारितम् ।३८।
विशाखयूपो ददृशे चन्द्र तारागणैरिव ।
पुराद्बहि सुरैर्यद्वन्दिन्द्रमुच्चैश्रव स्थितम् ।३९।
विशाखयूपोऽवनत: सप्रहृष्टतनूरुह: ।
कल्केरालोकनात् सद्य, पूर्णात्मा वैष्णवोऽभवत् ।४०।

भगवान् कल्कि तीक्ष्ण तलवार, धनुष और श्रेष्ठ बाणो को धारण कर शिव-प्रदत्त अश्व पर आरूढ होकर नगरी मे बाहर चल दिये ।३६। सत जनो से स्नेह करने वाले विशाखयूप नरेश शभल ग्राम में अवतरित भगवान् के दर्शनार्थ उपस्थित हुए ।३७। उस समय अत्यन्त प्रभाव वाले कवि प्राज्ञ, सुमत्र और गार्ग्य विशालादि से घिरे हुए तथा तारागण सहित चन्द्रमा और देवताओं सहित उच्चैश्रवा के समान अश्व पर चढे कल्कि भगवान् को विशाखयूप नरेश ने नगर के बाहर निकलते देखा ।३८-३९। कल्कि भगवान को देखते ही रोमाचित हुए राजा झुकते हुए पूर्ण वैष्णवत्व को प्राप्त होगया ।४०।

सह राज्ञा वसन कल्कि धर्मानाह पुरोदितान् ।
ब्राह्मणक्षत्रियविशामाश्रमाणा समासत: ।४१।
ममाशान् कलिविभ्रष्टानिति मज्जन्मसङ्गतान् ।
राजसूयाश्वमेधाभ्यां मा यजस्व समाहित: ।४२।
अयमेव परो लोको धर्मश्चाह सनातन: ।
कालस्वभावसस्कारा: कर्मानुगतयो मम ।४३।

सोमसूर्यकुले जातौ देवापिमरुसञ्ज्ञकौ ।
स्थापयित्वा कृतयुग कृत्वा यास्यामि सद्‌गतिम् ।४४।
इति तद्वचन श्रुत्वा राजा कल्कि हरि प्रभुम् ।
प्रणम्य प्राह सद्धर्मान् वैष्णवान् मनसेप्सितान् ।४५।
इति नृपवचन निशम्य कल्कि कलिकुलनाशनवासनावतार ।
निजजनपरिषद्विनोदकारीमधुरवचोभिराह साधुर्मान ।४६म।

राजा से वार्तालाप करते हुए भगवान् कल्कि ने ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य तथा आश्रमादि के धर्मों का सक्षिप्त रूप से वर्णन किया ।४१। कल्कि बोले—हमारे जो अंश कलि से प्राप्त पाप के द्वारा भ्रष्ट होगये थे, वे हमारे अवतरित होनेपर धर्म मार्ग पर आ गये हैं। हे राजन् ! तुम राजसूय या अश्वमेध यज्ञ करते हुए मेरी आराधना करो ।४२। मै ही परलोक हूँ, सनातन धर्म मे ही हूँ, काल, स्वभाव और सस्कार सभी मेरे कर्म के अनुगत रहते हैं ।४३। मैं चन्द्रवश और सूर्यवश मे क्रमश उत्पन्न देवापि और मरु नामक राजाओ को स्थापित करके तथा इस युग को सतयुग रूप करके सद्‌गति को प्राप्त हूँगा ।४४। यह सुनकर विशाखयूप नरेश ने भगवान कल्कि को प्रणाम किया और उनसे वैष्णव धर्म का प्रसग कहने का अनुरोध किया ।४५। राजा की कामना सुन कर कलिकुल का नाश करने की इच्छा से भूमण्डल पर अवतरित भगवान् कल्कि अपने परिजनो और अनुयायियो के हृदयो को आनन्दित करने वाली मिष्ठ वाणी से साधु धर्म की व्याख्या करने लगे ।४६।

—※—

चतुर्थ-अध्याय ।

सूत: कल्कि सभा मध्ये राजमानो रविर्यथा ।
अभाषे त नृप धर्म-मयो धर्मान् द्विज प्रियान् ।१।
कालेन ब्रह्मणो नाशे प्रलये मयि सङ्गताः ।
अहमेवासमेवाग्रे नान्यत् कार्यमिद मम ।२।
प्रसुप्तलोकतन्त्रस्य द्वैतहीनस्य चात्मन ।
महानिशान्ते रन्तु मे समुद्भूतो विराट प्रभु ।३।
सहस्रशीर्षा पुरुषा सहस्राक्षः सहस्रपात् ।
तदङ्गजोऽभवद्ब्रह्मा वेदवक्ता महाप्रभु. ।४।

सूतजी बोले मुनीश्वरो ! उस समय सभा के मध्य मे भगवान कल्कि सूर्य के समान विराजमान होकर विशाखयूप नरेश के प्रति धर्म-प्रसग कहने लगे ।१। कल्कि बोले—कालान्तर मे जब यह ब्रह्माण्ड नाश को प्राप्त होगा तब प्रलय होने पर मुझ मे विलीन हो जायगा। सृष्टि से पूर्व मैं ही विद्यमान था, अन्य कुछ भी नही था । इस सम्पूर्ण जगत् का कारण मैं ही हूँ ।२। सम्पूर्ण विश्व की प्रसुप्ति और द्वैतहीनात्मिका महा रात्रि का अन्त होने पर मैं सर्वशक्ति सम्पन्न विराट्मूर्ति रूप मे आविर्भूत होता हूँ ।३। वह विराट्मूर्ति सहस्र मस्तक, सहस्र नेत्र और सहस्र चरण वाली हुई, उसी मूर्ति के अग से ब्रह्माजी उत्पन्न हुए ।४।

जीवोपाधेर्ममांशाच्च प्रकृत्या मायया स्वया ।
ब्रह्मोपाधिः स सर्वज्ञो मम वाग्वेदशासितः ।५।

ससर्ज जीव जातानि कालमाया शयोगत.
देवा मन्वादयो लोका स प्रजापतय. प्रभु ।६।
गुणिन्या मायायाशा मे नानोपाधौ ससजरे ।
सोपाधय इमे लोका देवा सस्थाणुजङ्गमा. ।७।
ममाशा मायया सृष्टा यतो मय्याविशन् लये ।
एवविधा ब्राह्मणा ये मच्छरोरा मदात्मिका.।८।
मामुद्धरन्ति भुवने यज्ञाध्ययनसत्क्रिया. ।
मा प्रसेवन्ति शसन्ति तपोदानक्रियास्विह ।९।
स्मरन्त्यामोदयन्त्येव नान्ये देवादयस्तथा ।
ब्राह्मणा वेदवक्तारो वेदा मे मूर्तयः परा ।१०।

ब्रह्म उपाधि वाले सर्वज्ञ पुरुष ने मेरी वेद वाणी के शासनानुसार मेरी माया प्रकृति की शक्ति, काल और अ श के सम्मिश्रण से इस जीवो-पधारी जाति को प्रकट किया । इस प्रकार मनु आदि प्रजापतियो के सहित देवता प्रकट हुए।५-६। मेरे अ श से त्रिगुणात्मिका माया अनेक प्रकार की उपाधि धारण करके इस लोक मे देवता एव स्थावर जगम सृष्टि प्रकट करती है ।७। माया सृष्टि का रचियता मेरा अश अन्त मे मुझ मे ही लय हो जाता है । इसी प्रकार ब्राह्मण मेरे ही आत्म स्वरूप एव देह हैं ।८। क्योकि ब्राह्मण यज्ञ वेदाध्ययन आदि श्रेष्ठ कार्यों के द्वारा मेरा उद्धार तथा तप दानादि द्वारा मेरी सेवा करते हैं ।९। वेदवक्ता ब्राह्मण जिस प्रकार स्मरण द्वारा मुझे प्रसन्न करते हैं, उस प्रकार देवतादि अन्य कोई भी मुझे प्रसन्न नही करते, क्योकि वेद ही मेरी परम मूर्ति है ।१०।

तस्मादिमे ब्राह्मणजास्तै पुष्टस्त्रिजगज्जनाः ।
जगन्तिमे शरीराणि तत्पोषे ब्रह्मणो वर· ।११।
तेनाह तान्नमस्यामि शुद्धसत्वगुणाश्रयः।
ततो जगन्मय पूर्व मा सेवन्तेऽखिलाश्रया ।१२।

विप्रस्य लक्षरण ब्रूहि त्वद्भक्ति का च तत्कृता ।
यतस्तवानुग्रहेरण वाग्बारणा ब्राह्मरणा कृता ।१३।
वेदा मामीश्वर प्रहुरव्यक्त व्यक्तिमत्परम् ।
ते वेदा ब्राह्मरणामुखे नानाधर्मे प्रकाशिता. ।१४।
यो धर्मो ब्राह्मरणाना हि सा भक्तिर्मम पुष्कला ।
तयाह तोषित श्रीश सभवामि युगे-युगे ।१५।

ब्राह्मरण द्वारा वेदाध्ययन से तीनो लोको के निवासी पुष्टि को प्राप्त हो रहे हैं, प्राणी रूप मेरे देह को श्रेष्ठ ब्राह्मरण ही पुष्ट करने हैं ।११। इसलिए शुद्ध सत्वगुण का आश्रित हुआ मैं ब्राह्मरणो को मैं नमस्कार करता हूँ, तब ब्राह्मरण भी मुझे विश्वमय समझ कर कर ही मरी सेवा करते है ।१२। विशाखयूप नरेश ने कहा-हे प्रभो ! आप मेरे प्रति ब्राह्मरणो के लक्षरण कहिये । वे आपकी भक्ति किस प्रकार करते है, जिस भक्ति को करके वे आपके अनुग्रह से बाग्बारण स्वरूप हो जाते हैं ।१३। कल्कि बोले—हे राजन् ! अव्यक्त एव वेद ही मेरे ईश्वर है । ब्राह्मरण के मुख मे यह वेद विभिन्न कर्मों का प्रकाश करते हैं ।१४। ब्राह्मरणो का धर्माचरण मेरे प्रति भक्ति रूप मे प्रकट है । उनकी उसी भक्ति से सतुष्ट होकर मैं युग-युग मे प्रकट होता हूँ ।१५।

ऊर्द्ध्वन्तु त्रिवृत सूत्र सधवानिर्मित शनै· ।
तन्तुत्रयमधोवृत्त यज्ञ सूत्रं विदुर्बुधा· ।१६।
त्रिगुरण तद्ग्रन्थियुक्त वेदप्रवरसमितम् ।
शिरोधरात् नाभिमध्यात् पृष्ठार्द्ध परिमाराकम् ।१७।
यजुर्विदा नाभिमित सामगानामय विधि. ।
वामस्कन्धेन विधृत यज्ञ सूत्र बलप्रदम् ।१८।
मृद्भस्मचन्दनाद्यैस्तु धारयेत् तिलक द्विज ।
भाले त्रिपुण्ड्र कर्माङ्ग केश पर्यन्तमुज्जलम् ।१९।
पुण्ड्रमंगुलिमानन्तु त्रिपुण्ड्र तत् त्रिधा कृतम् ।
ब्रह्मविष्णु शिवावास दर्शनात् पापनाशनम् ।२०।

ज्ञानियों का कहना है कि ब्राह्मण की सधवा नारी के द्वारा सूत्र को त्रिवृत्त करे तथा उस त्रिवृत सूत्र को पुन. त्रिवृत करे यही यज्ञ सूत्र है ।१६। वेद प्रवर युक्त उस सूत्र मे गाँठ लगावे। यजुर्वेदी ब्राह्मण को यही यज्ञोपवीत कंठ से नाभि तक तथा पृष्ठ के आधे भाग तक धारण करे। सामवेदी ब्राह्मण को नाभि तक धारण करना चाहिए। यज्ञोपवीत बाँये कन्धे पर धारण करने से बल का देने वाला होता है- ।१७-१८। द्विज को मृत्तिका भस्म और चन्दनादि का तिलक लगाना चाहिये। मस्तक पर केश पर्यन्त उज्वल त्रिपुण्ड लगाना चाहिये ।१९। पुण्ड्र का प्रमाण एक अंगुल और त्रिपुण्ड्र इससे तिगुना होता है। त्रिपुण्ड्र मे ब्रह्मा, विष्णु और शिव निवास करते हैं। यह दर्शन करते ही पाप का नाश करने मे समर्थ है ।२०।

ब्राह्मणाना करे स्वर्गा वाचो वेदा करे हरि: ।
गात्रे तीर्थानि रागश्च नाडीषु प्रकृतिस्त्रिवृत् ।२१
सावित्री कण्ठकुहरा हृदय ब्रह्म सहितम् ।
तेषा स्तनान्तरे धर्म पृष्ठोऽधर्म. प्रकीर्तित: ।२२।
भू देवा ब्राह्मणा राजन् ! पूज्या वन्द्या सदुक्तिभि ।
चतुराश्रम्यकुशला मम धर्म. प्रवर्त्तका. ।२३।
बालाश्चापि ज्ञानवृद्धास्तपोवृद्धा मम प्रिया: ।
तेषा वच पालयितुमवतारा कृता मया: ।२४।
महाभाग्य ब्राह्मणाना सर्वपापप्रणाशनम् ।
कलिदोषहर श्रुत्वा मुच्यते सर्वतो भयात् ।२५।

ब्राह्मणो के हाथो मे स्वर्ग और भगवान् विष्णु निवास करते हैं वाणी मे वेद देह मे तीर्थ और राग तथा नाडी मे त्रिगुणात्मिका प्रकृति है ।२१। ब्राह्मणो के कण्ठ में सावित्री, हृदय मे ब्रह्म वक्षस्थल के मध्य मे धर्म एवं पृष्ठ देश मे अधर्म का निवास रहता है ।२२। हे राजन् ! चारो आश्रमों के धर्म को जानने वाले, मेरे धर्म के प्रवर्त्तक—

देवता ब्राह्मण श्रेष्ठ वनवासो के द्वारा वन्दनीय हैं ।२३। ज्ञानवृद्ध और ब्राह्मणों के बालकों के प्रति मैं अत्यन्त प्रेम करता और उनके वचन पालनाथ ही अवतार धारण करता हूँ ।२४। सभी पापों का नाशक, कलि काल के दोषों का हरण करने वाला ब्राह्मणों के महाभाग्य रूपी चरित्र को सुनने से सदा सब भय नष्ट हो जाते हैं ।२५।

इति कल्किवच श्रुत्वा कलिदोषविनाशनम् ।
प्रणम्य त शुद्धमना प्रययौ वैष्णवाग्रणीः ।२६।
गते राजानि सन्ध्यायां शिवदत्तशुको बुधः ।
चरित्वा कल्किपुरत स्तुत्वा त पुरत. स्थित ।२७।
त शुक प्राह कल्किस्तु सस्मित स्तुतिपाठकम् ।
स्वागत भवता कस्मात् देशात् कि खादित तत. ।२८।
शृणु नाथ ! वचो मह्य कौतूहलसमन्वितम् ।
अह गतश्च जलधेर्मध्ये सिंहल सज्ञके ।२९।
यथा वृत्त द्वीप गत तच्चित्र श्रवणप्रियम् ।
बृहद्रथस्य नृपते. कन्यायाश्चरितामृतम् ।३०।

कलियुग के दोषों को नष्ट करने वाले भगवान् कल्कि के वचन सुनकर पवित्र हृदय वैष्णव श्रेष्ठ राजा उन्हें प्रणाम करके चला गया ।२६। राजा के चले जाने पर शिव प्रदत्त ज्ञानी शुक सध्या के समय भ्रमण से लौटकर भगवान कल्कि के सामने स्तुति करके खड़ा हुआ। उनके स्तोत्र-पाठ को सुन कर कल्कि भगवान बोले—तुम किधर से आ रहे हो ? तुमने वहाँ क्या भोजन किया ? शुक बोला—हे नाथ ! आप मुझसे कौतुकमय वाणी सुनिये । मैं समुद्र के मध्य स्थित सिंहल द्वीप मे गया था ।२९। उस द्वीप मे घटित वृत्तान्त सुनने मे बड़ा अच्छा है । राजा बृहद्रथ की कन्या का चरित्र अमृत के समान श्रेष्ठ है ।३०।

कौमुद्यामिह जाताया जगता पापनाशनम् ।
चरित सिंहले द्वीपे चातुर्वर्ण्यजनावृते ।३१।

प्रासाद-हर्म्य-सदन-पुर-राजि-विराजिते ।
रत्न-स्फाटिक-कुड्यादि-स्वलताभिभूषिते ।३२।
स्त्रीभिरुत्तमवेशाभिः पद्मिनीभि समावृते ।
सरोभि सारसैर्हंसैरुपकूलजलाकुले ।३३।
भृङ्ग रङ्ग प्रसङ्गाढ्ये पद्मै॰ कह्लारकुन्दकै. ।
नानाम्बुजलताजाल-वनोपवन-मण्डिते ।३४।
देशे बृहद्रथो राजा महाबलपराक्रम. ।
तस्य पद्मावती कन्या धन्या रेजे यशस्विनी ।३५।

इस कन्या ने रानी कौमुदी के गर्भ से जन्म लिया है । इसका चरित्र श्रवण से पाप नाशक है । उस द्वीप मे चारो वर्ण के मनुष्यो का निवास है ।३१। भवन, अटारी, गृह युक्त नगर मे वहाँ का राजो सुशोभित है । उसका भवन रत्न, स्फटिक, मणि तथा स्वर्ण आदि की पच्चीकारी से विभूषित हो रहा है ।३२। वहाँ पद्मिनी प्रभृति स्त्रियाँ श्रेष्ठ वस्त्रादि से सुशोभित रहती हैं । सरोवरो मे सारस और हस आदि पक्षी किलोल करते हैं । ।३३। वह द्वीप विभिन्न प्रकार की पद्मलताओ के जालो से सुशोभित है । उपवनो मे कल्हार, कुन्द आदि के पुष्पो पर भोरे गु जार करते हैं ।३४। वहाँ का राजा बृहद्रथ महाबली और पराक्रमी है । उसकी पद्मावती नाम की कन्या भी अत्यन्त यशस्विनी है ।३५।

भुवने दुर्लभा लोकेऽप्रतिमा वरवर्णिनी ।
काम मोह करी चारु चरित्रा चित्र निर्मिता ।३६।
शिव सेवापरा गौरी यथा पूज्या सुसम्मता ।
सखीभिः कन्यकाभिश्च जप ध्यान परायणा ।३७।
ज्ञात्वा ताञ्च हरेर्लक्ष्मी समुनुभूतां वराङ्गनाम् ।
हरः प्रादुरभूत्साक्षात्पार्वत्या मह हर्षित ।३८।
सा तमालोक्य वरदं शिव गौरी समन्वितम ।
लज्जिताधोमुखी किञ्चन्नोवाच पुरतः स्थिता ।३९।

हरस्तामाह सुभगे ! तव नारायण पति.।
पाणि ग्रहीष्यति मुदा नान्यो योग्यो नृपात्मज ।४०।

श्रेष्ठ मुख वाली,सुन्दर चरित्रमयी, कामदेव को भी मोहित करने वाली उस कन्या की समानता ससार मे कोई नही कर सकता ।३६। जिस प्रकार गिरिजा भगवान शकर की सेवा परायण है, उसी प्रकार पूज-नीया पद्मावती अपनी सखियो के साथ जप ध्यान-परायण रहती हैं। ।३७। भगवान विष्णु की प्रिया लक्ष्मी जी को पद्मावती के रूप मे उत्पन्न हुई जानकर पार्वती जी के साथ भगवान शकर वहाँ पधारे ।३८। वरदाता शिवजी को पार्वती जी के सहित आये देख कर उस कन्या ने लज्जा से शिर नीचा कर लिया और अवाक् खडी रही ।३९। तब शिवजी बोले—
हे सुभगे ! तुम्हारे पति भगवान नारायण ही तुम्हारा पाणि ग्रहण करेगे। क्योकि अन्य कोई राजकुमार तुम्हारे योग्य नही है ।४०।

कामभावेन भुवने ये त्वा पश्यन्ति मानवा ।
तेनैव वयसा नार्यो भविष्यन्त्यपि तत्क्षणात् ।४१।
देवासुरास्तथा नागा गन्धर्वाश्चारणादयः।
त्वया रन्तु तथाकाले भविष्यन्ति किल स्त्रियः ।४२।
विना नारायण देव त्वत्पाणिग्रहणार्थिनम् ।
गृह याहि तपस्त्यक्त्वा भागस्ततनुतनम् ।४३।
मा क्षोभये हरेः पत्नि कमले विमल कुरु।
इति दत्वा वर सोऽयस्तत्रैवान्तर्दधे ह र ।४४।
हरवरमिति सा निशम्य पद्मा समुचितमात्मनोरथ प्रकाशम्।
विकसितवदना प्रणम्य सोम निजजन कालयमाविवेश रामा

मृत्युलोक के वासी जो मनुष्य तुम्हारी ओर काम भाव से दृष्टि पात करेगे, वे तत्काल अपनी आयु के अनुकूल स्त्रीत्व भाव को प्राप्त हो जायेंगे ।४१। देवता, दैत्य, नाग, गधर्व चारण आदि मे भी जो कोई तुम पर कुदृष्टि डालेगे वे भी स्त्रीत्व को उसी समय प्राप्त होगे ।४२।

भगवान नारायण के अतिरिक्त जो कोई भी तुम्हारा पाणिग्रहण करना चाहेगा, वह ऐसी ही दशा को प्राप्त होगा। अब तुम तपस्या को छोड़कर भोग के योग्य अपना रूप बनालो और अपने घर को प्रस्थान करो ।४३। हे कमले ! तुम हरि की पत्नी हो, हर प्रकार का क्षोभ त्याग कर मन को स्वस्थ करो। इस प्रकार वर प्रदान करके शिवजी अन्तर्ध्यान होगये ।४४। भगवान शंकर से मनोवांछित वरदान प्राप्त करके प्रफुल्ल मुख हुई पद्मा शिवजी को प्रणाम करके अपने पितृ-गृह को गई ।४५।



पंचम अध्याय

गते बहुतिथे काले पद्मा वीक्ष्य ब्रहद्रथः ।
निरूढ यौवना पुत्री विस्मित पापशङ्कया ।१।
कौमुदी प्राह महिषी पद्मोद्वाहेऽत्र क नृपम् ।
वरयिष्यामि सुभगे ! कुलशील समन्वितम् ।२।
सा तमाह पति देवो शिवेन प्रतिभाषितम् ।
विष्णुरस्य: पतिरिति भविष्यति न सशय ।३।
इति तस्यावच. श्रुत्वा राजा प्राह कदेतिताम् ।
विष्णु: सर्व गुहावास· पाणिमस्या ग्रहीस्यति ।४।
न मे भाग्योदय· कश्चित् ये न जामातर हरिम् ।
वरयिष्यामि कन्यार्थे वेदवत्या मुनेर्यथा ।५।
इमा स्वय वरा पद्मा पद्मामिव महोदधे ।
मथनेऽसुरदेवाना तथा विष्णुर्ग्रहीष्यति ।६।

शुकदेव जी ने कहा—बहुत समय व्यतीत होने पर जब पुत्री को

राजा बृहद्रथ ने उसे यौवनावस्था के लक्षणो से युक्त देखा तब वह पाप की शका से चिन्ता करने लगा ।१। तब राजा ने अपनी रानी कौमुदी के प्रति कहा कि हे सुभगे ! तुम मुझे परामर्श दो कि अपनी प्रिय पुत्री के विवाहार्थ किस शीलगुण सम्पन्न एव श्रेष्ठ कुलोत्पन्न राजा को आमन्त्रित किया जाय ? ।२। यह सुन कर रानी कौमुदी ने राजा को भगवान शकर के वचन स्मरण कराते हुए कहा कि इसके पति भगवान् श्री हरि ही होगे, इसमे सशय नही है ।३। उसके यह वचन सुनकर राजा बृहद्रथ ने रानी से पूछा कि हे प्रिये ! यह तो बताओ कि भगवान् विष्णु कितने समय मे इसका पाणिग्रहण कर लेगे ।४। हे प्रिये ! अभी तो हमारा ऐसा भाग्योदय नही हुआ जा न पडता कि जिससे प्रभाव से वेदवती के समान मैं भी स्वयवर मे भगवान् श्री हरि को अपने जामाता के रूप मे प्राप्त कर सकू ँ ।५। देवताओ और दैत्यो के द्वारा मथन किये जाते समुद्र से उत्पन्न हुई पद्मासना पद्मा के समान मेरी इस पद्मा को स्वयवर मे भगवान् श्री हरि वरण करलें ।६।

इति भूपगणान्भूप समाहूय पुरस्कृतान् ।
गुणशीलवयोरूप विद्याद्रविण सवृतान ।७।
स्वयवरार्थ पद्मायाः सिहले बहुमङ्गले ।
विचार्य कारयामास स्थान भूपनिवेशनम् ।८।
तत्रायाता नृपा; सर्व विवाह कृत निश्चयाः ।
निज सैन्यै; परिवृता, स्वर्णरत्न विभूषिता ।६।
रथान्गजानश्ववरान्समारूढा महाबला. ।
श्वेतच्छत्रकृतच्छायाः श्वेतचामर वीजिता. ।१०।
शस्त्रास्त्रतेजसा दीप्ता देवा सेन्द्राइवाभवन ।
रुचिराश्व: सुकर्मा च मदिराक्षो दृढाशुगः ।११।
कृष्णसारः पारदश्च जीमूतः क्रूरमर्दन ।
काश कुशाम्बुर्वसुमान् कङ्क क्रथन सञ्जयौ ।१२।
गुरुमित्र: प्रमाथी च विजृम्भ सञ्जयोऽक्षम ।

एते चान्ये च बहवः समायाता महाबलाः ।१३।

ऐसा सोचते हुए राजा बृहद्रथ ने, अपनी कन्या के स्वयवर के निमित्त गुणवान, शीलवान, रूपवान, विज्ञ एव महान् ऐश्वर्य वाले युवावस्था से परिपूर्ण राजाओ को सम्मान सहित आमंत्रित किया ।७। इस प्रकार उस सिंहल देश मे पद्मा के स्वयवर का उत्सव मनाया जाने लगा बहुत प्रकार के मगल होने लगे और राजाओ के निवास आदि के लिए स्थान सज्जित किये जाने लगे ।८। विवाह की इच्छा से सुवर्ण, मणि-रत्नादि से विभूषित हुए राजागण देश विदेश से अपनी सेनाओ के सहित वहाँ आने लगे ।९। वे सभी बलवान् राजागण रथ, अश्व, गज आदि विभिन्न वाहनो पर सवार होकर वहाँ आये। उनके ऊपर श्वेत छत्र लगाये और चमर डुलाये जाते थे । १० । उस समय शस्त्रादि से दैदीप्यमान वे सब राजागण ऐसे शोभा पाने लगे जैसे देवताओ के समाज मे इन्द्र सुशोभित होते हैं । रुचिराश्व, सुकर्मा, मदिराक्ष, दृढाशुग, कृष्ण-सार, पारद, जीमूत क्रूरमर्दन, काश, कुशाम्बु, वसुमान, कक, क्रथन, सजय, गुरुमित्र, प्रमाथी, विजृम्भ सञ्जय, अक्षम आदि अनेक महा-पराक्रमी नरेशगण वहाँ एकत्र होगये ।११-१३।

विविशुस्ते रङ्गगता स्वस्वस्थानेषु पूजिता. ।
वाद्यताण्डवसहृष्टाश्चित्र माल्यम्बराधराः ।१४।
नानाभोगसुखोद्रिक्ता कामरामा रतिप्रदा· ।
नानालोक्य सिहलेश स्वा कन्या वरवर्णिनीम् ।१५।
गौरी चन्द्रनना श्यामा तारहारविभूषिताम् ।
मणिमुक्ताप्रवालैश्च सर्वाङ्गालकृतां शुभाम् ।१६।
कि माया मोहजननी कि वा कामप्रियां भुवि ।
रूपलावण्यसम्पयन्या न चान्यमिह दृष्टवान ।१७।
स्वर्गे क्षितौ वा पातालेऽप्यह सर्वत्रगो यदि ।
पश्चद्दासीगणाकीर्णां सखीभिः परिवारिताम् ।१८।

वे राजागण विविध प्रकार के वस्त्राभूषण, माला आदि से विभूषित होकर रगभूमि मे आकर सादर सम्मानित होते हुए सुखपूर्वक अपने-२ अपने स्थान पर बैठ गये ।१४। विभिन्न प्रकार के भोगो और ऐश्वर्य से सम्पन्न, रमणीय, चरित्र वाले एव सब को प्रसन्न करने के स्वभाव वाले राजाओ को देखकर सिंहलेश बृहद्रथ ने अपनी वरवर्णिनी कन्या को स्वयवर मे बुलाया ।१५। गौरी, चन्द्रानना, श्यामा मणि-मोती रत्नो आदि से सब प्रकार विभूषित, अत्यन्त सुन्दर हार को धारण किये हुए वह पद्मावती मोहमयी माया अथवा कामदेव की साक्षात् पत्नी ही अवतरित हुई प्रतीत होने लगी । मैं स्वर्ग, मर्त्यलोक, पाताल सभी लोको मे तो गमन करता हूँ । परन्तु ऐसी रूप लावण्य वाली कोई अन्य कन्या मैंने कही भी नही देखी । उस कन्या के पीछे दासियां चल रही थी तथा उसके चारो ओर सखियाँ थी १६-१८।

दौवारिकैर्वेत्रहस्तै शासितान्त. पुराद्बहिः ।
पुरोबन्दिगणाकीर्णा प्रापयामास ता शनै. ।१९।
नूपुरै. किङ्किणीभिश्च क्वणन्ती जनमोहिनीम् ।
स्वागताना नृपाणाञ्च कुल शील गुणान्बहून ।२०।
शण्वन्ती हसगमना रत्नमालाकरग्रहा ।
रुचिरापाङ्गभङ्गेन प्रेक्षन्ती लोलकुण्डला ।२१।
नृत्यकुन्तलसोपान गण्ड मण्डल मडिता ।
किञ्चित्स्मेरोल्लसद्वक्रदशनद्योतदीपिता ।२२।
वेदीमध्यारुण क्षौमवसना कोकिलस्वना ।
रूप लावण्य पण्येन क्रतुकामा जगत्रयम् ।२३।
समागता तां प्रसमीक्ष्य भूपाः समोहिनी काम विमूढ चित्ता· ।
पेतुः क्षितौ विस्मृतवस्त्रशस्त्रा रथाश्वमत्तद्विपवाहनास्ते ।२४।

नगर के बाहर दौवरिकगण हाथो मे बेत लिए हुए अन्त पुर के शासन मे सलग्न थे । सभास्थल के अगले भाग मे बदीगण खडे थे । उस रग भूमि मे राजकुमारी पद्मा मदगति से प्रविष्ट हुई ।१९। नूपुर और

किङ्कणी से लोकों को मोहने वाली झकार करती हुई और आगत नरेशो के कुल, गुण, शील आदि का वर्णन श्रवण करती हुई वह हंसगति वाली राजकन्या हाथ मे रत्नमाला लिए हुए अपने चचल अगो से शोभा को पाती हुई और कटाक्षपूर्वक सब को देखती हुई बढती जा रही थी। वह हिलते हुए कुण्डल वाली, केशकुन्तल की चचलता से युक्त, सुन्दर ग्रीवा वाली, विकसित मुख से मद मुसकराती हुई, जिसके दांतो की पक्तियाँ चमक रही थी। लाल रग के रेशमी वस्त्र धारण किये हुए, कोकिला जैसे कण्ठ स्वर वाली, जिसके रूप लावण्य से तीनो लोक मोहित हो रहे थे, उस मनमोहिनी सुकुमारी राज कन्या को रगभूमि मे घूमती हुई देखकर कामदेव के वशीभूत हुए राजागण ऐसे विह्वल चित्त होगये कि उनके शस्त्रास्त्र और वस्त्रादि सभी खुल-खुल कर पृथिवी पर गिरने लगे।१९-२४।

तस्या· स्मरक्षोभ निरीक्षणेन स्त्रियो बभूवु· कमनीयरूपा: ।
बृहन्नितम्बस्तनभारनम्रा सुमध्यमास्तत्स्मृतिजातरूपा.।२५।
विलासहास व्यसनातिचित्रा: कान्तानन. शोणसरोज नेत्रा: ।
स्त्रीरूपमात्मानमवेक्ष्य भूपास्तामन्वगच्छन्विशदानुवृत्या।२६।
अह वटस्थ: परिधर्षितात्मा पद्माविवाहोत्सवदर्शनाकुल. ।
तस्या वचोऽन्तर्हृदि दु खिताया: श्रोतु स्थित. स्त्रीत्वमितेषु तेषु ।
जाहीहि कल्के कमलाविलाप श्रुत विचित्र जगतामधीश ।
गते विवाहोत्सवमङ्गले सा शिव शरण्य हृदये निधाय।२८।
तान्दृष्ट्वा नृपती.गजाश्वरथिभिरत्यक्तान्सखित्व गतान् ।
स्त्रीभावेन समन्वितानुगतान्पद्मा विलोक्यान्तिके ।
दीना त्यक्तविभूषणा विलखिती पादागुलै. कामिनी ॥
ईश कर्तुं निजनाथमीश्वरवचस्तथ्य हरिसाऽस्मरत् ।२९।

काम से विमोहित हुए उन राजाओ ने जैसेही उस राजकन्या को वासनामय नेत्रो से देखा वैसे ही वे जिस रूप पर लालायित हुए थे, वैसे

ही रूप वाली कमनीय नारी का रूप उन्हे प्राप्त होगया ।२५। इस प्रकार नारी सुलभ हास, विलास, व्यसन, चातुर्य, सुन्दर मुख और कमल जैसे नेत्रो को प्राप्त हुए वे राजागण अपने को स्त्री हुए देख कर पद्मा के पीछे पीछे उसकी सहेली बनकर चलने लगे ।२६। उस समय पद्मा के विवाह का वह उत्सव देखने के निमित्त मैं पास ही के एक वृक्ष पर बैठ गया था । जब वे राजागण स्त्री रूप हो गये तब तो पद्मा अत्यन्त शोकित ही उठी । मैं उसके विलाप को सुनता रहा । हे लोक स्वामिन् ! उस मगलमय उत्सव के इस प्रकार समाप्त हो जाने पर पद्मा ने भगवान् शकर का ध्यान कर जो विलाप किया था, उस करुण विलाप को आप श्रवण कीजिये । पद्मा ने देखा कि सभी राजागण मुझे देखते ही अपने हाथी, अश्व, रथ आदि से विलग होकर स्त्री रूप मे मेरी सहेली होकर साथ-साथ चल रहे हैं, तो वह अत्यन्त दीनतापूर्वक अपने आभूषणो को त्याग कर धरती को कुरेदने लगी । फिर वह शिवजी के वरदान की सफलता के हेतु भगवान् विष्णु का पति भाव से ध्यान करने लगी ।२७–२९।



षष्ठ अध्याय

तत. सा विस्मितमुखी पद्मा निजजनैर्वृता ।
हरिं पति चिन्तयन्ती प्रोवाच विमला स्थिताम् ।१।
विमले किं कृत धात्रा ललाटे लिखन मम ।
दर्शनादपि लोकाना पुसा स्त्रीभावकारकम् ।२।
ममापि मन्दभाग्यया पापिन्या. शिवमेवनम् ।
विफलत्व मनुप्राप्त बीजमुप्त यथोपरे ।३।
हरिर्लक्ष्मीपति सर्वंजगतामधिप प्रभु ।
मत्कृतेऽप्यभिलाष किं करिष्यति जगत्पति. ।४।
यदि शम्भोर्वचो मिथ्या यदि विष्णुर्न मां स्मरेत् ।
तदाहमनले देह त्यक्ष्यामि करिभाविता ।५।

शुकदेव जी बोले—तदनन्तर विस्मित मुख वाली पद्मा अपनी सहेलियो के मध्य स्थित हुई, भगवान विष्णु को पतिरूप मे विचार करती हुई, अपने निकट स्थित विमला नाम की सहेली से कहने लगी ।१। पद्मा बोली—हे विमले ! क्या ब्रह्मा ने मेरे भाग्य मे यही लिख दिया है कि जो पुरुष मुझे देखे, वह तुरन्त स्त्रीत्व को प्राप्त हो जाय ।२। हे सखी ! जैसे मरुभूमि मे बोया गया बीज निष्फल होता है, वैसे ही मुझ अभागिनी एव पापिनी द्वारा भगवान् शकर की, की गई उपासना व्यर्थ होगई ।३। भगवान् रमापति विष्णु सम्पूर्ण विश्व के अधीश्वर और प्रभु हैं मैं उन्हे पति रूप मे प्राप्त करने की कामना करूँ तो क्या वे मुझे स्वीकार करेगे ? ।४। यदि भगवान शम्भु का वचन मिथ्या हो गया और भगवान विष्णु ने मेरी कामना नही की तो मैं उन्ही भगवान् श्री हरि का ध्यान करती हुई अपने देह को अग्नि कुण्ड मे डाल कर भस्म कर दूँगी ।५।

क्व चाहं मानुषी दीना क्वाते देवो जनार्दनः ।
निगृहीता विधात्राहं शिवेन परिवंचिता ।६।
विष्णो च परित्यक्ता मदन्या नात्र जीवति ।७।
इति नाना विलपिन्या वचनं शोचनाश्रयम् ।
पद्मायाश्चरुचेष्टाया। श्रुत्वायातस्तवान्तिके ।८।
शुकस्य वचनं श्रुत्वा कल्किः परमविस्मितः ।
तं जगाद् पुनर्याहि पद्मां बोधयितुं प्रियाम् ।९।
मत्सन्देशहरो भूत्वा यद्रूपगुणकीर्तनम् ।
श्रावयित्वा पुनः कीर ! समायास्यासि बांधव ।१०।

कहाँ तो मैं दीन मानुषी और कहाँ वे जनार्दन प्रभु—इन दोनो मे विवाह की कल्पना करने से ही मैं तो यह समझती हूँ कि विधाता मुझ से विमुख है, तभी तो शिवजी ने मुझे वैसा वर देकर ठग लिया है- ।६। भगवान श्री हरि के द्वारा परित्यक्ता होकर मेरे अतिरिक्त और कौन जीवित रह सकता है ।७। सुन्दर चरित्र वाली पद्मावती इस प्रकार से विलाप करती थी । उसके शोकाकुल वचनो को सुनकर ही मैं आपके निकट उपस्थित हुआ हूँ ।८। शुक के यह वचन सुनकर अत्यन्त विस्मय को प्राप्त हुए कल्कि जी ने शुक के प्रति कहा—हे शुक मेरी प्रिया पद्मा को आश्वासन् देने के निमित्त तुम पुनः सिंहल देश को प्रस्थान करो ।९। हे शुक ! तुम हमारे संदेश वाहक होकर पद्मा को हमारे रूप गुण का वृत्तान्त सुनाना और फिर हे खग ! तुम शीघ्र ही यहाँ लौट आना ।१०।

सा मे पतिरहं तस्या दैवविनिर्मितः ।
मध्यस्थेन त्वया योगमावयोश्च भविष्यति ।११।
सर्वऽज्ञसि विधिज्ञोऽसि कालज्ञोऽसि कथामृतं ।
तामाश्वास्य ममाश्वासकथास्तस्याः समाहरः ।१२।
इति कल्केर्वचः श्रुत्वा शुकः परमहर्षितः ।
प्रणम्य तं प्रीतमनाःप्रययौ सिंहलं त्वरन् ।१३।

खग: समुद्रपारेण स्नात्वा पीत्वामृतं पय ।
बीजपूरफलाहारो ययौ नाजजिनिवेशमम् ।१४।
तत्र कम्यापुर ग्रत्वावृक्षे नागेश्वेर वसन् ।
पद्मालोक्य तां प्राह मुको मानुष भाषया ।१५।

अवश्य ही पद्मा मेरी पत्नी और मैं उसका पति हूँ । विधाता ने ही यह सयोग नियत किया है और यह कार्य तुम्हारी मध्यस्थता मे ही सम्पम्न होना है । ११। तुम सर्वज्ञ हो, नियम और काल के भी ज्ञाता हो । तुम अपने वचनामृत से समझा कर और मेरे द्वारा ग्रहण किये जाने का आश्वासन देकर यहाँ लौट आओ । ।१२। कल्किजी का ऐसा आदेश पाकर मुदित हुए शुक ने उन्हे प्रणाम किया और शीघ्रतापूर्वक सिंहल-देश को प्रस्थान किया ।१३। मार्ग मे, समुद्र के पार जाकर शुक ने स्नान करके उस अमृतोपम जल का पान और बिजौरे के फलको भक्षण किया और फिर राजभवन मे प्रविष्ट होगया ।१४। वह अन्त पुर मे पहुच कर राजकन्या के निवास स्थान पर जाकर नागकेशर के एक वृक्ष पर चढ गया और पद्मा को देख कर मनुष्यो की भाषा मे उससे बोला ।१५।

कुशलं ते वरारोहे ! रूप यौवन शालिनी ।
त्वा लोलनयनां मन्ये लक्ष्मी रूपमिवापराम् ।१६।
पद्मानना पद्मगन्धां पद्मनेत्रा कराम्बुजे ।
कमल कालयन्तीं त्वां लक्षयामि परां श्रियम् ।१७।
किं धात्रा सर्वजगतां रूपलावण्यसम्पदाम् ।
निर्मितासि वरारोहे ! जीवानां मोहकारिणि ! ।१८।
इति भाषितमाकर्ण्य कीरस्यामितमद्भुतम् ।
हसन्ती प्राह सा देवी त पद्मा पद्ममालिनी ।१९।
कस्त्वं कस्मादागतोऽसि कथ मा शुकरूपधृक् ।
देवो वा दानवो वा त्वमागतोऽसि दयापरः ।२०।

शुक ने कहा—हे वरारोहे ! हे रूप यौवन सम्पन्ने तुम कुशल पूर्वक तो हो ? तुम अपने चचल नेत्रो से सुशोभित द्वितीय लक्ष्मी ही प्रतीत होती हैं ।१६। तुम कमल जैसे मुख वाली, कमलगधा, कमलाक्ष तथा कमल के समान हाथो वाली हो। अपने हाथ मे तुमने कमल धारण किया हुआ है, यह लक्षण तुम्हारा लक्ष्मी होना सूचित करता है· ।१७। हे वरारोहे ! विधाता ने क्या सम्पूर्ण विश्व का रूप लावण्य तुम्ही मे भर कर तुम्हे ही सब जीवो को मोहित करने वाली बना दिया है ।१८। शुक के यह अद्भुत वचन सुनकर पद्ममालधारिणी पद्मा ने हँस-कर कहा १६। तुम कौन हो ? कहाँ से आगमन हुआ है ? तुम इस शुक वेश मे देवता हो अथवा दानव ? तुम यहाँ आकर किसलिए ऐसी दया प्रदर्शित कर रहे हो ।२०।

सर्वज्ञोऽह कामगामी सर्वशास्त्रार्थतत्वविवित् ।
देवगन्धर्वभूपानां सभासु परिपूजित ।२१।
चरामि स्वेच्छाया खे त्वामीक्षणार्थमिहागत· ।
त्वामह हृदि सतप्तां त्यक्तभोग मनस्विनोम् ।२२।
हास्यालाप-सखी-सङ्ग देहाभरण-वर्जिताम् ।
विलोक्याह दीनचेता पृच्छामि श्रोतुमोरितम् ।
कोकिलालाप-सन्ताप-जनक मधुर मृदु ।२३।
तव दन्तौष्ठजिह्वाग्रलुलिताक्षरपत्त्कय
यत्कर्णकुहरे मग्नास्तेषा कि वर्ण्यते तत ।२४।
सौकुमार्यं शिरीषस्य क्व कान्तिर्वा निशाकरे ।
पीयूष क्व वदन्त्येवानन्द ब्रह्मणि ते बुधा. ।२५।

शुक ने कहा—देवी ! मैं सब कुछ जानने वाला तथा सब शास्त्रो का तत्वज्ञानी हूँ। मैं स्वेच्छापूर्वक सर्वत्र गमन करने मे समर्थ हूँ। देवता, गधर्व अथवा राजाओ की सभा मे मेरा पूर्ण सम्मान होता है ।२१। मैं गगन मडल मे अपनी इच्छा के अनुसार विचरण करता हूँ। तुम हृदय

मे सन्तप्त तथा भोग सुख से परे एवं मनस्विनी के दर्शनार्थ ही यहाँ आ पहुँचा हूँ ।२२। तुमने हास्यालाप, सखियोका संग और आभरणको त्याग रखा है । तुमको इस स्थिति मे देखकर दीन-हृदय हुआ मै तुम्हारी कोकिल जैसी मधुर वाणी मे तुम्हारे सन्तप्त रहने कारण जानना चाहता हूँ । २३। तुम्हारे, ओष्ठ और जिह्वा के अग्र भाग मे निसृत अक्षर पंक्तियाँ जिसके कानो को सुनाई पड जाय, उसकी तपस्या का प्रभाव कहाँ तक कहा जा सकता है ? ।२४। तुम्हारे समक्ष शिरस के पुष्पो की कमनीयता भी क्या है ? तथा चन्द्रकान्ति भी क्या वस्तु है ? ज्ञानीजन जिस ब्रह्म रूपी पीयूष का वर्णन करते है, वह आनन्द भी तुम्हारी क्या समता करेगा ? ।२५।

तिलकालकसमिश्र लोलकुण्डलमण्डितम् ।२६।
लोलेक्षणोल्लसद्वक्त्रनेत्र पश्यताम् न पुनर्भव. ।२७।
वृहद्रथसुते ! स्वाधि वद भामिनि यत्कृते ।
तप क्षीणामिव तनू लक्षयामि रुज विना ।
कनकप्रतिमा यद्वत मासुभिर्मलिनीकृता ।२८।
कि रूपेण कुलेनापि धनेनाभिजनेन वा ।
सर्व निष्फलतामेति यस्यदैवमदक्षिणम् ।।२९।।
श्रृणु कीर समाख्यान यदि वा विदित तव ।
बाल्य-पौगण्ड-कैशोरे हरसेवा करोम्यहम् ।।३०।।

तुम्हारे तिलक, अलक से युक्त चचल कुण्डलो से मण्डित तथा चचल नेत्रो से सुशोभित सुन्दर मुख का दर्शन करने वाले को पुनर्जन्म धारण नही करना होता ।२६ २७। हे बृहद्रथसुते ! अपने मानसिक दु ख का कारण मुझे बताओ । हे भामिनि ! तुम्हारी देह बिना रोग के ही, तप से क्षीण दिखाई दे रही है । जैसे मैल के कारण कचन की प्रतिमा मैली हो जाती है, वैसे ही तुम्हारा देह भी मलीन होगया है ।२८। पद्मा ने कहा—धन अथवा उच्च कुल मे उत्पन्न होने से ही

क्या प्रयोजन सिद्ध होना है, अर्थात् दैव की प्रतिकूलता हो तो यह सभी निष्फल हैं ।२६। हे कीर ! यदि तुम्हे हमारा वृत्तान्तज्ञात न हो तो सुनो— मैंने अपनी बाल और किशोर अवस्था मे भगवान शकर की आराधना की थी ।३०।

तेन पूजाविधानेन तुष्टो भूत्वा महेश्वर ।
वर वरय पद्मे ! त्वमित्याह प्रियया सह ॥३१॥
लज्जयेधोमुखीमग्रे स्थिता मा वीक्ष्य शङ्कर. ।
प्राह ते भविता स्वामी हरिर्नारायण प्रभु ॥३२॥
देवो वा दानवो वान्यो गन्धर्वो वा तवेक्षणात् ।
कामेन मनसा नारी भविष्यन्ति न सशय ॥३३॥
इति दत्वा वर सोम प्राह विष्ण्वर्च्चन यथा ।
तथाह ते प्रवक्ष्यामि समाहितमना शृणु ।३४।
एता. सख्यो नृपा पूर्वमाहूता ये स्वयम्वरे ।
पित्रा धर्मार्थिना दृष्ट्वा रम्या मा यौवनान्विताम् ।३५।

मेरे द्वारा किये गये उस पूजन से प्रसन्न हुए शिवजी ने पार्वतीजी के सहित प्रकट होकर मुझसे कहा कि हे पद्मे ! वर माँगो ।३१। फिर मुझे लज्जापूर्वक सिर झुकाये देख कर उन्होने कहा कि तुम्हारे पति भगवान् नारायण होंगे ।३२। देवता, दानव, गन्धर्व अथवा जो कोई भी हो, यदि तुम्हे काम-भाव से देखेगा तो तुरन्त स्त्री-रूप हो जायगा, इसमे सन्देह नही है ।३३। यह वर देने के पश्चात् शिवजी ने भगवान् विष्णु की जो पूजन विधि बताई थी, वह कहती हूँ, समाहित चित्त से सुनो।३४। यह जितनी भी सखियाँ हैं, सभी पहिले राजा थे । मेरे पिता ने मेरी यौवनावस्था देख कर धर्म की रक्षा के निमित्त इन सब राजाओ को मेरे स्वयम्बर मे बुलाया था ।३५।

स्वागतास्ते सुखासीना विवाहकृतनिश्चय ।
युवानो गुणवन्तश्चरूपद्रविणसम्मता· ।३६।

स्वयवरगता मा ते विलोक्य रुचिरप्रभाम् ।
रत्नमालाश्रितकरा निपेतु काममोहिता ।३७।
तत उत्थाय सभ्रान्ता सप्रेक्ष्य स्त्रीत्वमात्मन ।
स्तनभार नतम्बेन गुरुणा परिणामिता ।३८।
ह्रिया भिया च शत्रूणा मित्राणामतिदु खदम् ।
स्त्रीभाव मनसा ध्यात्वा मामेवानगता शुक ।
पारिचर्य्या हररता सख्य सवगुणान्विता ।
मया सम तपोध्यान पूजा, कुर्व्वन्ति सम्मता ।।४०।।
तदुदितमिति सनिशम्य कीर श्रवणमूख निजमानसप्रकाशम्।
समुचितवचनै'प्रतोक्ष्य पद्मा मुरहरयजन पुन प्रचष्टे ।।४१।।

यह सभी युवावस्था वाले, रूप, गुण एव ऐश्वर्य से सम्पन्न थे। यह सभी मेरे साथ विवाह करने की इच्छा से आकर स्वयवर-स्थल मे सुखपूर्वक बैठ गये ।३६। मुझ सुन्दर प्रभा वाली को हाथ मे रत्नमाला लेकर स्वयवर-स्थल मे घूमती देखकर यह सभी काम मोहित राजागण पृथिवी पर गिर गये ।३७। फिर जब सचेत होकर उठे तो अपने को स्त्रीत्व के सभी लक्षणो से युक्त अर्थात् स्त्री रूप मे पाया ।३८। तब तो यह अपने को स्त्री हुआ जान कर बडे दु खी हुए और शत्रु मित्र आदि की लज्जा छोड कर मेरे ही साथ चल पडे ।३६। अब यह सर्वगुण सम्पन्न नारी रूपी राजागण मेरी सखी होकर मेरे साथही भगवान् विष्णुका तप, ध्यान एव पूजन करते है ।४०। अपनी इच्छा के अनुकूल, सुनने मे सुख-दायक इस वार्ता को सुन कर शुक ने समुचित वाणी से पद्मा को प्रसन्न किया और फिर भगवान् विष्णु के पूजन के प्रसङ्ग मे प्रश्न किया ।४१।



सप्तम अध्याय

विष्णवर्च्चनं शिवेनोक्तं श्रोतुमिच्छाम्यहं शुभे ।
धन्यासि कृतपुण्यासि शिवशिष्यत्वमागता ॥१॥
अहं भाग्यवशादत्र समागम्य तवान्तिकम् ।
शृणोमि परमाश्चर्य कोराकारनिवारणम् ॥२॥
भगवद्भक्तियोगश्च जपध्यानविधि मुदा ।
परमानन्द-सन्दोह-दान-दक्ष श्रुतिप्रियम् ॥३॥
श्रीविष्णोरर्चनं पुण्यशिवेन परिभाषितम् ।
यच्छ्रद्धयानुष्ठितस्य श्रुतस्य गदितस्य च ॥४॥
मद्य पापहर पुंसा गुरुगोब्रह्मघातिनाम् ।
समाहितेन मनसा शृणु कीर यथोदितम् ॥५॥

शुक बोला—हे शुभे ! शिवजी ने भगवान् विष्णु की जो पूजा-विधि तुम्हें बताई थी, उसे मैं सुनना चाहता हूँ। तुम धन्य हो, तुम अपने पुण्य कर्म द्वारा भगवान् शिव की शिष्या हो गई हो ।१। मैं भाग्य-वशात् ही यहाँ आ पहुँचा हूँ। अब मैं अपने शुक-शरीर का निवारण करने वाली आश्चर्यमयी पूजन विधि का श्रवण करूँगा ।२। भगवान् विष्णु का जप-ध्यान एवं पूजन की यह विधि भगवद्भक्ति के देने वाली, श्रवण में सुखद एवं परमानन्ददायिनी है ।३। पद्मा ने कहा—शिव-वर्णित विष्णु के पूजन की विधि अत्यन्त पुण्यमयी है। इसके श्रद्धापूर्वक सुनने, अध्ययन करने या कहने से गोहत्या, गुरुहत्या और ब्रह्महत्या के पाप भी नष्ट हो जाते हैं। हे कीर ! इसका वर्णन शिवजी ने जिस प्रकार किया था, उसे समाहित चित्त से सुनो ।४-५।

कृत्वा यथोक्तकर्माणि पूर्वाह्णे स्नानकृच्छुचि ।
प्रक्षाल्य पाणी पादौ च स्पृष्ट्वाप स्वासने वसेत् ।६।
प्राचीमुख. सयतात्मा साङ्गन्यास प्रकल्पयेत् ।
भूतशुद्धि ततोऽर्घ्यस्य स्थापन विधिवच्चरेत् ।।७।।
तत. केशवकृत्यादिन्यासेन तन्मयो भवेत् ।
आत्मान तन्मय ध्यात्वा हृदिस्थ स्वासने न्यसेत् ।।८।।
पाद्यार्घ्याचमनीयाद्यै: स्नानवासोविभूषणै ।
यथोपचारै. सपूज्य मूलमन्त्रेण देशिक ।।६।।
ध्यायेत्पादामदकेशान्त हृदयाम्बुजमध्यगम् ।
प्रसन्नवदनं देव भक्ताभीष्टफलप्रदम् ।१०

प्रात काल स्नानादि नित्यकर्म से निवृत्त होकर हाथ-पावो का प्रक्षालन कर, जल स्पर्श करके अपने आसन पर बैठ जाय ।६। फिर सयतात्मा होकर पूर्वाभिमुख हो और अङ्गन्यास भूतशुद्धि तथा विधिवत् अर्घ्य स्थापन करे ।७। फिर केशव कृत्यादि न्यास युक्त होकर हृदय मे विष्णु का ध्यान करता हुआ, उन्हे कल्पित आसन पर प्रतिष्ठित करे ।८। फिर पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय, स्नानार्थ जल, वस्त्राभूषण आदि भेंट करे और यथोपचार देशिक मूलमत्र मे पूजन करे ।६। तदुपरान्त भक्तो को इच्छित फलदायक, हृदयाम्बुज मे रमण करने वाले, प्रसन्न मुख भगवान विष्णु का चरणकमलो मे केश पर्यन्त ध्यान करे ।१०।

योगेन सिद्धिविबुधै परिभाव्यमान लक्ष्म्यालय
तुलसिकाञ्चितभक्तभृङ्गम् । प्रोत्तुङ्गरक्तनखराङ्गु-
लिपत्रचित्र गङ्गारस हरिपदाम्बुजमाश्रयेऽहम् ।११
गुल्फन्मणिप्रचयघट्टितराजहसंसिञ्चत्सुनूपुरयुत
पदपद्मवृन्तम् । पीताम्बराञ्चलविलालालवलत्पता-
क स्वर्णत्रिवक्रवलयञ्च हरे: स्मरामि ।१२
जघे सुपर्णगलनील मणिप्रवृद्धे शाभास्पदारुण-
मणिदुयतिचंचुमध्ये । आरक्तपादतललम्बनशो-

भभाने लोकेक्षणोत्सवकरे च हरे स्मरामि।१३
ते जानुनी मखपतेर्भजमूलसङ्गरङ्गोत्सवावृतत-
डिद्वसने विचित्रे । चञ्चत्पतत्रमुखनिर्गतसामगीन
विस्तारितात्मयशसी च हरे स्मरामि।१४

विष्णो कटि विधिकृतान्तमनोजभूमि जीवाण्ड-
कोषनणसङ्गदुकूलमध्याम् । मानागुणप्रकृतिपी-
तविचित्रवस्त्राध्यायेन्निबद्धवसना खगपृष्ठसस्थाम् ।१५

ध्यान के पश्चात् 'ॐ नमो नारायणाय स्वाहा" कहे और इस स्तोत्र का उच्चारण करे—योग के द्वारा सिद्ध हुए ज्ञानीजन जिनके ध्यान मे सदा रत रहते हैं, जो लक्ष्मी के आश्रय हैं, जिनके भक्तगण भृङ्ग रूपी तुलसी का सदा सेवन करते हैं, जिनके लोहित वर्ण कमलोपम नखयुक्त अँगुलिपत्रो से गगाजल निकल रहा है, उन कमल जैसे चरणो वाले नारायण की शरण लेता हूँ।११। जिनके चरणो मे विभूषित मणिमान युक्त नूपुर हस के कलरव जैसा शब्द करते है, जिन चरणो मे पीताम्बर का छोर उडती हुई ध्वजा जैसा लगता है, जिन चरणो मे स्वर्णिम त्रिवक्र नामक कडा शोभित है, उन कमल के समान चरणाम्बुजो का मैं स्मरण करता हूँ १२। गरुड के कण्ठ भूषण रूप नीलकान्त मणि की प्रभा से समुज्ज्वल जिन जघाम्रो के मध्य मे गरुड की अरुणमणि के समान लाल चोच सुशोभित है, जिन जघाम्रो के नीचे लाल पादतल स्थिर हैं, उन विश्व-लोचन के परमानन्द रूप भगवान् की जघाम्रो का मैं स्मरण करता हूँ।१३। सामगान के द्वारा गरुड जिनका यशोगान करते है उत्सव के अवसर पर चित्र विचित्र रगो से युक्त वस्त्रों की विद्युत आभा से विभूषित भगवान् की उन जघाम्रो का स्मरण करता हूँ।१४। ब्रह्मा, काल और कन्दर्प की आश्रयभूता जो कटि है तथा जो कटि दुकूल से सुशोभित रहती है, गरुड की पीठ पर स्थित विष्णु की उस कटि का मैं ध्यान करता हूँ।१५।

शातोदरं भगवतस्त्रिवलिप्रकाशभावर्त्तनाभि-
विकनद्विधिजन्मपद्नम्। नाडीनदीगणरसोत्थ-
सितन्त्रसिन्धु ध्यायेऽण्डकोषनिलय तनुलोमरेखम् ।१६
वक्ष: पयोधितनयाकुङ्कमेन धारेण कौस्तु-
भभणिप्रभया विभातम्। श्रीवत्सलक्ष्म हरि च-
न्दनजप्रसूममालोचित भगवत: सुभग स्मरामि ।१७

जो उदर त्रिवाली से सुशोभित हैं, जिस उदर के नाभि कमल से ब्रह्माजी उत्पन्न हुए हैं, जिस उदर मे नाडी रूपी सरिताम्रो के रथ से अन्त्र रूप समुद्र तरगित हो रहा है, ब्रह्माण्ड के आश्रय रूप जिस उदर मे लोभ रेखाएं सुशोभित है, भगवान् के उस उदर का मैं स्मरण करता हूँ ।१६। जिस हृदय मे समुद्रजा लक्ष्मी के वक्षस्थल की केसर लगी हुई है, जो हृदय कठहार और कौस्तुभ मणि से दमक रहा है, जो हृदय श्रीवत्स के चिह्न से युक्त है और जिस पर हरिचन्दन फूलो की माला विभूषित है उस प्रभु -हृदय का मैं स्मरण करता हूँ ।१७।

बाहू सुवेशसदनौ वलयाङ्गदादिशोभास्पदौ दुरित
दैत्यविनाशदक्षौ। तौ दक्षिणौ भगवतश्च गदासु-
नाभतेजोजितौ सुललितौ मनसा स्मरामि ।१८
वामौ भुजौ मुररिपोधृतपद्नशखौ श्यामौ करीन्द्रकर
वन्मणिभूषणाढयौ। रक्ताङ्गलिप्चयचुम्बिमजानु
मध्यौ पद्नालयाप्रियकरौ रुचिरौ स्मरामि ।१९
कण्ठ मृणालममलं मुखपङ्कजस्य लेखात्रयेणावन
मालिकया निवतम्। किवा मुक्तिवसमन्त्रकस
त्फलस्य वृन्ते चिरं भगवत सुभग स्मरामि ।२०

जिन श्रेष्ठ भुजाम्रो मे वलय अगद आदि सुन्दर आभूषण सुशोभित है, जो भुजाएं असख्य दानवो का संहार कर चुकी है, जिन भुजाम्रो की प्रभा के समक्ष गदा और चक्र आदि अस्त्रो का तेज भी नगण्य है, मैं

उन्ही भुजाओ का मन मे स्मरण करता हूँ।१८। हाथी की सूड जैसी जिन भुजाओ मे मणिमय आभूषण और शख पद्म आदि विभूषित हैं, जिन भुजाओ की लाल वर्ण वाली अगुलियाँ जानु स्पर्श कर रही हैं, उन कमलासना पद्मा को प्रसन्न करने वाली भुजाओ का मैं स्मरण करता हूँ।१९। मृणाल के समान जिस कठ मे मुखारविन्द की तीन रेखाये और वनमाला सुशोभित है तथा जो कठ मोक्ष-मत्र के शुभफल का गुच्छा-स्वरूप है, उस श्रीहरि-कठ का मैं स्मरण करता हूँ।२०।

रक्ताम्बुज दशनहासविकाशरम्य रक्ताधरौष्ठधर
कोमलवाक्सुधाढ्यम्। सनमानसीद्भवचलेक्षणपत्रचित्रं

लोकाभिराममलञ्च हरे. स्मरामि।२१
शूरात्मजावसथगन्धविदसुनाश भ्रूपल्लव स्थितिल-
यादयकर्मदक्षम्। कामोत्सवञ्च कमलाहृदयप्रका-
श सञ्चिन्तयामि हरिवक्रविलासदक्षम्।२२
कर्णौ लसनमकरकुण्डलगण्डलोलौ नानादिशाश्च
नभसश्व विकासगेहौ। लोलालकप्रचयचुम्बनकु-
ञ्चिताग्रौ लग्नौ हरेर्मणिकिरीतटे स्मरामि।२३
भाल विचित्रतिलक प्रियचारुगन्धगोरोचनारचनया
ललनाक्षिसख्यम्। ब्रह्मैकधाममणिकान्तकिरीट
जुष्ट ध्यायेन्मनोनयनहारकमोश्वरस्य।२४।

लाल कमल के समान लाल अधरो के मध्य मुसकराते हुए दाँत, शोभामय कोमल वचन, मन को प्रसन्नता प्रदान करने वाले चचल नेत्र, जिस मुखमडल मे सुशोभित हैं, प्रभु के उस मुखारविन्द का मैं स्मरण करता हूँ।२१। जिन भृकुटि पत्रों की कृपा से यम सदन की गध भी नही आती जिनके समीप ही नासिका सुशोभित रहती है, जिनके संकेतमें सृष्टि, स्थिति एव प्रलय निहित हैं, जो मदनोत्सव को प्रकट करने वाले एवं

लक्ष्मीजी के हृदय को प्रफुल्लित करने वाले हैं, हरि के उन भृकुटि-पत्रो का मैं स्मरण करता हूँ।२२। जिनमे मकराकार कुण्डल शोभा पाते हुए दिशाओं और आकाशको प्रकाशित करते है, जो अग्रभाग मे चचल अलको के स्पर्श से कुछ सकुचित हुए प्रतीत होते हैं, जो मणिमय किरीट के तीर पर स्थित हैं, भगवान के उन कानो का मैं स्मरण करता हू।२३। जिस ललाट मे सुगधित अद्भुत गोरोचन तिलक नेत्रो में मैत्री भाव प्रकट करता है, जो ललाट रूपी ब्रह्मधाम मणिमय मुकुट से दीप्तिमान् है, उस नेत्रो को आनन्द देने वाले हरि के ललाट का मैं स्मरण करता हूँ।२४।

श्रीवासुदेवचिकुर कुटिल निबद्धम् नानासुगन्धिकुसुमैः
स्वजनादरेण। दीर्घं रमाहृदयगाशमने धुनतं
ध्यायेऽम्बुवाहरुचिर हृदयाब्जमध्ये।२५
मेघाकार सोमसूर्यप्रकाश सुभ्रून्नस चक्रचापैक
मानम्। लोकातीत पुण्डरीकायताक्ष विद्युच्चैल-
ञ्चाश्रयेऽहं त्वपूर्वम् २६।
दीनं हीन सेवया वेदवत्या पास्तपैः पूरित मे
शरीरम्। लोभाक्रान्त शोकमोहाधिविद्ध कृपा
दृष्ट्या पाहि मा वासुदेव।२७

जिन कुटिल केशो मे सुगधित पुष्प गूँथ कर स्वजनो ने वेणी बनाई तथा जिन चचल केशों के दर्शन से लक्ष्मीजी का मन शान्त होता है, उन नील मेघ जैसे दीर्घ एव मनोहर केशो का मैं हृदय मे ध्यान करता हूँ।२५। मेघवर्ण वाले चन्द्रमा और सूर्य के समान प्रकाशित, इन्द्र-धनुष के समान भौंह वाले, विद्युत जैसे समुज्ज्वल वस्त्र धारण करने वाले, लोकातीत, पुण्डरीकाक्ष भगवान् विष्णु की मैं शरण लेता हूँ।२६। मैं अत्यन्त दीन, वेदोक्त सेवा से हीन और पाप-ताप युक्त देह वाला हूँ। मैं लोभ, शोक, मोह और मानसिक व्यथा से व्यथित हूँ। हे वासुदेव ! अपनी कृपा दृष्टि द्वारा मेरी रक्षा कीजिये।२७।

ये भक्त्याद्या ध्यायमाना मनोज्ञां व्यक्ति विष्णोः

षोडशश्लीकपुष्पैः । स्तुत्वा नत्वा पूजयित्वा विधिज्ञाः
शुद्धा मुक्ता ब्रह्मसौख्य प्रयान्ति ।२८।
पद्मोरितमिद पुण्य शिवेन परिभाषितम् ।
धन्य यशस्यमायुष्य स्वर्ग्यं स्वस्त्यन दरम् ।२९।
पठन्ति ये महाभागास्ते मुच्यन्तेऽहसोऽखिलात्
धर्म्मार्थकाममोक्षाणां परत्रेह फलप्रदम् ।३०।

इस विधि को जानकर जो मनुष्य भक्ति भाव से भगवान् विष्णु के इस रूप का ध्यान करके षोडश श्लोक रूपी पुष्पो से स्तुति और नमन करके पूजा करते हैं, वह शुद्ध और मुक्त होकर ब्रह्मानन्द को प्राप्त होते हैं ।२८। शिवोक्त यह स्तोत्र, जिसे पद्मा ने कहा है, अत्यन्त पुण्य-मय है तथा धन, यश, आयुष्य, स्वर्ग एवं मगल का देने वाला है ।२९। यह स्तोत्र इहलोक और परलोक मे धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष रूप चारों पदार्थो का दाता है । इसका पाठ करने वाले महाभाग पुरुष सभी पापो से मुक्त हो जाते हैं ।

—*—

द्वितीयांश—

प्रथम अध्याय

इति पद्मावचः श्रुत्वा कीरो धीर सता मतः
कल्किदूत· सखीमध्ये स्थिता पद्मामथाब्रवीत् ।१।
वद पद्मे साङ्गपूजा हरेरद्भुतकर्म्मण· ।
यामास्थाय विधानेन चरामि भुवनत्रयम् ।२।
एव पादादि केशान्तं ध्यात्वा त जगदीश्वरम् ।
पूर्णात्मा देशिको मूल मन्त्र जपति मन्त्रवित् ।३।
जपादनन्तर दण्ड-प्रणति मतिमाश्चरेत् ।
विष्वक्सेनादि कानान्तु दत्वा विष्णुनिवेदितम् ।४।
तत उद्वास्य हृदये स्नापयेन्मनसा सह ।
नृत्यन्गायन्हरेर्नाम त पश्यन्सर्वत स्थितम् ।५।

सूत जी बोले—पद्मा के वचन सुन कर सत्य मत वाले धीर एव कल्कि-दूत शुक ने सखियो के मध्य बैठी हुई पद्मा से कहा ।१। हे पद्मे ! अद्भुत कर्म वाले भगवान विष्णु की पूजा का सागोपाग वर्णन करो। क्योकि मैं उसका विधिवत् अनुष्ठान करके तीनो लोको मे विचरण करूँगा ।२। पद्मा बोली—इस प्रकार चरणो से केश पर्यन्त भगवान विष्णु का ध्यान करके मंत्र के ज्ञाता को मूल मन्त्र का जप करना चाहिए ।३। जप के पश्चात् भगवान् को दण्डवत् प्रणाम करे। फिर विष्वक्सेन आदि को पाद्य, अर्घ्य नैवेद्य आदि समर्पित करके भगवान् को निवेदन किये गये वस्त्र को धारण कर विष्णु का स्मरण करता हुआ नृत्य-गान और हरिनाम का कीर्तन करे ।४-५।

तत. शेषं मस्तकेन कृत्वा नैवेद्यभुग्भवेत् ।
इत्येतत्कथित कीर ! कमलानाथसेवनम ।६।
सकामना कामपूरणकामामृतदायकम् ।
श्रोत्रानन्दकर देव-गन्धर्व्व-नर-हृत्प्रियम् ।७।
ममीरित श्रुतसाध्वि भगवद्भक्तिलक्षणम् ।
त्वत्प्रसादात्पापिनो मे कीरस्य भुवि मुक्तिदम् ।८।
किन्तु त्वा काञ्चनमयी प्रतिमा रत्नभूषिताम् ।
सजीवामिव पश्यामि दुर्लभा रूपिणी श्रियम् ।९।
नान्या पश्यामि सदृशी रूपशोलगुणैस्तव ।
नान्यो योग्यो गुणी भर्त्ता भुवनेऽपि न दृश्यते ।१०।

फिर भगवान् का निर्माल्य शेष मस्तक पर धारण करे और नैवेद्य ग्रहण करे । हे शुक ! कमलानाथ की सेवा का यह विधान मैने तुमसे कह दिया ।६। इस प्रकार की पूजा से कामना वालो की कामना पूर्ण होती और कामना न करने वाले को मोक्ष मिलता है । यह कथा देवता, गन्धर्व और मनुष्य सभी के श्रोत्रो को आनन्द देने वाली है ।७। शुक बोला—हे साध्वी ! तुमने मुझ पापिष्ठ तोते को भी मोक्ष देने वाली हरि-भक्ति की विधि कही है, उसे तुम्हारी कृपा से मैंने भली प्रकार सुना है ।८। परन्तु मैं तुम्हे रत्नालकारो से विभूषिता, स्वर्णमयी प्रतिमा के समान तीनो लोको मे दुर्लभ साक्षात् लक्ष्मी रूप मे देख रहा हूँ ।९। ससार मे तुम्हारे समान रूप शील और गुणमयी अन्य नारी मुझे दिखाई नही देती तथा तुम्हारे योग्य कोई अन्य गुणवान् भर्त्ता भी मुझे लोक मे दिखाई नही देता ।१०।

किन्तु पारे समुद्रस्य परमाश्चर्यरूपवान् ।
गुणवानीश्वर साक्षात्कश्चिद्दृष्टोऽतिमानुष. ।११।
न हि धातृकृत मन्ये शरीर सर्व सौभगम् ।
यस्य श्रीवासुदेवस्य नान्तर ध्यानयोगतः ।१२।

त्वया ध्यात तु यद्रूप विष्णोरमिततेजसः ।
तत्साक्षात्कृतमित्येव न तत्र कियदन्तरम् ।१३।
ब्रूहि तन्मम किं कुत्र जातः कीर परावरम् ।
जानासि तत्कृतं कर्म्म विस्तरेणात्रवर्णय ।१४।
वृक्षादागच्छ पूजा ते करोमि विधिबोधिताम् ।
बीजपूरफलाहार कुरु साधु पयः पिब ।१५।

किन्तु, समुद्र के उस पार एक परम आश्चर्यमय रूप वाला, गुणी, अलौकिक एव साक्षात् ईश्वर स्वरूप मनुष्य मुझे दिखाई दिया है ।११। उसका सर्व सौन्दर्यमय देह ब्रह्मा द्वारा रचित प्रतीत नही होता । ध्यान-योग से देखे तो उसमे और भगवान वासुदेव मे कुछ भी अन्तर नही मिलेगा ।१२। हे पद्मे ! तुम भगवान् विष्णु के जिस अमित तेजमय स्वरूप का ध्यान करती हो, उस रूप मे और उस मनुष्य के रूप मे कोई अन्तर दिखाई नही देता ।१३। पद्मा ने कहा—हे शुक ! तुमने अभी क्या कहा है ? उस बात को पुनः कहो । उन्होने अवतार लिया है ? यदि तुम उनका पूर्ण वृतान्त जानते हो तो मुझे विस्तार पूर्वक सुनाओ ।१४। तुम वृक्ष से उतर आओ, मैं विधिवत् तुम्हारा सत्कार करूँगी । तुम बीजपूर फलो का भक्षण और दुग्ध का पान करो ।१५।

तव चचुयुग पद्मरागादरुणमुज्ज्वलम् ।
रत्नसघट्टितमह करोमि मनसः प्रियम् ।१६।
कन्धर सूर्यकान्तेन मणिना स्वर्णघट्टिना ।
करोम्याच्छादनं चारु-मुक्ताभिः पक्षति तव ।१७।
पतत्र कुंकुमेनांगं सौरभेणातिचित्रितम् ।
करोमि नयनानन्ददायक रूपमीदृशम् ।१८।
पुच्छमच्छमणिव्रात-घर्षरेणातिशब्दितम् ।
पादयोर्नूपुरालाप-लापिनं त्वा करोम्यहम् ।१९।
तवामृतकथाव्रातव्यक्ताधि शाधि मामिह ।

सखीभि सगीताभिस्ते कि करिष्यामि तद्वद ।२०।

मैं तुम्हारी चोच को पद्मरागमणि और रत्नो से मडित करा कर उन्हे मनोमोहक अरुण वर्ण की और दीप्तिमयी करादूँगी ।१६। तुम्हारे कठ मे सूर्यकान्त मणि जटित स्वर्ण पट्टिका बाँध कर दोनो पखो को मोतियो से सजाऊँगी ।१७। तुम्हारे पख और शरीर को कुंकुम से चर्चित करके ऐसा सुशोभित करूँगी कि सब तुम्हे देखते ही अत्यन्त आनन्दित हो जाँय ।१८। तुम्हारी पूँछ को स्वच्छ मणि से गूँथ दूँगी, जिससे तुम्हारे चलने पर सुन्दर घर्घर शब्द सुनाई देगा । तुम्हारे पाँवो मे नूपुर बाँध दूँगी, जिनसे सुमधुर ध्वनि निकलेगी ।१९। तुम्हारा कथामृत सुनकर ही मेरे मन की व्यथा मिट गई । मुझे बताओ कि मुझे क्या करना है ? सखियो के सहित मैं तुम्हारी परिचर्या करूँगी ।२०।

इति पद्मावच. श्रुत्वा तदन्तिकमुपागत ।
कीरो धार. प्रसन्नात्मा प्रवक्तुमुपचक्रमे ।२१।
ब्रह्मणा प्रार्थित. श्रीशो महाकारुणिको वभौ ।
शभले विष्णुयशसो गृहे धर्म-रिरक्षिषुः ।२२।
चतुर्भिभ्रातृभिर्ज्ञाति-गोत्रजै. परिवारित: ।
कृतोपनयनो वेदमधीत्य रामसन्निधौ ।२३।
धनुर्वेदञ्च गान्धर्वं शिवादश्वमसिं शुकम्
कवचञ्च वर लब्धा शम्भल पुनरागतः ।२४।
विशाखयूपभूपाल प्राप्य शिक्षाविशेषतः ।
धर्मानाख्याय मतिमान् अधर्माश्च निराकरोत् ।२५।

पद्मा के वचन सुन कर हर्षित हुआ शुक पद्मा के पास जा पहुँचा और श्रेष्ठ प्रसग करने लगा ।२१। शुक बोला—भगवान् लक्ष्मीपति ने धर्म सस्थापन-हेतु ब्रह्माजी द्वारा प्रार्थना करने पर शभल ग्राम निवासी विष्णुयश के यहाँ अवतार लिया है ।२२। वे चार भाई अपने गोत्र एव परिवार वालो के साथ स्थित हैं, उपनयन सस्कार होने

के बाद उन्होने परशुरामजी से वेद की शिक्षा प्राप्त की ।२३। फिर उन्होने धनुर्वेद और गाधर्व वेद की शिक्षा ली और शिवजी से अश्व, असि, शुक, कवच और वरदान पाकर शम्भल ग्राम मे अपने घर लौटे ।२४। फिर उन कल्कि भगवान् से विशाखयू राजा ने भेट की, तब उन्होने अपने धर्माख्यान द्वारा राजा की अधर्मयुक्त शकाओ का निराकरण किया ।२५।

इति पद्मा तदाख्यान निशम्य मुदितानना ।
प्रस्थापयामास शुक कल्केरानयनादृता ।२६।
भूषयित्वा स्वर्णरत्नैस्तमुवाच कृताञ्जलि. ।२७।
निवेदित तु जानासि किमन्यत्कथयाम्यहम् ।
स्त्रीभावभयभीतात्मा यदि नायाति स प्रभु ।२८।
तथापि मे कर्मदोषात् प्रणाति कथयिष्यसि ।
शिवेन यो वरो दत्त स मे शापोऽभवत्किल ।२६।
पुंसा मद्दर्शनेनापि स्त्रीभावं कमत शुक ।
श्रुत्वेति पद्मामामन्त्र्य प्रणम्य च पुनः पुन ।३०।

इस प्रसग को सुन कर पद्मा बडी प्रसन्न हुई और उसने कल्कि भगवान् को आदरपूर्वक वहाँ लिवा लाने उद्देश्य से शुक को भेजा ।२६। पद्मा ने शुक को स्वर्ण एवं रत्नो से सुसज्जित किया और हाथ जोड कर कहने लगी ।२७। पद्मा बोली—मैं जो कुछ निवेदन करना चाहती हू, उसे तुम भले प्रकार जानते हो, तो फिर अधिक क्या कहूँ ? मैं स्त्री स्वभाव-वश भयभीत हो रही हूँ । यदि प्रभु यहाँ न आवे तो तुम मेरी ओर से प्रणाम करके मेरे कर्म-दोष के विषय मे उन्हें बताना और कहना कि मुझे शिवजी से जो वर प्राप्त हुआ है वह इस समय शाप के समान हो रहा है । शिवजी के वरदान के अनुसार जो पुरुष मेरी ओर काम-भाव से देखता है, वही नारी हो जाता है । पद्मा की यह बात सुन कर शुक ने उसे बारम्बार प्रणाम किया ।२८-३०।

उड्डीयं प्रययौ कीरः शम्भलं कल्किपालितम् ।
तमागमं समाकर्ण्य कल्किः परपुरञ्जयः ॥ ३१ ॥
क्रोडे कृत्वा तं ददर्श स्वर्णरत्नविभूषितम् ।
सानन्दं परमानन्ददायकं प्राह तं तदा ॥ ३२ ॥
कल्किः परमतेजस्वी परस्मिन्नमलं शुकम् ।
पूजयित्वा करे स्पृष्ट्वा पयःपापेन तर्पयन् ॥ ३३
तन्मुखे स्वमुखं दत्वा पप्रच्छ विविधाः कथाः ।
कस्माद्देशाच्चरित्वा त्वं दृष्ट्वापूर्वं किमागतः ॥ ३४ ॥
कुत्रोषितं कुतो लब्धं मणिकाञ्चनभूषणम् ।
अहर्निशं त्वन्मिलनं वाञ्छितं मम सर्वतः ॥ ३५ ॥

फिर वह शुक उड कर कल्किजी द्वारा रक्षित शभल ग्राम मे गया शत्रुपुर-विजेता कल्किजी ने उसे आया देख कर शुक को गोद मे लेकर उसे स्वर्ण रत्नो से मडित देखा तो अत्यन्त हर्षित होते हुए बोले ।३१-३२। अत्यन्त तेजस्वी कल्किजी ने शुक का सत्कार करते हुए उसे दुग्ध-पान कराया और उससे सब प्रसग पूछा—हे शुक ! तुम इस समय किस देश से आरहे हो ? वहाँ तुमने कौन-सी अद्भुत वस्तु देखी है ? ।३३ ३४। तुम कहाँ थे ? किसके द्वारा मणियो और स्वर्ण से विभूषित किये गये ? रात दिन मैं तुमसे मिलने के लिए उत्सुक रहा हूँ ।३५।

तवानालोकनेनापि क्षणं मे युगवद्भवेत् ॥ ३६ ॥
इति कल्केर्वचः श्रुत्वा पुणिपत्य शुको भृशम् ।
कथयामास पद्मायाः कथां पूर्वोदितां यथा ।३७।
संवादमात्मनस्तस्या निजालङ्कारधारणम् ।
सर्वं तद्वर्णयामास तस्याः प्रणतिपूर्वकम् ॥ ३८ ॥
श्रुत्वेति वचनं कल्किः शुकेन सहितो मुदा ।
जगाम त्वरितोऽश्वेन शिवदत्तेन तन्मनाः ॥ ३९ ॥

हे शुक ! मैं जब तुम्हे नही देखता, तब मेरा एक क्षण भी युग के समान व्यतीत होता है ।३६। कल्कि की यह बात सुनकर शुक ने हेउ बारम्बार प्रणाम कर पद्मा की पूर्व कथित कथा को कह

सुनाया ।३७। फिर पद्मा के साथ जो संवाद हुआ वह तथा स्वर्ण-मणियों की उपलब्धि आदि सब वृत्तान्त विनम्र होकर शुक ने उन्हे सुनादिया ।३८। कल्किजी ने जैसे ही यह वृत्तान्त सुना, वैसे ही प्रसन्न होते हुए वे शिवदत्त अश्व पर चढ कर शुक के साथ चल दिये ।३९।

समुद्रपारममलं सिंहलं जलसंकुलम् ।
नानाविमानवहुलं भास्वरं मणिकाञ्चनैः ॥ ४० ॥
प्रासादसदनाग्रेषु पताकातोरणाकुलम् ।
श्रेणीसभापणाट्टाल-पुरगोपुरमण्डितम् ॥ ४१ ॥
पुरस्त्री-पद्मिनी-पद्मगन्धामोद-द्विरेफिणीम् ।
पुरीं कारुमतीं तत्र ददर्श पुरतः स्थिताम् ॥ ४२ ॥
मराल-जाल-सञ्चाल-विलोल-कमलान्तराम् ।
उन्मीलताब्जमालालिकलिताकुलितं सरः ॥ ४३ ॥
जलकुक्कुटदात्यूह-नादितं हंससारसैः ।
ददर्श स्वच्छपथसा लहरीलोलवीजितम् ॥ ४४ ॥

चलते-चलते समुद्र पार पहुंच कर उन्होने स्वच्छ जल से घिरे हुए, विभिन्न विमानो सेयुक्त, मणियो और स्वर्ण से दमकते हुए, अट्टालिकाओ और भवनो के समक्ष पताकाओ और तोरणो से सजे हुए सभामडप वाले, दुकानो और गोपुरादि से समन्वित, पद्मिनी नारियो के पद्मगंध से हर्षित मँडराते हुए भ्रमर समूह से युक्त कारुमती सिंहल पुरी को देखा ।४०-४२। जहाँ जलाशयो मे हंस-समूह किलोल कर रहे हैं, कमलो पर भ्रमर गुंजार रहे हैं, जलकुक्कुट, दात्यूह, हंस, सारस आदि कलरव कर रहे हैं तथा जल की लोल लहरी के साथ इठलाती वायु प्रवाहित है ।४३-४४।

वनं कदम्बकुद्दाल-शालतालाम्रकेसरैः ।
कपित्थाश्वत्थखर्जूरबीजपूरकरंजकैः ॥४५ ॥
पुन्नागपनसैर्नागरङ्गैरर्जुनशिंशपैः ।
क्रमुकैर्नारिकेलैश्च नानावृक्षैश्च शोभितम् ।

वन ददर्श रुचिर फलपुष्पलावृतम् ॥ ४६ ॥
दृष्ट्वा हृष्टतनूः शुक सकरुण. कल्कि पुरान्ते वने
प्राह प्रीतिकर वचोऽत्र सरसि स्नातव्यमित्यादृत. ।
तच्छ्रुत्वा विनयान्वित. प्रभुमतया मीति पद्माश्रम
तत्सन्देशमिह प्रयाणमधुना गत्वा स कोरोऽवदत् ॥ ४७ ॥

वन कदम्ब, कुद्दाल, शाल, ताल, आम, केसर, कैथ, अश्वत्थ, खजूर, बीजपूर, करज, पुन्नाग, पनस, नारगी, अर्जुन, शिशपा, क्रमुक, नारियल आदि विविध प्रकार के वृक्षो से सुशोभित और फल, पुष्प, पत्रादि से परिपूर्ण उस स्थान को कल्किजी ने देखा ।४५-४६। यह सब देखते हुए पुरी के समीपस्थ वन मे पहुच कर पुलकित देह हुए कल्किजी ने आदर सहित शुक से कहा—'इस सरोवर में स्नान करने की इच्छा है'। यह सुनकर शुक ने विनय पूर्वक कहा—अच्छा, अब मैं भी पद्मा के निवास स्थान पर जाता हूँ। यह कह कर शुक पद्मा के पास गया और उससे कल्कि भगवान् के आगमन का प्रसग कह दिया ।४७।

—*—

द्वितीय अध्याय

कल्कि सरोवराभ्यासे जलाहरणवर्त्मनि ।
स्वच्छस्फटिकसोपाने प्रवालाचितवेदिके ।१।
सरोजसौरभव्यग्रभ्रमद्भ्रमरनादिते ।
कदम्बपालपत्रालि-वारितादित्यदर्शने ।२।
समुवासासने चित्रे सदश्वेनावतारित: ।
कल्कि: प्रस्थापयामास शुकं पद्माश्रममुदा ।३।
स नागेश्वरमध्यस्थ: शुको गत्वा ददर्श ताम् ।
हर्म्यस्थां विमिनीपत्रशायिनी सखीभिवृताम् त ।४।।
निश्वासवाततापेन म्लायती वदनाम्बुजम् ।
उत्क्षिपन्ती सखीदत्तकमलचन्दनोक्षिनम् ।।५।।

सूतजी बोले—कल्किजी ने अश्व से उतर कर सरोवर के समीप वाले जल लाने के मार्ग मे प्रवालो से युक्त, कमल की सुगध से व्यथित, भ्रमर समूह द्वारा निनादित, उज्ज्वल स्फटिक मणि निर्मित सोपान पर स्थित एव कदम्ब के वृक्षो की नवीन पत्तियो से स्पर्श करती हुई सूर्य किरणो से आच्छादित चबूतरे पर बैठ कर उन्होने शुक को पद्मा के निवास स्थान पर भेजा ।१-३। वहाँ पहुँच कर वह शुक नाग-केशर के वृक्ष पर जा बैठा और उसने अटारी के ऊपर पत्तो की शय्या बनाकर शयन करने वाली पद्मा को सखियो के सहित देखा ।४। उस समय उष्ण वायु के ताप से मलीन मुख हुई पद्मा सखी द्वारा प्रदत्त

चदन चर्चित कमल-पत्र क हिलाती हुई हवा कर रही थी ।५।

रेवावारिपरिस्नात परागास्य समागतम् ।
धृतनीर रसगत निन्दन्ती पवनप्रियम् ।।६।।
शुक' सकरुण साधु-वचनैस्तामतोषयत् ।
सा, त्वमेह्येहि,तेस्वस्ति स्वागत? स्वस्ति मे शुभे! ।७।
गते त्वय्यतिव्यग्राह शान्तिस्तेऽस्तु रसायनात् ।
रसायन दुर्लभ मे, सुलभ ते शिवाश्रमे ।८।
क्व मे भाग्यविहीनाया इहैव वरवर्णिनि ।
देवि! तं सरमस्तीरे प्रतिष्ठाप्यागता वयम् ।९।

परागमय जलगर्भ से सरस हुआ प्रिय पवन उस समय पद्मा के द्वारा निन्दा को प्राप्त हो रहा था ।६। तभी शुक ने करुणामय सुन्दर वचन कह कर पद्मा को आश्वासन दिया । जिसे सुन कर पद्मा बोली—तुम्हारा स्वागत है । यहाँ आओ, तुम्हारा मगल हो । शुक बोला—हे शुभे! मेरा सर्व प्रकार से मगल ही है ।७। पद्मा बोली—हे शुक ! तुम्हारे जाने से मैं अत्यन्त व्यग्र रही हूँ । शुक ने कहा—तुम्हारे सब दुःख ताप रसायन के द्वारा शान्त हो जाँयगे । पद्मा ने कहा—मेरे लिए तो रसायन भी दुर्लभ है । शुक ने कहा— हे शिवजी की शिष्ये! रसायन तुम्हारे लिए सुलभ ही है ।८। पद्मा बोली—मुझ भाग्यहीना की कामना किस प्रकार और कहाँ पूर्ण होगी ? शुक बोला—हे वरवर्णिनि! तुम्हारी अभिलाषा यहीं पूर्ण होगी । मैं उन्हे सरोवर के तट पर विराजमान करके तुम्हारे पास उपस्थित हुआ हूँ ।९।

एवमन्योन्यसम्वाद-मुदितात्ममनोरथे ।
मुख मुखेन नयन नयने साद्दता ददौ ।१०।
विमलामालिनी लोला कमला कामकन्दला ।
विलासिनी चारुमती कुमुदेत्यष्ट नायिकाः ।११।
सख्य एता मतास्ताभिर्जलक्रोडार्थमुद्यताः ।
पद्मा प्राह, सरस्तीरमायान्तु सा मया स्त्रियः ।१२।

इत्याख्यायासु शिबिकामारुह्य परिवारिता ।
सखीभिश्चारुवेशाभिर्भूत्वा स्वान्न पुराद्बहिः ।
प्रययौ त्वरित द्रष्टु भैष्मी यदुपतिं यथा ।१३।
जना पुमास पथि ये पुरस्था· प्रदु वु. स्त्रीत्व-
भयाद्दिगन्तरम् । शृङ्गाटके वा विपणि स्थिता
ये निजाङ्गनास्थापितपुण्यकार्य्या, ।१४।
निवारिता ता शिबिका वहन्त्यः नार्य्योऽतिमत्ता
वलवत्तराश्च । पद्मा शुकोक्त्या तदुपर्य्युपस्था
जगाम ताभि. परिवारिताभि ।१५।

इस प्रकार परस्पर सम्वाद होने पर पद्मा अत्यन्त हर्षित हुई वह उसके मुख के समक्ष मुख, नेत्र के समक्ष नेत्र करके उसे आनन्द पूर्वक देखने लगी ।१०। उसकी आठ नायिका सखियाँ है—विमला, मालिनी, लोला, कमला, कामकन्दला, विलासिनी, चारुमती और कुमुदा । उन सखियो सहित जल-क्रीडा के लिए तत्पर होकर पद्मा उनसे बोली कि यह सखियाँ मेरे साथ सरोवर क तट पर चले ।११-१२। यह कह कर पद्मा पालकी पर आरूढ होकर सखियो सहित अन्तपुर से चल पडी । कृष्ण के दर्शनार्थ जाती हुइ रुक्मिणी के समान ही कल्कि भगवान् के दर्शन के लिए पद्मा ने भी शीघ्रता पूर्वक प्रस्थान किया ।१३। पद्मा जिस मार्ग से जा रही थी, उस माग मे स्थित पुरुष उसे देखते ही कही स्त्री न बन जाय इस आशका से इधर-उधर भाग गये । उन भागने वालो को पत्नियाँ उनके निरापद रहने के लिए पुण्य कर्मों का अनुष्ठान करने लगी ।१४। इस प्रकार मार्ग को पुरुषो से रहित देख कर शक्ति-मती स्त्रियाँ पालकी को स्वच्छन्दता सेवहन करने लगी - शुक के कथना-नुसार पालकी पर चढी हुई पद्मा को घेर कर उसकी सखियाँ भी साथ चल रही थीं ।१५।

सरोजल सारसलसनादिटप्रफुल्लपद्मोद्भवरेणुवासितम् ।
चेर्विगाह्याशु सुधाकरालसा. कुमुद्वतीनामुदयाशोभनाः ।१६।

तासा मुखामोदमदान्धभृङ्गा विहाय पद्मानि
मुखारविन्दे। लग्ना· सुगन्धाधिकमाकलय्य
निवारिताश्चापि न तत्यजुस्ते ।१७।
हासोपहासैः सरसप्रकाशैर्वाद्यैश्च नृत्यैश्च जले
विहारै । करग्रहैस्ता जलयोधनार्त्ताश्चकर्ष
ताभिर्वनिताभिरुच्चै १८।
सा कामातप्ता मनसा शुकोक्तिं विविच्य पद्मा
सखिभि. समेता। जलात्समुत्थाय महार्हभूषा
जगाम निर्दिष्टकदम्बषण्डम् ।१९।
सुखे शयान मणिवेदिकागतं कल्कि पुरस्तादतिसू-
र्य्यवर्च्चसम् । महामणिव्रातविभूषणाचिता शुकेन सार्द्धं
तमुदैक्षतेशम् २०।

फिर सारम, हस आदि के मधुर निनाद और पद्म-रेणु से सुगंधित सरोवर के जल में स्नान करके वह चन्द्रवदनी स्त्रियाँ कुमुदनी युक्त चन्द्रमा की आशा मे विचरण करने लगी। उनके देह की कमल-गध से मत्त हुए भ्रमर उनके मुखो पर गु जारने लगे। स्त्रियो द्वारा उडाये जाने पर भी वे भ्रमर उन पद्मगधाओ के मुखो से हटते ही नही थे।१६-१७। रसमय हास-परिहास, वाद्य, नृत्य तथा परस्पर हाथ पकडे हुए विविध प्रकार का जलविहार करती हुई पद्मा ने सखियो के मन को और सखियो ने पद्मा के मन को हर लिया।१८। फिर सकाम भाव वाली पद्मा शुक के वचनो का स्मरण करके सखियो सहित जल से बाहर निकली और वस्त्राभूषणो से विभूषित होकर उस बताषे हुए महान् कदम्ब के वृक्ष के नीचे गई।१९। वहाँ उसने मणिमय चबू-तरे पर महामणियो से विभूषित, सूर्य के तेज से भी अधिक तेजोमय कल्किजी को शुक के सहित सुखपूर्वक शयन करते देखा।२०।

तमालनील कमलापति प्रभु पीताम्बर चारुसरोजलोचनम् ।
आजानुबाहुं पृथुपीनवक्षस श्रीवत्ससत्कौस्तुभकान्तिराजितम्

तदद्भुतरूपमवेक्ष्य पद्मा सस्तम्भिताविस्मृतसत्क्रियार्था
सुप्तं तु संबोधयितुं प्रवृत्तं निवारयामाविशङ्कितात्मा ।२२
कदाचिदेषोऽतिबलोऽतिरूपी मद्दर्शनात्स्त्रीत्वमुपैति
साक्षात् । तदात्र किं मे भविता भवस्य वरेण शापप्रति-
मेन लोके ।२३।
चराचरात्मा जगतामधीश प्रबोधितस्तद्धृदयं विविच्य ।
ददर्श पद्मां प्रियरूपशोभां यथा रमां श्रीमधुसूदनाग्रे ।२४।
संवीक्ष्य मायामिव मोहिनीं तां जगाद कामाकुलितः स
कल्कि: । सखीभिरीशां समुपागतां तां कटाक्षविक्षेपविने-
नामितास्यम् ।२५।

उसने देखा कि तमाल जैसे नीलवर्ण वाले, पीताम्बरधारी, कमल जैसे नेत्र वाले, लम्बी भुजाओं, विशाल वक्ष और श्रीवत्स से चिन्हित हृदय वाले, कौस्तुभ मणि की कान्ति से प्रकाशित भगवान् कल्कि विराजमान है ।२१। उस अद्भुत रूप को देखकर पद्मा ऐसी स्तम्भित हुई कि उनका सत्कार भी करना भूल गई और उसने शंका के कारण उन्हें जगाना उचित नहीं समझा ।२२। उसने सोचा कि कहीं यह महाबली अत्यन्त रूपवान् पुरुष मुझे देखकर स्त्री न बन जाय ? यदि ऐसा हो गया तो शिवजी का वरदान यहाँ भी अभिशाप हो जायगा ।२३। फिर पद्मा के आन्तरिक अभिप्राय को जान कर चराचर के एवं विश्वेश्वर कल्कि भगवान जाग पडे । उन्होंने देखा कि लक्ष्मीजी के समान महान् रूपवती पद्मा सामने खडी है ।२४। सखियों के सहित आई हुई, अपलक देखती हुई पद्मा को देखकर उस मोह को उत्पन्न करने वाली पद्मा से कल्किजी सकाम-भाव पूर्वक बोले ।२५।

इहैहि सुस्वागतमस्तु भाग्यात्समागमस्ते कुशलाय मे स्यात् ।
त्वदाननेन्दुः किल कामपूरतापापनोदाय सुखाय कान्ते! २६।

लोलाक्षि ! लावण्य-रसामृत ते कामहिदष्टस्य विधातुरस्य ।
तनोतु शान्तिसुकृतेन कृत्या सुदुर्लभां जीवनमाश्रितस्य २७॥
बाहूतवैतौ कुरुता मनोज्ञौ हृदि स्थितं काममुदन्तवासम् ।
चार्वायतौ चारुनखांकुशेन द्विप यथा सादिविदीर्णकुम्भम् २८
पादाम्बुज तेऽङ्गुलिपत्रचित्रित वर मरालक्वणनूपुरा-
वृतम् । कायाहिदष्टस्य ममास्तु शान्तये हृदि स्थितो प-
द्मघनेसुशोभने ॥२६॥
श्रुत्वैतद्वचनामृत कथिकुलध्वसस्य कल्केरल
दृष्ट्वा सत्पुरुषत्वमस्य मुदिता पद्मा सखीभिवृता ।
कान्त क्लान्तमना· कृताञ्जलिपुटा प्रोवाचतत्सदरं
धीर धीरपुरस्कृतं निजपति नत्वा नमत्कन्धरा ।३०।

हे कान्ते ! तुम मेरे पास आओ, तुम्हारे मिलने से मेरा मंगल हुआ है। तुम्हारे चन्द्रमुख को देखकर मेरा सताप मिट गया ।२६। हे चचलाक्षि ! मुझ ससार के रचने वाले को इस समय वासना रूपी सर्प ने दशित किया है। तुम्हारे लावण्य-रस रूपी अमृत के पान से उसकी शान्ति सभव है। यह शान्ति सुकृत्यो से भी दुर्लभ और जीवन के लिए आश्रय स्वरूप होगी ।२७। जैसे महावत अपने अकुश से गजराज का कुम्भ भेदन करता है, ठीक वैसे ही तुम्हारी यह सुरम्य भुजाएँ नख रूप अकुश के द्वारा मेरे हृदयस्थ कामरूप हाथी के कुम्भ का भेदन करूँ ।२८। मेरे हृदयोदधि के स्वच्छ नीर मे स्थित अगुलि रूपी कमल-पत्र द्वारा चित्रित हस जैसा शब्द करने वाले एव नूपुरो से सुशोभित मंजु घोष करने वाले पादाम्बुज के द्वारा काम-जनित विष का शमन हो ।२६। कलिकुल विध्वसक कल्किजी के वचनामृत सुनकर और उन्हे सत्पुरुषत्व से युक्त जान कर पद्मा अत्यन्त हर्षित हुई। फिर वह क्लान्त मन हुई पद्मा सखियो सहित मस्तक झुकाकर अपने पति कल्कि भगवान् से मद स्वर में कहने लगी ।३०।

तृतीय अध्याय

सा पद्मात हरिं मत्वा प्रेमगद्गदभाषिणी ।
तुष्टाव व्रीडिता देवी करुणावरुणालयम् ।१।
प्रसीद जगता नाथ ! धर्म्मन् ! रमापते ! ।
विदितोऽसि विशुद्धात्मन् ! वशगा त्राहि मा प्रभो ! ।२।
धन्याह कृतपुण्याह तपोदानजपव्रतै ।
त्वा प्रतोष्य दुराराध्यं लब्ध तव पदाम्बुजम् ।।३।।
आज्ञा कुरु पदाम्भोज तव सस्पृश्य शोभनम् ।
भवनं यामि राजानमाख्यातु स्वागत तव ।४।
इति पद्मा रूपसद्मा गत्वा स्वपितर नृपम् ।
वाचागमनम कल्केर्विष्णोरशस्य दौत्यकैः ।।५।।

सूतजी बोले—प्रेम से गद्गद् होकर भाषण करने वाली पद्मा ने कल्किजी को भगवान् विष्णु के रूप मे जान कर उनकी स्तुति की ।१। हे जगदीश्वर ! हे धर्मवर्मन् ! हे लक्ष्मीपते ! मैं आपको जान गई हूँ । अब आप मुझ शरणागता की रक्षा कीजिए ।२। मैं धन्य हो गई प्रभो ! जो अपने पुण्यकर्मों अर्थात् तप, दान, जप और व्रतादि के सहित आपकी आराधना करके आपके दुष्प्राप्य चरण कमलो को प्राप्त कर सकी ।३। अब आप मुझे आज्ञा दे कि मैं आपके पदाम्बुजो का स्पर्श करके अपने घर जाऊँ और महाराज से आपके आगमन की बात सूचित करूँ ।।४।। यह कह कर श्रेष्ठ रूप वाली पद्मा ने अपने पिता राजा

बृहद्रथ के पास जाकर भगवान कल्कि के आगमन का वृत्तान्त निवेदन किया ।।५।।

सखीमुखेन पद्मायाः पाणिग्रहणकाम्यया ।
हरेरागमनश्रुत्वा सहर्षोऽभूद्बृहद्रथ. ।६।
पुरोधसा ब्राह्मणैश्च पात्रै सुमङ्गलै ।
वाद्यताण्डवगीतैश्च पूजायोजनपाणिभिः ।७।
जगामानयितु कल्कि सार्द्ध निजजनैः प्रभु ।
मण्डयित्वा कारुमती पताकास्वर्णतोरणै· ।८।
ततो जलाशयाभ्यास गत्वा विष्णुयश सुतम् ।
मणिवेदिकयासीन भुवनैकगति पतिम् ।९।
अनाघनोपरि यथा शोभन्ते रुचाराण्यहो ।
विद्युदिन्द्रायुधादीनि तथैव भूषणान्युत ।।१०।।

राजा बृहद्रथ ने पद्मा की सखी के मुख से पद्मा के पाणिग्रहण की कामना से भगवान् का आगमन सुन कर हर्ष व्यक्त किया ।६। फिर उसने पुरोहित, ब्राह्मण, परिवारीजन, मित्र, बन्धु आदि को साथ लेकर मगल गीत, वाद्य, नृत्य आदि करते हुए कल्कि भगवान को लाने के लिए प्रस्थान किया । स्वर्ण के तोरण और पताकादि से वह कारुमती नगरी अत्यन्त शोभा पाने लगी ।७-८। राजा बृहद्रथ ने जलाशय पर पहुँच कर देखा कि विष्णुयश के पुत्र कल्किजी मणिमय वेदी पर स्थित हैं ।९। जैसे घनघोर मेघ पर बिजली अथवा इन्द्र-धनुष आदि अत्यन्त शोभा पाते हैं, वैसे ही कल्किजी के कृष्णाग पर भूषण दमक रहे हैं ।१०।

शरीरे पीतवासाग्रघोरभासा विभूषितम् ।
रूपलावण्यसदने मदनोद्यमनाशने ।।११।।
ददर्शपुरतो राजा रूपशीलगुणाकरम् ।
साश्रु सपुलक. श्रीश दृष्ट्वा साधु समर्च्चयत ।१२।
ज्ञानागोचरमेतन्मे तवागमनमीश्वर ! ।

यथा मान्धातृपुत्रस्य यदुनाथेन कानने ।१३।
इत्युक्त्वा तं पूजयित्वा समानीय निजाश्रमे ।
हर्म्यप्रासादसबाधे स्थापयित्वा ददौ सुताम् ।१४।
पद्मा पद्म पलाशाक्षी पद्मनेत्राय पद्मनीम् ।
पद्मजादेशतः पद्नाभायादाद्यथाक्रमम् ।१५।

उन रूप-लावण्य के घर, कामदेव के उद्यम को नष्ट करने वाले, देह के अग्रभाग मे पीताम्बर धारण किये हुए तथा रूप, शील और गुण की खान लक्ष्मीपति कल्किजी को देख कर अश्रुयुक्त पुलकित देह के सहित राजा ने उनका विधि पूर्वक पूजन किया ।११-१२। राजा बोला—हे ईश्वर ! जैसे यदुनाथ वन मे जाकर मान्धाता के पुत्र से मिले थे, वैसे ही आप ज्ञानगोचरातीत का आगमन मेरे लिए हुआ है ।१३। यह कह कर कल्किजी का पूजन करके राजा उन्हे अपने भवन में ले आये और सुसज्जित गृह मे टिका कर उन्हे अपनी कन्या का दान कर दिया ।१४। पद्मोत्पन्न ब्रह्माजी के आदेशानुसर पद्मनाभ एव पद्मलोचन भगवान् कल्कि को पद्म-पत्र जैसे नेत्र वाली पद्मिनी सज्ञक पद्मा का यथाविधि दान किया ।१५ ।

कल्किर्लब्ध्वा प्रिया भार्य्या सिंहले साधुसत्कृत. ।
समुवास विशेषज्ञ समीक्ष्य द्वीपमुत्तमम् ।१६।
राजान. स्त्रीत्वमापन्नाः पद्मायाः सखिता गता· ।
द्रष्टु समीयुस्त्वरिता, कल्कि विष्णु जगत्पतिम् १७।
ताः स्त्रियोऽपि तमालोक्य सस्पृश्यचरणाम्बुजम् ।
पुनः पु स्त्व समापन्ना रेवास्नानात्तदाज्ञया ।१८।
पद्माकल्की गौरकृष्णौ विपरीतान्तरावुभौ ।
बहि.स्फुटौ नीलपीत-वासोव्याजेन पश्यतु ।१९।
दृष्ट्वा प्रभाव कल्केस्तु राजानः परमाद्भुतम् ।
प्रणम्य परया भक्त्या तुष्टुवुः शरणार्थिनः ।२०।

अपनी प्रिय पत्नी को प्राप्त कर साधुजनो से सत्कृत हुए कल्किजी सिंहल द्वीप को श्रेष्ठ स्थान देख कर कुछ दिनो तक वहाँ रहे ।१६। जो राजा स्त्रीत्व को प्राप्त होकर पद्मा की सखी बन गये थे, वे सभी भगवान् कल्कि के दर्शनार्थ वहाँ उपस्थित हुए ।१७। वे सभी स्त्रीत्व को प्राप्त हुए राजागण भगवान् के दर्शन प्राप्त कर उनके चरण स्पर्श करते हुए उनकी आज्ञा से रेवा नदी पर पहुँचे और स्नान करते ही पुरुषत्व को प्राप्त हो गये।१८। पद्मा और कल्कि गौर तथा कृष्ण वर्ण वाले हैं । दोनो विपरीत वर्णों के सम्मिलन से पद्मा के नीलाम्बर और कल्कि के पीताम्बर द्वारा एक बाह्य वर्ण प्रकाशित हुआ और परस्पर समन्वित दिखाई देने लगा ।१९। कल्किजी का अत्यन्त अद्भुत पराक्रम देख कर सभी राजागण उनकी शरण को प्राप्त होकर भक्तिपूर्वक प्रणाम और स्तुति करने लगे ।२०।

जय जय निजमायया कल्पिताशेषकल्पनापरिणाम !
जलाप्लुतलोकत्रयोपकरणमाकलय्य मनुमनिशम्य पूरितमर्वि-
जनाविजनाविर्भूतमहामीनशरीर ! त्व निजकृतधर्म्मसेतुसर-
क्षणकृतावतारः ।२१।
पुनरिहदितिज-बल-परिलाङ्घित-वासव-सूदनादृत-जितत्रिभुवन
पराक्रम-हिरयाक्षनिधन पृथिव्युद्धरणसकल्प-भिनिवेशेन धृय-
कोलावतारः पाहि नः ।२२।
पुनरिह जलधि मथनादृत-देवदानवगण मन्दराचलानयनव्या-
कुलिताना साहाय्येनादृतचित्त. पर्व्वतोद्धरणामृतप्रासनरचना
वतारः कूर्म्माकारः प्रसीद परेश ! त्व दाननृपाणाम् ।२३।

हे प्रभो ! आपकी जय हो । आपकी ही कल्पना-शक्ति से ससार विविध प्रकार से कल्पित हुआ है । जब तीनो लोग प्रलय मे लीन हो गये, तब आपने जनशून्य स्थल मे प्रकट हुए थे । आपने ही धर्म-सेतु के सरक्षण हेतु महामीन (मत्स्य) देह धारण किया था ।२१। जब दनुज-सैन्य

से इन्द्र पराजित होने लगे और त्रैलोक्य-विजयी हिरण्याक्ष इन्द्र को मारने में तत्पर हुआ, तब आपने ही वाराह रूप धारण कर उसका संहार कर डाला। ऐसे आप हमारी रक्षा कीजिये।२२। जब देवता और दैत्य दोनों ही मिल कर समुद्र-मन्थन में तत्पर हुए, तब मंदराचल पर्वत को टिकाने की समस्या उत्पन्न हुई। उस समय आपने कूर्मावतार धारण कर अपनी पीठ पर मन्दराचल को टिका लिया। आपका वह कूर्मावतार देवताओं को सुधा-पान कराने के लिये ही हुआ था। हे परेश! आप ही हम दीन राजाओं की रक्षा कीजिये।२३।

पुनरिह त्रिभुवनजयिनो महाबलपराक्रमस्य हिरण्यकशिपोर्दिदृताना देववराणा भयभीताना कल्याणाय दितिसुतवधप्रेप्सुर्ब्रह्मणो वरदानादवध्यस्य न शस्त्रास्त्ररात्रि दिवास्वर्गमर्त्यपातालतले देवगन्धर्वकिन्नरनरनागैरिति विचिन्त्य नरहरिरूपेण नाखाग्रभिन्नोरु दष्टवन्तच्छद त्यक्तासु कृत वानसि।२४।

पुनरिह त्रिजगज्जयिनो बले, सत्र शक्रानुजो वटुवामनोदैत्यस माहनाय त्रिपदभूमियाच्ञाच्छलेन विश्वकायस्तदुत्सृष्ट-जलसस्पर्श-विवृद्धमनोऽभिलाषस्तव भूतले बलेर्दौवारिकत्वमङ्गीकृतमुचित दानफलम्।२५।

पुनरिह हैहयादिनृपाणाममितबलपराक्रमाणा नानामदोल्लङ्घितमर्य्यादावर्त्मना निधनाय भृगुवशजो जामदग्न्य पितृहोमधेनुहरणप्रवृद्धमन्युवशात्त्रिसप्तकृत्वो निःक्षत्रिया पृथिवी कृतवानसि परशुरामावतारः।२६।

फिर जब त्रैलोक्य विजयी, महाबली और पराक्रमी हिरण्यकशिपु देवताओं का उत्पीडन करने लगा, तब आपने भयभीत देवताओं के रक्षार्थ उस दैत्यराज का संहार करने का निश्चय किया। ब्रह्माजी के वर से दैत्य, देवता गन्धर्व, किन्नर, नाग, शस्त्रास्त्र, दिवस, रात्रि, स्वर्ग,

मर्त्यलोक या पाताल लोक मे कही भी, किसी के द्वारा भी मरने वाला नही था। इन सब बातो पर विचार करके आपने नृसिंहावतार धारण किया और जब आपके उस रूप को देख क्रोधित हुआ दैत्य आपसे युद्ध करने लगा, तब आपने अपने नखाग्रो से उसका देह विदीर्ण कर डाला।२४। फिर त्रैलोक्य विजयी राजा बलि के यज्ञ मे आपने इन्द्र के लघु भ्राता बन कर वामनावतार धारण कर दानवराज के समोहनार्थ तीन पद पृथिवी माँग ली। उत्सर्ग के लिये जल छोडते ही आपने छलपूर्वक विराट स्वरूप धारण किया। फिर आप त्रैलोक्यदान के फलस्वरूप राजा बलि के द्वारपाल बन गये।२५। फिर जब महाबल-पराक्रम वाले हैहय आदि राजाओ ने धर्म की मर्यादा को लाँघा, तब आपने उनके विनाशार्थ भृगुवश मे परशुराम का अवतार लिया और अपने पिता की होमधेनु के हर लिये जाने पर आपने इक्कीस बार इस पृथिवी को क्षत्रियो से रहित कर दिया।२६।

पुनरिह पुलस्त्यवशावतसस्य विश्रवस पुत्रस्य निशाचरस्य रावणस्य लोकत्रयतापनस्य निधनमुररोकृत्य रविकुलजातदशरथात्मजो विश्वामित्रादस्त्राण्युपलभ्य वने सीताहरणघशात्प्रवृद्धमन्युना अम्बुधि वानरैर्निबध्य सगण दशकन्धर हतवानसि रामावतारः।२७।

पुनरिह यदुकुल-जलधिकलानिधि सकलसुरगणसेवितपादारविन्दद्वन्द्व. विविधदानवदैत्यदलनलोकत्रयदुरिततापनो वसुदेवात्मजो रामावतारो बलभद्रस्त्वमसि।२८।

पुनरिह विधिकृत-वेदधर्म्मानुष्ठान-विहित-नानादर्शनसघृण ससारकर्म्मत्यागविधिना ब्रह्माभासविलासचातुरी प्रकृतिविमाननामसम्पादयन् बुद्धावतारस्त्वमसि।२९।

फिर पुलस्त्यवशावतस विश्रवापुत्र रावण ने अपने बल से तीनो लोको को भय-सतप्त कर दिया, तब आपने उसका विनाश करने के लिये सूर्यवशी राजा दशरथ के यहाँ अवतार लिया और विश्वामित्र से अस्त्र-

विद्या प्राप्त कर वन-गमन करने और रावण द्वारा सीता का हरण करने पर आपने वानर सेना को साथ लेकर कुल सहित रावण को मार डाला ।२७। फिर आप यदुकुल जलधि-मयङ्क वसुदेवजी के पुत्र रूप श्रीकृष्ण हुए और अनेक दैत्य-दानवों को मार कर तीनों लोकों को पाप-मुक्त किया। इसलिये सभी देवता आपके उस श्रीकृष्ण रूप के चरण कमलों की सेवा में तत्पर हुए। उसी काल में आपने ही बलभद्रजी का भी अवतार धारण किया था।२८। फिर आपने ब्रह्मा द्वारा निश्चित वेद-धर्म में अनेक बाधाएँ देख कर मिथ्या प्रपंच को नष्ट करने के निमित्त एवं प्राकृतिक विषय की अवमानना न करने के उद्देश्य से बुद्ध का अवतार लिया।२९।

अधुना कलिकुलनाशावतारो बौद्धपाखण्डम्लेच्छादीनाञ्च वेदधर्म्मसेतुपरिपालनाय कृतावतारः कल्किरूपेणास्मान् स्त्रीत्वनिरयादुद्धृतवानसि तवानुकम्पा किमिह कथयामः ।३०।

क्व ते ब्रह्मादीनामविदितविलासावतरण
क्व नः कामा वामाकुलितमृगतृष्णार्तमनसाम् ।
सुदुष्प्राप्य युष्मच्चरण जलजालोकनमिद
कृपापारावार' प्रमुदितदृशाश्वासय निजान् ।३१।

अब आप कलिकुल को नष्ट करने तथा बौद्ध पाखण्डियों और म्लेच्छों पर शासन करने के लिये कल्कि अवतार लेकर वेद धर्म रूपी सेतु की रक्षा कर रहे हैं। आपने ही स्त्रीत्व रूपी नरक से हमारा उद्धार किया है। हम आपकी इस कृपा का वर्णन किस प्रकार करें? ।३०। ब्रह्मादि देवता भी आपकी लीला को जानने में समर्थ नहीं हैं। आपको अवतार विषयक कोई कामना नहीं रहती। हम स्त्री के देखते ही काम-बाण के द्वारा जर्जर एवं मृगतृष्णा से संतप्त हृदय वाले विषयी प्राणियों के लिये आपके पदाम्बुजों का दर्शन दुष्प्राप्य था। हे अपार कृपा वाले प्रभो! हम अनुगामियों की ओर आप एक बार अपनी कृपा कटाक्ष करके हमें आश्वासन दीजिये ।३१।

चतुर्थ अध्याय

श्रुत्वा नृपाणा भक्ताना वचन पुरुषोत्तमः ।
ब्राह्मणक्षत्रविट्शूद्र-वर्णाना धर्ममाह यत् ॥१॥
प्रवृत्ताना निवृत्ताना कर्म यत्परिकीर्त्तितम् ।
सर्व सश्रावयामास वेदानामनुशासनम् ॥२॥
इति कल्केर्वचः श्रुत्वा राजानो विशदाशयाः ।
प्रणिपत्य पुन प्राहु पूर्वान्तु गतिमात्मनः ॥३॥
स्त्रीत्व वाप्यथवा पुंस्त्व कस्य वा केन वा कृतम् ।
जरा-यौवन-बाल्यादि सुखदुःखादिक च यत् ॥४॥
कस्मात्कुतो वा कस्मिन् वा किमेतदिति वा विभो ।
अनिर्णीतान्यविदितान्यपि कर्माणि वर्णय ॥५॥

सूतजी बोले—राजाओ के यह वचन सुन कर पुरुष श्रेष्ठ कल्कि-जी ने उनके प्रति ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र वर्णो के धर्म का वर्णन किया ।१। ससार मे आसक्त एव संसार से विरक्त दोनो के ही जो कर्म हैं, उनका वर्णत उन्होने किया ।२। कल्किजी का उपदेश सुनकर राजाओ के हृदय पवित्र होगये । फिर उन्होने प्रणाम करके कल्किजी से अपनी पूर्वावस्था के विषय मे पूछा ।३। हे प्रभो ! स्त्रीत्व और पुरुषत्व भेद से मनुष्यो की निवृत्ति किस प्रकार होती है ? जरा, यौवन और बाल्यावस्था एव सुख, दुखादि के कारण क्या हैं ? इनके अतिरिक्त भी जिन विषयो से हम अनभिज्ञ हैं, उनका भी वर्णन कीजिये ।४-५।

(तदा तदाकर्ण्य कल्किरनन्त मुनिमस्मरत्) ।

सोऽप्यनन्तो मुनिवरस्तीर्थपादो बृहद्व्रत ॥६॥
कल्केर्दर्शनतो मुक्तिमाकलय्यागतस्त्वरन् ।
समागत्य पुन· प्राह कि करिष्यामि कुत्र वा ।
यास्यामीति वच: श्रुत्वा कल्कि: प्राह हसन्मुनिम् ।७।
कृत दृष्ट त्वया ज्ञात सर्व याह्यनिवर्त्तकम ।
अदृष्टमकृतञ्चेति श्रुत्वा हृष्टमना मुनि ।८।
गमनायोद्यत त तु दृष्ट्वा नृपगणास्तत: ।
कल्किं कमलपत्राक्ष प्रोचुर्विस्मितचेतस ।९।

(यह सुन कर कल्कि जी ने अनन्त मुनि का स्मरण किया) यह जान कर महानव्रती एव दीर्घ काल से तीर्थ मे निवास करने वाले मुनिवर अनन्त, कल्किजी के दर्शन से अपनी मुक्ति सभव समझ कर शीघ्र ही वहाँ आ उपस्थित हुए । उन्होने भगवान् कल्कि के पास आकर पूछा—मुझे क्या करना है ? कहाँ जाना है ? यह मुन कर कल्कि जी हँस कर मुनि से बोले ।६। हे मुने ! आपने मेरे सब किये हुए कर्म देखे हैं । अदृष्ट को कोई काट नही सकता और कर्म के बिना फल भी नही मिल सकता । यह सुन कर मुनि को प्रसन्नता हुई ।८। और फिर जब मुनि वहाँ से जाने लगे, तब उन्हे देख कर आश्चर्य चकित हुए राजागण कल्किजी से बोले ।९।

किमनेनापि कथितंत्वया वा किमुताच्युत ।
सर्वं तच्छ्रोतुमिच्छाम. कथोपकथनं द्वयो: ।१०।
नृपाणां तद्वच· श्रुत्वा तानाह मधुसूदन: ।
पृच्छतामु मुनिं शान्तं कथोपकथनादृता: ।११।
इ तिकल्केर्वचो भूय: श्रुत्वा ते नृपसत्तमा: ।
अनन्तमातु· प्रणता: प्रश्नपारतितीर्षव: ।१२।
मुने ! किमत्र कथन कल्किना धर्मवर्मणा ।
दुर्बोध. केन वा जातस्तत्त्व वर्णय न प्रभो ! ।१

पुरिकाया पुरि पुरा पिता मे वेदपारग. ।
विद्रुमो नाम धर्म्मज्ञः ख्यात. परहिते रतः ।१४।
सोमा मम विभो ! माता पतिधर्म्मपरायणा ।
तयोर्वयः परिणतौ काले षण्डाकृतिस्त्वहम् ।१५।

राजाओ ने कहा—हे प्रभो ! मुनि ने आपसे क्या कहा और आपने क्या उत्तर दिया ? आपका कथोपकथन किस विषय मे हुआ था ? यह सुनने की हमे इच्छा है ।१०। राजाओ की जिज्ञासा सुनकर भगवान् कल्कि ने कहा—हमारे कथोपकथन के विषय मे इन शान्त हृदय वाले मुनि से ही प्रश्न करो ।११। कल्किजी के वचन सुनकर वे सब श्रेष्ठ राजागण प्रश्न का भेद जानने के लिए मुनि को प्रणाम करके पूछने लगे ।१२। राजाओ ने कहा—हे मुने ! भगवान् कल्कि से आपका कथोपकथन गूढरूप से क्यो हुआ ? हे प्रभो ! इसका रहस्य हमें बताइये ।१३। मुनि बोले—पूर्वकाल की बात है—पुरिका नाम पुरी मे वेदो मे पारगत विद्रुम नामक एक धर्मज्ञ मुनि रहते थे, वही मेरे पिता थे ।१४। हे विभो ! मेरी माता का नाम सोमा था, उसी पतीव्रता से मेरा जन्म हुआ, परन्तु मैं पुंसत्वहीन था ।१५।

सजात. शोकद पित्रोर्लोकाना निन्दिताकृति ।
मामालोक्य पिता क्लीबदु:खशोक भयाकल: ।१६।
त्यक्त्वा गृह शिववन गत्वा तुष्टाव शङ्करम् ।
सपूज्येश विधानेन धूपदीपानुलेपनै· ।१७।
शिवं शान्त सर्वलोकैकनाथ भूता-वासं वासुकीकण्ठभूषम् ।
जटाजूटाबद्धगङ्गा तरंगवन्दे सान्द्रानन्दसन्दोहदक्षम् ।१८।
इत्यादि बहुभि. स्तेत्रैः स्तुत: स शिवदः शिव. ।
वृषारूढः प्रसन्नात्मा पितर प्राह मे वृणु ।१९।
विद्रुमो मे पिता प्राह मत्पुंस्त्वं तापतापित ।
हसञ्छिवो ददौ पुंस्त्व पार्वाया पृतिमोदितः ।२०।

मुझे इस प्रकार का उत्पन्न हुआ देख कर मेरे माता-पिता को बड़ा दु ख हुआ। मेरी आकृति निन्दा योग्य थी। यह देख कर दु ख, शोक और भय से व्याकुल हुए पिताजी शिव वन मे जाकर धूप, दीप, गध आदि से विधिवत् पूजन करके शिवजी की स्तुति करने लगे।१६ १७। उन्होने कहा—हे शिव! हे शान्त स्वरूप! आप सब लोको के नाथ और भूतो को आश्रय स्थान हैं। आपके कठ मे वासुकी नाग और जट जाल मे गंग-तरग सुशोभित हैं। आप आनन्द भडार के दाता शिव को मैं प्रणाम करता हूँ।१८। कल्याण के दाता भगवान् शकर इस स्तोत्र से प्रसन्न होकर वृषभारूढ होकर प्रकट हुए और उन्होने मेरे पिता को वर मागने की आज्ञा दी।१९। तब मेरे पिता विद्रुम मुनि ने उनसे कहा—हे नाथ! मेरा पुत्र पु सत्वहीन है, इससे मैं अत्यन्त दु.खी हूँ। तब शिवजी ने हँस कर मेरे पुरुषत्व युक्त होने का वर दिया और पार्वतीजी ने भी उनकी बात का अनुमोदन किया।२०।

मम पुंस्त्व वर लब्ध्वा पितायात· पुनर्गृहम्।
पुरुष मा समालोक्य सहर्ष: प्रियया सह।२१।
तत: प्रवयसौ तौ तु पितरौ द्वादशाब्दके।
विवाह मे कारयित्वा बन्धुभिर्मुदमापतु:।२२।
यज्ञरातसुतां पत्नी मानिनी रूपशालिनीम्।
प्राप्याह परितुष्टात्मा गृहस्थ, स्त्रीवशीऽभवम्।२३।
ततः कतिपये काले पितरौ मे मृतौ नृपा.।
पारलौकिककार्य्याणि सुहृद्भिर्ब्राह्मणैर्वृत·।२४।
तयो: कृत्वा विधानेन भोजयित्वा द्विजान्बहून्।
पित्रोर्वियोगतप्तोऽहं विष्णुसेवापरोऽभवम्।२५।

मेरे पुरुष होने का वर प्राप्त कर पिताजी घर लौट आये और तब मुझे पुरुषाकार हुआ देख कर माता के सहित वे बडे प्रसन्न हुए।२१। फिर जब मैं बारह वर्ष का होगया, तब उन्होने बन्धु-बान्धवो सहित मोद मनाते हुए मेरा विवाह कर दिया।२२। यज्ञरात की पुत्री को

अपनी भार्या के रूप मे प्राप्त करके मैं बडा सन्तुष्ट हुआ और गृहस्थाश्रम मे प्रवेश करके उस अत्यन्त रूपवती एव माननी स्त्री के वशीभूत हो गया।२३। फिर कुछ काल बीतने पर मेरे माता-पिता मर गये तब मैंने अपने सुहृदो और ब्राह्मणो के साथ उनका परलोक सस्कार किया।२४। माता-पिता का मृतक सस्कार करके मैंने अनेक ब्राह्मणो को भोजन कराया। फिर उनके विरह से दःखी होकर मैंने भगव न् विष्णु को आराधना की।२५।

तुष्टो हरिर्मे भगवाञ्जप पूजादिकर्मभि ।
स्वप्ने मामाह मायेय स्नेहमोहविनिर्मिता।२६।
अय पितेय मातेति ममताकुलचेतसाम् ।
शोकदु खभयोद्व गजरामृत्युविधायिका।२७।
श्रुत्वेति वचन विष्णो. प्रतिवादार्थमुद्यतम।
मामालक्ष्यन्तर्हित, स विनिद्रोऽहवम्।२८।
सविस्मयः सभार्य्योऽह त्यक्त्वा ता पुरिका पुरोम्
पुरुषोत्तमाख्य श्रीविष्णोरालवञ्चागम नृपा. !।२९।
तत्रैव दक्षिणे पार्श्वे निर्माया श्रममुत्तमम्।
सभार्य्य सानुगामात्यः करोमि हरिसेवनम्।३०।

मेरे जप, पूजन आदि कर्म से प्रसन्न हुए भगवान् विष्णु ने एक दिन स्वप्न मे मुझमे कहा कि स्नेह, मोह आदि सब मेरी ही माया है।२६। यह मेरे पिता हैं, यह मेरी माता है' ऐसी ममता जिनके चित्त को व्याकुल करती हो तो समझ लो कि इस शोक, दु ख, भय, इद्वेग, वृद्धावस्था और मृत्यु आदि के क्लेश रूप का कारण मेरी माया ही है।२७। भगवान् की वाणी सुन कर मैं जैसे ही प्रतिवाद करने को हुआ, वैसे ही वे अन्तर्धान होगये और मेरी नीद टूट गई।२८। हे राजाओ ! फिर मैं विस्मय मे भर कर पुरिका नामक उस पुरी को छोड कर अपनी पत्नी के सहित पुरुशोत्तम् सज्ञक विष्णुधाम में जा पहुँचा।२९। उस पुरुषोत्तम धाम के

दक्षिण भाग में श्रेष्ठ आश्रम बनाकर मैं अपनी पत्नी और अनुगामियों के सहित हरि-सेवा में तत्पर हो गया ।३०।

मायासदर्शनाकाङ्क्षी हरिसद्मनि सस्थितः ।
गायन्नृत्यञ्जपनाम चिन्तयच्छमनापहम् ।३१।
एवं वृत्ते द्वादशाब्दे द्वादश्या पारणादिने ।
स्नातुकाम समुद्रेऽह बन्धुभि, सहितो गत ।३२।
तत्र मग्न जलनिधौ लहरीलोलसकुले ।
समुत्थातुमशक्त मा प्रतुदन्ति जलेचरा· ।३३।
निमज्जनो मज्जनेन व्याकुलो कृतचेतसम् ।
जलहिल्लोलमिलनदलिताङ्गमचेतनम् ।३४।
जलधेर्दक्षिणे कूले पतित पवनेरितम् ।
मा तत्र पतित दृष्ट्वा वृद्धशर्मा द्विजोत्तम ।।३५।।
सन्ध्यामुपास्य सघृण स्वपुर मा समानयत् ।
स वृद्धशर्मा धर्मात्मा पुत्रदारधनान्वितः ।
कृत्वारुण्यन्तु मा तत्र पुत्रवत्पर्य्यपालयत् ।३६।

भगवान् के उस धाम मे रहता हुआ प्रभु माया का दर्शन करने की कामना से मैं नृत्य, गायन तथा जप पूर्वक यम का भय दूर करने वाले भगवान् विष्णु का ध्यान करने लगा ।।३१।। इस प्रकार बारह वर्ष व्यतीत होगए । एक दिन द्वादशी का पारण था, तब मैं स्नान करने के विचार से अपने बन्धुओ सहित समुद्र के तट पर पहुँचा ।।३२।। जैसे ही गोता लगाया, वैसे ही मैं समुद्र की भयकर नरगराशि से व्याकुल हो गया । मुझमे उठने की शक्ति नही रही । तभी जलचर जीव मुझे व्यथित करने लगे ।३३। मैं कभी उछलता था, कभी डूबता, इससेमेरा चित्त बडा व्याकुल हुआ । जल की तरगो के थपेडो से शिथिल अग हुआ मैं अचेत हो गया ।।३४।। फिर मैं वायु की हिलोर से बहता हुआ समुद्र के दक्षिण किनारे पर लग गया । मुझे अचेतावस्था में पड़ा देख कर वृद्ध शर्मा

नामक एक ब्राह्मण सध्योपासन से निवृत्त हो कर मुझे अपने घर ले गये। स्त्री पुत्रादि से युक्त, धनवान् एव धर्मात्मा वृद्ध शर्मा मुझे स्वस्थ करके पुत्र के समान पालने लगे ॥३५-३६॥

अहन्तु तत्र दीनात्मा दिग्देशाभिज्ञ एव न।
दम्पती तौ स्वपितरौ मत्वा तत्रावस नृपाः ।३७।
स मा विज्ञाय बहुधा वेदधर्म्मेष्वनुष्ठितम्।
प्रददौस्वा दुहितर विवाहे विनयान्वित ।३८।
लब्ध्वा चामीकराकारा रूपशीलगुणान्विता ।
नाम्ना चारुमती तत्र मानिनी विस्मितोऽभवम् ।३९।
तयाह परितुष्टात्मा नानाभोगसुखान्वित. ।
जनयित्व पञ्चपुत्रान्समदेनावृतोऽभवम् ॥४०॥

हे राजाओ ! उस स्थान पर रहते हुए मुझे दिशा और देश का भी ज्ञान न रहा, इसलिए दुःखित हृदय से उन ब्राह्मण दम्पत्ति को ही अपना माता-पिता मानता हुआ, वही रहने लगा ।३७। उन ब्राह्मण ने मुझे सब प्रकार से वेद-धर्म का अनुष्ठाता जान कर विनय पूर्वक अपनी कन्या का दान कर दिया ।३८। उस तप्त स्वर्ण जैसे वर्ण वाली, रूप, शील और गुण से युक्त कन्या का नाम चारुमती था। उस मानिनी को भार्या रूप मे प्राप्त कर मैं विस्मय मे पड गया ।३९। चारुमती ने मुझे सेवा द्वारा सदा सतुष्ट रखा और मैं उसके साथ विभिन्न प्रकार के सुखो का उपभोग करने लगा। उससे मेरे पाँच पुत्र उत्पन्न हुए और निरन्तर मेरे सुख की वृद्धि होने लगी ।४०।

जयश्च विजयश्चैव कमलो विमलस्तथा।
बुध इत्यादय. पच विदितास्तनया मम ।४१।
स्वजनैर्बन्धुभिः पुत्रैर्धनैर्नानाविधैरहम्।
विदितः पूजितो लोके देवैरिन्द्रो यथा दिवि ।४२।
बुधस्य ज्येष्ठपुत्रस्य विवाहार्थं समुद्यतम्।

दृष्ट्वा द्विजवरस्तुष्टो धर्मसारो निजा सुताम् ।४३।
दित्सु. कर्माणि वेदज्ञश्चकाराभ्युदयान्यपि ।
वाद्यं र्गीतैश्च नृत्यैश्च स्त्रीगणै. स्वर्णभूषतै. ।४४।
अह च पुत्राभ्युदये पितृदेवर्षितर्पणम् ।
कर्तु स मुद्रवेलाया प्रविष्ट परमादरात् ।४५।

मेरे पाँच पुत्र जय, विजय, कमल, विमल, और बुध इत्यादि नामों से जाने गये ।४१। मैं स्वजनो और पुत्रो से युक्त तथा विविध प्रकार के धनो का स्वामी होकर इन्द्र के समान पूजनीय तथा प्रसिद्ध होगया ।४२। जब मैने अपने ज्येष्ठ पुत्र बुध का विवाह करने का विचार किया तब धर्मसार नामक एक ब्राह्मण ने अपनी कन्या देने की इच्छा प्रकट की । फिर उसने अपनी कन्या का वैवाहिक सस्कार करने के लिए वेदज्ञ ब्राह्मणो को बुला कर आभ्युदयादि कर्म को पूर्ण कराया। उस समय स्वर्णाभूषणो से विभूषित स्त्रियाँ वाद्य, गीत और नृत्य कर रही थी- ।४३-४४। तब मैं भी पुत्र के अभ्युदय की अभिलाषा करके पितर, देवता और ऋषियो का तर्पण करने के लिए समुद्र के किनारे गया ।४५।

वेलालोलायिततनुर्जलादुत्थाय सत्वर: ।
तीरे सर्वान्स्नानसन्ध्या-परान्वीक्ष्याहमुन्मना. ।४६।
सद्य: समभव भूपा ! द्वादश्या पारणादृतान् ।
पुरुषोत्तमसवासान्विष्णु सेवार्थमुद्यतान् ।।४७।।
तेऽपि मामग्रत. कृत्वा तद्रूपवयसा निधिम् ।
विस्मयाविष्टमनस दृष्ट्वा मामब्रुवज्जना· ।४८।
अनन्त ! विष्णुभक्तोऽसि जले कि दृष्टवानिह ।
स्थले वा व्यग्रमनस लक्षयाम. कथ तव ।४९।
पारणं कुरु तद्ब्रूहि त्यक्त्वा विस्मयमात्मम. ।
तानब्रुवमह नैव किञ्चिद्दृष्ट श्रुत जना: ।५०।
कामात्मा तत्कृपणधीर्माया सन्दर्शनादृत: ।

तया हरेर्माययाहृ मूढो व्याकुलितेन्द्रियः ।५१।

जब मैं स्नान — तर्पणादि से निवृत्त होकर जल से निकल कर तट की ओर चला, तभी देखता हूँ कि मेरे पहिले के सभी बधु बाधव सन्ध्यादि कर्म कर रहे हैं। यह देख कर मेरा मन उद्विग्न हो उठा ।४६। हे राजाओ! पुरुषोत्तम धाम मे रहने वाले उन ब्राह्मणो को भगवान् विष्णु की सेवा एव द्वादशी के पारण मे तत्पर देख कर मैं चकित हुआ ।४७। मेरे रूप और वय मे पहिले से कुछ भी परिवर्तन न हुआ देख कर और मुझे विस्मयपूर्वक अपने को देखता देख कर उन्होने कहा ।४८। हे अनन्त! तुम विष्णु भक्त हो। क्या तुमने जल अथवा स्थल मे कही कुछ ऐसा दृश्य देखा है, जिससे इतने व्यग्रचित्त दिखाई दे रहे हो! ।४९। यदि कुछ देखा हो तो बताओ और विस्मय को छोड कर पारण करो। यह सुन कर मैंने कहा— मैंने कही कुछ भी नही देखा-सुना। परन्तु मैं काम से मोहित होकर दुर्बल हृदय हो गया हूँ। मैं भगवान् श्रीहरि की माया से ही विमूढ और व्याकुल इद्रिय वाला हो रहा हूँ ।५०-५१।

न शर्म्म वेद्मि कुत्रापि स्नेहमोहवशं गतः ।
आत्मनो विस्मृतिरियं को वेद विदिता तु ताम् ।५२।
इति भार्य्या धनागार-पुत्रोद्वाहानुरक्तधी. ।
अनन्तोऽहं दीनमना न जाने स्वापसम्मितम् ।।५३।।
मां वीक्ष्य मानिनो भार्य्या विवशं मूढवस्थितम् ।
क्रन्दन्ती किमहोऽकस्मादालपन्ती ममान्तिके ।५४।
इह ता वीक्ष्य तास्तत्र स्मृत्वा कातरमानसम् ।
हसोऽप्येको बोधयितुमागतो मां सदुक्तिभिः ।५५।
धीरो विदितसर्वार्थः पूर्णः परमधर्म्मवित् ।५६।
सूर्य्याकार तत्त्वसार प्रशान्त दान्त शुद्ध लोकशोकक्षयिष्णुम्। ममाग्रे त पूजयित्वा मदङ्गाः पप्रच्छुस्ते मच्छुभध्यानकामाः ।५७।

मैं स्नेह और मोह के वशीभूत होकर आत्मविस्मृति को प्राप्त हुआ हूँ, परन्तु इस बात को कौन जानता है ? ।५२। इस प्रकार मैं भार्या, धन के भडार और पुत्र के विवाहादि मे अत्यन्त अनुरक्त शोक और दु ख मे युक्त हो गया। मै सोचने लगा कि मैं अनन्त कौन हूँ ? परतु कुछ भी नही समझ पाया । सभी विषय स्वप्न के समान लगने लगे ।५३। तभी मेरी मानिनी पत्नी मुझे उस विवश और मूढ के समान अवस्था मे देख कर मेरे पास आकर रोती हुई चिल्लाने लगी कि हा, यह क्या हुआ ! ।५४। वहाँ अपनी पूर्व भार्या को इस प्रकार देख कर और फिर उन स्त्री-पुरुषो का स्मरण करके अत्यन्त कातर हृदय तथा सन्नप्त हो उठा । तभी एक वीर, सर्वज्ञानी, पूर्ण धर्मज्ञ, सूर्य के समान तेजस्वी, सतोगुणी, शान्त, शुद्ध तथा ससार-शोक का नाश करने मे समर्थ परमहस मुझे ज्ञान देने के निमित्त वहाँ पधारे। तभी मेरे बाधवो ने उनका पूजन किया और मेरे कल्याण का उपाय पूछने लगे ।५५-५७।

पंचम अध्याय

उपविष्टे तदा हंसे भिक्षां कृत्वा यथोचिताम् ।
ततः प्राहुरनन्तस्य शरीरारोग्यकाम्यया ।१।
हंसस्तेषां मतं ज्ञात्वा प्राह मां पुरतः स्थितम् ।
तव चारुमती भार्या पुत्राः पञ्च बुधादयः ।२।
धनरत्नान्वितं सद्म सम्बाधं सौख्यसंकुलम् ।
त्यक्त्वा कदागतोऽसीह पुत्रोद्वाहदिने न तु ।३।
समुद्रतीरसञ्चारः पुराद्धर्म्मजनादृतः ।
निमन्त्र्य मामिहायातः शोकसंविग्नमानसः ।४।
त्वञ्च सप्ततिवर्षीयस्तत्र दृष्टो मया प्रभो ! ।
त्रिंशद्वर्षीयवत्कस्मादिति मे सम्भ्रमो महान् ।।५।।

सूतजी बोले — यथोचित भिक्षा प्राप्त करके परमहंस जब विराजमान हुए, तब पुरुषोत्तम तीर्थ के निवासियों ने उनसे पूछा कि अनन्त का शरीर रोग-रहित कब होगा ? ।१। परमहंस उनके प्रश्न का तात्पर्य जान कर और मुझे अपने सामने स्थित देख कर बोले — हे अनन्त ! तुम अपनी पत्नी चारुमती, बुधादि पाँचों पुत्र धन रत्नादि से युक्त भवन आदि को त्याग कर यहाँ कब आये ? क्या आज तुम्हारे पुत्र का विवाह-दिवस है ? ।२-३। मैं आज भी तुम्हें इस समुद्र तट पर घूमते देखता हूँ । वहाँ के सभी धार्मिक व्यक्ति तुम्हारा आदर करते हैं। मैं भी आज निमन्त्रित हूँ । परन्तु तुम यहाँ आकर शोक से सन्तप्त होरहे दिखाई देते हो ।४। हे प्रभो ! वहाँ तो तुम सत्तर वर्ष के वृद्ध थे, परन्तु

यहाँ तीस वर्ष के युवक कैसे दिखाई दे रहे हो ? ।५।

इय भार्या सहाया ते न तत्रालोकिता क्वचित् ।
अह वा क्व कुतस्तस्मात्क्थ वा काशित ।६।
स एव वा न वापि त्व नाह् वा भिक्षुरेव स. ।
आवयोरिह सयोगश्चेन्द्रजाल इवाभवत् ।७।
त्व गृहस्थ. स्वधर्म्मज्ञो भिक्षुकोऽह परात्मक. ।
आवयोरिह सवादो वालकोन्मत्तयोरिव ।८।
तस्मादीशस्य मायेय त्रिजन्मोहकारिणी ।
ज्ञानाप्राप्याद्वैतलभ्या मन्येहमिति भा द्विज ! ।९।

तुम्हारी इस सहायिका भार्या को मैंने वहाँ कभी भी नही देखा । मैं भी यह नही जानता कि मैं इस स्थान प र कहाँ से और किस प्रकार आ गया ? तथा मुझे यहाँ कौन लाया है ? ।६। क्या तुम वही अनन्त हो या और कोई हो ? मैं भी वही भिक्षुक हूँ या कोई अन्य हूँ ? यहाँ मेरा तुम्हारा मिलन भी इद्रजाल के समान ही प्रतीत होता है ।७। तुम अपना धर्म का पालन करने वाले गृहस्थ हो और मैं परमार्थ चिन्तक भिक्षुक । यहाँ हम-तुम दोनो का पारस्परिक सवाद एक बालक और उन्मत्त के सवाद के समान निरर्थक है ।८। हे द्विज ! इससे मैं समझता हूँ कि यह भगवान् की त्रैलोक्य-मोहिनी माया है । इस माया का रहस्य साधारण ज्ञान से नही, अद्वैत बुद्धि से ही समझा जा सकता है ।९।

इति भिक्षुः समाश्राव्य यदन्यत्प्राह विस्मित. ।
मार्कण्डेय ! महाभाग ! भविष्य कथयामि ते ।१०।
प्रलये या त्वया दृष्टा पुरुषस्योदराम्भसि ।
सा माया मोहजनिका पन्थानं गणिका यथा ।११।
तमोद्यतन्तसन्तापा नोदनोद्यतमक्षरी
ययेदमखिलं लोकमवृत्या वस्थयास्थितम् ।१२।
लये लीने त्रिजगति ब्रह्मतन्मात्रतां गतः ।
निरुपाधौ निरालोके सिसृक्षुरभवत् परः ।१३।

ब्रह्मण्यपि द्विधाभूते पुरुष प्रकृती स्वया ।
भासा सजनयामास महान्त कालयोगतः ।१४।
कालस्वभावकर्म्मात्मा सोऽहङ्कारस्ततोऽभवत्
त्रिवृद्विष्णु-शिव-ब्रह्म-मय. ससारकारणम् ॥१५॥

विस्मयान्वित हृदय से भिक्षुक परमहस ने मुझसे इतना ही कहा। फिर उन्होने माकण्डेय से कहा – हे मार्कण्डेय ! हे 'महाभाग ! मैं अब तुम्हें भविष्य की बात सुनाता हूँ ।१०। प्रलयकाल मे उस परम पुरुष के उदर मैं स्थित जल मे, पथ मे बैठने वाली गणिका के समान, सब मे मोह उत्पन्न करने वाली माया निवास करती है ।११। तमोगुण रूप हुई यही माया अनन्त सन्ताप उत्पन्न करने वाली और इस मिथ्या जगत में सब की गति करने वाली है । यही माया तीनो लोको मे व्याप्त होकर उन्हें स्थित करती है । इस मायाका नाश सभव नही है ।१२। प्रलयकाल मे तीनो लोको के लीन होजाने पर सर्वत्र अधकार छा जाता है, तब दिशा देश और काल आदि का भी कोई चिह्न नही रहता। उस समय ब्रह्म ही सृष्टि करने की इच्छा से, अपनी हीं महिमा द्वारा प्रकृति और पुरुष इन दो रूपो मे विभक्त हो जाते हैं । तब काल के सहयोग से प्रकृति और पुरुष, का सयोग होने पर महत्तत्व उत्पन्न होता है ।१३-१४। प्रकृति से काल और स्वभाव उत्पन्न हुए । महत्तत्व से अहकार हुआ । वही अहकार तीनो गुणो मे विभक्त होकर ब्रह्मा, विष्णु और शिव का उत्पन्न करने वाला हुआ । यही ब्रह्मा, विष्णु और शिव सम्पूर्ण विश्व के कारण हैं ।१५।

तन्मात्राणि तत पञ्च जज्ञिरे गुणवन्ति च ।
महाभूतान्यपि तत प्रकृतौ ब्रह्मसश्रयात् ।१६।
जाता देवासुरनरा ये चान्ये जीवजातयः ।
ब्रह्माण्डभाण्डसभार-जन्मनाशक्रियात्मिकाः ।१७
माययया मायया जीव-पुरुष परमात्मनः ।
ससारशरणव्यग्रो न वेदात्मगति क्वचित् ।१८
अहो बलवती माया ब्रह्माद्या यद्वशे स्थितः ।

गावो यथा नसि प्रोता गुणबद्धा. खगा इव ।१९।
ता माया गुणमय्या ये तितीर्षन्ति मुनीवरा ।।
स्रवन्ती वासनानक्रां त एवार्थविदो भुवि ।।२०।।

अहंकार से प्रथम त्रिगुणात्मक पंचतन्मात्र प्रकट हुआ। पंचतन्मात्र से पंचमहाभूत हुए। इस प्रकार प्रकृति मे पुरुष के अधिष्ठान करने से ही सृष्टि का उदय होता है।१६। फिर देवता, दानव, मनुष्य तथा अन्यान्य जीव अर्थात जितने भी जन्म लेने वाले और मरणधर्मी प्राणी हैं, वे सब उत्पन्न होते है।१७। ईश्वर की माया के वश मे पडे रहने से सभी जीव सांसारिक कार्यो मे लिप्त रहे आते हैं तथा अपने उद्धार का प्रयत्न नही कर पाते।१८। अहो, यह माया कैसी बलवती है, जिसके वश मे ब्रह्मादि देवता भी नाथे हुए बैल और डोरी से बांधे हुए पक्षी के समान नाचते करहते है।१९। जो मुनिवर इस प्रकार के वासना रूपी नक्र की उत्पत्ति-त्री गुणमयी माया से मुक्त होने का उपाय करते हैं, उन्ही ज्ञानियो का जन्म सार्थक समझो।२०।

मार्कण्डेयो वसिष्ठश्च वामदेवादयोऽपरे ।
श्रुत्वा गुरुवचो भूय. किमाहु श्रवणादृता ।२१।
राजानोऽनन्तवचनमिति श्रुत्वा सुधोपमम् ।
किं वा प्राहुरहो सूत ! भविष्यमिह वर्णय ।२२।
इति तद्वच आश्रुत्य सूत' सत्कृत्य त पुन: ।
कथयामास कार्त्स्न्येन शोकमोहविघातकम् ।२३।
तत्रानन्तो भूपगणै. पृष्ट प्राह कृतादर ।
तपसा मोहनिधनमिन्द्रियाणाञ्च निग्रहम् ।२४।
अतोऽहवनमासाद्य तप कृत्वा विधानत. ।
नेन्द्रियाणा न मनसो निग्रहोऽभूत्कदाचन ।२५।

शौनक बोले— हे ब्रह्मन् ! मार्कण्डेय, वसिष्ठ, वामदेव तथा अन्यान्य मुनियो ने परमहंस के वचन सुन कर क्या कहा था ? तथा अनन्त के इस उपाख्यान को सुनने वाले राजाओ ने अनन्त के सुधा के समान

वचन सुन कर क्या कहा ? यह सभी भविष्य-वार्ता हमे सुनाइये ।२१-२२। यह सुन कर सूतजी शोक-मोह का नाश करने वाली एव तत्व-ज्ञानमयी उस वार्ता का वर्णन पुनः करने लगे ।२३। सूतजी ने कहा—फिर उन राजागण के जिज्ञासा करने पर अनन्त ने तपस्या के द्वारा माया का निवारण और इन्द्रियो के निग्रह का प्रसग कहा ।२४। ।। बोला—मैं वन मे पुन जाकर विधिवत् तप करने लगा, तो भी अपनी इन्द्रियो और मन का निग्रह नही कर पाया ।२५।

वने ब्रह्म ध्यायतो मे भार्य्यापुत्रधनादिकम् ।
विषयचान्तरा शश्वत्सस्मारयति मे मन: ।२६।
तेषा स्मरणमात्रेण दु.खशोकभयादय· ।
प्रतुदन्ति मम प्राणान्धारणा-ध्याननाशका ।२७।
ततोऽह निश्चितमतिरिन्द्रियाणांच घातने ।
मनसो निग्रहस्तेन भविष्यति न सशय ।।२८।।
अतो मामिन्द्रियाणाञ्च निग्रहव्यग्रचेतसम् ।
तदधिष्ठातृदेवाश्च दृष्ट्वा मामीयुरञ्जसा।२९।
रूपिणो मामथोचुस्ते भोऽनन्त ! इति ते दश ।
दिग्व तार्कप्रचेतोऽश्वि-वह्नीन्द्रोपेन्द्रमित्रका: ।।३०।।

मैं जब–जब ब्रह्म का ध्यान करने में तत्पर होता, तब-तब ही मुझे स्त्री, पुत्र, धनादि की बातें स्मरण हो आती और मेरा ध्यान भग हो जाता २६। इस प्रकार स्त्री, पुत्र तथा धनादि का स्मरण होते ही मेरा अन्तरात्मा दु ख, शोक और भय आदि से व्याकुल हो जाता । इस प्रकार ध्यान में बाधा उपस्थित हो गई ।२७। मैंने पुन: यह विचार करके कि इन्द्रिय-निग्रह से मन भी वश मे हो जायगा, इन्द्रियो के निग्रह का ही संकल्प किया ।२८। ऐसा संकल्प करके जब मैं इन्द्रियों के दमन मे तत्पर हुआ, तब इन्द्रियो के अधिष्ठतृ देवता मेरी ओर ताकने लगे ।२९। तब दशो इन्द्रियो के अधिष्ठातृ देवताओ ने साक्षात् प्रकट होकर मुझसे कहा--

हे अनन्त! हम दिशा, वात, प्रचेता, अश्विद्वय, अग्नि, इन्द्र, उपेन्द्र और मित्र देवता हैं ।३०।

इन्द्रियाणां वयं देवास्तव देहे प्रतिष्ठिताः ।
नखाग्रकाण्डसभिन्नान्नास्मान्कर्तुमिहार्हसि ।३१
न श्रयो हि तवानन्त! मनोनिग्रहकर्मणि ।
छेदने भेदनेऽस्माक भिन्नमर्म्मा मरिष्यसि ।३२।
अन्धानां बधिराणाच विकलेन्द्रियजीविनाम ।
वनेऽपि विषयव्यग्र मानस लक्षयामहे ।३३।
जीवस्यापि गृहस्थस्य देहो गेह मनोऽनुग ।
बुद्धिर्भार्य्या तदनुगा वयमित्यवधारय ।३४।
कर्मायत्तस्य जीवस्य मनो बन्धविमुक्तिकृत् ।
संसारयति लुब्धस्य ब्रह्मणो यस्य मायया ।३५।

हम दश इन्द्रियो के अधिष्ठातृ देवगण तुम्हारे देह मे स्थित हैं। हमको नखाग्र से छिन्न-भिन्न करना सर्वथा अनुचित है ।३१। इस प्रकार मन को वश करने के प्रयत्न मे तुम्हारा कल्याण नही होगा । इन्द्रियो के छेदन-भेदन से मर्मस्थल आहत हो जायगा तो तुम्हारी मृत्यु हो जायगी ।३२। अन्धे, बहरे अथवा विकल इन्द्रियो वाले जीव भी निर्जन वन मे वास करते हुए विषयासक्त दिखाई देते हैं ।३३। जीव रूपी गृहस्थ का घर यह देह ही है तथा मन की अनुगता बुद्धि ही इसकी भार्य्या है। इस प्रकार हम सभी उस बुद्धि रूपी भार्य्या के ही अनुगत रहते हैं ।३४। सभी जीव अपने कर्म के वश मे हैं । मोक्ष और बधन का कारण मन है। प्रभु-माया का अनुगत हुआ मन ही इस लोलुप प्राणी को भवचक्र मे डालता रहता है ।३५।

तस्मान्मनोनिग्रहार्थं विष्णुभक्तिं समाचर ।
सुखमोक्षप्रदा नित्य दाहिका सर्वकर्मणाम् ।।३६।
द्वैताद्वैतप्रदानदन्स न्दोहा हरिभक्तिका ।
रिभक्त्या जीवकोष–विनाशान्ते महामते ।।३७।

परं प्राप्स्यसि निर्वाण कल्केरालोकनात्त्वया ।
इत्यह बोधितस्तेन भक्त्वा सपूज्य केशवम् ।३८।
कल्कि दिदृक्षुरायात. कृष्णं कलिकुलान्तकम् ॥३९॥
दृष्ट रूपमरूपस्य स्पृष्टस्तत्पदपल्लवः ।
अपदस्य श्रुत वाक्यमवाच्यस्य परात्मनः ।४०।

इसलिए यदि मन का निग्रह करना है तो भगवान् विष्णु की भक्ति करो। क्योकि वही सब कर्मोकी दाहिका और मोक्ष-सुख के देने वाली है ॥३६॥ हरि-भक्ति ही द्वैत-अद्वैत का ज्ञान एव आनन्द और सन्दोह के देने वाली है, उसी के द्वारा जीवकोष का दमन सभव है।३७। कल्कि भगवान् के दर्शन करने से ही तुम मोक्ष को प्राप्त हो जाओगे। परमहस का यह उपदेश सुनकर मैं भक्ति सहित भगवान् केशव का पूजन करके कलिकुलनाशक कल्किरूप श्रीकृष्ण के दर्शनार्थ यहाँ उपस्थित हुआ हूँ ।३८-३९। यहीं आकर निराकार ईश्वर के रूप का मुझे दर्शन हुआ है। चरण-रहित परमात्मा के चरण-स्पर्श का सौभाग्य प्राप्त हुआ और अवाच्य प्रभु की वाणी सुनाई दी ।४०।

इत्यनन्तः प्रमुदितः पद्मानाथ निजेश्वरम् ।
कल्कि कमलपत्राक्ष नमस्कृत्य ययौ मुनिः ॥४१॥
राजानो मुनिवाक्येन निर्वाण-पदवी गता. ।
कल्किमभ्यर्च्चर्य पद्माञ्चा नमस्कृत्य मुनिव्रता. ॥४२॥
अनन्तस्य कथामेतामज्ञानध्वान्त-नाशिनीम
मायानियन्त्री प्रपठञ्छृण्वन्बन्धाद्विमुच्यते ॥४३॥
ससाराब्धि-विलासलालसमति. श्रीविष्णुसेवादरो
भक्त्याख्यानमिद स्वभेद-रहितं निर्माय धर्मात्मना ।
ज्ञानोल्लास-निशात-खड्गमुदित. सद्भक्ति-दुर्गाश्रय:
षड्वर्गजयतादशेषजगतामात्मस्थित वैष्णव. ॥४४॥

यह कह कर अत्यन्त हर्षित हुए मुनिवर अनन्त पद्मपत्राक्ष एवं पद्मा के पति भगवान् कल्कि को नमस्कार करके वहाँ से चले गये ।४१।

मुनिवर अनन्त के इन वचनो को सुन कर राजाओ ने भी उनके ही समान व्रतादि का अनुष्ठान किया और पद्मा सहित भगवान् कल्कि का पूजन करके निर्वाण-पदवी को प्राप्त हुए ।४२। शुक बोला—अनन्त की इस कथा के पढने से अज्ञान रूपी अंधकार दूर होता तथा भव-माया से छुटकारा होकर संसार-बंधन से मोक्ष की प्राप्ति होती है ।४३। जो धर्मात्मा पुरुष विष्णु की सेवा तत्पर रह कर भी वासना जनित भवसिन्धु में गोते लगाते रहते हैं, वे इस प्रसंग के द्वारा अभेद-ज्ञान स्वरूप उल्लसित हुई तीक्ष्ण तलवार को धारण करके, हरि-भक्ति रूपी दुर्ग के आश्रय मे स्थित हो काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मात्सर्य रूप अपने छ ओ शत्रुओ पर विजय प्राप्त कर लेते हैं ।।४४।।

षष्ठम अध्याय

गते नृपगणे कल्कि: पद्मया सह सिंहलात् ।
शम्भलग्राम-गमने मतिं चक्र स्वसेनया ॥१॥
तत: कल्केरभिप्राय विदित्वा वासवस्त्वरन् ।
विश्वकर्म्माणमाहूय वचनञ्चेदमब्रवीत् ॥२॥
विश्वकर्मञ्छम्भलेत्वं गृहोद्यानाट्ट-घट्टिनम् ।
रत्नस्फटिक-वैदूर्य्य नानामणि-विनिर्मितं ।
तत्रैव शिल्पनैपुण्य तव यच्चास्ति तत्कुरु ॥४॥
श्रुत्वा हरेर्वचो विश्वकर्मा शर्म निज स्मरन् ।
शम्भले कमलेशस्य स्वस्त्यादि-प्रमुखान्गृहान् ॥५॥

सूतजी बोले—फिर जब वे राजागण चले गए तब भगवान् कल्कि ने पद्मा और सेना के सहित सिंहलद्वीप से प्रस्थान करने का विचार किया ।१। जब इन्द्र ने उनका यह अभिप्राय जाना, तब उसने उसी समय विश्वकर्मा को अपने पास बुला कर कहा ।२। इन्द्र बोला—हे विश्वकर्मन् ! तुम सम्भल ग्राम मे जाकर स्वर्ण से अट्टालिकाओ से युक्त सुन्दर भवन और उद्यान आदि का निर्माण करो और उन्हे रत्न, स्फटिक तथा वैदूर्यादि विविध प्रकार की मणियो से जड़ कर अपना शिल्प-नैपुण्य दिखाओ ।३-४। इन्द्र के वचन सुन कर विश्वकर्मा अपना कल्याण जानता हुआ शम्भल ग्राम पहुँचा और वहाँ उसने पद्मापति के निमित्त स्वस्ति आदि मगल चिन्हो से युक्त सुन्दर भवनादि का निर्माण किया ।५।

हंससिंहसुपर्णादिमुखाश्चक्रे स विश्वकृत् ।

पर्य्पर्य्परि तापघ्नवातायनमनोहरान् ।६।
नानावनलतोद्यानसरोवापीसुशोभितः ।
शम्भलश्चाभवत्कल्केर्यथेन्द्रस्यामरावती ।७।
कल्किस्तु सिंहलाद्द्वीपाद्बहिः सेनागणैर्वृत ।
त्यक्त्वा कारुमती कूले पाथोधेरकरोत्स्थितम् ।८।
बृहद्रथस्तु कौमुद्या सहितः स्नेहकातरः ।
पद्मया सहितायास्मै पद्मनाथाय विष्णवे ।९।
ददौ गजानामयुत लक्ष मुख्यञ्च वाजिनाम् ।
रथानाञ्च द्विसाहस्र दासीना द्वे शता मुदा ।१०।
दत्त्वा वासासि रत्नानि भक्तिस्नेहाश्रुलोचनः ।
तयोर्मुखालोकनेन नाशकत्किंचदीरितुम् ।११।

हस, सिंह, गरुड आदि की आकृति से युक्त अनेक प्रकार के गृह बनाये गये। अनेक भवनो मे कई-कई मंजिले बनाइ गई और गर्मी का ताप शान्त करने के लिए मनोहर वातायन निर्मित किये गये ।६। विविध प्रकार के वन, लताओ से युक्त उद्यान, सरोवर और बावडी आदि से समन्वित होने के कारण वह शम्भल ग्राम अमरावती के समान शोभा पाने लगा ।७। इधर भगवान् कल्कि सेना के सहित सिंहल द्वीप की कारुमती नगरी से निकल कर समुद्र तट पर आये ।८। अपनी रानी कौमुदी के साथ राजा बृहद्रथ स्नेह से कातर हो गया और उसने पद्मा सहित पद्मानाथ को दश हजार हाथी, एक लाख घोडे, दो हजार रथ, दो सौ दासियाँ और विविध प्रकार के वस्त्र-रत्नादि भक्ति सहित दिये और आँखों मे स्नेह के आँसू भर कर अपनी पुत्री और जामाता को अपलक देखते रहे ।९-११।

महाविष्णुदम्पती तौ प्रस्थाप्य पुनरागतौ ।
पूजितौ कल्किपद्माभ्या निजकारुमती पुरीम् ।१२।
कल्किस्तु जलधेरम्भो विगाह्य पतना गणै ।
पार जिगमिषु दृष्ट्वा जम्बुक स्तम्भिताऽभवत् ।१३।

जलस्तम्भमथालोक्य कल्कि. सबलवाहन ।
प्रययौ पयसा राशेरुपरि श्रीनिकेतन. ।१४।
गत्वा पार शुक प्राह याहि मे शम्भलालयम् ।१५।

फिर राजा बृहद्रथ ने अपनी पुत्री और जामाता का पूजन कर उन्हे विदा किया और स्वयं अपनी कारुमती नगरी मे लौट गया ।१२। फिर कल्किजी ने सेना के सहित समुद्र के जल मे स्नान किया और तभी वहाँ एक श्रृगाल उस स्तभित हुए जल पर होता हुआ पार चला गया ।१३। जब कल्किजी ने जल को इस प्रकार स्तभित हुआ देखा तो वे अपनी सेना और वाहनादि के सहित समुद्र के जल पर चलते हुए पार हो गये ।१४। समुद्र के पार पहुँच कर उन्होंने शुक के प्रति कहा—हे शुक ! तुम शम्भल ग्राम स्थित मेरे घर पर जाओ ।१५।

विश्वकर्मकृत यत्र देवराजाज्ञया बहु ।
सद्म सम्बाधममल मत्प्रियार्थ सुशोभनम् ।१६।
तत्रापि पित्रोर्ज्ञातीनां स्वस्ति ब्रूया यथोचितम् ।
यदत्राङ्ग ! विवाहादि सर्व वक्तु त्वमर्हसि ।१७।
पश्चाद्यामि वृतस्त्वेकैस्त्वमादौ याहि शम्भलम् ।१८।
कल्केर्वचनमाकर्ण्य कीरो धीरस्ततो ययौ ।
आकाशगामी सर्वज्ञ. शम्भल सुरपूजितम् ।१९।
सप्तयोजनविस्तीर्ण चातुर्वर्ण्यजनाकुलम् ।
सूर्यरश्मिप्रतीकाश प्रासादशतशोभितम् ।२०।

देवराज इन्द्र की आज्ञा से मेरा प्रिय करने के लिए वहाँ विश्वकर्मा ने अनेको शोभा सम्पन्न भवनो का निर्माण किया है ।१६। तुम वहाँ जाकर मेरे माता-पिता और जाति-बन्धुओ को मेरा कुशल समाचार देकर विवाहादि का प्रसग उन्हे बताना ।१७। तुम आगे-आगे शम्भल ग्राम पहुचो, मैं भी सेना सहित पीछे पीछे आ रहा हूँ ।१८। कल्किजी के वचन सुन कर वह धीर शुक आकाश मार्ग से होता हुआ शीघ्र ही शम्भल ग्राम

मे जा पहुचा ।१६। सात योजन विस्तार वाले उस शम्भल ग्राम मे चारो वर्ण निवास करते हैं । वहाँ सूय किरणो के समान चमचमाते हुए सैकडो प्रासाद सुशोभित हैं ।२०।

सर्वर्तु सुखद रम्य शम्भल विह्वलोऽविशत् ।२१।
गृहाद्गृहान्तर दृष्ट्वा प्रासादपि चाम्बरम् ।
वनाद्वनातर तत्र वृक्षाद्वृक्षान्तर व्रजन् ।२२।
शुक. स विष्णुयशश: सदन मुदितोऽव्रजत् ।
त गत्वा रुचिरालापै. कथयित्वा प्रिया. कथा. ।२३।
कल्केरागमन प्राह सिंहलात्पद्मया सह ।२४।
ततस्त्वरन्विष्णुयशाः समानार्यप्रजाजनान् ।
विशाखयूपभूपाल कथयामास हर्षित. ।२५।

सब ऋतुओ में समान सुख देने वाले सुरम्य शम्भल ग्राम को देखते ही विह्वल हुए शुक ने उसमे प्रवेश किया । वह वहाँ एक घर से दूसरे में, प्रासाद के आगे से आकाश में, एक उद्यान से अन्य उद्यान मे तथा एक वृक्ष से दूसरे वृक्ष पर विचरने लगा ।२१-२२ इस प्रकार ह ष-विह्वल शुक विष्णुयशजी के घर में जाकर अपनी मधुर वाणी में उन्ही सम्पूर्ण प्रिय कथा सुनाने लगा ।२३। तथा पद्मा के सहित भगवान् कल्कि के आगमन का समाचार सुनाया ।२४। यह सुनते ही विष्णुयश हर्ष से पुलकित हो उठे और उन्होने विशाखयूप-नरेश आदि राजाओ और प्रजाजनो को वह सब समाचार सुना दिया ।२५।

स राज्ञा कारयामास पुर-ग्रामादि मण्डितम् ।
स्वर्णकुम्भै. सदम्भोभिः पूरितैश्चन्दनोक्षितैः ।२६।
कालागुरुसुगन्धाढ्यैर्दीपलाजाङ्कुराक्षतै' ।
कुसुमैः सुकुमारैश्च रम्भा-पूग-फलान्वितै. ।
शुशुभे शम्भलग्रामो विबुधाना मनोहरः ।२७।
त कल्किः प्राविशद्भीम-सेनागण-विलक्षण ।

कामिनी-नयनानन्दमन्दिराग कृपानिधिः ।२८।
पद्मया सहित पित्रोः पदयो. प्रणतोऽपतत् ।
सुमतिमुंदिता पुत्र स्नुषा शक्रं शचीमिव ।
ददृशे त्वमरावत्या पूर्णकामा दिति सती ।२९।

तब विशाखयूप-नरेश ने चन्दन युक्त जल को स्वर्णकलश मे भरवा कर नगर और ग्राम मे उससे छिडकाव कराया ।२६। उस समय वह शम्भल ग्राम दीपमाल, पुष्पो, अगर आदि सुगंधित द्रव्यो, कदली, पुगीफल, नवीन किसलय, अक्षत तथा ताम्बूल आदि से समन्वित होकर देवताओ की पुरी के समान मनोहर दिखाई देने लगा ।२७। इसी अवसर पर स्त्रियो के नेत्रों को आनन्द देने वाले भगवान् कल्कि अपनी सेना आदि के सहित ग्राम मे प्रविष्ट हुए ।२८। भगवान् कल्कि ने पद्मा के सहित अपने माता पिता के चरणो मे प्रणाम किया । जैसे इन्द्र और शची को प्रणाम करते देख कर दिति को आनन्द हुआ था, वैसे ही सुमति भी अपने पुत्र और पुत्रवधू को देख कर पूर्ण मनोरथ एव अत्यत हर्षित हुई ।२९।

शम्भलग्राम नगरी पताका ध्वज-शालिनी
अवरोधसुजघना प्रासादविपुलस्तनी ।
मयूरचूचका हस-सघहारमनोहरा ।३०।
पटवासोद्योतधूमवसना कोकिलस्वना ।
सहासगोपुरमुखी वामनेत्रा यथांगना ।
कल्कि पति गुणवती प्राप्य रेजे तमीश्वरम् ।३१।
स रेमे पद्मया तत्र वर्षपूगानजाश्रयः ।
शम्भले विह्वलाकारः कल्किः कल्कविनाशन. ।३२।
कवेः पत्नी कामकला सुषुवे परमेष्ठिनौ ।
बृहत्कीर्त्तिबृहद्बाहू महाबल पराक्रमौ ।३३।।
प्राज्ञ य सन्नतिर्भार्या तस्या पुत्रौ बभूवतु ।

यज्ञविज्ञौ सर्वलोकपूजितौ विजितेन्द्रियौ ।३४।
सुमन्त्रकस्तु मालिन्या जनयामास शासनम् ।
वेगवन्तञ्च साधूना द्वावेतावुपकारकौ ॥३५॥

शम्भल ग्राम नामक वह नगरी ध्वजा-पताका से युक्त उन्नत प्रासादो वाली, मयूर, हसादि से सुशोभिता, सुगन्ध-धूम-वसना कोकिल के समान मधुरालाप युक्ता तथा कामिनी के समान सर्व प्रकार सजी हुई थी। वह कल्किजी को पति रूप मे प्राप्त कर अत्यन्त शोभामयी हो गई ।३०-३१। वे अजन्मा, सर्वाश्रय रूप एव कलि-विनाशक कल्किजी अनेक वर्ष तक शम्भल मे रह कर पद्मा के साथ विहार करते रहे ।३२। तदनन्तर कवि की पत्नी कामकला ने दो पुत्र उत्पन्न किये जिनके नाम बृहत्कीर्ति और बृहद्बाहु हुए। यह दोनो अत्यन्त बली और पराक्रमी थे ३३। प्राज्ञ की भार्या सुमति ने जितेन्द्रिय और सर्वलोक पूजित यज्ञ और विज्ञ नामक दो पुत्र उत्पन्न किये ।३४। सुमन्त्र की पत्नी मालिनी ने शासन और वेगवान् नामक दो पुत्रो को जन्म दिया। यह दोनो साधुजनो का उपकार करने वाले हुए ।३५।

तद्वौत: कल्किश्च पद्मायां जयो विजय एव च ।
द्वौ पुत्रौ जनयामास लोकख्यातौ महाबलौ ॥३६॥
एतै परिवृतोऽमात्यै सर्वसम्पत्समन्वितौ ।
वाजिमेधविधानार्थ मुद्यत पितर प्रभु ।३७।
समीक्ष्य कल्कि प्रोवाच पितामहमिवेश्वरर. ।
दिशा पालान्विजित्याह धनान्याहृत इत्युत ।३८।
कारयिष्याम्याश्वमेध यामि दिग्विजयाय भो ! ।३९।
इति प्रणम्य त प्रीत्या कल्कि पटपुरञ्जय: ।
सेनागणै: परिवृत: प्रययौ कीकट पुरम् ।४०।

कल्किजी की पत्नी पद्मा ने जय, विजय नामक दो पुत्र प्रसव किये। यह दोनो महाबली तीनो लोको में प्रसिद्ध हुए ।३६। इस प्रकार उनका परिवार पुत्रवान् और सर्व ऐश्वर्य सम्पन्न हो गया। फिर कल्कि

जी ने अपने पिता को अश्वमेध यज्ञ के अनुष्ठान मे ब्रह्माजी के समान तत्पर देखकर कहा—हे पिताजी ! मैं दिक्पालो को जीत कर धन एकत्र करूँगा, जिससे आपका अश्वमेध यज्ञ सम्पन्न होगा । अब मैं दिग्विजय के लिए प्रस्थान करता हूँ ।३७-३९। शत्रु-पुर पर विजय प्राप्त करने वाले कल्किजी ने यह कह कर प्रसन्नतापूर्वक अपने पिता को प्रणाम किया और सेना को साथ लेकर कीकटपुर की ओर चल दिये ।४०।

बुद्धालय सुविपुल वेदधर्मबहिष्कृतम् ।
पितृदेवार्चनाहीन परलोकविलोपकम् ।४१।
देहात्मावादबहल कुलजातिविवर्जितम् ।
धनै· स्त्रीभिर्भक्ष्यभोज्यै. स्वपराभेददर्शिनम् ।४२।
नानाजनै: परिवृत पानभोजनतत्परै: ।४३।
श्रुत्वा जिनो निजगणै कल्केरागमन क्रुधा ।
अक्षौहिणीभ्या सहित. सबभूव पुराद्बहि· ।४४।
गजरथतुरगै समाचिता भू कनक विभूषणभूषितैर्वराङ्गै ।
शत शतरथिभिधृतास्त्रशस्त्रै· । ध्वजपटराजि-
निवारितातपैर्वभौ सा ।।४५।।

अत्यन्त विस्तार वाला कीकटपुर बौद्धों का निवास स्थान था । यहाँ रहने वाले व्यक्ति वैदिक धर्म तथा देवता और पितरो के अर्चन से हीन और परलोक के न मानने वाले थे ।४१। यह लोग देहात्मवादी, कुल धर्म और जाति धर्म के न मानने वाले तथा धन, स्त्री और भोजनादि मे अभेद देखने वाले थे ।४२। पान एव भोजन मे ही व्यस्त रहने वाले विविध प्रकार के मनुष्यो से ही यह नगर परिपूर्ण था ।४३। वहाँ के अधिपति जिन ने जब युद्ध के अभिप्राय से सेना रहित कल्किजी का आगमन सुना तो वह प्रतीकारार्थ दो अक्षौहिणी सेना को लेकर नगर से बाहर आया ।४४। असख्य हाथी, रथ, अश्व स्वर्ण के आभूषणों से भूषित श्रेष्ठ रथी और शस्त्रास्त्रधारी वीरो से पृथिवी ढक गई । सेनाओ के ध्वजो से धूप भी रुक गई ।४५।

—❀—

सप्तम अध्याय

ततो विष्णु : सर्वजिष्णु कल्कि कल्कविनाशनः ।
कालयामास ता सेना करिणीमिव केसरी ।१।
सेनागना ता रतिसगरक्षती रक्ताक्तवस्त्रा
विवृतोरुमध्याम् । पलायती चारुविकीर्णकेशा
विकूजती प्राह स कल्किनायक· ॥२॥
रे बौद्धा ! मा पलायध्व निवर्तध्व रणाङ्गणे ।
युध्यध्व पौरुष साधु दर्शयध्व पुनर्मम ॥३॥
जिनो हीनबल कोपात्कल्केराकर्ण्य तद्वच· ।
प्रतियोद्धु वृषारूढ· खड्गचर्मधरो ययौ ।४।
नाना प्रहरणोपेतो नानायुधविशारद
कल्किना युयुधे धीरी देवाना विस्मयावहः ॥५॥

सूतजी बोले—जैसे सिंह हथियो पर आक्रमण करता है, वैसे ही पाप का नाश करने वाले तथा सब विजेता कल्किजी ने उसकी सेना पर आक्रमण कर दिया ।१। युद्ध रुधिर रूपी वस्त्रो का धारण करने वाली विवृत ऊरु सम्पन्ना, विकीर्ण केशा प्रलाप करती हुई अर्थात हाहाकार करती हुई, रति युद्ध में आहत नारी के समान भागने वाली उस सेना से कल्किजी ने कहा ।२। अरे बौद्धो ! तुम इस युद्ध स्थल से मत भागो । आओ, लौट आओ और अपना पौरुष दिखाने मे पीछे न हटो ।३। कल्कि की बात सुन कर बल से हीन हुआ जिन क्रोध पूर्वक चर्म की तलवार लेकर युद्ध करने के लिए उनके समक्ष आया ।४। विविध प्रकार के युद्धो मे विशारद जिन कल्किजी से युद्ध करने लगा । उसका रणचातुर्य देख कर देवता भी आश्चर्य करने लगे ।५।

शूलेन तुरग विद्धा कल्कि बाणेन मोहयन् ।
क्रोडीकृत्य द्रुत भूमेर्नाशकत्तोलना द्दत ।५।
जिनो विश्वम्भर ज्ञात्वा क्रोधाकुलितलोचन: ।
चिच्छेदास्य तनुत्राण कल्के: शस्त्रञ्च दासवत् ।७।
विशाखयूपोऽपि तथा निहत्य गदया जिनम् ।
मूर्च्छित कल्किमागाय लीलया रथमारुहत् ।८।
लब्धसज्ञस्तथा कल्कि· सेवकोत्साहदायक· ।
समुत्पत्य रथात्तस्य नृपस्य जिनमाययौ ।९।
शूलव्यथा विहायजौ महासत्वस्तुरङ्गम
रिगणैर्भ्रमणै· पादविक्षेपहननैर्मुहुः ।१०।
दण्डाघातै· सटाक्षेपैबौद्धसेनागणान्तरे ।
निजघान रिपून्कोपाच्छतशोऽथ सहस्रश· ।११।

उसने अपने शूल से अश्व को विद्ध कर दिया तथा बाण से कल्किजी को समोहित कर अक मे भरने लगा, परन्तु उसे सफलता नही मिली ।८। जिन न कल्कि को विश्वभर रूप जान लिया और क्रोध पूर्वक नेत्रो से उन्हे वदी के समान देखना हुआ, उसने उनके शस्त्रास्त्र और कवच को छिन्न-भिन्न कर दिया ।७। यह देख कर विशाखयूप-नरेश ने अपनी गदा से जिन को आहत कर दिया और लीला पूर्वक मूर्च्छित हुए कल्किजी को लेकर रथ पर चढ गये ।८। जब उन्हे चेत हुआ, तब वे भक्तो को उत्साह देने वाले कल्किजी राजा के रथ से उतर कर जिन के सामने पहुँचे ।९। कल्किजी का अश्व भी शूल की वेदना को भूल कर युद्धभूमि मे कूद पडा और घूमता हुआ पदाघात, दन्ताघात, केशघात आदि के द्वारा बौद्ध सेना के हजारो वीरो को क्रोधपूर्वक मारने लगा ।१०-११।

निश्वासवातैरुड्डीय केचिद्द्वीपान्तरेऽपतन् ।
हस्त्याश्वरथसबाधा: पतिता रणमूर्द्धनि ।१२।

गर्ग्यो जघ्नु षष्टिशत भर्ग्य कोटिशतायुतम् ।
विशालास्तु सहस्राणा पचाविश रणे त्वरन् ।१३।
अयुते द्वे जघानाजौ पुत्राभ्या सहित: कवि ।
दशलक्ष तथा प्राज्ञ पञ्चलक्ष सुमन्त्रक ।१४।
जिन प्राह हन्सकल्किस्तिाष्ठाग्रे ममदुर्मते ! ।
दैव मा विद्धि सर्वत्र शुभाशुभफलप्रदम् ।१५।

अश्व के भयंकर श्वास से उड कर कोई-कोई वीर तो अन्य द्वीपो मे जाकर गिर गये तथा कुछ वीर गज, अश्व एव रथादि से टक्कर खा कर युद्ध स्थल मे ही धराशायी हो गये ।१२। गर्ग्य ने अपने अनुगामियो को साथ लेकर बौद्धो की छ. हजार सेना का सहार कर दिया। भर्ग्य और उसकी सेना ने दस हजार सेना मार दी तथा विशाल और उसकी सेना ने पच्चीस हजार सेना नष्ठ कर डाली ।१३। कवि और उसके दोनो पुत्रो ने बीस सहस्र सैनिक मार डाले । प्राज्ञ ने दस लाख और सुमत्रक ने पाँच लाख सेना का सहार कर दिया ।१४। फिर जिन को भागता देख कर कल्किजी ने हँस कर उससे कहा—अरे दुर्मते ! भाग कर न जा । तू मुझे अदृष्ट स्वरूप एव सभी शुभाशुभ फलो का देने वाला समझ कर मेरे सामने आ ।१५।

मद्बाणजालभिन्नाङ्गो नि.सङ्गो यास्यसि क्षयम् ।
न यावत्पश्य तावत्व बन्धूना ललित मुखम् ।१६।
कल्केरितीरित श्रुत्वा जिन ग्राह हसन्बली ।
दैव त्वदृश्य शास्त्रे ते वधोऽयमुररीकृत: ।
प्रत्यक्षवादिनो बौद्धा वय यूय वृथाश्रमा: ।१७
यदि वा दैवरूपस्त्व तथाप्यग्रे स्थिता वयम् ।
यदि भेत्तासि बाणौघैस्तदा बौद्धै: किमत्र ते ।१८।
सोपालम्भ त्वया ख्यातं त्वयेवास्तु स्थिरो भव ।
इति क्रोधाद्बाद्बाजालै. कल्कि घोरै. समावृणोत् ।१९।

स तु बाणमयं वर्षा क्षय निन्येऽर्कवद्धिमम् ।२०।

तू मेरे बाणो से आहत होकर अभी परलोक को प्राप्त होगा । तब तेरा साथ कोई भी नही देगा । इसलिए अब तू अपने बधु-बाधवो का सुन्दर मुख देख ले । १६। कल्किजी के वचन सुन कर वह बली जिन हँसा हुआ बोला—अदृष्ट कभी प्रमक्ष नही हो सकता । हम बौद्ध गण प्रत्यक्षके अतिरिक्त अन्य कुछभी नही मानते । हमारा शास्त्र कहता है कि हम अदृष्ट को नष्ट कर देगे ।१७। यदि तुम दैव रूप हो तो हम तुम्हारे सामने खडे हैं । यदि तुम हमे बाण से आहत करोगे तो क्या बौद्ध गण तुम्हे छोड देगे ।१८। जो तुम हमारे प्रति तिरस्कार के वचन कहते हो, वे वचन तुम पर ही लौट जाएँगे, अब तुम सावधान होजाओ । यह कह कर जिन ने अपने तीक्ष्ण बाणो से कल्किजी को समावृत्त कर दिया ।१६। जैसे सूर्य के दिखाई देने पर हिमपात नाश को प्राप्त होता है, वैसे ही जिन द्वारा की गई बाण-वर्षा कल्किजी के स्पर्श से क्षीण होने लगी ।२०।

ब्राह्म वायव्यमाग्नेय पार्जन्य चान्यदायुधम् ।
कल्केर्दर्शनमात्रेण निष्फलान्यभवन्क्षणात् ।२१ ।
यथोषरे बीजमुप्त दानमश्रोत्रिये यथा ।
यथा विष्णौ मता द्वषाद्भक्तिर्येन कृताप्यहो ।२२।
कल्किस्तु त वृषारूढमवप्लुत्य कचेऽग्रहीत् ।
ततस्तौ पेततुर्भूमौ ताम्रचूडाविव क्रुधा ।२३।
पतित्वा स कल्किकच जाग्राह करकर करे ।२४।
तत. समुत्थितौ व्यग्रौ यथा चाणरकेशवौ ।
धृतहस्तौ धृतकचौ ऋक्षाविव महाबलौ ।
युयुधाते महावीरौ जिनकल्की निरायुधौ ।२५।

जिन द्वारा प्रेरित ब्रह्मास्त्र, वायव्या, आग्नेयास्त्र, मेघास्त्र और अन्यान्य सभी अस्त्र कल्किजी के दर्शन मात्र फल-हीन हो गये ।२१। जैसे

ऊसर मे बीज बोने पर भी अन्न उत्पन्न नही होना तथा अश्रोत्रिय को दिया हुआ दान निष्फल हो जाता है, अथवा साधुजनो का अनिष्ट चाहने वालो की हरि-भक्ति फलवती नही होती, वैसे ही 'जिन' के सभी अस्त्र निष्फलता को प्राप्त हो गये ।२२। फिर कल्किजी ने उछल कर वृषभ पर चढ़े हुए जिन क केश पकड लिए तथा दोनो ही पृथिवी क्रोधपूर्वक अरुण ज्वाल-शिखा के समान युद्ध मे गुँथ गये ।२३। धरती पर गिरे हुए जिन ने भी अपने एक हाथ मे कल्किजी के केश और दूसरे से हाथ पकड रखे थे ।२४। फिर जैसे चाणूर और श्रीकृष्ण के मध्य युद्ध हुआ था, उसी प्रकार दोनो पृथिवी मे उठ कर परस्पर केश और हाथ पकड कर निरस्त्र उसी प्रकार लड़ने लगे, जैसे दो महाबली रीछ परस्पर मे युद्ध करते हैं ।२५।

तत कल्की महायोगी पदाघातेन तत्कटिम् ।
विभज्य पातयामास ताल मत्तगजो यथा ।२६।
जिन निपतित दृष्ट्वा बौद्धा हाहेति चक्रुशु ।
कल्केः सेनागणा विप्रा जहृषुर्निहतारय· ।२७।
जिने निपतिते भ्राता तस्या शुद्धोदनो बली ।
पदाचारी गदापाणि कल्कि हन्तु द्रुत ययौ ।२८।
कविस्तु त बाणवर्षै परिवार्य समन्ततः ।
जगर्ज्ज परवीरघ्नो गजमावृत्य सिहवत् ।२९।
गदाहरत नमालोक्य पति स धर्मवित्कवि ।
पदातिगो गदापाणिस्तयौ शुद्धादनाग्रत ।३०।

जैसे मदमत्त गजराज ताल के वृक्ष को उखाड कर धराशायी कर देता है, वैसे ही कल्किजी ने पदाघात करके जिन की कमर तोड़ कर उसे धरती पर गिरा दिया ।२६। हे विप्रो ! उसको धराशायी हुआ देख कर बौद्ध सेना हाहाकार कर उठी तथा शत्रु का सहार हुआ देख कर कल्कि-सेना हर्षित हो गई ।२७। जिन को युद्ध स्थल मे गिरा देखते ही उसका भाई बलवान् शुद्धोदन गदा लेकर कल्किजी को मारने के लिए

पैदल ही उन पर झपटा।२८। हाथी पर सवार शत्रु-नाशक कवि ने शुद्धोदन को बाणो से ढक दिया और सिंहवत् गर्जन करने लगे।२९। धर्मविद् कवि ने शुद्धोदन को गदा लिए पैदल ही युद्ध करते देखा तो वह भी पैदल ही उसके सामने जा डटे।३०।

स तु शुद्धोदनस्तेन युयुधे भीमविक्रम. ।
गज प्रतिगजेनेव दन्ताभ्यां सगदावुभौ ।३१।
युयुधाते महावीरौ गदायुद्ध विशारदौ ।
कृतप्रतिकृतौ मत्तौ नदन्तौ भैरवानुवान् ।३२।
कविस्तु गदया गुर्व्या शुद्धोदनगदा नदत् ।
करादपास्याशु तया स्वया वक्षस्यताडयत् ।३३।
गदाघातेन निहतो वीर· शुद्धोदनो भुवि ।
पतित्वा सहसोत्थाय त जघ्ने गदया पुन ।३४।
सताडितेन तेनापि शिरसा स्तम्भित कवि. ।
न पपात स्थितस्तत्र स्थाणुवद्विह्वलेन्द्रिय ।३५।

जैसे हाथी शत्रु के हाथी से दाँतो के द्वारा युद्ध करता है, वैसे ही गदाधारी कवि और महापराक्रमी शुद्धोदन गदा-युद्ध मे रत हो गए। युद्ध-मत्त दोनो वीर भयकर शब्द करते हुए परस्पर गदाओ को रोकने लगे।३१-३२। फिर सिंहनाद करते हुए कवि ने अपने गदाघात द्वारा शुद्धोदन की गदा गिरादी और फिर तुरन्त ही उसके हृदय पर पदाघात किया।३३। गदाघात को प्राप्त हुआ शुद्धोदन तुरन्त ही पृथिवी पर पडा तथा पुन सहसा उठ कर उसने कवि पर गदाघात किया।३४। गदा लगने से कवि विकलेन्द्रिय और मूर्छित के समान खडे हो गये, परन्तु पृथिवी पर गिरे नही।३५।

शुद्धोदनस्तमालोक्य महासार रथायुतः ।
प्रावृत तरसा माया-देवीमानेतुमाययौ ।३६।
यस्या दर्शनमात्रेण देवासुरनरादयः ।

निःसारा. प्रतिमाकारा भवन्ति भुवनाश्रया ।३७।
बौद्धा शौद्धोदनाद्यग्रे कृत्वा तामग्रतः पुन :
योद्धु समागता म्लेच्छकोटिलक्षशतैर्वृ ता: ।३८।
सिहध्वजोत्थितरथा फेरु-काक-गणावृताम् ।
सर्वास्त्रशस्त्रजननी षड्वर्गपरिसेविताम् ।३९।
नानारूपा बलवती त्रिगुणव्यक्तिलक्षिताम् ।
माया निराक्ष्य पुरत कल्किसेना समापतत् ।४०।

तब शुद्धोदन ने कवि को अत्यन्त पराक्रमी और रथ-सेना से सम्पन्न देख कर कर माया देवी आह्वानार्थ तुरन्त ही वहाँ से प्रस्थान किया ।३६। जिस माया देवी का दर्शन करते ही देवता, दैत्य, मनुष्य आदि सभी सासारिक जोव तेजहीन और प्रतिभा के समान निश्चेष्ट हो जाते है, उसी को साथ लेकर शुद्धोदन आदि बौद्धगण अपने करोडो म्लेच्छ वीरो के सहित रणस्थल मे पहुँचे ।३७-३८। सिहध्वजा वाले रथ पर माया देवी आरूढ हुई और उसने अनेक प्रकार के शस्त्रास्त्र प्रकट किये । कौए और शृगाल उस माया देवी को सब ओर से घेरे हुए थे तथा काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मत्सर—यह षड्वर्ग उसकी सेवा कर रहे थे ।३९। वह अनक प्रकार के रूप-धारण मे समर्थ, बलवतो, त्रिगुणात्मिका माया देवी जैस ही कल्कि सेना के समक्ष पहुँची, व से ही उसे देख कर कल्कि-सेना क्षीणता का प्राप्त हो गई ।४०।

नि.भारा प्रतिमाकाराः समस्ता शस्त्रपाणयः ।४१।
कल्किस्तानालोक्य निजान्भ्रातृज्ञातिसुहृज्जनान् ।
मायया जायया जीर्णान्विभुरासीत्तदग्रतः ।४२।
तामालोक्य वरारोहा श्रीरूपा हरिरीश्वरः ।
सा प्रियेव तमालोक्य प्रविष्टा तस्य विग्रहे ।।४३।।
तामनालोक्य ते बौद्धा मातर कतिश्रा वरा: ।
रुरुदुः सघशो दीना हीनस्वबलपौरुषाः ।।४४।।

कल्किजी के शस्त्रधारी वीरगण प्रतिमा के समान चेष्टाहीन तथा बलहीन होगए।४१। फिर कल्किजी ने जब अपने बन्धु, जाति-बांधव और सुहृदों को मायारूपिणी अपनी पत्नी के द्वारा जीर्ण होते देखा तो वे उसके समक्ष पहुँचे।४२। जैसे ही उन्होने श्रीस्वरूपा अपनी उस प्रिया की ओर देखा, वैसे ही वह वरारोहा उनके देह मे प्रविष्ट हो गई।४३। तब अपनी उस माता माया देवी को न देख कर सभी प्रमुख बौद्ध बल पौरुष से रहित होकर रुदन करने लगे।४४।

विस्मयाविष्टमनस क्व गतेयमथाब्रुवन् ।
कल्कि. समालोकनेन समुत्थाप्य निजाञ्जनान् ।४५।
निशातमसिमादाय म्लेच्छाहन्तु मनो दधे ।
सन्नद्ध तुरगारूढ दृढहस्तधृतत्सरुम् ।४६
धनुर्निषङ्गमनिश बाणजालप्रकाशितम् ।
धृतहस्ततनुत्राणगोधाङ्गुलि वराजितम् ।४७।
मेघोपर्युप्ततारा भ दशनस्वर्णबिन्दुकम् ।
किरीटकाटिविन्यस्त-मणिराजिविराजितम् ।४८।
कामिनीनयनानन्दसन्दोहरसमन्दिरम् ।
विपक्षपक्षविक्षेपक्षिप्तरूक्षटाक्षकम् ।४९।
निजभक्तजनोल्लास-सवासचरणाम्बुजम् ।
निरीक्ष्य कल्कि ते बौद्धास्तत्रसुर्धर्मनिन्दका ।५०।

माया को न देख वे आश्चर्य चकित होकर परस्पर कहने लगे कि माया देवी कहाँ चली गई ? इधर कल्किजी ने अपनी सेना पर दृष्टि डाली यो वह स्वस्थ और सचेत हो गई तथा म्लेच्छो का सहार करने की इच्छा से कल्किजी तीक्ष्ण खग लेकर घोडे पर सवार हुए ।४५-४६। उस समय बाणो से परिपूर्ण तरकश श्रेष्ठ धनुष, कवच एव अगुलित्राण

था तथा किरीट के अग्रभाग मे विविध प्रकार की जडी हुई मणियाँ चमक रही थी ।४८। कामनियो के नयनो को आनन्द देने वाले रस के सदन रूप कल्किजी उस समय शत्रु-पक्ष को विक्षिप्त करने के उद्देश्य से उनकी ओर कटाक्ष करने लगे ।४९। भक्तजन अपने भगवान् कल्किजी के चरणारविन्दो का दर्शन करके उल्लसित हो उठे और धर्म-निन्दक बौद्धगण भय से काँपने लगे ।५०।

जहृषु: सुरसङ्घा: खे यागाहुतिहुताशना· ।५१।
सुबलमिलनहृष' शत्रुनाशैतकर्ष समरवरविलास
साधुसत्काग्काश । स्वजनदुरितहर्त्ता जीवजातस्य
भर्त्ता रचयतु कुशल व. कामपूगावतार ।५२।

यह देख कर आकाश मे स्थित देवता कहने लगे कि अब युद्ध-भूमि रूपी यज्ञस्थल मे स्थित अग्नि मे पुन आहुति डाली जाने को है ।५१। जो अस्त्रशस्त्रो से सुसज्जित सेनाओ को इकट्ठी करके शत्रुओ को नष्ट करने वाले, लीलापूवक सग्राम मे तत्पर साधुओ के सत्कार-कर्त्ता, स्वजनो के दु खो का विनाश एव सब प्राणियो का भरण करने वाले है, वे सतो की अभिलाषा पूर्ण करने वाले भगवान् कल्किजी सब प्रकार कल्याण करे ।५२।

॥ द्वितीय अंश समाप्त ॥

तृतीयांश—

प्रथम अध्याय

ततः कल्किर्म्लेच्छगणान्करवालेन कालितान् ।
बाणैः सन्ताडितानन्याननयद्यमसादनम् ।१।
विशाखयूपोऽपि तया कविप्राज्ञसुमन्त्रका ।
गार्ग्यभार्ग्यविशालाद्या म्लेच्छान्निन्युर्यमक्षयम् ।२।
कपोतरोमा काकाक्ष काककृष्णादयोऽपरे ।
बौद्धा. शौद्धौदना याता युयुधु कल्किसैनिकै ।३।
तेषा युद्धमभूद्धोर भयद सवदेहिनाम् ।
भूतेशानन्दजनक रुधिरारुणकर्द्दमम् ।४।
गजाश्वरथसघाना पतता रुधिरस्रवैः ।
स्रवन्ती केशशैवाला वाजिग्रहा सुगाहिका ।५।

सूतजी बोले—फिर कल्किजी ने कुछ म्लेच्छो को बाणो द्वारा बीध दिया और कुछ को तलवार से मार कर यम लोक मे भेज दिया ।१। विशाखयूपनरेश, कवि, प्राज्ञ, सुमन्त्रक, गर्ग्य, भर्ग्य और विशालादि ने भी उन म्लेच्छो को यमपुरी पठाया ।२। फिर कपोतरोमा, काकाक्ष, काककृष्ण और शुद्धोदन आदि बौद्ध योद्धागण कल्कि-सेना से युद्ध मे तत्पर हुए ।३। उस घोर सग्राम को देख कर सभी प्राणी भयभीत हुए । रक्त युक्त लाल कीचड से रणभूमि ढक गई, यह देख कर भूतनाथ हर्षित हो उठे ।४। युद्धस्थल मे गिरे हुए हाथियो, अश्वो और रथियो के

रक्तपात से लोहित की नदी बह चली, जिसमें केश सिवार जैसे लगने लगे और अश्व रूपी ग्रह धार मे प्रवाहित होने लगे ।५।

धनुस्तरङ्गा दुष्पारा गजरोधः प्रवाहिणी ।
शिरःकूर्मा रथतरिः पणिमीनासृगापगा ।६।
प्रवृत्ता तत्र बहुधा हर्षयन्तो मनस्विनाम् ।
दुन्दुभेयरवा फेरुशकुनानन्ददायिनी ।७।
गजैर्गजा नरैश्चरवा. खरैरुष्ट्रा रथै रथाः ।
निपेतुर्बाणभिन्नाङ्गा· छिन्नबाह्वड्घ्रिकन्धरा ।८।
भस्मना गुण्ठितमुखा रक्तवस्त्रा निवारता. ।
विकीर्णकेशाः परितो यान्ति सन्यासिनो यथा ।९।
व्यग्रा केऽपि पलायन्ते याचन्त्यन्य जल पुन. ।
कल्किसेनाशुगक्षुण्णा म्लेच्छा नो शर्म लेभिरे ।१०।

उस लोहित नदी मे धनुष तरग के समान उछलने लगे हाथी इस नदी मे सेतु के समान लगते थे, कटे हुए शीश कछुओ के समान, रथ नाव के समान और कटे हुए हाथ मछली के समान दिखाई देते थे ।६। लोहित नदी के किनारे गीदडो और बाज पक्षियो की हर्ष ध्वनि दु दुभि की ध्वनि जैसी लगती थी । उसे देख कर मनस्वी लोग हर्षित हो उठे ।७। युद्ध क्षेत्र मे हाथी सवार हाथी सवार से, अश्वारोही अश्वारोही से, ऊँट वाला ऊँट वाले से, रथ रथी से भिडा हुआ था। उस समय बाणो से कट-कट कर हाथ, पाँव और मस्तक धरती पर गिर रहे थे ।८। बहुत से वीरो ने भयभीत होकर गेरुए वस्त्र धारण कर, भस्म रमा लो तथा विकीर्ण केश होकर संन्यासी बन कर रोके जाने पर भी पलायन कर गये ।९। कोई-कोई विकल होकर भागा, कोई जल माँगता रहा । इस प्रकार कल्कि-सेना के बाणो की मार से कोई म्लेच्छ वीर सकुशल न रहा ।१०।

तेषा स्त्रियो रथारूढा गजारूढा विहङ्गमा ।
समारूढा हयारूढा खरोष्ट्रवृषवाहना ॥११॥
योद्धु समाययुस्त्यक्त्वा पत्यापत्यसुखाश्रयान् ।
रूपवत्योऽतिबलवत्य पतिव्रतता ॥१२॥
नानाभरणभूषाढ्या सन्नधा विशदप्रभा ।
खड्गशक्तिधनुर्बाणवलयाक्तकराम्बुजा ॥१३॥
स्वैरिण्योऽप्यतिकामिन्यो पुश्चल्यश्च पतिव्रता ।
ययुर्योद्धु कलिकसैन्यै पतीना निधनातुरा ॥१४॥
मृद्भस्मकाष्ठचित्राणा प्रभुताम्नायशासनात् ।
साक्षात्पतीना निधन कि युवत्योऽपि सेहिरे ॥१५॥

उन म्लेच्छो की रूपवती बलवती, पतिव्रता युवती स्त्रियाँ भी सन्तान-सुख की और उनके आश्रय की कामना छोड कर कोई रथ पर चढ कर, कोई हाथो पर चढ कर, कोई विहग पर चढ कर, कोई घोडे, गधे, ऊँट पर, कोई बैल पर चढ कर युद्ध करने के लिए अपने-अपने पति के पास पहुँची ॥११-१२॥ इन्होने अनेक प्रकार के उज्ज्वल आभूषण एव शस्त्रास्त्र धारण कर रखे थे । इनके हाथो मे कडो के साथ ही खड्ग और बाण भी सुशोभित थे ॥१३॥ सुन्दर लावण्यमयी यह स्त्रियाँ कोई स्वैरिणी, कोई वार-विलासिनी अथवा कोई पतिव्रता थी । यह पति-वियोग मे व्याकुल हुई स्त्रियाँ कल्कि सेना से युद्ध करने को अग्रसर हुई ॥१४॥ क्योकि मनुष्य मिट्टी, काष्ठ एव राख की वस्तु पर भी प्राण देने मे तत्पर होजाते है, इसी प्रकार अपने प्राण के समान पति का मरण सहन करना युवतियो के लिए भी सभव नही होता ॥१५॥

ता स्त्रिय स्वपतीन्बाणभिन्नान्व्याकुलितेन्द्रियान् ।
कृत्वा पश्चाद्युयुधिरे कल्किसैन्यैधृतायुधा ॥१६॥
ताः स्त्रीरुद्वीक्ष्य ते सर्वे विस्मयस्मितमानसा ।
कल्किमागत्य ते योधाः कथयामासरादरात ॥१७॥

स्त्रीणामेव युयुत्सूना कथा श्रुत्वा महामति ।
कल्कि समुदित प्रायात्स्वसैन्यै सनुगो रथः ।१८।
ता. समालोक्य पद्मेश सर्वशस्त्रास्त्रधारिणी. ।
नानावाहनसारूढा कृतव्यूहा उवाच सः ।१९।
रे स्त्रिय शृणुतास्माक वचन पथ्यमुत्तमम् ।
स्त्रिया युद्धेन कि पुसा व्यवहारोऽत्र विद्यते ।२०।

वे म्लेच्छ स्त्रियाँ अपने पतियो को बाणो मे बिंधे हुए तथा व्याकुल देख कर उन्हे पीछे हटाती हुई हथियार लेकर कल्कि सेना से युद्ध करने लगी ।१६। उन स्त्रियो को युद्ध मे तत्पर देख कर कल्कि-सेना आश्चर्य में पड गई और उसने कल्किजी के समक्ष जाकर उन्हे सब वृत्तान्त सूचित किया ।१७। युद्ध की इच्छा वाली उन स्त्रियो का युद्ध करना सुन कर प्रसन्न हुए कल्किजी रथ पर चढ कर सेना और अनुचरो के सहित रणभूमि मे पहुचे ।१८। अनेक शस्त्रास्त्रो से सुसज्जिता, अनेक प्रकार के वाहनो पर चढी हुई, व्यूह रचना करके युद्ध मे तत्पर उन स्त्रियो को देख कर कल्किजी बोले ।१९। कल्किजी ने कहा—हे स्त्रियो ! मैं तुम्हारे हितार्थ श्रेष्ठ वचन कहता हूँ, वह सुनो । स्त्रियो को पुरुषो के साथ युद्ध नही करना चाहिए ।२०।

इति कल्केर्वचः श्रुत्वा प्राहस्य प्राहुरादृता ।
अस्माक त्व पतीन् हसि तेन नष्टा वयं विभो ! ।
हन्तु गतानामस्त्राणि कराण्येवागतान्युत ।२१।
खड्ग-शक्ति धनुर्बाण-शूल तोमर-यष्टय ।
ताः प्राहुः पुरतो मूर्त्ताः कार्तस्वरविभूषणाः ।२२।
यामासाद्य वय नार्यो हिसायाम स्वजेतसा ।
तमात्मन सर्वमय जानीत कृतनिश्चया ।२३।
तमीशमात्मना नार्यः ! चरामो यदनुज्ञया ।
यत्कृता नामरूपादिभेदेन विदिता वयम् ।२४।

रूप-गन्ध-रस-स्पर्श-शब्दाद्या भूतपञ्चकाः ।
चरन्ति यदधिष्ठानात्सोऽय कल्कि. परात्मक ।२५।

कल्किजी के वचन सुन कर म्लेच्छ-पत्नियाँ हँस पडी । उन्होने कहा—हे विभो ! जब तुम्हारे द्वारा हमारे पति ही नाश को प्राप्त हो गये, तब हम भी नष्ट हो चुकी । यह कह कर वे नारियाँ कल्किजी को मारने को तत्पर हुई । उन्होने जो अस्त्र छोडने चाहे, वे अस्त्र उनके हाथो मे ही रुके रह गये ।२१। खड्ग, शक्ति, धनुष-बाण, शूल, तोमर, यष्टि आदि शस्त्रास्त्रो के स्वर्ण-सज्जित देवता साक्षात् प्रकट हो कर उन म्लेच्छ-पत्नियो के प्रति बोले ।२२ देव रूपी अस्त्रो ने कहा—हे नारियो ! हम जिस तेज क द्वारा जीवो का सहार करते रहते हैं, वह तेज हमे जिनसे प्राप्त हुआ है, वह सर्वमय ईश्वर यही हैं, यह समझ लो ।२३। हे स्त्रियो ! हम इन्ही परमात्मा की प्रेरणा प्राप्त कर गतिशील होते हैं तथा इनके द्वारा ही हम नाम-रूप को पाकर जाने जाते हैं ।२४। रूप, गन्ध, रस, स्पर्श तथा शब्दादि पचगुण के आश्रय रूप पचभूत जिनके अधिष्ठान से अपने-अपने कार्य मे उद्यत रहते है, यह कल्किजी वही ईश्वर है ।२५।

काल स्वभाव-सस्कार-नामाद्या प्रकृति परा ।
यस्येक्षया सृजत्यण्ड महाहङ्कारकादिकान् ।२६।
य-मायया जगद्यात्रा सर्गस्थित्यन्तसञ्ज्ञिता ।
य एवाद्यः स एवान्ते तस्याय सोऽयमीश्वर ।२७।
असौ पतिर्मे भार्याहमस्य पुत्रास्तबान्धवाः ।
स्वप्नोपमास्तु तन्निष्ठा विविधाश्चैन्द्रजालवत् ।२८।
स्नेहमोनिबन्धाना यातायातदृशा मतम् ।
न कल्किसेविना रागद्वेषविद्वेषकारिणाम् ।२९।
कुतः कालः कुतो मृत्यु क्व यमः क्वास्तिदेवताः
स एव कल्किर्भगवान्मायया बहुलीकृत. ।३०।

इन्ही की आज्ञा से काल, स्वभाव, सस्कार तथा सज्ञा आदि की आश्रयभूता परा प्रकृति, महत्तत्व और अहकार आदि को उत्पन्न करने मे समर्थ होती हैं ।२६। सर्ग, स्थिति और प्रलयात्मक यह सम्पूर्ण विश्व जिनकी माया ही है, यह वही सबके आदि-रूप ईश्वर हैं । इनके द्वारा ही लोक मे शुभाशुभ का प्रवर्तन होता है ।२७। यह मेरा पति है और मै इसकी भार्या हूँ, यह मेरा पुत्र अथवा बान्धव है । ऐसे स्वप्न अथवा इन्द्रजाल के समान विविध प्रकार के व्यवहार की उत्पत्ति इन्ही के द्वारा होती है ।२८। स्नेह और मोहादि के बन्धन मे पड़े रह कर जो प्राणी इस विश्व के आवागमन मे रहे आते हैं अथवा जो राग, द्वेष एव विद्वेषादि के आश्रय रहने वाले जीव तथा भगवान कल्कि की सेवा मे अनुराग न रखने वाले हैं, वही इस जगत को सत्य मानते हैं ।२९। काल कहा से आया ? मृत्यु कहाँ से उत्पन्न हुई ? यम तथा देवगण कौन है ? यह कल्किजी के अतिरिक्त अन्य कोई नही है, यही अपनी माया के द्वारा बहुरूप हो गए हैं ।३०।

न शस्त्राणि वय नार्य: सप्रहार्या न च क्वचित् ।
शस्त्र प्रहर्तृभेदोऽयमविवेक परात्मन. ।३१।
कल्किदासस्यापि वय हन्तु नार्हा कथोद्भुतम् ।
हनिष्यामो दैत्यपते· प्रह्लादस्य यथा हरिम् ।३२।
इत्यस्त्राणा वच. श्रुत्वा स्त्रियो विस्मितमानसा. ।
स्नेहमोहर्विनिर्मुक्तास्त कल्कि शरण ययु: ॥३३॥
ता: समालोक्य पद्मेश: प्रणता ज्ञाननिष्ठया ।
प्रोवाच प्रहसन् भक्ति-योग कल्मषनाशनम् ।३४।

हे स्त्रियो ! हम शस्त्र नहीं हैं, हम किसी पर आघात करने मे भी समर्थ नही हैं । यही परमात्मा स्वय शस्त्र हैं और यही आघात करने की शक्ति से सम्पन्न हैं । इनमे जो भेद प्रतीत होता है, वह सब इनकी माया ही है ।३१। दैत्यराज प्रह्लाद की प्रार्थना पर जब भगवान् विष्णु

विष्णु नृसिंह रूप हुए थे, उस समय हम जैसे उन पर आघात करने मे समर्थ नही हो सके थे, वैसे ही इन कल्किजी और उनके सेवको पर भी आघात करने मे पूर्णतया असमर्थ हैं ।३२। अस्त्रो के यह वचन सुनकर स्त्रिया अत्यत विस्मित हुई और तब वे स्नेह और मोह से युक्त होकर कल्किजी की शरण मे पहुँची ।३३। भगवान कल्कि म्लेच्छ-नारियो को ज्ञाननिष्ठा मे स्थित देखकर उनके प्रति पापो का नाश करने वाला भक्ति-योग हँसते हुए कहने लगे ।३४।

कर्मयोगश्चात्मनिष्ठ ज्ञानयोगं भिदाश्रयम् ।
नैष्कर्म्यलक्षरण तासा कथयामास माधव: ३५।
ता: स्त्रिय: कल्कि गदित ज्ञानेन विजितेन्द्रिया: ।
भक्त्या परमवापुस्तत्योगिना दुर्लभ पदम् ।३६।
दत्वा मोक्ष म्लेच्छबौद्धपियाणा कृत्वा युद्ध
भैरव भीमकर्मा । हत्वा बौद्धान् म्लेच्छ सघाश्च
कल्किस्तेषा ज्योति स्थानापूर्प रेजे ।३७।
येश्रृण्वन्ति वदन्ति बौद्धनिधन म्लेच्छक्षय सादराल्लोका:
शोकहर सदा शुभकर भक्तिप्रदं माधवे ।
तेषामेव पुनर्न जन्ममरण सर्वार्थसम्पत्कर
माया मोहविनाशन प्रतिदिन ससारतापच्छिदम् ।३८।

तदनन्तर उन्होने उन नारियो को कर्मयोग, आत्मनिष्ठात्मक ज्ञान-योग, भेदाश्रय, निष्कर्मत्व के लक्षण आदि का प्रसग सुनाया ।३५। इस प्रकार जब वे म्लेच्छ रमणियाँ कल्कि-प्रदत्त ज्ञानोपदेश से सचेत होकर इन्द्रियो का दमन करके, भक्ति करती हुई, योगियो को भी दुर्लभ मोक्ष पद को प्राप्त हो गई ।३६। इस प्रकार उन भीमकर्मा कल्किजी घोर युद्धमे बौद्ध और म्लेच्छो का सहार कर दिया, और उनकी स्त्रियो को मोक्षपद प्रदान करके मरे हुए म्लेच्छो और बौद्धो को ज्योतिर्मय स्थान में स्थित कर विराजमान हुए ।३७। जो इस बौद्धो के निधन एव म्लेच्छो के क्षीण होने की कथा को सुनेगे, वे सभी शोको से मुक्त होकर कल्याण को प्राप्त होगे । भगवान के प्रति उनके हृदय मे भक्ति का संचार होगा और वे जन्म- मरण के चक्र से छूट जाँयगे । इस कथा के सुनने से सर्व ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है और माया-मोह का विनाश होता है, तथा संसार के ताप का सदा उच्छेद करने मे समर्थ होता है ।३८। —※—

तृतीयांश—

द्वितीय अध्याय

ततो बौद्धान् म्लेच्छगणान्विजित्य सह सैनिकै. ।
धनान्यदाय रत्नानि कीकटात्पुनरव्रजत् ।१।
कल्कि· परमतेजस्वी धर्माणा परिरक्षक ।
चक्रतीर्थ समागत्य स्नान विधिवदाचरत् ।२।
भ्रातृभिर्लोकपालाभैर्बहुभि स्वजनैर्वृत ।
समायातान्मुनी स्तत्र ददृशे दीनमानसान् ।३।
समुद्भियागतास्त परिपाहि जगत्पते ।
इत्युक्तवन्तो बहुधा ये तानाह हरि पर ।४।
वालखिल्यादिकानल्पकायाञ्चीरजटाधरान् ।
विनयावनत. कल्किरतनानाह कृपणान्भयात् ।५

सूतजी बोले—हे ऋषियो ! बौद्धो और म्लेच्छो पर विजय प्राप्त करके भगवान कल्कि धन रत्नादि लेकर सेना के सहित उस कीकटपुरी से चल दिये ।१। फिर वे परम तेजस्वी एव धर्मवान् कल्किजी चक्रतीर्थ मे पहुचे और वहाँ उन्होने विधिपूर्वक स्नान किया ।२। तदनन्तर वे अपने बन्धु-बाधवो के साथ लोकपाल के समान सुशोभित होते हुए वही निवास करने लगे। कुछ समयोपरान्त उन्होने दीनता पूर्वक आये हुए कुछ मुनियो को देखा ।३। वे भयभीत मुनिवरण कल्किजी की शरण मे पहुँच कर बोले—हे जगत्पते ! हमारी रक्षा करो, रक्षा करो। इस पर भगवान श्रीहरि बोले ।४। उन्होने अल्प देह वाले छिन्न वस्त्राभूषण और जटा धारण करने वाले बालखिल्यादि मुनियो से विनय और कृपा पूर्वक कहा ।५।

कस्माद्यूय समायाता केन वा भीषिता वत ।
तमह निहनिष्यामि यदि वा स्यात्पुरन्दर ।६।
इत्याश्रुत्य कल्किवाक्य तेनोल्लासितमानसा ।
जगदु पुण्डरीकाक्ष निकुम्भदुहितु कथा ।७।
शृणुविष्णुयश.पुत्र ! कुम्भकर्णात्मजात्मजा ।
कुथादरीति विख्याता गगनार्द्धसमुत्थिता ।८।
कालकञ्जस्य महिषी विकञ्जजननी च सा ।
हिमालये शिर: कृत्वा पादौ च निषधाचले ।
शेते स्तनं पाययन्ती विकञ्ज प्रस्नुतस्तनी ।९।
तस्या निश्वासवातेन विवशा वयमागता: ।
दैवेनैव समानीता सप्राप्तास्त्वत्पदास्पदम् ।
मुनयो रक्षणीयास्ते रक्ष सु च विपत्सु च ।।१०।।

आप कहाँ से आ रहे हैं ? किससे डरे हुए हैं ? यह सब वृतान्त मुझे बताओ, फिर यदि आपका अपकार करने वाला इन्द्र भी होगा, तो भी मै उसे नष्ट कर दूँगा ।६। पुण्डरीकाक्ष कल्किजी के वाक्य सुनकर आश्वस्त हुए मुनियो के हृदय प्रफुल्लित हो गये और तब उन्होने दैत्यराज निकुभ की पुत्री की कथा सुनाई ।७। मुनियो ने कहा— हे विष्णुयश के पुत्र ! हे प्रभो ! सुनिये, कुम्भकर्ण का एक पुत्र निकुम्भ था, उसकी एक कन्या कुथोदरी नाम की है । उसका आकार गगनमँडल से भी ऊँचा है ।८। वह कालकज नामक दैत्य की पत्नी है, उसका पुत्र विकज है । वह राक्षसी अपना मस्तक हिमालय पर और पाव निषध पर्वत पर रखकर विकज को स्तन पिला रही है ।९। हे देव ! हम उसकी श्वासवायु से उत्पीडित होकर दैव-प्रेरणा वश यहाँ उपस्थित हुए हैं । अब हम आपके चरणाश्रय को प्राप्त हो चुके हैं अत. उससे हमारी शीघ्र रक्षा कीजिये ।१०

इति तेषा वच. श्रुत्वा कल्कि' परपुरञ्जय. ।

सेनागणै परिव्रतो जगाम हिमबद्गिरिम् ।११।
उपत्यका समासाद्य निशामेका निनाय स. :
प्रातर्जिगमिषु' सैन्यैददृशे क्षीरनिम्नगाम् ।१२।
शखेन्दुधवलाकारा फेनिला बृहती द्रुतम् ।
चलन्ती वीक्ष्यते सर्वे स्तम्भिता विस्मयान्विता. ।१३।
सेनागणगजाश्वादिरथयोधैः समावृत. ।
कल्किस्तु भगवास्तत्र ज्ञातार्थोऽपि मुनीश्वरान् ।१४।
पप्रच्छ का नदी चेयं कथ दुग्धवहाभवत् ।
ते कल्केस्तु वच श्रुत्वा मुनयः प्राहुरा दरात् ।।१५।।

उनके यह वचन सुनकर शत्रु-नगरो को विजय करने वाले भगवान् कल्कि अपनी सेना के सहित हिमालय की ओर चले ।११। वहाँ पहुँच कर उन्होने एक रात्रि निवास किया और प्रात काल होते ही, जैसे ही सना के सहित आगे चलने लगे, वैसे ही उन्हे एक दूध की नदी दिखाई दी ।१२। यह नदी शख तथा चन्द्रमा के समान श्वेत थी, वह दीर्घाकार वाली फेनिल नदी वेगपूर्वक बह रही थी । सेना के सभी लोग उस दूध की नदी को देखकर आश्चर्य से चकित हो गये ।१३। यद्यपि भगवान् कल्कि उस नदी के विषय में सब कुछ जानते थे, फिर भी गज, अश्व, रथ तथा पदाति सैनिको से युक्त कल्किजी ने उन मुनीश्वरो से पूछा—'इस नदी का नाम क्या है ? इसमे यह दुग्ध किस प्रकार प्रवाहित है ?' यह सुनकर वे मुनिगण आदरपूर्वक बोले ।१४-१५।

शृणु कल्के पयस्वत्या' प्रभव हिमवद्गिरौ ।
समायाता कुथोदर्या. स्तनप्रस्नवनादिहि ।१६।
घटिकासप्तकैश्चान्या पयो यास्यति वेगितम् ।
हीनसारा तटाकारा भविष्यति महामते ।१७।
इति श्रुत्वा मुनीनान्तु वचन सैनिकैः सह ।
अहो किमस्या राक्षस्या. स्तनादेका त्विय नदी ।१८

एक स्तन पाययति विकञ्जं पुत्रमादरात् ।
न जानेऽस्या· शरीरस्य प्रमाण कति वा भवेत् ॥१९॥
बल वास्या निशाचर्य्या इत्यूचुर्विस्मयान्विता: ।
कल्कि. परात्मा सन्नह्य सेनाभि सहरा ययौ ॥२०॥

हे प्रभो ! हे कल्के ! इस पयस्विनी नदी की उत्पत्ति के विषय मे कहते है, इसे सुनिये । उस कुथोदरी नाम की राक्षसी के स्तनो स निकला हुआ दूध हिमालय पर्वत से गिरता हुआ नदी रूप मे वह रहा है ॥ १६ ॥ हे महामते ! सात घडी के पश्चात् इसी प्रकार को एक अन्य पयस्विनी नदी प्रवाहित होगी । इसके पश्चात् यह नदी सूख कर तटाकार मे परिवर्तित हो जायगी ॥१७॥ सेना सहित सुशोभित कल्कि जी मुनियो के वचन सुनकर बोले—अहो, कैसे विस्मय का विषय है कि राक्षसी के स्तनो से निर्गत हुए दुग्ध से इतनी बडी नदी उत्पन्न होकर वह रही है ॥१८॥ वह अपना एक स्तन अपने पुत्र विकुन्ज को पिला रही है तो इसके देह का परिमाण क्या होगा ? यह किस प्रकार जाना जा सकता है ? ॥१९॥ तब सभी आश्चर्य मे भर कर बोल उठे—अहो ! इस राक्षसी मे कितना बल है ? तदनन्तर सेना से सुसज्जित हुए कल्कि जी उस राक्षसी की ओर चल पडे ॥२०॥

मुनिदर्शितमार्गेण यत्रास्ते सा निशाचरी ।
पुत्र स्तन पाययन्ती गिरिमूर्द्ध्नि घनोपमा ॥२१॥
श्वासवातातिवातेन दूरक्षिप्तवनद्विपा· ।
यस्या कर्णबिलावास प्रसुप्ता: सिंहसकुला ॥२२॥
पुत्रपौत्रपरिवृता गिरिगह्वरविभ्रमा: ।
केशमूलमुपालम्ब्य हरिणा शेरते चिरम् ॥ २३ ॥
यूका इव न च व्यग्रा लुब्धजातङ्कया भृशम् ।
तामालोक्य गिरेर्मूर्ध्नि गिरितत्परमाद्भुताम् ॥२४॥
कल्कि. कमलपत्राक्ष· सर्वास्तानाह सैनिकान् ।
भयोद्विग्नान्बुद्धिहीनान्त्यक्तोद्यमशमपरिच्छदान् ॥२५॥

वे मुनिगण उस मार्ग का दर्शन करने लगे जो राक्षसी के स्थान को जाता था। वहाँ पहुच कर उन्होने उस मेघाकार राक्षसी को गिरि शिखर पर अपने पुत्र को स्तन-पान कराते हुए देखा ॥२१॥ बन के हाथी उसकी श्वास-वायु के थपेडे खाकर दूर जा गिरते है तथा उसके कानो के छेदो मे सिह पडे सो रहे हैं ॥२२॥ उसके रोम छिद्रो को गिरि-गुहा समझ कर अपने पुत्र पौत्रो से युक्त हरिण गण भी उनमे घुस कर सो रहे हैं ॥२३॥ वहाँ रह कर व्याध के भय से बचे हुए है तथा लीख के समान स्थित है। पर्वत की चोटी पर अन्य पवत के समान स्थित उस राक्षसी को देख कर हत बुद्धि एव भयभीत तथा शस्त्रास्त्र त्याग कर भागने को उद्यत अपने सैनिको से भगवान् कल्कि बोले ॥ २४-२५ ॥

गिरिदुर्गेवन्हिदुर्ग कृत्वा तिष्ठान्तु मामकाः ।
गजाश्वरथयोधा ये समायान्तु मया सह ॥२६॥
अहं स्वल्पेन सैन्येन याम्यस्याः समुख शनैः ।
प्रहर्तुं बाणसन्दोहैः खड्गशक्तिपरश्वधै, ॥२७॥
इत्युक्त्वास्थाप्य पश्चात्तान्बाणैस्ता समहनद्बली ।
सा क्रुधोत्थाय सहसा ननर्द परमाद्भुतम् ॥२८॥
तेन नादेन महता वित्रस्ताश्चाभवञ्जनाः
निपेतु सैनिका. सर्वे मूच्छिता धरणातले ॥२९॥
सा रथाश्च गजाश्चापि विवृतास्या भयानका ।
जघास प्रश्वासवातैः समानीय कुथोदरी ॥ ३०॥

उन्होने कहा—इस पर्वतीय, दुर्ग मे अग्नि दुर्ग बना कर तुम सब यहीं ठहरो तथा गजारूढ, अश्वारूढ और रथी वीर हमारे साथ आगे बढ़े ॥ २६ ॥ मैं अल्प सेना को साथ लेकर बाणो, तलवारो और फरसो के द्वारा प्रहार करने के लिए अग्रसर होता हूँ ॥२७ ॥ यह कह कर कल्कि जी ने सेना को तो पीछे छोडा और आगे बढ कर रासक्षी पर बाणो से प्रहार करने लगे। यह देख कर राक्षसी ने भी

क्रोध पूर्वक अद्भुत नाद किया ।। २८ ।। उस घोर निनाद को सुन कर सभी भयभीत हो गये तथा सब सेनापति मूर्च्छित एव धराशायी हो गये ।।२९।। तब वह राक्षसी कुथोदरी अपने भयकर मुख को खोल कर अपने प्रश्वास के द्वारा ही रथ, अश्व, गजादि को खीच-खीच कर हडप करने लगी ।। ३० ।।

सेनागणास्तदुदर प्रविष्टा कल्किना सह ।
यथर्क्षमुखबातेन प्रविशन्ति पिपीलिकाः ।।३१।।
तद्दृष्ट्वा देवगन्धर्वा हाहाकार्हं प्रचक्रिरे ।
तत्रस्था मुनयः शेपुर्जेपुश्चान्ये महर्षय ।। ३२।।
निपेतुरन्ये दु खार्त्ता ब्राह्मणा ब्रह्मवादिन ।
रुरुदु शिष्टयोधा ये जहृषुस्तन्निशाचरा ।। ३३ ।।
जगता कदन दृष्ट्वा सस्मारात्मानमात्मना ।
कल्किः कमलपत्राक्षः सुरारातिनिषूदन ।। ३४ ।।
बाणाग्नि चेलचर्माभ्या कर्म्मनैर्यानदारुभि. ।
प्रज्वाल्योदरमध्येन करवाल समाददे ।। ३५ ।।

जैसे रीछ के प्रश्वास खीचने से चीटियाँ आकर्षित होकर उसके मुख मे पहुच जाती है, वैसे ही अपनी सेना के सहित भगवान कल्कि उस राक्षसी के मुख मे प्रविष्ट हो गये ।।३१।। यह देख कर सब देवता-गन्धर्व हाहाकार कर उठे, मुनिगण ने उस राक्षसी को शाप दिये और महर्षिगण कल्कि जी की कुशल के निमित्त मन्त्र-जप मे सलग्न हुए ।।३२।। वेदज्ञ ब्राह्मण दु ख से अचेत हो गये, प्रभु-भक्त वीर रोने लगे और राक्षस गण आनन्द मे निमग्न हो गये ।। ३३ ।। देव शत्रुओ के नाशक भगवान कल्कि ने जब सम्पूर्ण विश्व को इस प्रकार दु खी देखा तो वे स्वय अपना ही स्मरण करने लगे ।।३४।। फिर कल्कि जी ने राक्षसी के उस अन्धकार मय उदर मे अपने बाण द्वारा अग्नि उत्पन्न की और चर्म तथा रथ के काष्ठादि के द्वारा उस अग्नि को प्रज्वलित कर हाथ मे तलवार ग्रहण की ।।३५।।

तेन खड्गेन महता दाक्ष्य निर्भिद्य बन्धुभि· ।
बलिभिर्भ्रातृभिर्बाहैर्वृ‌ त. शस्त्रास्त्रपाणिभि ॥३६॥
बहिर्बभूव सर्वेश कल्कि. कल्कविनाशनः ।
सहस्राक्षो यथा वृत्रकुक्षि दम्भोलिनेमिना ॥३७॥
यानिरध्राद्गजरथस्तुरगाश्चाभवनन्बहिः ।
नासिकाकर्णविवरात्कऽपि तस्या विनिर्गताः ॥३८ ॥
ते निर्गतास्ततस्तस्या सैनिका रुधिरोक्षिताः ।
ता विव्यधुर्निक्षिपन्ती तरसा चरणौ करौ ॥३६॥
ममार सा भिन्नदेहा भिन्नकुक्षिशिरोधरा ।
नादयन्ती दिशो द्यो. ख चूर्णयन्ती च पर्वतान् ॥४०॥

जैसे देवराज इन्द्र वृत्रासुर की कुक्षि को अपने वज्र से भेद कर बाहर आये थे, वैसे ही सर्वेश्वर एव पापो का नाश करने वाले कल्कि-जी ने अपनी वृहद् तलवार से राक्षसी की दक्षिण कुक्षि चीर डाली और अपने शस्त्रास्त्र धारी बाधवो के सहित बाहर निकल आये ॥ ३६-३७ ॥ बहुत से गज, अश्व रथ और पैदल उसके अवो मार्ग मे और बहुत से उसके कानो तथा नासिका छिद्रो से होकर बाहर आ गये। ३८॥ फिर वे रक्त से भीगे हुए वीर गण राक्षसी के देह से बाहर निकल कर, को हाथ-पैर चलाती देख कर बाणो द्वारा उसका वेधन करने लगे ॥३६॥ जब उसके उदर मस्तक तथा अन्यान्य अग छिन्न—भिन्न होने लगे तब उसकी घोर चीत्कार से दशों दिशाएँ गूँज उठी। फिर वह पर्वतो पर गिर कर उन्हे चूर-चूर करती हुई मृत्यु को प्राप्त हुई ॥४०॥

करञ्जोऽपि तथा वीक्ष्य मातरं कातरोऽभवत् ।
स विकञ्ज क्रुधा धावन्सेनामध्ये निरायुध ॥४१॥
गजमालाकुलो वक्षोवाजिराजिविभूषण ।
महासर्पकृतोष्णीष। केसरीमुद्रिताङ्गुलि। ॥४२॥
ममर्द कल्किसेना ता मातुर्ध्वंसनकर्षितः ।
स कल्किरत ब्राह्ममस्त्र रामदत्त जिघासया ॥४३॥

धनुषा पञ्चवर्षीय राक्षस शस्त्रमाददे ।
तेनास्त्रेण शिरस्तस्य छित्वा भूमावपातयत् ।।४४।।
रुधिराक्तं धातुचित्र गिरिशृङ्गमिवद्भुतम् ।
सपुत्रा राक्षसी हत्वा मुनीना वचनाद्विभु: ।।४५।।

जब विकज ने अपनी माता की यह दशा देखी तो वह क्रोध से कातर होकर निरस्त्र ही सेना में घुस पडा ।। ४१ ।। उसके हृदय मे हाथियो की माला, सब अ गो मे घोडो के आभूषण, मस्तक पर महा-सर्प का मुकुट और अ गुलियो मे सिहो की मुद्रिकाएँ थी ।। ४२ ।। वह अपनी माता के शोक से व्याकुल होकर कल्किजी की सेना का उत्पीडन करने लगा । तब कल्किजीने उस पाँच वर्ष के राक्षस-बालक को मारने के लिए ब्रह्मास्त्र ग्रहण किया और उससे उसका मस्तक काट कर पृथ्वी पर गिरा दिया ।। ४३-४४ ।। इस प्रकार मुनियो द्वारा निवेदन करने पर कल्किजी ने गेरू आदि से चित्रित किये के समान उस रक्ताक्त पर्वत पर पुत्र सहित राक्षसी को नष्ट कर दिया ।।४५।।

गङ्गातीरे हरिद्वारे निवास समकल्पयत् ।
देवाना कुसुमासारैर्मुनिस्तोत्रैः सुपूजितः ।।४६।।
निनाय ता निशा तत्र कल्कि. परिजनावृतः ।
प्रातर्ददर्श गङ्गायास्तीरे मुनिगणान्बहून् ।
तस्या. स्नानव्याजविष्णोरात्मनो दर्शनाकुलान् ।।४७।।
हरिद्वारे गङ्गातटनिकटपिण्डारकवने ।
वसन्तं श्रीमन्त निजगणवृत त मुनिगणाः ।
स्तवैः स्तुत्वा स्तुत्वा विधिवदुदितैर्जन्हुतनयां ।
प्रपश्यत कल्कि मुनिजलगणा द्रष्टुमगमन् ।।४८।।

तदनन्तर उन्होने देवताओ द्वारा पुष्प-वृष्टि और मुनियो के स्तोत्रो से भले प्रकार पूजित होते हुए वहाँ चल कर हरिद्वार मे गङ्गा जी के

पावन तीर पर अपनी सेना सहित निवास किया ।।४६।। अपने परिजनो के सहित कल्किजी ने वह रात्रि वही बिताई और प्रात काल उठने पर गगा स्नान के निमित्त आये हुए मुनिगण उनके दर्शनार्थ आते हुए दिखाई दिये ।।४७ ।। वे हरिद्वार मे गगातट के समीप स्थित पिण्डारक बन मे अपनी सेना के सहित निवास करने लगे । एक दिन, जब वे कलिमल-नाशिनी भगवती जाह्नवी की स्तोत्रो के द्वारा स्तुति कर रहे थे, तभी मुनिगण उनके दर्शनार्थ वहाँ अ ये और विविध शब्दो से युक्त स्तोत्र करने लगे ।। ४८ ।।

तृतीय अध्याय

सुस्वागतान्मुनीन् दृष्ट्वा कल्कि. परम धर्मविम् ।
पूजयित्वा च विधिवत्सुखासीनानुवाचतान् ॥१॥
कयूय सूर्यसङ्काशा मम भाग्यादुपस्थिता: ।
तीर्थाटनोत्सुका लोकत्रयाणामुपकारका: ॥२॥
वय लोके पुण्यवन्तो भाग्यवन्तो यशस्विन: ।
यत कृपाकटाक्षेण युष्माभिरवलोकिता. ॥३॥
ततस्ते वामदेवऽत्रिर्व.सष्ठो गालवो भृगु. ।
पराशरो नारदोऽश्वत्थामा राम: कृपस्त्रित: ॥४॥
दुर्वासा देवल: कण्वो वेदप्रमितिरङ्गिरा: ।
एते चान्ये च बहवी मुनय. संशितव्रता. ॥५॥
कृत्वाग्रे मरुदेवापी च-द्रसूयकुलोद्भवौ ।
राजानौ तौ महावीर्यौ तपस्याभिरतौ चिरम् ॥६॥
ऊचु. प्रहृष्टमनस. कल्कि कल्कविनाशनम् ।
महोदधेस्तीरगत विष्णु सुरगणा यथा ॥७॥

परम धर्मविद कल्किजी ने उन मुनिगण को सुखपूर्वक वहाँ आये हुए देखकर स्वागत, आसन और विधिवत् पूजन करके उनसे बोले ॥१॥ सूर्य के समान अत्यन्त तेजस्वी, तीर्थाटन मे उत्सुक एवं तीनो लोको के कल्याण रूप उपकार की कामना वाले आप कौन हैं ? जो मेरे सौभाग्यवश यहाँ पधारे हैं ॥२॥ आपके द्वारा कृपा-कटाक्ष पूर्वक देखे जाने से मैं आज इस लोक मे अपने को पुण्यवान्, भाग्यवान्

और यशवान् ही मानता हूँ ।। ३ । फिर वामदेव, अत्रि, वसिष्ठ, गालव, भृगु, पराशर, नारद, अश्वत्थामा, कृपाचार्य, त्रित, दुर्वासा, देवल, कण्व, वेद प्रमिति और अ गिरा आदि यह सब तथा अन्यान्य श्रेष्ठ व्रत वाले मुनिगण चन्द्र सूर्यवश मे उत्पन्न, महा वीर्यवान एव तपोनिष्ठ राजा मरु और देवापि उनको सामने देख कर, जैसे प्रसन्न मनसे देवताओ ने महोदधि के तीर पर भगवान् विष्णु से कहा था, वैसे ही पापो का नाश करने वाले कल्किजी के प्रति बोले ।।४-७ ।।

जयाशेषजगन्नाथ ! विदिताखिलमानस ! ।
सृष्टिस्थितिलयाध्यक्ष ! परमात्मन्प्रसीद नः ।।८।।
कालकर्म्मगुणावास प्रसारितनिजक्रिय ! ।
ब्रह्मादिनुतपादाब्ज ! पद्मानाथ प्रसीद न. ।।९।
इति तेषा वच श्रुत्वा कल्कि· प्राह जगत्पति ।
कावेतौ भवतामग्रे महासत्वौ तपस्विनौ ।।१०।।
कथमत्रागतौ स्तुत्वा गङ्गा मुदितमानसौ ।
का वा स्तुतिस्तु जाह्नव्या युवयोर्नामनी च के ।।११।।
तयोर्मरु· प्रमुदितः कृताञ्जलिपुट· कृती ।
आदावुवाच विनयी निजवशानुकीर्त्तनम् ।।१२।।

मुनियो ने कहा—हे सर्व विजयी जगदीश ! हे सम्पूर्ण विश्व के जीवो के घट-घट के ज्ञाता ! हे सृष्टि स्थिति और प्रलय के स्वामिन् ! हे परमात्मदेव ! प्रसन्न होइये ।।८।। हे पद्मा के पते ! काल, कर्म और गुण के आप ही आश्रय हैं । ब्रह्मादि देवता भी आपके ही चरणार-विन्दो की पूजा किया करते हैं । आप हम पर प्रसन्न होइये ।। ९ ।। मुनियो के यह वचन सुन कर कल्किजी ने उनसे कहा—हे मुनियो ! आपके आगे यह महान् बल सम्पन्न एवं तपस्वी कौन हैं ? ।।१०।। गगाजी की स्तुति करके अत्यन्त प्रसन्न हृदय से यह यहाँ क्यो पधारे हैं ? यह किस कारण भगवती जान्हवी की स्तुति मे लगे हैं ? इनके नाम क्या-क्या हैं ? ।।११।। तब वे दोनो मरु देवादि प्रसन्न हृदयसे हाथ

जोड कर बिनय पूर्वक अपने वश का यश-वर्णन करने लगे ॥ १२ ॥

सर्ववेत्सि परात्मापि अन्तर्यामिहृदि स्थिति ।
तवाज्ञया सर्वमेनत्कथयामि श्रणु प्रभो ॥ १३॥
तव नाभेरभूद्ब्रह्मा मरीचिस्तत्सुतोऽभवत् ।
ततो मनुस्तत्सुतोऽभूदिक्ष्वाकु सत्यविक्रम ॥१४॥
युवनाश्व इति ख्यातो मान्धाता तत्सुतोऽभवत् ।
पुरुकुत्सस्तत्सुतोऽभूदनरण्यो महामतिः ॥१५॥
त्रसदस्यु. पिता तस्माद्धर्य्यश्वस्त्र्यरुणस्नत ।
त्रिशङ्कुस्तत्सुतो धीमान्हरिश्चन्द्र· प्रतापवान् ॥१६॥
हरितस्तत्सुतस्तस्माद्भरुकस्तत्सुतो वृका ।
तत्सुत सगरस्तस्मादसमञ्जास्तोऽशुमान् ॥१७॥

मरु बोले—हे प्रभो ! आप तो अन्तर्यामी एव घट-घट मे निवास करने वाले है, आपको सब कुछ ज्ञात है । मै आपकी आज्ञा के अनुसार सब कहना हूँ, उसे सुनिये ॥१३॥ आपके नाभि कमल से ही ब्रह्मा जो उत्पन्न हुए हैं । ब्रह्मा के पुत्र मरीचि, मरीचि के मनु और मनु के सत्य विक्रम इक्ष्वाकु हुए । १४॥ इक्ष्वाकु का पुत्र युवनाश्व, युवनाश्व का मान्धाता, मान्धाता का पुरुकुत्स और पुरुकुत्स का पुत्र अनरण्य हुआ ॥१५॥ अनरण्य का त्रसदस्यु, त्रसदस्यु का हर्यश्व, हर्यश्व का अरुण, अरुण का त्रिशकु हुआ तथा त्रिशकु के पुत्र महाप्रतापी राजा हरिश्चन्द्र हुए ॥ १६॥ राजा हरिश्चन्द्र का पुत्र हरित, हरित का भरुक, भरुक का वृक, वृक का सगर, सगर का असमजा और असमजा का पुत्र अ शुमान हुआ ॥१७॥

ततो दिलीपस्तत्पुत्रो भगीरथ इति स्मृत. ।
येनानीता जान्हवीयं ख्याता भागीरथी भुवि ।
स्तुता नुता पूजितेय तव पादमुसद्भवा ॥१८॥
भगीरथात्सुतस्तस्मान्नाभस्तस्मादभूद्बली ।
सिन्धुद्वीपसुतस्तस्मादायुतायुस्ततोऽभवत् ॥१६॥

ऋतुपर्णस्तत्सुतोऽभूत्सुदासस्तत्सुतोऽभवत् ।
सौदासस्तत्सुतो धीमानश्मकस्तत्सुतो मत ॥२०॥
मूलकात्स दशरथस्तस्मादेडविडस्तत ।
राजा विश्वसहस्तस्मात्खटवाङ्गो दीर्घबाहुक. ॥२१॥
ततो रघुरजस्तस्मात्सुतो दशरथःकृती ।
तस्माद्रामो हरि. साक्षादाविर्भूतो जगत्पति ॥२२॥

अ शुमान के पुत्र दिलीप, दिलीप के परम प्रसिद्ध पुत्र भगीरथ हुए । वही भगवती जाह्नवी को भूतल पर लाये थे इसी लिए गगा उनके नाम से भागीरथी कहलाई । आपके चरणो से उत्पन्न होने के कारण ही प्राणी इन गगा जी की स्तुति, प्रणाम तथा पूजन करने में तत्पर रहते हैं ॥१८॥ भागीरथ का पुत्र नाभ हुआ । नाभ का महाबली सिन्धुद्वीप और सिन्धुद्वीप का पुत्र आयुतायु हुआ ॥१९॥ अयुतायु का पुत्र ऋतुपर्ण हुआ । ऋतुपर्ण का सुदास, सुदास का सौदास और सौदास का पुत्र मेधावी अश्मक हुआ ॥२० अश्मक से मूलक और मूलक का दशरथ हुआ । दशरथ का एडविड, और एडविड का विश्वसह, विश्वसह का खट्वाग और खट्वाग का पुत्र दीर्घबाहु हुआ था ॥२१॥ दीर्घबाहु के पुत्र रघु हुए, रघु के अज और अज के दशरथ हुए । इन्ही दशरथ के पुत्र रूप मे साक्षात् जगदीश्वर विष्णु ने अवतार लिया ॥२२॥

रामावतारमार्कण्य कल्कि परमहर्षित ।
मरु प्राह विस्तरेण श्रीरामचरित वद ॥२३॥
सीतापतेः कर्म वक्तु क समर्थोऽस्ति भूतले ।
शेष, सहस्रवदनैरपि लालायितो भवेत् ॥२४॥
तथापि शेमुषी मेऽस्ति वर्णयामि तवाज्ञया ।
रामस्य चरित पुण्य पापतापप्रमोचनम् ॥२५॥
अजादिविबुधार्थितोऽजनि चतुर्भिरशै. कुले
रवेरजासुतादजो जगति यातुधानक्षय। ।
शिशु. कुशिकजाध्वरक्षयकरक्षयो यो बला-
द्वलीललितकन्धरो जयति जानकीवल्लभः ॥२६॥

रामावतार का प्रसग आने पर भगवान् कल्कि अत्यन्त हर्षित हुए और उन्होने मरु से कहा कि राम चरित्र का विस्तार सहित वर्णन करिये ।।२३।। मरु बोले–सीतापति श्रीराम के कर्मों का वर्णन करने में समर्थ इस पृथिवी पर कौन है ? क्योकि सहस्रवदन शेष भी उनका यश वर्णन करने मे समर्थ नही है। फिर भी मैं आपकी आज्ञा के कारण भगवान् श्रीराम का पाप-ताप नाशक चरित्र को अपनी बुद्धि के अनुसार कहता हूँ ।।२४-२५ ।। पुराकाल की बात है—ब्रह्मादि देवताओ के द्वारा राक्षसो के विनाशार्थ प्रार्थना किये जाने पर राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न के रूप मे सीतापति भगवान् रामचन्द्र जी ने सूर्यवंश मे अवतार लिया था। अपने शिशु-काल मे ही उन्होने विश्वामित्र जी के यज्ञ मे विघ्न उपस्थित करने वाले राक्षसो का बलपूर्वक सहार किया था ।।२६ ।।

मुनेरनुसहानुजो निखिलशस्त्रविद्यातिगो ।
ययावतिवनप्रभो जनकराजराजत्सभाम् ।।२७।।
विधाय जनमोहनद्युतिमतीव कामद्रुह ।
प्रचण्डकरचण्डिमा भवनभजने जन्मन. ।।
तम प्रतिमतेजस दशरथात्मज सानुज
मुनेरनु यथा विधे शशिवदादिदेव परम् ।
निरीक्ष्य जनको मुदा क्षितिसुतापति समत
निजोचितपणक्षम मनसि भत्सयन्नाययौ ।।२८।।
स भूपपरिपूजितो जनकजेक्षितैरर्च्चित
करालकठिनं धनु करसोरुहे सहितम् ।
विभज्य बलदृढ जय रघूवद्दहेत्युच्चकैर्ध्वनि
त्रिजगतीगत परिविधाय रामो वभौ ।।२९।।
ततो जनकभुपतिर्दशरथात्मजेभ्यो ददौ
चतस्र उषतीर्मुदा वरचतुर्भ्य उद्वाहने ।
स्वलङ्कृतनिजात्मजा. पथि ततो बल भार्गव-

अकार उररीनिज रघुपतौ महोग्र त्यजन् ॥३०॥

जिनकी महिमा से कामना पूर्ति वाले ससार मे पुर्नजन्म की प्राप्ति नही होती । वे महाबली, प्रभायुक्त तथा सम्पन्न शस्त्र विद्या-विशारद भगवान श्रीराम ससार को मोहित करने वाला रूप धारण किये हुए, लक्ष्मण और मुनियो के सहित जनक की राज सभा मे गये ॥२७॥ ब्रह्माजी के पीछे सुशोभित चन्द्रमा के समान तेज वाले श्री राम अपने भाई लक्ष्मण के सहित मुनिवर विश्वामित्र के पीछे बैठ गये । तब आदि देव जगदीश्वर को देख कर जनक सोचने लगे कि यह सीता के योग्य श्रेष्ठ वर हैं । तब उन्होने अपने द्वारा किये हुए प्रण की कठोरता देख कर अपनी भर्त्सना की और फिर श्री राम के समीप गये ॥२८॥ तब राजा जनक से आदर प्राप्त कर तथा सीता जी के कटाक्ष से प्रेम-पूजित होकर श्री राम ने उस घोर धनुष को हाथ मे उठाया और उसके दो टुकडे कर दिये । तब श्रीराम अत्यन्त शोभा को प्राप्त हुए और उनके जय-घोष से तीनो लोक व्याप्त हो गये ॥२९॥

तत. स्वपुरमागतो दशरथस्तु सीतापति
नृप सचिवसयुतो निर्जविचित्रसिहासने ।
विधातुममलप्रभ परिजनै क्रियाकारिभि.
समुद्यतमति तवा द्रुतमवारयत्केकयी ॥३१॥
ततो गुरुनिदेशतो जनकराजकन्यायुत.
प्रयाणमकरोत्सुधीर्यदनुनः सुमित्रासुत.
वन निजगण त्यजन्गुहगृहे वसन्नादरात्
विसृज्य नृपलाञ्छन रघुपतिर्जटाचीरभृत् ॥३२॥

तब राजा जनक ने अपनी चारो कन्या—सीता, उर्मिला, माण्डवी और श्रुतिकीर्ति सब प्रकार से अलकृत करके दशरथ जी के चारो पुत्र राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न को क्रमश. दान कर दी । विवाह के पश्चात् जब यह सब अयोध्या नगरी के लिए लौट रहे थे, तब मार्ग मे परशुरामजी मिले और उन्होने श्रीरामको अपना अपार बल

दिखाने का निष्फल प्रयत्न किया ।।३०।। फिर महाराज दशरथने अयोध्या पहुँच कर अपने मन्त्रियो के परामर्श से सीतापति राम को अयोध्या के राज्य सिंहासन पर अभिषिक्त करने का विचार किया । अभिषेक के लिए सम्पूर्ण सामग्री एकत्र होकर जब पूर्ण तैयारी हो गई, तब श्रीराम का अभिषेक करने मे तत्पर राजा दशरथ को कैकेयी ने वरदान माँग का रोक दिया ।। ३१ ।। तब महाराज की आज्ञा सुन कर जनक सुता और सुमित्रा पुत्र-लक्ष्मण सहित श्रीराम वन मे गये । साथ चलते हुए पुरवासियो को आगे चल कर छोड दिया तथा गुह के घर मे जाकर राजकीय वस्त्राभूषणो का परित्याग कर जटावल्कल धारण कर लिया ।।३२।।

प्रियानुजयुतस्ततो मुनिमतो वने पूजित:
स पञ्चवटिकाश्रमे भरतमातुर सगतम् ।
निवार्य्य मरण पितु समवधार्य दु:खातुर-
स्तपोवनगतोऽवसद्रघुपतिस्ततस्ता समा: ।।३३।।
दशाननमहोदरा विषमबाणवेधातुरां-
समीक्ष्य वररूपिणी प्रहसती सती सुन्दरीम् ।
निजाश्रयमभीप्सती जनकजापतिर्लक्ष्मणा-
त्करालकरवालत समकरोद्विरूपा तत ।।३४।।
समाप्य पथि दानव खरशरै शनैर्नाशयन्
चतुर्दशसहस्रक समहनन्खर सानुगम् ।
दशाननवशानुग कनकचारुच्छन्मृग •
प्रियाप्रियकरो वने समवधीद्बलाद्राक्षसम् ।।३५।।

सीता जी और लक्ष्मण जी के साथ मुनिवेश धारी श्री राम पूजा-सम्पन्न होकर विविध मे वनो निवास करने लगे । इसके पश्चात् कातरता पूर्वक भरतजी वहाँ आये । उनसे पिता का मरण सुन कर श्रीराम को बडा दु:ख हुआ और भरत जी को समझा कर लौटा दिया और तपोवन मे रहने लगे ।।३३।। फिर कामबाण से बिद्ध

सुन्दर रूप वाली, हास्त्रवदना, वर की कामना करती हुई रावण की बहिन शूर्पणखा को आते देख कर लक्ष्मण जी को सकेत किया, जिसके अनुसार लक्ष्मण जी ने तीक्ष्ण तलवार से उस राक्षसी का रूप भ्रष्ट कर दिया ।।३४।। फिर उन्होने मार्ग मे एक दानव का मार कर, चौदह हजार सेना के अधिपति एव रावण के अनुगामी खरदूषण को सेना सहित नष्ट कर दिया । फिर सीता जी की इच्छा से स्वर्ण-मृग रूपी राक्षस को मार डाला ।।३५।।

ततो दशसुखस्त्थरस्तमभिवीक्ष्य राम रुर्षा
व्रजन्तमनुलक्ष्मरा जनकजा जहाराश्रमे ।
ततो रघुपति· प्रिया दलकुटीरसस्थापिता
न वोक्ष्य तु विमूर्च्छितो वह विलप्य मीतेति ताम् ।।३६।।
वने निजगणाश्रमे नगतले जले पल्वले
विचित्य पतित खग पथि ददर्श सौमित्रिणा ।
जटायुवचनात्ततो दशमुखाहृता जानकी
विविच्य कृतवान्मृते पितरि वह्हिकृत्य प्रभु ।।३०।।
प्रियाविरहकातराऽनुजपुर सरो राघवो
धनुर्धरन्धरो हरिबल नवालापिनम् ।
ददश ऋषभाचलाद्रविजवालिराजानुज·
प्रिय पवननन्दनं परिणत हित प्रेषितम् ।।३८।।

फिर राम लक्ष्मण को गया हुआ देख कर रावण ने उनके आश्रम से अकेली सीताजी का हरण कर लिया। तदनन्तर श्रीराम ने वहाँ आकर जब सीता को न देखा, तब वे 'हा सीते' 'हा सीते' आदि शोक युक्त शब्दो मे विलाप करते हुए मूर्च्छा को प्राप्त हो गये ।। ३६ ।। फिर वे ऋषियो के आश्रम, पर्वतो की गुफा, जल और स्थल आदि विविध स्थानो मे सीताजी को ढूढने लगे । आगे चलने पर उन्हें मार्ग मे जटायु पडा मिला । उससे उन्हे सीता हरण का समाचार प्राप्त हुआ । जटायु के मरने पर उन्होंने अपने पिता के समान उसका

मृतक संस्कार किया ।।३७।। सीताजी के वियोग से व्याकुल हुए धनुर्धरो मे श्रेष्ठ श्रीराम लक्ष्मण के सहित नव-परिचय प्राप्त बानर सेना मे मिले और उनकी सूर्य पुत्र बालि के छोटे भाई सुग्रीव द्वारा भेजे हुए उसके मत्री हनुमान से भेट हुई ।।३८।।

ततस्तदुदितं मत पवनपुत्रसुग्रीवयो-
स्तृणाधिपतिभेदन निजनृपासनस्थापितम् ।
विविच्य व्यवसायकैर्निजसखाप्रिय बालिनम्
निहत्य हरिभूपति निजसख स रामोऽकरोत् ।।३९।।
अथोत्तरमिमा हरिजनकजा समन्वेषयन्
जटायुसहजोदितैर्जलनिधि तरन्वायुजः ।
दशाननपुर विशञ्जनकजा समानन्दय
न्नशोकवनिकाश्रमे रघुपति पुन प्रापयौ ।।४०।।
ततो हनुमता बलादमितरक्षसा नाशन
ज्वलज्ज्वलनसकुलज्वलितदग्धलङ्कापुरम् ।
विविच्य रघुनायको जलनिधि रुषा शोषयन्
वबन्ध हरियूथप. परिवृतो नगेरीश्वर ।।
बभञ्ज पुरपत्तन विविधसन्र्गदुर्गक्षमम्
निशाचरपते. क्रुधा रघुपति' कृती सद्गति ।।४१।।

फिर सुग्रीव और हनुमान की प्रार्थना पर उन्होने ताल के सात वृक्षो को काट गिराया और बालि का वध करके सुग्रीव को बानरो का राजा बना कर उससे मित्रता स्थापित की ।।३९।। फिर पवनसुत हनुमान सीता की खोज मे गये और सपाति की प्रेरणा पर लकापुरी मे स्थित अशोक वाटिका पहुँच कर उन्होने सीताजी को राम-सदेश से आनन्दित किया और रामचन्द्रजी के पास लौट आये ।। ४० ।। फिर श्रीरामचन्द्र ने हनुमानजी के द्वारा अनेको राक्षसो का मारा जाना और लका का जलाया जाना सुना तो वे शिलाओ द्वारा समुद्र पर सेतु बाँध

कर वानरो के सहित लकापुरी जा पहुचे और रावण के पुर की प्राचीर आदि को उन्होंने नष्ट कर डाला ।।४१।।

ततोऽनुजयुतो युधि प्रबलचण्डकोदण्डभृत्
शरै खरतरै क्रुधा गजरथाश्वहृसाकुल ।
करालकरवालत प्रबलकालजिह्वाग्रतो
निहत्य वरराक्षमान्नरपतिर्बभौ सानुग' ।।४२।।

जघान घनघोषगानुगगणैरसृक् प्राशनै' ।
ततोऽतिबलवानरैर्गिरिमहीरुहोद्यत्करै
करालतरताडनैर्जनकजारुषा नाशितान् ।
निजघ्नुरमरार्दनानतिबलान्दशास्यानुगान्
नलाङ्गदहरीश्वराऽशुगसुतर्क्षराजादय: ।४३।।

ततोऽतिबललक्ष्मणाम्बुदशनाथशत्रु रणे
प्रहस्त विकटादिकानपि निशाचरानग्ङ्गनान्
निकुम्भ मकराक्षकान्निशितखड्ग पातै. क्रुधा ।।४४।।

फिर लक्ष्मण के सहित श्रीराम ने अत्यन्त उग्र बाणो को धारण किया और गज, अश्व तथा रथादि से युक्त होकर तीक्ष्ण बाणो और विकराल असि से अनेक राक्षसो का नाश करके कराल काल की जिह्वा के अग्र भाग के समान अपने अनुगामियो सहित शोभा पाने लगे ।।४२।। फिर सुग्रीव, पवनसुत हनुमान, नल, नील, अगद और जामवन्त आदि परम पराक्रमी बानरो ने वृक्ष और पर्वत शिलाएँ उखाड कर उनके प्रहार से देव-शत्रु महाबली रावण के उन सेवको को, जो सीताजी के क्रोध से पहिले ही मरे के समान हो रहे थे, नष्ट कर दिया ।।४३।। महाबली लक्ष्मण ने अत्यन्त घोर शब्द करने वाले रुधिरपायी राक्षसो से समन्वित इन्द्रजित मेघनाद को मार डाला। फिर क्रोध पूर्वक उन्होंने निकुम्भ, मकराक्ष और विकटादि नामक बली निशाचरो का भी सहार कर दिया ।।४४।।

ततो दशमुखो रणे गजरथाश्वपत्तीश्वरै-
रलङ्घ्यगुणकोटिभि परिवृतो युयोधायुधैः ।
कपीश्वरचमूपते पतिमनन्तदिव्यायुध
रघूद्वहमनिन्दित सपदि सङ्गतो दुर्जय ॥४५॥
दशाननमरि ततो विधिवरस्मयाबर्द्धितम्
महाबलपराक्रम गिरिमिवाचल सयुगे ।
जघान रघुनायको निशितसायकैरुद्धतम्
निशाचरचमूपति प्रबलकुम्भकर्ण ततः ॥४६॥
तयोः खरतरै शरैर्गगनमच्छमाच्छादित
बभौ घनघटासम मुखरमत्तडिद्वह्निभिः ।
धनुर्गुणमहाशनिध्वनिभिरावृत भूतल
भयङ्करनिरन्तर रघुपतेश्च रक्ष. पतेः ॥४७॥

फिर रावण अपने करोडो गज, रथ, अश्व युक्त तथा पदाति सैनिको के सहित रणभूमि मे उपस्थित हुआ और उसने कपीश्वर सुग्रीव के भी स्वामी दिव्यायुध धारी श्रीराम से घोर सग्राम किया ॥४५॥ तब रघुनायक श्रीराम ने ब्रह्माजी के वर से प्रबल हुए महा पराक्रमी और युद्ध क्षेत्र मे पर्वत के समान अडिग रहने वाले राक्षसपति रावण और उसके भाई कुम्भकर्ण को अपने बाणो से रुद्ध कर दिया ॥४६॥ फिर राम-रावण के उस युद्ध मे तीक्ष्ण बाणो से गगन मडल उसी प्रकार आच्छादित हो गया, जिस प्रकार मेघो की घटा से हो जाता है। बाणो के परस्पर टकराने से जो शब्द युक्त अग्नि की चिंगारियाँ निकलती थी, वह ऐसी प्रतीत होती थी, जैसे गर्जन करती हुई बिजली चमक उठती है। विद्युत-गर्जन के समान धनुष की टकार से व्याप्त हुई रणभूमि अत्यन्त भयानक लगने लगी ॥४७॥

ततो धरणिजारुषा विविधरामबाणौजसा
पपात भुवि राणस्त्रिदशनाथविद्रावण. ।
ततोऽतिकुतुकी हरिर्ज्वलनरक्षिता जानकी

समर्प्य रघुपुङ्गवे निजपुरी ययौ हर्षितः ।।४८।।
पुरन्दरकथादर सपदि तत्र रक्ष पतिम् ।
बिभीषणमभीषण समकरोत्ततो राघव. ।।४९।।
हरीश्वरगणावृतोऽवनिसुतायुत सानुजा
रथे शिवसखेरिते सुविमले लसत्पुष्पके ।
मुनीश्वरगणार्चितो रघुपतिस्त्वयोध्या ययौ
विविच्य मुमिलाञ्छन गुहगृहेऽतिसख्य स्मरन् ।।५०।।

फिर इन्द्र को त्रस्त करने वाला रावण जानकी जी के क्रोध से व्याप्त एव श्रीराम के अस्त्रानल से दग्ध होकर धराशायी हो गया । रावण की मृत्यु हो जाने पर वानर श्रेष्ठ हनुमान जानकीजी को शुद्ध करके लाये और उन्हे श्रीराम को समर्पित कर दिया । फिर प्रसन्न चित्त से अपने स्थान को गये ।।४८।। फिर देवराज के कहने से श्रीराम ने रावण के भाई विभीषण को राक्षसो के राज्य पर अभिषिक्त किया ।।४९।। फिर भगवान् रामचन्द्र जी वानर आदि तथा सीताजी और लक्ष्मण को साथ लेकर अत्यन्त सुशोभित पुष्पक यान पर चढ कर अयोध्या नगरी के लिए चले । मार्ग मे चलते हुए जब मध्य वन मे पहुँचे तब उन्हे अपने मुनिवेश और गुह के गृह तथा उसकी मित्रता का स्मरण हुआ । तभी मुनियो ने उनके समीप आकर उनका पूजन किया ।। ५० ।।

ततो निजगणावृतो भरतमातुर सान्त्वयन्
स्वमातृगणवाक्यत: पितृनिजासने भूपति ।
वसिष्ठमुनिपुङ्गवै कृतनिजाभिषेको विभु·
समस्त जनपालक. सुरपतिर्यथा सबभौ ।।५१।।
नरा बहुधनाकरा द्विजवरास्तपस्तत्परा:
स्वधर्म्मकृतनिश्चयाः स्वजनसङ्गता निर्भया· ।
घनाः सुबहुवर्षिणो वसुमती सदा हर्षिता
भवत्यतिबले नृपे रघुपतावभूत्सज्जगत् ।।५२।।

गतायुतसमा; प्रियैर्निजगुणै प्रजा रञ्जयन्
निजा रघुपति. प्रिया निजमनोभवैर्मोहयन् ।
मुनीन्द्रगणसयुतोऽप्ययजदादिदेवान्मखै-
र्धनैर्विपुलदक्षिणैरतुलवाजिमेधैस्त्रिभि ।।५३।।

फिर अपने जनो से आवृत्त होकर दु ख से कातर हुए भरतजी को सान्त्वना दी और माताओ की आज्ञा से अपने पिता के राज्य सिंहासन पर अभिषिक्त हुए । उस समय वसिष्ठ आदि महर्षियो ने उनका अभिषेक किया और तब वे लोको के स्वामी श्रीराम इन्द्र के समान शोभा पाने लगे ।।५१।। फिर प्रजाजन धन से सम्पन्न हो गए, द्विजवर तपस्या मे मग्न रहने लगे । सभी परस्पर प्रेम-भाव पूर्वक भय-रहित चित्त से रहते हुए अपने-अपने धर्म मे तत्पर हो गए । मेघो द्वारा समय पर वृष्ठि होने से पृथिवी मुदित हो गई । इस प्रकार अत्यन्त पराक्रमी श्रीराम के राज्य को प्राप्त होने से सम्पूर्ण विश्व सत्पथ का अनुगामी हो गया ।५२।। भगवान् श्रीराम अपने गुणो से प्रजा को प्रसन्न रखने और अपनी प्राणप्रिया सीताजी के मन को भी आनन्दित करने लगे । उन्होने महर्षियो के सहयोग से बहुत प्रकार की दक्षिणा और दान-यज्ञादि के द्वारा देवताओ को प्रसन्न करते हुए तीन अश्वमेध यज्ञ निर्विघ्न रूप से पूर्ण किये । इस प्रकार उन्होने दस हजार वर्ष तक राज्य किया ।५३।

तत किमपि कारण मनसि भावयन्भूपति-
र्जहौ जनकजा वने रघुवरस्तदा निघृ णा: ।
ततो निजमत स्मरन्समनयत्प्रचेत. सुतो
निजाश्रममुदारधीरघुपते प्रिया 'दु:खिताम् ।।५४।।
तत' कुशलवौ सुतौ प्रसुषुबे धरित्रीसुता
महाबलपराक्रमौ रघुपतेर्यशोगायनौ ।
स तामपि सुतान्विता मुनिवरस्तु रामान्तिके
समर्पयदनिन्दिता सुरवरै. सदा वन्दिताम् ।।५५।।

ततो रघुपतिस्तु ता सुतयुता रुदन्ती पुरो
जगाद दहने पुन प्रविश शोधनायात्मन. ।
इतीरितमवेक्ष्य सा रघुपते पदाब्जे नता
विवेश जनीयुता मणिगणोज्वल भूतलम् ।।५६।।

फिर किसी कारण वश श्रीराम को अपना हृदय कठोर करना पडा और उन्होने जानकीजी को परित्याग का वन मे पहुँचा दिया । तब महर्षि बाल्मीकि अपने द्वारा रचित रामायण का स्मरण करके दु खित चित्त होते हुए जानकीजी का अपने आश्रम मे लिवा लाये ।।५४।। फिर जानकीजी के कुश और लव नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए । इन दोनो राज पुत्रो ने श्रीराम के समीप पहुच कर उनका यश गाया । फिर महर्षि वाल्मीकि ने अनिन्दित एव देव-पूजिता जानकीजी को इन दोनो पुत्रो के सहित श्रीराम को समर्पित कर दिया ।।५५।। दोनो पुत्रो के सहित रोती हुई जानकी को अपने सामने खडी देख कर श्रीराम उनसे बोले—सीते ! तुम अपनी शुद्धि के लिये पुनः अग्नि-प्रवेश करो । उनके यह वचन सुन कर जानकीजी ने उनके चरणारविन्दो मे प्रणाम किया और अपनी माता पृथिवी के साथ पाताल मे प्रविष्ट हो गईं ।।५६।।

निरीक्ष्य रघुनायको जनकजाप्रयाण स्मरन्
वसिष्ठगुरुयोगतोऽनुजयुतोऽगमत्स्व पदम् ।
पुर.स्थितजन.स्वकै पशुभिरीश्वर सस्पृशन्
मुदा सरयुजीवन रथवरै परीतो विभुः ।।५७।।

ये शृण्वन्ति रघूद्वहस्य चरित कर्णामृत सादरात्
ससारार्णवशोषणञ्च पठतामामोदद मोक्षदम् ।
रोगाणामिह शान्तये धनजनस्वर्गादिसम्पत्तये
वशानामपि वृद्धये प्रभवति श्रीशः परेश प्रभुः ।।५८।

जानकीजी को इस प्रकार पाताल में गई देख कर रामचन्द्र भी उनका स्मरण करते हुए अपने गुरु वसिष्ठ, अनुजगण तथा परिजनो

और पशुओं के साथ सरयू तट पर गये और प्रसन्न हृदय से जल का स्पर्श करके दिव्य विमान मे आरूढ होकर अपने लोक को गये ।।५७।। कानो के लिए अमृत के समान इस राम चरितामृत को जो आदर सहित सुनेगे उनकी सभी बाधाएँ श्रीराम-कृपा के दूर हो जायेगी। रोग नष्ट होंगे, वंश-वृद्धि, धन-जन की समृद्धि और स्वर्ग रूप ऐश्वर्य की प्राप्ति होगी। जो इसका पाठ करेंगे, उनके लिए यह संसार-सागर शुष्क होकर अत्यन्त आनन्द तथा मोक्ष-रूप परम पुरुषार्थ की प्राप्ति होगी ।।५८।।

चतुर्थ अध्याय

रामात्कुशोऽभूदतिथिस्ततोऽभून्निषधान्नभ ।
तस्मादभूत्पुण्डरीक' क्षेमधन्वाऽभवत्तत ।१।
देवानीकस्ततो हीन' परिपात्रोऽथ हीनत ।
बलाहकस्ततोऽर्कश्च रजनाभस्ततोऽभवत ।२।
खगणाद्विधृतस्तस्माद्धिरण्यनाभसञ्ज्ञित' ।
तत पुष्पाद्ध्रुवस्तस्मात्स्यन्दनोऽथा ग्नवर्णक. ।३।
तस्माच्छीघ्रोऽभवत्पुत्र पिता मेऽतुलविक्रम. ।
तस्मान्मरु मां केऽपीह बुधञ्चापि सुमित्रकम् ।४।
कलापग्राममासाद्य विद्धि सत्तापसि स्थितम् ।
तवावतार विज्ञाय व्यासात्सत्यवतीसुतात् ।
प्रतीक्ष्य काल लक्षाब्द कले प्राप्तस्तवान्तिकम् ।
जन्मकोट्यघसा राशेर्नाशन धर्मशासनम् ।
वश'कीर्तिकर सर्वकामपूर परात्मन ।६।

उन श्रीराम के पुत्र कुश हुए । कुश के अतिथि, अतिथि के निषध, निषध के नभ, नभ के पुण्डरीक और पुण्डरीक के पुत्र क्षेमधन्वा हुए ॥१॥ क्षेमधन्वा के पुत्र देवानीक, देवानीक के हीन, हीन के परिपात्र, परिपात्र के बलाहक, बलाहक के अर्क और अर्क के पुत्र रजनाभ हुए ॥ २॥ रजनाभ के खगण, खगण के विधृत, विधृत के हिरण्यनाभ, हिरण्यनाभ के पुष्प, पुष्प ध्रुव, के ध्रुव के स्यन्दन और स्यन्दन के पुत्र

अग्निवर्ण हुए ।।३।। अग्निवर्ण के पुत्र शीघ्र हुए, वे अत्यन्त विक्रम वाले ही मेरे पिता थे। मै उन्ही शीघ्र का पुत्र मरु हूँ। कुछ लोग मुझे बुध और कुछ सुमित्र कहते है ।।४।। अब तक मैं कलाप ग्राम मे निवास करता हुआ तपस्या मे रत था। सत्यवती सूनु व्यास जी के मुख मे मुझे आपके अवतार का प्रसग ज्ञात हुआ और तब मै कलियुग की एक लाख वर्ष तक प्रतीक्षा करने पश्चात् आपके समीप उपस्थित हुआ हूँ। क्योंकि आप परमात्मा का सामीप्य प्राप्त होने से करोडो जन्मो के पापो का नाश हो जाता है तथा धर्म-यश की वृद्धि और सभी कामनाओ की पूर्ति होती है ।।५-६।।

ज्ञातस्तवान्वयस्त्वच सूर्यवशसमुद्भवः।
द्वितीय कोऽपर श्रीमान्महापुरुषलक्षण ।७।
इति कल्किवच, श्रुत्वा देवापिर्मधुराक्षराम् ।
वाणी विनयसम्पन्न. प्रवक्तुमुपचक्रमे ।८।
प्रलयान्ते नाभिपद्मात्तवाभूच्चतुरानन ।
तदीयतनयादत्रेश्चन्द्रस्तस्मात्ततो बुध. ।९।
तस्मात्पुरूरवा जज्ञे ययातिर्नाहुषस्तत. .
देवयान्या ययातिस्तु यदु तुर्वसुमेव च ।१०।
शर्मिष्ठाहा द्रुह्युञ्चानु पूरुञ्च सतते ।
जनयामास भूतादिर्भूतानाव सिसृक्षया ।११।
पूरोर्जन्मेजयस्तस्मात्प्रचिन्वानभवतत ।
प्रवीरस्तन्मनस्युर्वै तस्माच्चाभयदोऽभवत् ।१२।
उरुक्षयाच्च त्र्यरुणिस्ततोऽभूत्पुष्करारुणिः ।
बृहत्क्षेत्रादभूद्धस्ती यन्नाम्ना हस्तिनापुरम् ।१३।

कल्कि बोले—तुम्हारी वशावली सुनकर मैं यह जान गया कि तुम सूर्यवश मे उत्पन्न हुए हो। परन्तु तुम्हारे साथ यह महापुरुषो के लक्षणो से सम्पन्न एव श्रीमान् पुरुष दूसरे कौन हैं? ।।७।। यह सुन कर देवापि ने विनय पूर्वक मधुर वाणी से निवेदन किया। वे बोले—

हे प्रभो ! प्रलय का अन्त होने पर आपके नाभिकमल से ब्रह्माजी की उत्पत्ति हुई थी । उन ब्रह्माजी के पुत्र अत्रि हुए । अत्रि के चन्द्रमा, चन्द्रमा के बुध, बुध के पुरूरवा, पुरूरवा के नहुष और नहुष के पुत्र ययाति हुए । उन ययाति ने अपनी पत्नी देवयानी के गर्भ से यदु और तुर्वस नामक दो पुत्रो को जन्म दिया ॥९-१०॥ हे सत्पते ! उन्ही ययाति ने शर्मिष्ठा नाम की पत्नी से द्रुह्यु अनु और पुरु नामक तीन पुत्र उत्पन्न किये । जैसे सृष्टिकाल मे भूतादि के द्वारा पचभूतो की उत्पत्ति होती है, वैसे ही ययाति से इन पाँच पुत्रो की उत्पत्ति हुई ॥११॥ पुरु का पुत्र जन्मेजय हुआ, जन्मेजय के प्रचिन्वान्, प्रचिन्वान् के प्रवीर, प्रवीर के मनस्यु, मनस्यु के अभयदा अभयदा के उरुक्षय उनके त्र्यरुणि, त्र्यरुणि के पुष्करारुणि, पुष्करारुणि के बृहत्क्षेत्र और बृहत्क्षेत्र, के पुत्र हस्ती हुए । इन हस्ती नामक राजा के नाम पर ही हस्तिनापुर नामक नगर की स्थापना हुई ॥१२-१३॥

अजमीढोऽहिमीढश्च पुरमीढस्तु तत्सुता, ।
कजमीढादभूदृक्षस्तस्मात्सवरणात्कुरु ।१४।
कुरो. परिक्षित्सुधनुर्जन्हुर्निषध एव च ।
सुहोत्रोऽभूत्सुधनुषश्च्यवनाच्च तत कृती ।१५।
ततो बृहद्रथस्तस्मात्कुशाग्राद्दषभोऽभवत् ।
तत सत्यजित: पुत्र पुष्पवान्नहुषस्तत ।१४।
बृहद्रथान्यभार्य्यायां जरासन्ध परन्तप ।
सहदेवस्ततस्मान्सोमापिर्यच्छ्रुतश्रवा ।१७।
सुरथाद्विदूरथस्तस्मात्सार्वभौमोऽभवत्तत ।
जयसेनाद्रथानीकोऽभूद्युतायुश्च कोपनः ।१८।

हस्ती के तीन पुत्र हुए । उनके नाम अजमीढ, अहिमीढ और पुरुमीढ हुए । अजमीढ़ के पुत्र ऋक्ष, ऋक्ष के सवरण और सवरण के पुत्र कुरु हुए ।१४। कुरु के पुत्र परीक्षित, परीक्षित के सुधनु, जन्हु और निषध—यह तीन पुत्र हुए । सुधनु के पुत्र सुहोत्र और सुहोत्र के पुत्र

च्यवन हुए ।१५। च्यवन के बृहद्रथ बृहद्रथ के कुशाग्र, कुशाग्र के ऋषभ, ऋषभ के सत्यजीत, सत्यजीत के पुष्पवान तथा पुष्पवान् के पुत्र नहुष हुए ।१६। बृहद्रथ की द्वितीय पत्नी के गर्भ से शत्रु पीडक जरासन्ध हुए। जरासन्ध के सहदेव, सहदेव के सोमापि और सोमापि के पुत्र श्रुतश्रवा हुए ।१७। श्रुतश्रवा के पुत्र सुरथ हुए। सुरथ के विदूरथ, विदूरथ के सार्वभौम, सार्वभौम के जयसेन, जयसेन के रथानीक और रथानीक के पुत्र क्रोधी स्वभाव के युतायु हुए ।१८।

तस्माद्देवातिथिस्तस्मादृक्षस्तस्माद्दिलीपकः ।
तस्मात्प्रतीपकस्तस्य देवापिरहमीश्वर ! ।१९।
राज्य शान्तनवे दत्वा तपस्येकधिया चिरम् ।
कलापग्राममासाद्य त्वा दिदृक्षुरिहागत ।२०।
मरुणाऽनेन मुनिभिरेभिः प्राप्य पदाम्बुजम् ।
तव कालकरालास्याद्यास्याम्यात्मवता पदम् ।२१।
तयोरेव वच श्रुत्वा कल्कि; कमललोचनः ।
प्रहस्य मरुदेवापी समाश्वास्य समब्रवीत् ।२२।
युवा परमधर्म्मज्ञौ राजानौ विदितावुभौ ।
मदादेशकरौ भूत्वा निजराज्यं भरिष्यथ. ।२३।

युतायु के पुत्र देवातिथि हुए। देवातिथि के ऋक्ष, ऋक्ष के दिलीप और दिलीप के पुत्र प्रतीपक हुए। हे प्रभो! मैं उन्ही प्रतीपक का पुत्र देवापि हूँ ।१९। मैंने शान्तनु को अपने राज्य पर आसीन किया और स्वय कलाप ग्राम मे रह कर एकचित्त हो तपस्या करता था। अब आपके दर्शन की कामना से ही यहाँ उपस्थित हुआ हूँ ।२०। मैंने मरु और मुनिवरो के सहित यहाँ आकर आपके चरणारबिन्द को प्राप्त किया है। इसके फल स्वरूप मैं काल के कराल गाल मे गिरने से बच गया, आत्म तत्वज्ञो का पद हमे मिल जायगा ।२१। मरु और देवापि की बातो को सुन कर पद्माक्ष कल्किजी अत्यन्त प्रसन्न हुए और उन्होने आश्वासन भरे शब्दो मे उनसे कहा। कल्कि बोले—मैं जान गया कि

आप दोनो परम धर्मज्ञ राजा हैं। इस समय आप मेरे आदेश को मान कर राज्य ग्रहण कर उसका परिपालन करो ।२२-२३।

मरो त्वामभिषेक्ष्यामि निजयोध्यापुरेऽधुना ।
हत्वा म्लेच्छानधर्मिष्ठान्प्रजाभूनविहिंसकान् ।२४।
देवापे तत्र राज्ये त्वा हस्तिनापुरपत्तने ।
अभिषेक्ष्यामि राजये हत्वा पुक्कसकान्रणे ।२५।
मथुरायामहं स्थित्वा हरिष्यामि तु वा भयम् ।
शय्याकर्णानुष्ट्रमुखानेकजङ्घान्विनोदरान् ।२६।
हत्वा कृत युग कृत्वा पालयिष्याम्यह प्रजा. ।
तपोवेश व्रत त्यक्त्वा समारुह्य रथोत्तमम् ।२७।
युवा शस्त्रास्त्रकुशलौ सेनागणपरिच्छदौ ।
भूत्वा महारथौ लोके मया सह चरिष्यथः ।२८।

हे मरो ! अब मैं प्रजाओ का पीडन करने वाले, जीव-हिंसक अधर्मी म्लेच्छो का संहार करके आपको अपनी राजधानी अयोध्या मे अभिषिक्त करूँगा ।२४। हे देवापे ! हे राजर्षे ! युद्ध क्षेत्र मे पुक्कसो को मार कर मैं आपकी राजधानी हस्तिनापुर के राज्य पर आपको अभिषिक्त करूँगा ।२५। मैं मथुरा नगरी मे निवास करता हुआ तुम्हारे भय को नष्ट करूँगा तथा शय्याकरण, उष्ट्रमुख और एकजघ आदि को मार कर सत्युग की स्थापना और प्रजा की रक्षा करूँगा। तुम अभी इस तपस्वी वेश का त्यागन करो और श्रेष्ठ रथ पर आरोहण करो ।२६-२७। तुम सभी शस्त्रास्त्र विद्या मे पारगत एव महारथी हो, अत. हमारे साथ ही विचरण करो ।२८।

विशाखयूपभूपालस्तनया भिनयान्विताम् ।
विवाहे रुचिरापाङ्गी सुन्दपी त्वा प्रदास्यति ।२९।
साधो भूपाल लोकाना स्वस्तये कुरु मे वचः ।
रुचिराश्वसुता शान्ता देवापे त्वं समुद्वह ।३०।
इत्याश्वासकथा कल्के. श्रुत्वा तौ मुनिभि सह ।
विस्मयाविष्टहृदयौ मेनाते हरिमीश्वरम् ।३१।
इति ब्रुवत्यभयदे आकाशात्सूर्यसन्निभौ ।

रथौ नानमणिव्रातघटितौ कामगौ पुर. ।
समायातौ ज्वलद्दिव्यशस्त्रास्त्रै परिवारितौ ।३२।
ददृशुस्ते सदो मध्ये विश्वकर्म्मविनिर्मितौ ।
भूपा मुनिगणा सभ्या सहर्षा किमितीरिता ।३३।

हे मरो ! विशाखयूप नरेश अपनी परम शीलवती तथा रुचिरागी कन्या को तुम्हे विवाह देगा। अत तुम ससार का कल्याण करने के उद्देश्य से मेरे वचनो का पालन करो। हे देवापे ! तुम भी रुचिराश्व की शान्त नाम्नी सुपुत्री से विवाह कर लो ॥३०॥ कल्किजी के यह आश्वासन युक्त वचन सुन कर मुनियो के सहित देवापि अत्यन्त विस्मित हुए और फिर सन्देह छोड कर यह विश्वास करने लगे कि कल्कि ही भगवान् विष्णु एव साक्षात् ईश्वर हैं ॥३१॥ कल्किजी ने जैसे ही यह अभयप्रद वचन कहे वैसे ही आकाश मार्ग से स्वच्छा पूर्वक चलने वाले अनेक रत्नादि से निर्मित दो रथ अवतीर्ण हुए। सूर्य के समान तेजोमय उन रथो मे उज्ज्वल दिव्य शस्त्रास्त्र भरे हुए थे ॥३२॥ उस समय उपस्थित सभी मुनिगण और राजागण विश्वकर्मा द्वारा निर्मित रथो को उतरे हुए देख कर 'यह क्या' —'यह क्या' कहते हुए विस्मय एव हर्ष प्रकट करने लगे ॥३३॥

युवामादित्यसोमेन्द्रयमवैश्रवणाङ्गजौ ।
राजानौ लोकरक्षार्थमाविर्भूतौ विदन्त्यमी ।३४।
कालेनाच्छादिताकारौ मय सङ्गादिहोदितौ ।
युशा रथावारुहतां शक्रदत्त ममाज्ञया ।३५।
एव वदति विश्वेशे पद्मनाथे सनातने ।
देवा ववर्षु कुसुमैस्तुष्टुवुर्मुनयोऽग्रतः ।३६।
गङ्गावारिपरिक्लिन्नशिरोभूतिपरागवान् ।
शर्गे पर्व्वतजासङ्गशिववत्पवनो ववौ ।३७।
तत्रायात: प्रमुदिततनुस्तप्तचामीकराभौ
धर्म्मावास: सुरुचिरजटाचीरभृद्दण्डहस्त:

लोकातीतो निजतनुमरुन्नाशिताऽधर्म्मसंघ-
स्तेजोराशि सनकसदृशो मस्करी पुष्कराक्ष· ।३८।

तभी कल्किजी ने कहा—यह सभी को विदित है कि तुम दोनो राजवश मे विश्व-रक्षा और पृथिवी के पालनार्थ उत्पन्न हुए हो। तुम्हारी उत्पत्ति सूर्य, चन्द्र, यम और कुबेर के अ श से हुई है ।।३४।। अब तक तुम अपने रूप को छिपाये रहे हो। परन्तु अब, जब यहाँ मेरे पास आये हो तो मेरी आज्ञा से इन्द्र द्वारा भेजे गये इन रथो पर आरूढ हो जाओ ।।३५।। पद्मापति कल्किजी के द्वारा उक्त वचन कहे जाने पर आकाश से देवताओ ने पुष्पवृष्टि और मुनियो ने स्तुति की ।।३६।। मन्द वायु प्रवाहित होने लगा। शिवजी के जटा जाल से उन्मुक्त गगा-जल के मिलन से विभूति भीग गई। मन्द पवन ने उस विभूति के कण रूपी परागो को उडा कर पार्वती के अ गो मे लगाते हुए कल्याण गुण की प्राप्ति की ।।३७।। तभी सनक मुनि के समान अत्यन्त तेजस्वी, धर्म भवन रूप सुरुचिर जटाओ को धारण किये और हाथ मे दण्ड लिये एक ब्रह्मचारी वहाँ आये। उनकी देह कान्ति तप्त स्वर्ण के समान चमचमा रही थी। मनोहर वस्त्रधारी उन कमललोचन दिव्य महापुरुष के मुख पर अक्षय भाव परिलक्षित हो रहा था। उनके तेजोमय शरीर का स्पर्श होते ही ससार के सम्पूर्ण पापो का क्षय हो रहा था ।।३८।।

—❀—

तृतीयांश—

पंचम अध्याय

अथ कल्कि समालोक्य सदसाम्पतिभिः सह ।
समुत्थाय ववन्दे त पाद्यार्घ्याचमनादिभि. ।१।
वृद्ध सवेश्य त भिक्षु सर्वाश्रमनमस्कृतम् ।
पप्रच्छ को भवानत्र मम भाग्यादिहागतः ।२।
प्रायशो मानवा लोके लोकाना पारणेच्छया ।
चरन्ति सर्वसुहृद. पूर्णा विगतकल्मषा. ।३।
अह कृतयुग श्रीश तवादेशकर परम् ।
तवाविर्भावविभवमीक्षणार्थमिहागतम् ।४
निरुपाधिर्भवान्काल. सोपाधिस्त्वमुपागत. ।
क्षणदण्डलवाद्यङ्गैर्मायया रचित स्वया ।५।
पक्षाहोरात्रमासर्तु सवत्सरयुगादय ।
तवेक्षया चरन्त्येते मनवश्च चतुर्दश :६।

शुक बोले—इस ब्रह्मचारी को देखते ही भगवान् कल्कि ने अपने सभासदो के सहित उठ कर पाद्य, अर्घ्य और आचमन आदि से उनका पूजन किया ।१। सभी आश्रमो के द्वारा नमस्कार योग्य उन भिक्षु ब्रह्मचारी को आदर पूर्वक बैठा कर कल्किजी ने प्रश्न किया—आप कौन हैं ? हमारे सौभाग्य से ही आपका यहाँ आगमन हुआ है ।२। पापों से परे रहने वाले जो सत्पुरुष सब के सुहृद है, वे लोक-कल्याणार्थ ही पृथिवी पर विचरण किये करते हैं ।३। भिक्षु ने कहा—हे श्रीपते ! मैं आपका आज्ञाकारी सत्युग हूँ । आपके अवतार का प्रत्यक्ष प्रभाव देखने के निमित्त ही यहाँ उपस्थित हुआ हूँ ।४। आप निरुपाधि एव

साक्षात् काल स्वरूप है। परन्तु क्षण, दण्ड और लवादि अंगो के द्वारा इस समय उपाधि सहित हो गए है। यह सम्पूर्ण विश्व आपकी ही माया से प्रकट हुआ है।५। आपकी ही सत्ता का अनुभव करते हुए यह पक्ष, दिवस, रात्रि, मास, ऋतु, संवत्सर, युगादि काल एवं चौदहो मनु-यह सभी नियमित रूप से विचरण करते है।६।

स्वायम्भुवस्तु प्रथमस्ततः स्वारोचिषो मनुः।
तृतीय उत्तमस्ताच्चतुर्थस्तामसः स्मृतः।७।
पञ्चमो रैवतः षष्टश्चाक्षुषः परिकीर्त्तितः।
वैवस्वतः सप्तमो वै ततः सावर्णिरष्टमः।८।
नवमो दक्षसावर्णिर्ब्रह्मसावर्णिकस्ततः।
दशमो धर्म्मसावर्णिरेकादशः स उच्यते।९।
रुद्रसावर्णिकस्तत्र मनुर्वै द्वादशः स्मृतः।
त्रयोदशमनुर्वेदसावर्णिर्लोकविश्रुतः।१०।
चतुर्दशेन्द्रसावर्णिरेते तव विभूतयः।
यान्त्यायान्ति प्रकाशन्ते नामरूपादिभेदतः ११।
द्वादशाब्दसहस्रेण देवानाञ्च चतुर्युगम्।
चत्वारि त्रीणि द्वे चैकं सहस्रगणितं मतम्।१२।
तावच्छतानि चत्वारि त्रीणि द्वे चैकमेव हि।
सन्ध्याक्रमेण तेषान्तु सन्ध्यांशोऽपि तथाविधः।१३।

पहले मनु स्वायंभुव, दूसरे स्वारोचिष, तीसरे उत्तम, चौथे तामस, पाँचवे रैवत छठवे चाक्षुष, सातवे वैवस्वत, आठवे सावर्णिक, नवे दक्षसावर्णि, दसवें ब्रह्मसावर्णि, ग्यारहवे धर्म सावर्णि, बारहवे रुद्र सावर्णि, तेरहवें वेद सावर्णि और चौदहवें इन्द्र सावर्णि-यह चौदहो मनु आपकी ही विभूति रूप है। यह सब अपने-अपने नाम रूपादि के भेद से चलते हुए प्रकाशित होते हैं।७-११। बारह हजार दिव्य वर्षों की एक चतुर्युगी होती है, जिसके अनुसार चार हजार दिव्य वर्षो का सत्युग, तीन हजार दिव्य वर्षों का त्रेता, दो हजार दिव्य वर्षो का द्वापर

और एक हजार दिव्य वर्षो का कलियुग होता है ।१३। इन चारो युगो का सध्याक्रम (सधिकाल) क्रमश चार सौ, तीन सौ, दो सौ, और एक सौ वर्ष का होता है । इन चारो युगो की शेष सध्या का क्रम भी इसी प्रकार समझना चाहिये ।१३।

एकसप्ततिक तत्र युग भुड्क्ते मनुभु वि ।
मनूनामपि सर्वेषामेव परिणतिर्भवेत् ।
दिवा प्रजापतेस्तत्तु निशा सा परिकीर्त्तिता ।१४
अहोरात्रश्च पक्षस्ते माससवत्सरर्त्तव. ।
सदुगाधिकृत कालो ब्रह्मणा जन्ममृत्युकृत् ।१५।
शतसवत्सरे ब्रह्मा लय प्राप्नोति हि त्वयि ।
लयान्ते त्वन्नाभिमध्यादुत्थित सृजति प्रभु. ।१६।
तत्र कृतयुगान्तेऽह काल सद्धम्मपालकम् ।
कृतकृत्या. प्रजा यत्र तन्नाम्ना मा कृत विदु ।१७।
इति तद्वच आश्रुत्व कल्किर्निजजनावृत ।
प्रहर्षमतुल लब्ध्वा श्रुत्वा तद्वचनामृतम् ।१८।
अवहित्थामुपालक्ष्य युगस्याह जनान्हितान् ।
योद्धुकाम कले पुर्य्या हृष्टो विशसने प्रभु. ।१९,
गजरथतुरगान्नराश्च योधान्कनकविचित्रविभूषणा-
चिताङ्गान् । धृतविविधवरास्त्रशस्त्रपूगान्युधि निपु-
णान्गणयध्वमानयध्वम् ।२०।

प्रत्येक मनु इकहत्तर चतुर्युगी तक पृथिवी को भोगते है । इसी प्रकार सब मनु बदलते रहते हैं । चौदहवे मनु जितने समय तक पृथिवी का भोग करते है, उतना समय ब्रह्मा का एक दिवस होता है । इतने ही परिमाण की ब्रह्मा की एक रात्रि होती ।१४। इसी प्रकार दिवस-रात्रि, पक्ष, मास, सवत्सर और ऋतु आदि की उपाधि से ब्रह्माजी की जन्म-मृत्यु आदि का विधान होता है ।१५। ब्रह्मा अपनी सौ वर्ष की आयु पूर्ण होने पर वह स्वय मे लय हो जाते है। फिर

जब प्रलय काल बीत जाता है तब आपके नाभि कमल से उनका पुनः उद्भव होता है।१६। मैं उक्त काल का अंश रूप ही कृतयुग हूँ। मेरे द्वारा श्रेष्ठ धर्म पाला जाता है। मेरे द्वारा सम्पूर्ण प्रजा धर्म का अनुष्ठान करते हुए धन्य हो जाती है इसी लिए ज्ञानीजन मुझे कृतयुग कहते है।१७। सत्ययुग के इस प्रकार के वचनो को सुन कर अपने जनो के सहित कल्किजी परम हर्षित हुए।१८। कलियुग के नाश मे समर्थ कल्किजी ने सत्ययुग को आया देख कर कलियुग के शासन मे स्थित विशसन नामक नगरी मे युद्ध करने की इच्छा करते हुए अपने अनुयायियो से बोले।१९। हाथी पर आरूढ होकर युद्ध करने वाले, अश्व और रथ पर चढ कर युद्ध करने वाले तथा पदाति सैनिक जो देह पर अद्भुत स्वर्णाभूषण और शस्त्रास्त्रो के धारण करने वाले हैं, ऐसे युद्ध-कुशल वीरो की गणना करो।२०।



षष्ठ अध्याय

इति तौ मरुदेवापी श्रुत्वा कल्केर्वच पुन ।
कृतोद्वाहौ रथारूढौः समायातौ महाभुजौ ।१।
नानायुधधरै। सैन्यैरावृतौ शूरमानिनौ ।
बद्धगोधाङगुलित्राणौ दशितौ बद्धहस्तकौ ।२।
कार्ष्णायसशिरस्त्राणौ धनुर्द्धरधुरन्धरौ ।
अक्षौहिणीभि. षडभिस्तु कम्पयन्तौ भुव भरै. ।३।
विशाखयूपभूपस्तु गजलक्षैः समावृतः ।
अश्वै सहस्रनियुतै रथै सप्तसहस्रकै ।४।
पदातिभिर्द्विलक्षैश्च सन्नद्धैर्धृतकामुकै ।
वातोद्धतोत्तरोष्णोषै सर्वत परिवारित ।५ः
रुधिराश्वसहस्राणा पञ्चाशद्भिर्महारथै ।
गजैर्दशशतैर्मत्तैर्नवलक्षैर्वृतो बभौ ।६।

सूतजी बोले—कल्किजी की आज्ञा से मरु और देवापि ने यिवाह कर लिया और वे दोनो महाबाहु दिव्य रथो पर आरूढ हुए वहाँ आ पहुचे ।१। अपने महाबली होने का अभिमान रखने वाले वे दोनो वीर अपने देह को सुरक्षित किये हुए और अ गुलियो मे त्राण धारण किये हुए थे । अस्त्रशस्त्रो से भले प्रकार सुसज्जित उन वीरो के साथ अगणित सेना थी ।२। वे अपने शिरो पर कार्ष्णर्य वर्ण का शिरस्त्राण धारण किये थे तथा सर्व श्रेष्ठ धनुप बाणों से सज्जित अपनी छः अक्षौ-

हिणी सेना से पृथिवी को कम्पित कर रहे थे ।३। विशाखयूप-नरेश भी अपनी एक लाख हाथी, एक करोड घोडो और सात हजार रथो मे सम्पन्न सेना के साथ थे ।४। उनके साथ दो लाख पैदल सैनिक धनुष बाणो से सुसज्जित थे । वायु के झोको से उनके सफे और दुकूल हिल रहे थे ।५। इनके अतिरिक्त पचास हजार लाल वर्ण के अश्व, दस हजार मदमत्त गज एव अनेको महारथी तथा नौ लाख पदाति थे ।६।

अक्षौहिणीभिर्दशभि कल्कि परपुरञ्जय ।
समावृतस्तथा देवैरेवमिन्द्रो दिवि स्वराट् ।७।
भ्रातृपुत्रसुहृद्भिश्च मुदित सैनिकैर्वृत. ।
ययौ दिग्विजयाकाङ्क्षा जगतामीश्वर प्रभु: ।८।
काले तस्मिन्द्विजो भूत्वा धर्म्म: परिजनै: सह ।
समाजगाम कलिना बलिनापि निराकृत. । ९।
ऋत प्रसादभय सुख मुदमुथ स्वयम् ।
योभमर्थो ततोऽदर्प स्मृति क्षेम प्रतिश्रयम् ।१०।
नरनारायणौ चोभौ हरेरशौ तपाव्रतौ ।
धर्म्मस्त्वेतान्समादाय पुत्रान्स्त्रीश्चागतस्त्वरन् ।११।
श्रद्धा मैत्री दया शान्तिस्तुष्टि: पुष्टि. क्रियोन्नति:
बुद्धिर्मेधा तितिक्षा च ह्रीमूर्तिर्धर्म्मपालका। ।१२।
एतास्तेन सहायता निजबन्धुगणै; सह ।
कल्किमालोकित तत्र निजकार्य्य निवेदितुम् ।१३।

शत्रु पुरो के विजेता कल्किजी स्वर्ग मे सुशोभित सुरपति इन्द्र के समान दस अक्षौहिणी सेना के साथ अत्यन्त शोभा को प्राप्त हुए ।७। इस प्रकार भाई, पुत्र, सुहृद और सैन्य-समूह से सम्पन्न होकर जगदीश्वर कल्किजी ने दिग्विजय की इच्छा से प्रस्थान किया ।८। तभी कलियुग के द्वारा निग्रह किया हुआ धर्म ब्राह्मण वेश मे वहा उपस्थित हुआ ।९। ऋत, प्रसाद, अभय, सुख प्रसन्नता, योग, अर्थ, अदर्प, स्मृति, क्षेम और प्रतिश्रय नामक उसके सेवक साथ थे ।१०। भगवान् विष्णु

के अंश रूप तपोनिष्ठ नर-नारायण को तथा अपने स्त्री पुत्रादि को साथ लेकर धर्म शीघ्रता पूर्वक वहाँ आ गया ।११। श्रद्धा, मैत्री, दया, शान्ति, तुष्टि, पुष्टि, क्रिया, उन्नति, बुद्धि, मेधा, तितिक्षा, ह्री आदि धर्म की रक्षा मे तत्पर यह सभी साकार रूप मे अपने बान्धवो से युक्त होकर कल्किजी के दर्शनार्थ और स्वकार्य निवेदनार्थ वहा उपस्थित हुए ।१२–१३।

कल्किर्द्विज समासाद्य पूजयित्वा यथाविधि ।
प्रोवाच विनयापन्न कस्त्व कस्मादिहागत ।१४।
स्त्रीभि पुत्रैश्च सहित क्षीणपुण्य इव ग्रह. ।
कस्य वा विषयाद्राज्ञस्तत्त्व वद तावत ।१५।
पुत्रा स्त्रियश्च ते दीना हीनस्वबलपौरुषा. ।
वैष्णवा साधवो यद्वत्पाखण्डैश्च तिरस्कृता ।१६।
कल्केरिति वच श्रुत्वा धर्म्मः शर्म्म निज स्मरन् ।
प्रोवाच कमलानाथमनाथस्त्वतिकातर ।१७।
पुत्रैः स्त्रीभिर्निजजनै कृताञ्जलिपुटैर्हरिम् ।
स्तुत्वा नत्वा पूजयित्वा मुदित त दयापरम् ।१८।
शृणु कल्के ममाख्यान धर्मोऽह ब्रह्मरूपिणा ।
तव वक्ष स्थलाज्जात' कामद सर्वदेहिनाम् ।१९।

भगवान् कल्कि ने ब्राह्मण को देखते ही विनय पूर्वक एवं विधिवत् उसका पूजन किया और बोले–आप कौन हैं ? कहाँ से आगमन हुआ ? ।१४। क्षीण पुण्य मनुष्य के समान आप अपने स्त्री पुत्रादि के सहित किस राज्य से यहा आये हैं, यह सब मुझे यथार्थ रूप मे बताइये ।१५। जैसे वैष्णव साधु पाखण्ड के पराजित हो जाते हैं, वैसे ही आप बल-पौरुष से हीन होकर स्त्री पुत्रादि के सहित अत्यन्त कातर क्यो हो रहे हैं ? ।१६। अत्यन्त कातर और अनाथ रूप मे आया हुआ धर्म पद्मापति कल्किजी के वचन सुन कर अपने कल्याणार्थ निवेदन करने लगा ।१७। उसने अपने अनुगामियो के सहित हाथ जोडे और आनन्द-धाम

तथा दयावन्त प्रभु का पूजन कर प्रणाम और स्तुति करने लगा ।१।८ धर्म बोला—हे प्रभो ! मैं अपना वृत्तान्त निवेदन करता हूँ, इसे सुनिये ! मैं ब्रह्मस्वरूप धर्म आपके वक्ष स्थल से उत्पन्न हुआ हूँ । मेरे द्वारा सभी प्राणियो के कार्यो की सिद्धि होती है ।१९।

देवानामग्रणीर्हव्यकव्यानां कामधुग्विभु ।
तवाज्ञया चराम्येव साधुकीर्त्तिकृदन्वहम् ।२०।
सोऽहं कालेन वलिना बालनापि निराकृत. ।
शककाम्बोजशबरै. सर्वैरावासवासिना ।२१।
अधुना तेऽखिलाधार ! पादमूलमुपागता ।
यथा ससारकालाग्निसतप्ता साधवोऽर्दिता, ।२२।
इति वाग्भिरपूर्वाभिर्धर्म्मेण परितोषित ।
कल्कि' कल्कहर श्रीमानाह सहर्षयञ्छनैः ।२३।
धर्म्म कृतायुग पश्य मरु चण्डाशुवशजम् ।
मा जानासि यथा जात धातृप्रार्थितविग्रहम् ।२४।
कोटाकैबौद्धदलनमिति मत्वा सुखी भव ।
अवैष्णवानामन्येषा तवोपद्रवकारिणाम् ।
जिघासुर्यामि सेजाभिश्चर गा त्वं निर्भयः ।२५।

देवताओ मे प्रथम गणना योग्य मे यज्ञाश रूप हव्य-कव्य के अ श का अधिकारी हूँ । मैं यज्ञ फल प्रदान करके साधुजन का अभीष्ट पूर्ण करता हूँ । आपकी आज्ञा से मैं सदैव साधुओ का कार्य सिद्ध करता हुआ घूमता हूँ ।२०। इस समय शक, कम्बोज, शबर आदि कलियुग के शासन मे रहते हैं । कालक्रम के कारण मैं उस बलवान् कलि से ही हारा हुआ हूँ ।२१। हे अखिलाधार ! इस समय साधुजन विश्वरूपी कालाग्नि से सतप्त एव पीडित है । इसी लिए मैं आपके चरणो की शरण मे उपस्थित हुआ हूँ ।२२। धर्म के इन अपूर्व वचनो को सुन कर पाप हारी कल्कि जी सब के लिए प्रसन्न करने वाले वचन कहने लगे ।२३। उन्होने कहा—हे धर्म ! इधर देखो, सत्ययग का आगमन हो चुका

है। यह मरु नामक सूर्यवंशी नरेश हैं। तुम्हे यह विदित ही है कि मैंने ब्रह्माजी द्वारा प्रार्थित होकर ही यह देह धारण किया है ।२४। कीटक मे बौद्धो का दलन किया और जो तुम्हारे प्रति अधिक उपद्रव करने मे तत्पर रहते हैं तथा जो वैष्णव नही है, उन्हे नष्ट करने के लिए मैं सना सहित विचार कर रहा हूँ। अब तुम भी भय-रहित होकर पृथिवी पर गतिशील रहो ।२५।

का भीतिस्ते क्व मोहोऽस्ति यज्ञदानतपोव्रतै.।
सहितै सचर विभो ! मयि सत्ये व्युपस्थिते ।२६।
अहं यामि त्वयागच्छ स्वपुत्रैर्बान्धवै सह ।
विशा जयार्थं त्व शत्रुनिग्रहार्थं जगात्प्रिय ।२७।
इति कल्केर्वच श्रुत्वा धर्म. परमहर्षित ।
गन्तु कृतमतिस्तेन आधिपत्यममु स्मरन् ।२८।
सिद्धश्रमे निजनानवस्याप्य स्त्रियश्च ता: ।२९।
सन्नद्ध. साधुसत्कारवेंदब्रह्ममहारथः।
नानाशास्त्रान्वेषरणेषु सकल्पवरकामुंक. ।३०।
सप्तस्वराश्वो भूदेवसारथिर्वन्हिराश्रयः
क्रिय.भेदबलोपेत प्रवयौधर्म्मनायकः ।३१।

हे धर्म ! मैं स्वय उपस्थित हूँ, सत्युग भी आ ही चुका है, तब तुम भयभीत क्यो हो ? तुम व्यर्थ मोहित क्यो हो रहे हो ? अब तुम यज्ञ, दान और व्रत के सहित पृथिवी पर स्वच्छद विचरण करो ।२६। हे जगत्प्रिय ! तुम अपने पुत्र एव बाँधवो सहित शत्रुओ के निग्रह और दिग्विजय के उद्देश्य से प्रस्थान करो । मैं भी तुम्हारा साथ दूँगा ।२७। कल्किजी के यह वचन सुन कर धर्म अत्यन्त आनन्दित हुआ और अपने अधिपत्य का स्मरण करता हुआ, कल्किजी के साथ प्रस्थान मे तत्पर हुआ ।२८। उस समय उसने अपनी स्त्री को सिद्धाश्रम मे स्थित किया ।२९। धर्म का युद्ध-वेश साधु-सत्कार था। वेद और ब्रह्म महारथ के रूप मे साकार हुए तथा विविध शास्त्रो के अन्वेषण ने धनुष का रूप धारण किया ।३०। वेद के सात स्वर उसके रथ के अश्व हुए, ब्राह्मण

सारथि, अग्नि आसन रूप आश्रय हुआ। इस प्रकार धर्म रूप नायक क्रियानुष्ठान रूपी महाबल से समन्वित होकर चल दिया।३१।

यज्ञदानतप पात्रैर्यमैश्च नियमैर्वृत ।
खशकाम्बोजकान्सर्वाञ्छबरान्बर्वरापि ।३२।
जेतु कल्किर्ययौ यत्र कलेरावासमीप्सितम् ।
भूतवासबलोपेत सारमेयवराकुलम् ।।३३।।
गोमासपूतिगन्धाढ्य काकोलूकशिवावृतम् ।
स्त्रीणा दुर्द्यूतकलहविवादव्यसनाश्रयम् ।३४।
घोर जगद्भयकर कामिनीस्वामिन गृहम् ।
कलिः श्रुत्वोद्यमं कल्के पुत्रौत्रवृत क्रुधा ।३५।
पुराद्विशसनात्प्रायात्प्रेचकाक्षरथोपरि :
धर्म; कलि समालोक्य ऋषिभि. परिवारित: ।३६।
युयुधे तेन सहसा कल्किवाक्यप्रचोदित; ।
ऋतेन दम्भः सग्रामे प्रसादो लोभमाह्वयत् ।३७।

इस प्रकार यज्ञ, दान, तप, यम, नियम आदि से सम्पन्न हुए भगवान् कल्कि खश, कम्बोज, शबर तथा बर्बर आदि म्लेच्छो की विजय कामना से कलि के आवास वाले स्थान मे पहुचे। वहा भूतो का दृढ आवास होने से उस स्थान मे सब ओर श्वान भूँकते थे। ३२–३३। इस स्थान मे गो मास की दुर्गंध आ रही थी। कौओ और उल्लुओ से पूर्ण तथा द्यूत का आश्रय एव स्त्रियो के विवाद रूपी क्लेश इसमे भरा हुआ था।३४। ससार के लिए भयप्रद यह नगरी भय कर प्रतीत होती थी। यहाँ के पुरुष स्त्रियो की आज्ञा के अनुवर्ती थे। वहाँ का अधीश्वर कल्कि जी का आक्रमण सुन कर अपने पुत्र-पौत्रादि के सहित उल्लू की ध्वजा वाले रथ पर आरूढ होकर विशसनपुरी से बाहर आया। उस कलि को देख कर भगवान् कल्कि की आज्ञानुसार ऋषियो के सहित धर्म ने उसके साथ सग्राम प्रारम्भ किया। दभ से ऋत और लोभ से प्रसाद भिड़ गया।३५–३७।

समयादभय क्रोधो भयं सुखमुपाययौ ।
निरयो मुदमासाद्य युयुधे विविधायुधैः ।३८।
आधिर्योगेन च व्याधि क्षेमेण च बलीयसा ।
प्रश्रयेण तथा ग्लानिर्जरा स्मृतिमुपाह्वयत् ।३९।
एव वृत्तो महाघोरो युद्ध परमदारुणः ।
त द्रष्टुमागता देवा ब्रह्माद्या' खे विभूतिभि. ।४०।
मरु खशैश्च काम्बोजैर्युयुधे भीमविक्रमैः ।
देवापिः समरे चौनैर्बर्बरैस्तद्गणैरपि ।४१।
विशाखयूपभूपाल पुलिन्दै श्वपचै सह ।
युयुधे विविधै शस्त्रैरस्त्रैर्दिव्यैर्महाप्रभैः ।४२।
कल्कि कोकविकोकाभ्या वाहिनीभिर्वरायुधै ।
तौ तु कोकविकोकौ च ब्रह्मणो वरदर्पितौ ।४३।

क्रोध के साथ अभय और भय के साथ सुख का युद्ध होने लगा। निरय ने प्रीति के पास आकर उस पर शस्त्रास्त्रो से प्रहार किये ।३८। अ धि से योग का, व्याधि से क्षेम का, ग्लानि से प्रश्रय का और जरा से स्मृति का सग्राम होने लगा ।३९। इस प्रकार अत्यन्त घोर एवं दारुण सग्राम उपस्थित हो गया। ब्रह्मादि देवगण अपनी-अपनी विभूतियो के सहित नभमण्डल मे स्थित होकर युद्ध देखने लगे ।४०। भीषण पराक्रमी खश और कम्बोजो से मरु का युद्ध हुआ। देवापि ने चौन और बर्बरों की सेना से सग्राम किया ।४१। विशाखयूप नरेश पुलिन्द और श्वपचादि से महा पराक्रमी विविध अपने दिव्यास्त्रो के सहित भिडे हुए थे ।४२। कोक-विकोक के साथ स्वय भगवान् कल्कि श्रेष्ठ शस्त्रास्त्र लेकर सेना सहित युद्ध मे तत्पर हुए। यह कोक–विकोक ब्रह्मा जी से वर प्राप्त करने के कारण अत्यन्त अहकारी हो गए थे ।४३।

भ्रातरौ दानवश्रेष्ठौ मत्तौ युद्धविशारदौ ।
एकरूपौ महासत्वौ देवाना भयवर्द्धनौ ।४४।
पदातिकौ गदाहस्तौ वज्राङ्गौ जयिनौ दिशाम् ।

शुम्भैः परिवृतौ मृत्युजितावेकत्र योधनात् ।४५।
ताभ्यां स युयुधे कल्कि सेनागणसमन्वित :
शुभाना कल्किसैन्याना समरस्तुमुलोऽभवत् ।४६।
ह्रेषितैर्बृंहितैर्दन्तशब्दैष्टङ्कारनादितै ।
शूरोत्कृष्ठैर्बाहुवेगै. सशब्दस्तलताडनै ।४७।
सपूरिता दिश सर्वा लोका नो शर्म्म लेभिरे ।
देवाश्च भयसत्रस्ता दिवि व्यस्तपथा ययु ।४८।
पाशैर्दण्डै खड्गशक्त्यृष्टिशूलैर्गदाघातैर्बाणपातैश्च घोरै ।
युद्धे शूराश्छिन्नबाह्वङ्घ्रिमध्या पेतु सख्ये शतश कोटिशश्च

दैत्यो मे श्रेष्ठ यह दोनो भाई घोर युद्ध मे प्रवीण, अत्यन्त बली और देवताओ को भयभीत करने मे समर्थ थे। इन दोनो का रूप एक सा था ।४४। यह दोनो दिग्विजयी, वज्र जैसे कठोर शरीर वाले थे। दोनो मिल कर मृत्यु को भी युद्ध मे जीत लेने मे समर्थ थे। अपनी बलवती सेना के सहित यह दोनो गदा धारण कर पैदल ही युद्ध मे तत्पर हुए ।४५। इन कोक-विकोक से साथ कल्कि जी का घोर सग्राम हो रहा था उनकी सेना के प्रमुख वीर भयकर युद्ध कर रहे थे ।४६। अश्वो का हीसना, हाथियो की चिघाड तथा दातो का शब्द, धनुषो की टकार, वीरो के भुजाघात आदि से भयप्रद भीषण शब्द होने लगा ।४७। उस शब्द से दशो दिशाएँ गूँज उठी। कोई भी जीव भय-रहित नही था। देवता भी डर के कारण गगन मण्डल से उल्टे–सीधे मार्गों से भागने लगे ।४८। पाश, दण्ड, खड्ग, शक्ति, शूल, गदा तथा भयकर वाणो के आघात से करोडो शूरो के हाथ, पैर, कटि आदि विभिन्न अग कट-कट कर गिर रहे थे, जिनसे युद्ध भूमि आच्छादित होने लगी थी ।४९।

—❀—

सप्तम अध्याय

एव प्रवृत्ते सग्रामे धर्म परमकोपन ।
कृतेन सहितो घोर युयुधे कलिना सह. ।१।
कलिर्दमित्रबाणौघैधर्मस्यापि कृतस्य च ।
पराभूत पुरी प्रायात्त्यक्त्वागर्दभवाहनम् ।२।
बिच्छिन्नपेचकरथ स्रवद्रक्ताङ्गसञ्चय ।
छछुर्गन्ध करालास्य स्त्रीस्वामिकमगाद्गृहम् ।३।
दम्भ सम्भोगरहितनोद्धृतवाणगणाहत ।
व्याकुल स्वकुलागारो नि मार· प्राविशद्गृहम् ।४।
लोभ प्रसादाभिहतो गदया भिन्नमस्तक: ।
सारमेयरथ छिन्न त्यक्त्वागाद्रुधिर वमन् ।५।
अभयेन जित क्रोध कषायीकृतलोचन ।
गन्धाखुवाह विच्छिन्न त्यक्त्वा विशमन गत ।६।

सूत जी ने कहा—इस प्रकार भयकर युद्ध होता देख कर सत्युग सहित धर्म ने अत्यन्त क्रोधपूर्वक कलि से युद्ध प्रारम्भ किया ।१। तब धर्म और सत्युग की भीषण बाण वर्षा को न सह कर हारा हुआ कलि अपने वाहन गधे को वही छोड कर भागता हुआ अपनी पुरी मे घुस गया ।२। उल्लू की ध्वजा वाला उसका रथ चकनाचूर हो गया । उसकी देह से रक्त बहने लगा, जिससे छछूदर की गन्ध निकल रही थी । मुख पर भयानकता आ गई थी । इस अवस्था को प्राप्त हुआ कलि अपनी स्वामिनी नारी के भवन मे प्रविष्ट हुआ ।३। इस प्रकार बाण वर्षा से आहत एव व्याकुल हुआ कलि दम्भ सभोगादि से रहित होकर

अपने कुल के अ ग र रूप से सार-हीन होता हुआ अपने गृह मे जा पहुँचा ।४। उधर प्रसाद द्वारा पदाघात को प्राप्त हुए लोभ का शिर कट गया। कुत्तो से युक्त उसका रथ छिन्न भिन्न हो गया। तब वह उसे छोड कर रक्त वमन करता हुआ रण क्षेत्र से भाग खडा हुआ।५। अभय से युद्ध करता हुआ क्रोध भी हार गया। उसके छ नेत्रो मे लाली छाई थी। चूहो से युक्त दुर्गंध पूर्ण अपने छिन्न-भिन्न रथ को वही पडा छोड कर वह भी विशमनपुरी मे जा घुसा।६।

भय सुखतलाघातादुगतासु'र्यपतद्भुवि ।
निरयो मुदमुष्टिभ्या पीडितो यममाययौ ७।
आधिव्याध्यादय सर्वे त्यक्त्वा वाहमुपाद्रवन् ।
नानादेशान्भयोद्विग्न कृतवाणप्रपीडिता' ।८।
धर्म. कृतेन सहितो गत्वा विशसन कलेः ।
नगर बाणदहनैर्ददाह कलिना सह ।९।
कलिर्विप्लुष्टसर्वाङ्गो मृतदारो मृतप्रज. ।
जगामैको रुदन्दीनो वर्षान्तरमलक्षित. ।१०।
मरुस्तु शककाम्बोजाञ्जघ्नेदिव्यास्त्रतेजसा ।
देवापि' शबराश्चोलान्बर्बरास्तद्गणानपि ।११।
दिव्यास्त्रशस्त्रसम्पातैरर्दयामास वीर्यवान् ।
विशाखयूपभूपालः पुलिन्दान्पुक्कसानपि ।१२।

सुख के तलाघात से आहत हुआ भय प्राण त्याग कर धराशायी हुआ। प्रीति के मुष्टि प्रहार से पीडित हुआ निरय भी तुरन्त ही यमालय को चला गया।७। सत्युग के बाणो से आहत हुई आधि-व्याधि अपने वाहनो का परित्याग करके इधर-उधर भाग गई ।८। इसके पश्चात् सत्युग को साथ लेकर धर्म कलि की राजधानी विनशन में प्रविष्ट हुआ और उसने कलि के सहित सम्पूर्ण नगर को अपनी बाणाग्नि से जला दिया।९। कलि के सभी अ ग जल गये। उसकी सतति और पत्नी भी मरण को प्राप्त हुई और वह स्वय रोता हुआ अप्रकट रूप

से अन्य वर्ष मे पलायन कर गया।१०। अपने दिव्यास्त्रो के तेज से राजा मरु ने भी शक और कम्बोजो का सहार कर दिया तथा राजा देवापि ने चोल और बर्बरो को मृत्यु के घाट उतार दिया ।११। महाबली विशाखयूप नरेश ने अपने दिव्य शस्त्रास्त्रो के द्वारा पुलिन्द और युक्कसो को नष्ट किया ।१२।

जघानविमलप्रज्ञ खड्गपातेन भूरिणा ।
नानास्त्रशस्त्रवर्षैस्ते योधा नेशुरनेकधा ।१३।
कल्कि कोकविकोकाभ्या गदापाणियु॑धा पति. ।
युयुधे विन्यासविज्ञो लोकाना जनय-भयम् ।१४।
वृकासुरस्य पुत्रौ तौ नप्तारौ शकु नेर्हरि॰ ।
तयो. कल्कि स युयुधे मधुकैटभयोर्यथा ।१५।
तयोर्गदा प्रहारेण चूर्णितागस्त तत्पते ।
कराच्युतापतद्भूमौ दृष्ट्वोचुरित्यहो जना ।१६।
तत॰ पुन क्रुधा विष्णुर्जगज्जिष्णुर्महाभुज ।
भल्लकेन शिरस्तस्य विकोकस्याच्छिनत्प्रभु ।१७।
मृतो विकोकः कोकस्य दर्शनादुत्थितो बली ।
तद्दृष्ट्वा विस्मिता देवा. कल्किश्च परवीरहा ।१८।

उन श्रेष्ठ बुद्धि वाले विशाखयूप-नरेश ने निरन्तर अपने खड्ग एव अनेकानेक शस्त्रास्त्रो के द्वारा शत्रुओ को विनष्ट किया। इस प्रकार पर-पक्ष के बहुत सारे वीर मृत्यु को प्राप्त हुए ।१३। गदा-कुशल कल्कि जी गदा लिये हुए ही कोक विकोक से सग्राम कर रहे थे, जिससे सब लोक भयभीत हो रहे थे ।१४।

वे दोनो भाई शकुनि के पौत्र और वृकासुर के पुत्र थे। पुराकाल में जैसे विष्णु का मधु कैटभ से युद्ध हुआ था, वैसे ही इन दोनो के साथ कल्कि जी घोर सग्राम कर रहे थे ।१५। तभी कोक-विकोक के गदाघात से कल्किजी का देह चूर्ण जैसा हो गया। उनके हाथ से गदा छूट गई। यह दृश्य सभी उपस्थित व्यक्ति आश्चर्य पूर्वक देख

रहे थे ।१६। फिर ससार विजेता महाबाहु कल्कि जी ने क्रोध मे भर कर भल्लास्त्र के द्वारा विकोक का शिर छेदन कर दिया ।१७। महाबली विकोक मृत्यु को प्राप्त हो गया था। परन्तु जैसे ही उसके भाई कोक ने उसे देखा वैसे ही वह पुनर्जीवित हो गया। यह देखा कर सभी देव-गण और स्वय कल्कि जी भी आश्चर्य करने लगे ।१८।

प्रतिकर्त्तुर्गदापाणे कोकस्याप्यच्छिनच्छिर. ।
मृत. कोको विकोकस्य दृष्टिपातात्समुत्थित ।१६।
पुनस्तौ मिलितौ तेन युयुधाते महाबलौ ।
कामरूपधरौ वीरौ कालमृत्यू इवापरौ ।२०।
खड्गचर्म्मधरौ कल्कि प्रहरन्तौ पुनः पुन ।
कल्कि· क्रुधा तयोस्तद्वद्बाणेन शिरसी हृते ।२१।
पुनर्लग्ने समालोक्य हरिश्चिन्तापरोऽभवत् ।
विसत्त्वत्वमथालोक्य तुरगस्तावताडयत् ।२२।
कालकल्पौ दुराधर्षौ तुरगेणार्दितौ भृशम् ।
कल्केस्त जघ्नतुर्बाणैरमर्षाताम्रलोचनौ ।२३।
तयोर्भुजान्तर सोऽश्व क्रुधा समदशद्भृशम् ।
तौ तु प्रभिन्नास्थिभुजौ विशस्ताङ्गदकार्मुकौ ·
पुच्छ जगृहतु सप्तेर्गोपुच्छ बालकाविव ।।२४।

फिर कल्कि जी ने विकोक को पुनर्जीवित करने वाले गदापाणि कोक का ही उच्छेद कर दिया। इस प्रकार कोक मर गया, परन्तु जैसे ही उसे विकोक ने देखा, वैसे ही वह भी पुनर्जीवित हो उठा ।१६। तब इच्छानुसार रूप धारण मे समर्थ महाबली कोक-विकोक दोनो मिल कर कल्किजी के साथ दूसरे काल के समान घोर युद्ध करने लगे ।२०। वह खड्ग और ढाल धारण कर बारम्बार कल्किजी पर आघात करने लगे। तब कल्किजी ने अत्यन्त क्रोधित होकर उन दोनो के ही अपने बाणो से मस्तक उडा दिये ।२१। परन्तु, जब दोनो के ही मस्तक अपने-अपने धड मे स्वय जुड गये, तब तो कल्कि जी को बडी चिन्ता हुई। फिर वे कोक-विकोक द्वारा अपने पर प्रहार होते देख कर स्वयं भी

उन पर घोर प्रहार करने लगे। २२। युद्ध मे दुर्धर्ष कोक-विकोक कल्कि जी के अश्वो के द्वारा किये गये आघात से अत्यन्त आहत होकर क्रोधित हो उठे और रक्त वर्ण नेत्र करके कल्कि जी पर भीषण बाण-वर्षा मे तत्पर हुए।२३। तब कल्कि जी के अश्व ने अत्यन्त क्रोध पूर्वक कोक-विकोक के भुजमूल छिन्न कर दिये, उनकी भुजाओ की हड्डियो का चूर्ण हो गया। धनुष भी बाहुओ के सहित कट कर गिर गये। तब जैसे कोई शिशु गौ की पूछ पकड लेता है, वैसे ही उन्होने अश्व की पूछ को पकड लिया।२४।

धृतपुच्छौ तु तौ ज्ञात्वा सप्ति. परमकोपन ।
पश्चात्पद्भ्या दृढ जघ्ने तयोर्वक्षसि वज्रवत् ।२५।
त्यक्तपुच्छौ मूर्च्छितौ तौ तत्क्षणात्पुनरुत्थितौ ।
पुरत कल्किमालोक्य बभाषाते स्फुटाक्षरौ ।२६।
ततो ब्रह्मा नमम्येत्य कृताञ्जलिपुट शनै ।
प्रवाच कल्कि नैवामू शस्त्रास्त्रैर्वधमर्हत: ।२७।
कराघातादेककाले उभयोर्निर्मितो वध: ।
उभयोर्दर्शनादेव नोभयोर्मरण क्वचित् ।
विदित्वेति कुरुष्वात्मन्युभपच्चानयोर्वधम् ।२८।
इति ब्रह्मवच श्रुत्वा त्यक्तशस्त्रास्त्रवाहन ।
तयो प्रहरतो. स्वैर कल्किर्दानवयो क्रुधा ।
मुष्टिभ्या वज्रकल्पाभ्या बभञ्ज शिरसी तयो ।२९।
तौ तत्र भग्नमस्तिष्कौ भग्नशृङ्गागाविव ।
पेततुर्दिवि देवाना भयदौ भुवि बाधकौ ।३०।

जैसे ही उन्होने अश्व की पूछ पकडी वैसे ही अश्व ने अत्यन्त क्रोधित होकर अपने पिछले पैरो के द्वारा कोक-विकोक के वक्षस्थल मे वज्र के समान प्रहार किये।२५। जिसमे वे दोनो राक्षस अश्व की पूँछ को छोड कर पृथिवी पर गिरते हुए मूर्च्छित हो गए। परन्तु, उन्हे तुरन्त ही चेत हो गया और वे कल्कि जी को सामने देख कर युद्ध के

निमित्त पुन, ललकारने लगे ।२६। तभी ब्रह्मा जी वहा आये और कल्किजी से हाथ जोड कर बोले कि हे प्रभो ! यह कोक-विकोक शस्त्रा-स्त्रो से मृत्यु को प्राप्त नही हो सकते ।२७। इन दोनो को एक समय मे ही थप्पड मार कर इनका वध कर दीजिये । क्योकि जब तक यह दोनो परस्पर एक दूसरे को देखेगे, तब तक इनकी मृत्यु सभव नही है । अत आप इसी प्रकार इनको मारिये ।२८। ब्रह्माजीके वचन सुन कर कल्किजीने शस्त्रास्त्र और वाहन का परित्याग कर दिया और दोनो दानवो के मध्य पहुँच कर दोनो हाथो से एक साथ उन दोनो के वज्र के समान मुष्टिका-प्रहार किया, जिससे उनका मस्तक चूर्ण हो गया ।२९। देवताओ के लिए भयप्रद और सब जीयो का अनिष्ट करने मे तत्पर वे दोनो दानव मस्तको के चूर्ण होने से टूट कर गिरते हुए पर्वत-शिखरो के समान धरती पर आ गिरे ।३०।

तद्दृष्ट्वा महदाश्चर्य्यं गन्धर्वाप्सरसा गणा ।
ननृतुर्जगुस्तुष्टुबुश्च मुनय सिद्धचारणाः ।
देवाश्च कुसुमासारैर्ववर्षु र्हर्षमानसाः ।३१।
दिवि दुन्दुभयो नेदु प्रसन्नाश्चाभवन्दिश. ।
तयोर्वधप्रमुदित: कविर्द्दशसहस्रकान् ।
साश्वान्महारथान्साक्षादहनद्दिव्यसायकै.
प्राज्ञः शतसहस्राणा योधाना रणमूर्छनि ।
क्षय निन्ये सुमन्त्रस्तु रथिना पञ्चविंशतिः ।३३।
एवमन्ये गार्गभर्ग्यविशालाद्या महारथान् ।
निजघ्नु: समरे क्रुद्धा निषादान्म्लेच्छवर्बरान् ।३४।
एव विजित्य तान्सर्व्वान्कल्किभू पगणैः सह ।
शय्याकर्णैश्च भल्लाटनगरज्जेतुमाययौ ।३५:
नानावाद्यै र्लोकसघैर्वरास्त्रैर्नानावस्त्रभू षणैभू षिताङ्गैः
नानावहैश्चामरैर्वीज्यमानैर्यातोयोद्धु कल्किरत्युग्रसेन ३६

यह देख कर अत्यन्त आश्चर्य मे भरे गंधर्व और अप्सराऐं

नृत्य-गान मे तत्पर हुए तथा देवता, मुनिगण, सिद्धगण और चारणादि प्रसन्न हृदय मे पुष्प बरसाने लगे।३१। कोक-विकोक का सहार हुआ देख कर कवि ने उत्साह पूर्वक अपने दैत्य शत्रु-पक्ष के दस हजार महारथियो को नष्ट कर दिया।३२। प्राज्ञ के द्वारा एक लाख वीर सैनिको और सुतन्त्रक के द्वारा पच्चीस रथी मृत्यु को प्राप्त हुए।३३। इसी प्रकार गर्ग्य, भर्ग्य और विशालादि ने भी निषाद, म्लेच्छ और बर्बरो का क्रोध पूर्वक सहार कर दिया।३४। इस प्रकार विजय को प्राप्त हुए कल्किजी अपनी विशाल सेना के सहित युद्ध के निमित्त आगे बढ़े। उस समय अनेक प्रकार के बाजे बजने लगे। श्रेष्ठ शस्त्रास्त्र धारी वीर उनके साथ-साथ चल रहे थे। अनेक प्रकार के वाहन उस सेना मे आ गये थे। सब ओर से कल्किजी पर चमर ढोरे जा रहे थे।३५-३६।



अष्टम अध्याय

सेनागणैः परिवृतः कल्किर्नारायणः प्रभुः ।
भल्लाटनगरं प्रायात्खड्ग धृक्सप्तिवाहनः ।१।
स भल्लाटेश्वरो योगी ज्ञात्वा विष्णुं जगत्पतिम् ।
निजसेनागणैः पूर्णो योद्धुकामो हरिं ययौ ।२।
स हर्षोत्पुलकः श्रीमान्दीर्घाङ्गः कृष्णभावनः ।
शशिध्वजो महातेजा गजायुतबलः सुधीः ।३।
तस्य पत्नी महादेवी विष्णुव्रतपरायणा ।
सुशान्ता स्वामिनं प्राह कल्किना योद्धुमुद्यतम् ।४।
नाथ कान्त जगन्नाथ सर्वान्तर्यामिनं प्रभुम् ।
कल्किं नारायणं साक्षात्कथं त्वं प्रहरिष्यसि ।५।
सुशान्ते परमो धर्म्मः प्रजापतिविनिर्मितः ।
युद्धे प्रहारः सर्वत्र गुरौ शिष्ये हरेरिव ।६।

सूत जी बोले—तदनन्तर अपने अश्व पर आरूढ हुए कल्कि जी खडग धारण किये हुए, सेना के सहित भल्लाट नगर मे पहुँचे।१। योगिराज भल्लाट नरेश ने कल्कि जी को साक्षात् जगदीश्वर विष्णु जाना और वह उनसे युद्ध करने के लिए सेना सहित नगर से बाहर चले।२। उस समय वह दीर्घांग, श्रीमान्, कृष्ण भक्त, महाबली एव महा तेजस्वी राजा शशि ध्वज हर्ष से पुलकित हो रहे थे।३। उन राजा की पत्नी विष्णु व्रत-परायणा महादेवी सुशान्ता थी। उसने जब अपने पति को कल्कि जी से युद्ध के लिए जाने को उद्यत देखा तब वह कहने लगी।४। हे नाथ! हे स्वामिन्! कल्कि जी तो साक्षात् जगन्नाथ विष्णु

और सर्वान्तिरयामी है। आप उन पर प्रहार कैसे कर सकेगे ? ।५। शशिध्वज बोले—हे सुशान्ते ! प्रजापति ब्रह्माजी ने जो धर्म निश्चित किया है, उसके अनुसार युद्धेच्छुक गुरु, शिष्य अथवा नारायण ही क्यो न हो, उन सब पर प्रहार करना चाहिए ।६।

जीवतो राजभोग स्यान्मृत स्वर्गे प्रमोदते ।
युद्धे जयो वा मृत्युर्वा क्षत्रियाणा सुखावह ।७।
देवत्व भूपतित्व वा विषयाविष्टकामिनाम् ।
उन्मदाना भवेदेव न हरे पादसेविनाम् ।८।
त्व सेवक: स चापीशस्त्व निष्काम स चाप्रभ ।
युवयोर्युद्धमिलन कथ मोहाद्भविष्यति ।९।
द्वन्द्वा तीते यदि द्वन्द्वमीश्वरे सेवके तथा ।
देहावेशाल्लीलयैव सा सेवा स्यात्तथा मम ।१०।
देहावेशादीश्वरस्य कमाद्या दैहिका गुण ।
मायाङ्ग यदि जायन्ते विषयाश्च न कि तथा ।११।
ब्रह्मतो ब्रह्मतेशस्य शरीरित्वे शरीरिता ।
सेवकस्याभेददृशस्त्वेव जन्मलयोदया: ।१२।

यदि युद्ध भूमि से सकुशल लौट आवे तो वह अखण्ड राज्य का भोगने वाला होता है और यदि मृत्यु हो जाय तो स्वग की प्राप्ति होती है। इस प्रकार क्षत्रियो के लिये विजय और मरण दोनो मे ही सुख की उपलब्धि है ।७। सुशान्ता ने कहा—हे नाथ ! कामी अथवा विषयासक्त पुरुषो के लिए ही युद्ध मे विजय अखण्ड राज्य के देने वाली और मृत्यु देवत्व प्रदान करने वाली होती है। परन्तु हरि-चरणो के सेवको को उससे क्या प्रयोजन है ? ।८। आप हरि-सेवक है। वह ईश्वर आप निष्काम को फल प्रदान नही करेगे। तब आप दोनो मे मोह पूर्वक युद्ध कैसे सभव है ? ।९। शशिध्वज बोले—परम पुरुष परमात्मा तो सुख दु:ख रूपी सब द्वन्दो से परे है। परन्तु उनके देह धारण कर लेने पर उन ईश्वर और सेवक मे युद्ध होने लगे तो उसे

सेवा-स्वरूप विलास लीला मात्र ही समझना चाहिये ।१०। ईश्वर के अवतार धारण करने पर कामादि माया अंश रूप दैहिक गुणो का समन्वित होना भी अनिवार्य है। जब कामादि विषयो का आरोपित होना देह-धर्म ही है, तो उनके शरीर मे भी वह क्यो नही व्याप्त होगे ? ।११। पूर्ण ब्रह्मभाव सम्पन्न ईश्वर ब्रह्म कहे जाते है और जब वह शरीर धारण कर लेते हैं तब उन्हे शरीरिता कहते है। सेवक की भेद दृष्टि के लय होने अर्थात् अभेद-ज्ञान की उपलब्धि होने पर उनका जन्म लय और उदय भी उसी प्रकार सम्भव है ।१२।

सेव्यसेवकता विष्णोर्माया सेवेति कीर्तिता ।
द्वैताद्वैतस्य चेष्टैषा त्रिवर्गजनिका सताम् ।१३।
अतोऽहं कल्किना योद्धुं यामि कान्ते स्वसेनया ।
त्वं तु पूजय कान्तेऽद्य कमलापतिमीश्वरम् ।१४।
कृतार्थोऽहं त्वया विष्णुसेवासमिलितात्मना ।
स्वामिन्निह परत्रापि वैष्णवी प्रथिता गति ।१५।
इति तस्या वल्गुवाग्भि. प्रणताया. शशिध्वज. ।
आत्मानं वैष्णवं मेने साश्रुनेत्रो हरिं स्मरन् ।१६।
तामालिङ्गय प्रमुदित शूरैर्बहुभिरावृत ।
वदन्नाम स्मरन्रूपं वैष्णवैर्योद्धुमं ययौ ।१७।
गत्वा तु कल्किसेनाया विद्राव्य महती चमूम् ।
शय्याकर्णगणैर्वीरै. सन्नद्धैरुद्यतायुधैः ।१८।

सेव्य-सेवक भाव ही सेवा है। यह कार्य विष्णु-माया का ही है। इस द्वैताद्वैत चेष्टा के द्वारा ही सत्कर्मी पुरुष त्रिवर्ग को प्राप्त कर लेते हैं ।१३। हे कान्ते ! यही कारण है कि मैं अपनी सेना के सहित कल्किजी से युद्ध करने के लिए प्रस्थान कर रहा हूँ। हे प्रिये ! इधर तुम कमलापति भगवान् विष्णु का पूजन करो ।१४। सुशान्ता ने कहा— हे नाथ ! आप विष्णु सेवा द्वारा उन्ही मे लीन हो गये, इसमे मैं भी धन्य हो गई हूँ। इहलोक और परलोक मे भगवान् विष्णु की सेवा के

अतिरिक्त अन्य कोई गति नही ।१५। सुशान्ता के यह विनम्र वचन सुन कर राजा के नेत्रो मे हर्षाश्रु छा गये और वे अपने को परम वैष्णव मानते हुए भगवान् विष्णु का स्मरण करने लगे ।१६। उन्होने अपनी प्रिय पत्नी को हृदय से लगा लिया और फिर अपने वीर वैष्णव सैनिको के सहित विष्णु नाम का स्मरण करते हुए रण भूमि के लिये चल दिये ।१७। उन्होने कल्कि-सेना मे प्रविष्ट होकर उनकी विशाल-सेना को द्रवित कर दिया । उस समय महाबली शय्या कर्णगण आयुधो से सुसज्जित हुए उनसे युद्ध मे तत्पर हुए ।१८।

शशिध्वजसुत: श्रीमान्सूर्यकेतुर्महाबल ।
मरुभूपेन युयुधे वैष्णवो धन्विनां वर: ।१६।
तस्यानुजो वृहत्केतु· कान्त: कोकिलनिस्वन: ।
देवापिना स युयुधे गदायुद्ध विशारद· ।२०।
विशाखयूपस्तुभूपस्तु शशिध्वजनृपेण च ।
रुधिराश्वो धनुर्धारी लघुहस्त प्रतापवान् ।
रजस्यनेन युयुधे भर्ग्य शान्तेन धन्विना ।२२।
शूलै प्रासैर्गदाघातैर्बाणशक्त्यष्टितोमरैं ।
भल्लै खड्गैर्भुशुण्डीभि. कुन्तै. समभवद्रण· ।२३।
पताकाभिर्ध्वजैश्छिन्नैस्तोमरैश्छत्रचामरै
प्रोद्धूतधूलिपटलैरन्धकारो महानभूत ।२४।

महबली, धनुर्धारी एव परम वैष्णव राज-पुत्र सूर्य केतु राजा मरु से युद्ध करने लगा ।१६। सूर्यकेतु का छोटा भाई बृहत्केतु कोकिल के समान मधुरवाणी वाला और अत्यन्त कमनीय होते हुए भी गदा युद्धमे पारगत था, वह राजा देवापि के साथ सग्राम मे तत्पर हुआ ।२०। हाथियो से सम्पन्न और विविध प्रकार के शस्त्रास्त्रो से सुसज्जित विशाखयुप-नरेश राजा शशिध्वज से युद्ध करने लगे ।२१। लाल अश्व पर आरोहण किये हुए हस्त लाघव सम्पन्न धनुर्धारी एवं प्रतापी भर्ग्य धूलिमयी पृथिवी पर धनुर्धारी शान्त से युद्ध मे भिड गया ।२२। इस

प्रकार रणक्षेत्र मे सब ओर से शूल, प्राम, गदा, बाण, शक्ति, यष्टि, तोमर, भाले, खड्ग, भुशु डी और कुन्त आदि अस्त्र-शस्त्र चलने लगे ।२३। उस समय छत्र, चमर, ध्वजा, पताका आदि की छाया और बहुत धूल उडने से रणभूमि मे अन्धकार छा गया ।२४।

गगनेऽजुघना देवा केवा वास न चक्रिरे ।
गन्धर्वे साधुसन्दर्भैर्गायनैरमृतायनै. ।२५।
द्रष्टु समागता. सर्वे लोका. समरमद्भुतम् ।
शखदुन्दुभिसन्नादैरास्फोटैर्बृ हितैरपि ।।२६
ह्रे षितैर्योधनोत्कुष्टैर्लोकावमूका इभवन् ।
रथिनो रथिभि साक पदात्राश्च पदातिभि ।।२७।।
हया हयैरिभाश्चेभै समरोऽमरदानवै ।
यथामवत्स तु घनो यमराष्ट्रविवर्द्धन २८।।
शशिध्वजचमूनाथै कल्किसेनाधिप सह ।
निपेतु सैनिका भूमौ छिन्नबाह्वड्घ्रिकन्धरा: ।२९।।
धावन्तोऽतिब्रुवन्तश्च विकुर्वन्तोऽसृगुक्षिता ।
उपर्युपरि सच्छन्ना गजाश्वरथमर्दिता: ।।३०।।

गगन मण्डल मे स्थित हुए देवगण इस सग्राम को देख रहे थे । गधर्व भी अमृत-ध्वनि मे गाते हुए उस युद्ध को दखने के लिए आ गये थे ।२५। सभी लोक उस अद्भुत सग्राम को देखने के उद्देश्य से वहाँ आ गये थे । शख और नक्कारे बज रहे थे । परस्पर धौल मारने से, हाथियो की चिघाड से, अश्वो के हिनहिनाने से तथा शस्त्रास्त्रो के टकराने से जो शब्द निकल रहे थे, उनके मिलने से रणभूमि गूँज रही थी। सभी लोक मूक जैसे लग रहे थे, क्योकि किसी को किसी की बात सुनाई नही देती थी, रथी रथी से, पैदल पैदल से, घुडसवार घुडसवार से भिड रहे थे । देवासुर-सग्राम के समान भीषण यह युद्ध यमराष्ट्र की वृद्धि कर रहा था ।२६-२८। कल्किजी के सेनापतियो से भिडे हुए शशिध्वज के सैनापति एवं वीरगण शिर कटा कर पृथिवी पर गिर रहे थे ।२९।

आहत होकर कोई भाग रहा है, कोई चीत्कार कर रहा है, कोई आर्त्त-नाद कर रहा है, किसी पर रक्त की धार पड रही है, कोई एक-दूसरे से गुँथे हुए ही पृथिवी पर गिर रहे हैं तथा कोई हाथी या अश्व के पावो अथवा रथो के पहियो से ही कुचले जा रहे हैं ।३०।

निपेतु प्रधने वीरा. कोटिकोटिसहस्रशः ।
भूते सानन्दसन्दोहा. स्रवन्तो रुधिरोदकम् ।।३१।।
उष्णीपहसा सच्छिन्न गजरोधोरथप्लवा. ।
करोरुमीनाभरणमसिकाच्च्यानवालुका ३२
एव प्रवृत्ता सग्रामे नद्य सद्योऽतिदारुणा ।
सूर्यकेतुस्तु मरुणा सहितो युयुधे बली ।।३३।।
कालकल्पो दुराधर्षो मरु बाणैरताडयत् ।
मरुस्तु तत्र दशभिर्मार्गणैरर्दयद्भृशम् ।।३४।।
मरुबाणाहतो वीरा सूर्यकेतुरमर्षित ।
जघान तुरगान्कोत्पापदोद्घातेन तद्रयम् ।।३५।।
चूर्णयित्वाऽथ तेनापि तस्य वक्षस्यताडयत् ।
गदाघातेन तेनापि मरुर्मूर्च्छामवापह ।।३६।।

इस प्रकार, इस युद्ध मे हजारों करोड वीर नाश को प्राप्त हुए । रणक्षेत्र मे रक्त की नदी बह चली । इस नदी के प्रवाह को देख कर भूत-पिशाचादि अत्यन्त आनन्दित हुए ।३१। इस लोहित नदी मे बहती हुई पगडिया सरोवरो मे सुशोभित हस के समान प्रतीत होती थी । उसमें गिरे हुए हाथी ऐसे लगते थे जैसे टापू हो । रथ उसमे नावो के समान तैरने लगे और कटे हुए हाथ-पाँव मच्छ जैसे लगने लगे । उसमे गिरे हुए खड्ग ऐसे लगते थे मानो स्वर्णिम रेती चमक रही हो ।३२। इस प्रकार रणक्षेत्र मे यह अत्यन्त दारुण नदी बहने लगी । सूर्यकेतु मरु के साथ युद्ध कर रहा था ।३३। काल के समान विकट सूर्यकेतु के बाणो से मरु आहत हो गये तब मरु ने भी दश बाणो से सूर्यकेतु को आहत कर दिया ।३४। मरु के बाणो से आहत हुए सूर्यकेतु ने मरु के सभी अश्व

मार डाले और पदाघात से रथ तोड डाला। फिर मरु के हृदय पर भीषण गदाघात किया, जिससे वह मूर्छित होकर पृथिवी पर गिर पडे।३५–३६।

सारथिस्तमपोवाह रथेनान्येन धर्म्मवित्।
बृहत्केतुश्च देवापि बाणै प्राच्छादयद्बली ॥३७॥
धनुर्विकृष्य तरसा नीहारेण यथा रविम्।
स तु बाणमय वर्ष परिवार्य निजायुधै ॥३८॥
बृहत्केतुं दृढ जघ्ने कङ्क पत्रै शिलाशितै.।
भिन्न शूलमथालोक्य धनुर्गृह्य पतत्रिभि ॥३९॥
शितधारैं स्वर्ण पुंखैर्गाद्ध्रपत्रैरयोमुखै।
देवापिमाशुगैर्जघ्ने बृहत्केतु ससैनिकम् ॥४०॥
देवापिस्तद्धनुर्दिव्य चिच्छेद निशितै शरै।
छिन्नधन्वा बृहत्केतु' खड गपाणिर्जिघासया ॥४१॥

तब मरु का धर्मवित् सारथि उन्हे उठा कर अन्य रथमे ले गया। उधर महाबली बृहत्केतु ने देवापि पर बाण-वर्षा की।३७। जैसे सूर्य कुहरे से आच्छादित हो जाता है, वैसे ही बाणो से आच्छादित देवापि ने तुरन्त धनुष लेकर शत्रु की बाण वर्षा को अपनी बाण वर्षा से काट दिया।३८। बृहत्केतु ने शान चढ़े हुए बाणो से अपने शूल को भी नष्ट हुआ देख कर पुन; धनुष उठाया और उस पर स्वर्ण जटित, गृद्ध पख के समान तथा लौह-मुख वाले तीक्ष्ण बाण चढा कर देवापि पर सैन्य सहित भीषण प्रहार किये।३९–४०। परन्तु बृहत्केतु के उस दिव्य धनुष को देवापि ने अपने तीक्ष्ण बाणो से काट दिया। तब देवापि को मारने के विचार से बृहत्केतु ने हाथ मे खड्ग ग्रहण किया।४१।

देवापे: सारथिं साश्व जघ्ने शूरो महामृधे।
स देवापिर्धनुस्त्यक्त्वा तलेनाहत्य त रिपुम् ॥४२॥
भुजयोरन्तरानीय निष्पिपेष स निर्दृय:।
तं द्वयष्ठवर्ण निष्क्रान्तं मूर्च्छितं शत्रुणर्हितम् ॥४३॥

अनुज वीक्ष्य देवापिमूर्ध्नि सूर्यध्वजोऽवधीत् ।
मुष्टिना वज्रपातेन सोऽपतन्मूर्च्छितो भुवि ।
मूर्च्छितस्य रिपु' क्रोधासेनागणमताडयत ॥४४॥
शशिध्वज सर्वजगन्निवास कल्कि पुरस्तादभिसूर्यवर्च्चसम
श्याम पिशङ्गाम्बरमम्बुजेक्षण ।
वृहद्भुज चारुकिरीटभूषिणम् ।४५।
नानामणिव्रातचिताङ्गशोभया निरस्तलोकेक्षणहृत्तमोमयम्
विशाखयू पादिभिरावृत प्रभु ददर्श धर्मेण कृतेन पूजितम् ॥४६

फिर उस घोर युद्ध मे बृहत्केतु ने देवापि के घोड़ो और सारथि को मार डाला । तब देवापि ने भी धनुष छोड कर शत्रु पर हथेली का प्रहार किया ।४२। फिर उसे दोनो भुजाओ मे दबा कर मर्दन करने लगा । उस समय अट्ठाईस वर्षीय वह राजपुत्र बृहत्केतु पीडित होता हुआ मूर्च्छित हो गया ।४३। अपने छोटे भाई की ऐसी दशा देखकर सूर्यकेतु ने देवापि के मस्तक पर वज्र के समान मुष्टिका-प्रहार किया, इससे देवापि मूर्च्छित होकर गिर पडा । तब शत्रु को मूर्च्छित जान कर सूर्यकेतु उसकी सेना पर प्रहार करने लगा ।४४। इधर राजा शशिध्वज ने उस रणक्षेत्र में सूर्य के समान तेजोमय, विश्वाधार, कमलाक्ष, पीताम्बर धारी, विशाल भुजा वाले और सुरम्य किरीट से सुशोभित कल्किजी को अपने सामने देखा ।४५। अनेक मणियो से सुसज्जित अङ्ग वाले, प्राणियो के नेत्रो और हृदयों के अन्धकार को नष्ट करने वाले कल्किजी के सब ओर विशाखयूप नरेश जैसे अनेक राजागण नत-मस्तक खडे हैं तथा सत्य और धर्म उनका पूजन कर रहे हैं ।४६।



नवम अध्याय

हृदि ध्यानास्पद रूप कल्केर्दृष्ट्वा शशिध्वज ।
पूर्ण खड्गधर चारुतुरगारूढमब्रवीत् ।।१।।
धनुर्बाणधर चारु-विभूषणवराङ्गकम् ।
पापतापविनयाशार्थमुद्यत जगता परम् ।।२।।
प्राह त परमात्मान हृष्टरोमा शशिध्वज ।
एह्येहि पुण्डरीकाक्ष ! प्रहार कुरु मे हृदि ।।३।।
अथवात्मन् बाणभिया तमोऽन्धे हृदि मे विश ।
निर्गुणस्य गुणज्ञत्वमद्वै तस्यास्त्रताडनम् ।।४।।
निष्कामस्य जयोद्योगसहाय यस्य सैनिकम् ।
लोका' पश्यन्तु युद्धे मे द्वैरथे परमात्मन. ।।५।।
परबुद्धिर्यदि दृढ प्रहर्त्ता विभवे त्वयि ।
शिवविष्णोर्भेदकृते लोक यास्यामि सयुगे ।।६।।

सूतजी ने कहा—हे ऋषियो ! कल्किजी का हृदय में ध्यान के योग्य, सुन्दर, खड्गधारी एवं तुरंगारूढ पूर्ण स्वरूप देख कर शशिध्वज ने विचार किया ।१। धनुर्बाणधारी सुन्दर आभूषणों से विभूषित जगदीश्वर भगवान् कल्कि का अवतार संसार के पाप-ताप के निवारणार्थ हुआ है ।२। राजा शशिध्वज ने पुलकित शरीर से परब्रह्म कल्किजी के प्रति निवेदन किया—हे पुण्डरीकाक्ष ! आइये, मेरे हृदय पर प्रहार कीजिये ।३। हे परमात्मन् ! मेरे बाणों की मार से बचने के लिए मेरे तमाच्छादित हृदय में आकर छिप जाओ । जो निर्गुण होकर भी गुणों के ज्ञाता हैं, जो अद्वैत होकर भी अस्त्र प्रहार में तत्पर हैं तथा जो निष्काम होकर भी विजय की इच्छा से सैन्य-संहार कर रहे हैं मैं उन्हीं

भगवान् के साथ द्वैरथ युद्ध मे तत्पर हो रहा हूँ। सभी लोक इसका अवलोकन करें।४–५। मैं आप विभु पर प्रहार करूँगा। परन्तु प्रहार करते समय भी यदि मैं आपको ब्रह्म से भिन्न समझने लगूँ तो शिव और विष्णु मे भेद जानने वाले को जिस लोक की प्राप्ति होती है, मुझे उसी लोक की प्राप्ति हो।६।

इति राज्ञो वच श्रुत्वा अक्रोध. क्रुद्धवद्दिभु ।
बाणैरताडयत्तस्य घृतायुधमरिंदमम् ॥७॥
शशिध्वजरतत्प्रहारमगण्य वरायुधै. ।
त जघ्ने बाणवर्षेण धाराभिरिव पर्वतम् ॥८॥
तद्बाणवर्षभिन्नान्त· कल्कि परमकोपन· ।
दिव्यै शस्त्रास्त्रसघातैस्तयोर्युद्धमवर्त्तत ॥९॥
ब्रह्मास्त्रस्य च ब्रह्मास्त्रै र्वायव्यस्य च पार्वतै. ।
आग्नेयस्य च पार्ज्जन्यै. पन्नगस्य च गारुडै ॥१०॥
एव नानाविधैरस्त्रैरन्योन्यमभिजघ्नतु· ।
लोका; सपाला सत्रस्ता युगान्तमिव मेनिरे ॥११॥
देवा बाणाग्निसत्रस्ता अगमन्खगमाः किल ।
ततोऽतिवितथोद्योगौ वासुदेवशशिध्वजौ ॥१२॥
निरस्त्रौ बाहुयुद्धेन युयुधाते परस्परम् ।
पदाघातैस्तलाघातैर्मुष्टिप्रहरणैस्तथा ॥१३॥

राजा के इन वचनो को सुन कर क्रोध से परे कल्किजी क्रोधित हो उठे। यह देख कर आयुधधारी एव अरिमर्दन राजा शशिध्वज ने उन पर बाण-प्रहार प्रारम्भ किया।७। जब राजा ने अपने उस प्रहार को निष्फल हुआ देखा तो वह पर्वत पर वर्षणशील मेघ के समान घोर बाणो की वर्षा करने लगे।८। उस बाण-वर्षा से कल्किजी का शरीर आहत हो गया। तब वे अत्यन्त क्रोध करके आगे बढे। इस प्रकार दोनो मे घोर युद्ध होने लगा।९। ब्रह्मास्त्र के द्वारा ब्रह्मास्त्र काटने लगे। पार्वतास्त्र से वायव्यास्त्र, मेघास्त्र से आग्नेयास्त्र और गारुडास्त्र से

सर्पास्त्र नष्ट होने लगे ।१०। इस प्रकार विविध भाँति के दिव्यास्त्रो के द्वारा वे दोनो भीषण प्रहारमे तन्मय थे । इसमे लोक और लोकपाल सभी यह समझते हुए कि कही आज ही प्रलय न हो जाय, अत्यन्त भयभीत हुए ।११। बाणाग्नि का देख कर युद्ध देखने के लिए गगन मण्डल मे एकत्र हुए देवता भयभीत हो गये । दिव्यास्त्रो को व्यथ हुए देख कर कल्किजी और राजा शशिध्वज दोनो बाहु युद्ध के निमित्त अस्त्र त्याग कर उतर पडे । फिर पदाघात, करतलाघात और मुष्टिका–प्रहार से युद्ध होने लगा ।१२–१३ ।

नियुद्धकुशलौ वारौ मुमुदाते परस्परम् ।
वराहोद्धृतशब्देन त तलेनाहनद्धरि· ।१४।
स मूच्छितो नृपः कोपात्समुत्थाय च तत्क्षणा त् ।
मुष्टिभ्या वज्रकल्पाभ्यामवध त्कल्किमोजसा ।
स कल्किस्तत्प्रहारेण पपात भुवि मूच्छित ।।१५।।
धर्म्म. कृतश्च ता दृष्ट्वा मूच्छित जगदोश्वरम् ।
समागतौ तमानेतु . कक्षे तौ जगृहे नृप ।।१६।।
कल्कि वक्षस्युपादाय लब्धार्त प्रययौ गृहम् ।
युद्धेन नृपाणामन्येषा पुत्रौ दृष्ट्व सुदुर्ज्जयौ ।।१७।।

दोनो ही रणविद्या मे अत्यन्त कुशल थे और परस्पर एक दूसरे के कौशल को देखते हुए प्रसन्न हो रहे थे । सृष्टि के आरम्भ मे पृथिवी का उद्धार करने के लिए वाराह भगवान् ने जैसा शब्द किया था, कल्किजी द्वारा किये गये करतलाघात से वैसा ही भीषण शब्द हुआ ।१४। उस आघात से राजा शशिध्वज मूर्च्छा को प्राप्त हो गए फिर तुरन्त ही सचेत होकर उन्होने कल्किजी पर वज्र के समान मुष्टि प्रहार किया, जिससे कल्किजी अचेत होकर पृथिवी पर लेट गये ।१५। तब जगत्पति कल्किजी को मूच्छित देख कर धर्म और सत्युग वहाँ आकर उन्हे ले जाने लगे । परन्तु राजा शशिध्वज ने उन दोनो को काँख मे दबा लिया ।१६। और कल्किजी को अङ्क मे उठा कर कृत कृत्य होते हुए

उन्हे अपने घर ले गये और सोचने लगे कि मेरे दोनो पुत्रो को भी युद्ध मे कोई राजा जीत नही सकता है ।१७।

कल्कि सुराधिपपति प्रधने विजित्य धर्म्म कृतच्छा ।
निजकक्षयुगे निधाय । हर्षोल्लसद्धृदय उत्पुलक ।
प्रमाथी गत्वा गृह हरिगृये ददृशे सुशान्ताम् ।।१८।।
दृष्ट्राव तस्या. सुललितमुख वैष्णवीनाच्छा मध्ये
गायन्तीना हरिगुणकथारतामथ प्राह राजा ।
देवादाना विनयवचसा शम्भले जन्मनावा ।
विद्यालाभ परिणयविधि म्लेच्छपाषण्डनाशम् ।।१६।।
कल्कि: स्वय हृदि समायमिहागोऽद्धा मूर्च्छिच्छ-
लेन तव सेवनीक्षणार्थम् । धर्म्म कृतच्छा मम कक्षा-
युगे सुशान्ते ! कान्ते विलोकय समर्च्चय सविधेहि ।।२०।।
इति नृपवचसाविनीदपूर्णा हरिकृत धर्म्म युत प्रणम्य नाथम्
सह निजसखिभिर्ननर्त्त रामा हरिगुणकीर्त्तनवर्त्तना विलज्जा।।

इस प्रकार देवराज इन्द्र के भी स्वामी कल्किजी को हरा कर और धर्म तथा सत्युग को काँख दवा कर राजा शशिध्वज प्रसन्न हृदय से सेनाओ का मर्दन करता हुआ अपने घर को गया और वहाँ उसने अपनी भार्या सुशान्ता को विष्णु मन्दिर मे स्थित पाया ।१८। उसके चारो ओर वैष्णवी नारियाँ बैठ कर विष्णु-गुण-गान में तन्मय थी । राजा ने सुशान्ता का सुन्दर मुख देखते हुए कहा—हे सुशान्ते ! देवताओ की प्रार्थना पर जो शम्भल ग्राम मे अवतीर्ण हुए हैं और जिन्होने विद्या प्राप्त कर म्लेच्छो और पाखडियो को नष्ट कर दिया है, वही हृदयो मे विहार करने वाले कल्कि भगवान अपनी माया द्वारा मूर्च्छा रूपी छल से आवृत होकर तुम्हारी शक्ति की परीक्षा लेने के निमित्त यहाँ पधारे हैं । मेरी काँखो मे यह धर्म और सत्युग दोनो दबे हुए है, तुम इनका पूजन करो ।१९-२०। राजा के यह विनोदपूर्ण वचन सुन नर रानी बडी प्रसन्न हुई और धर्म तथा सत्युग के सहित कल्किजी को उसने प्रणाम किया । फिर लज्जा को छोड कर सखियो के सहित हरि नाम संकीर्त्तन और नृत्य करने मे तत्पर हुई ।२१।

दशम अध्याय

जयहरेऽमराधीशसेवित तव पदाम्बुज । भूरिभूषणम्
कुरु ममाग्रतः साधुसत्कृत त्यज महामते ! मोहमात्मन. ॥१॥

तव वपुर्जगद्रूपसम्पदा विरचितं सता मानसे स्थितम् ।
रतिपतेर्मनोमोहदायक कुरु विचेष्टित कामलम्पटम् ॥२॥

तव यशो जगच्छोकनाशन मृदुकथामृतप्रीतिदायकम् ।
स्मितसुधोक्षित चन्द्रवन्मुख तवकरोत्वल लोकमङ्गलम् ॥३॥

मम पतिस्त्वय सर्वदुर्जयो यदि तवाप्रिय कर्मणाचरेत् ।
जहि तदात्मन. शत्रुमुद्यत कुरु कृपा न चेदोदृगीश्वर ॥४॥

महदहयु.त पञ्चमात्रया प्रकृतिजायया निर्म्मित वपु ।
तव निरोक्षणाल्लीलया जगत्स्थितिलयोदयं ब्रह्मकल्पितम् ॥५॥

सुशान्ता बोली—हे हरे ! आपकी जय हो ! महामते ! अब आप अपने इस महोच्छन्न भाव को त्याग कर इन्द्र से भी सेवित, सुन्दर आभूषणो से विभूषित तथा साधुओ के द्वारा सत्कारित अपने चरणारविन्द मेरे समक्ष कीजिये ।१। जगत् की श्रेष्ठ सम्पदा से विरचित तथा साधुओ के हृदय मे विद्यमान रहने वाला आपका यह देह कामदेव को भी मोहित करने वाला है । अब आप हमारी कामना पूर्ण कीजिये ।२। आपके यशगान से जगत् के शोक नष्ट होते हैं, आपके मुस्कान सुधा सम्पन्न चन्द्र वदन से निकली हुई मधुर वाणी सब को प्रसन्न करती है । हे प्रभो ! आपका यह मुख लोककल्याण के करने

वाला है ।३। मेरे सर्व दुर्जय पति के द्वारा यदि आपका कोई अपराध बन पड़ा हो तो भी इनके प्रति शत्रु-भाव न रख कर इन पर कृपा करिये, अन्यथा कोई आपको कृपामय ईश्वर नही कहेगा ।४। आपकी पत्नी प्रकृति महत्तत्व, अहंकार और पचतन्मात्र के द्वारा देह रचती है। आपके ही निरीक्षण में लीला से ही ब्रह्म कल्पित विश्व मे सृष्टि, स्थिति और लय का क्रम चलता है ।५।

भूविषन्मरुद्वारितेजसा राशिभि. शरीरेन्द्रयाश्रितैः ॥
त्रिगुणया स्वया मायया विभो कुरु कृपा भक्तसेवनार्थिनाम्
तव गुणालय नाम पावन कलिमलापह कीर्तयन्ति ये।
भवभयक्षय तापनापिता मुहुरहो जना. ससरन्ति नो ।।७॥
तव जन्म सता मानवर्द्धन निजकुलक्षय देवपालकम् ।
कृतयुगार्पक धर्म्मपूरक कलिकुलान्तक शन्तनोतु मे ॥८॥
मम गृह पतिपुत्रनप्तृक गजरथैर्ध्वजैश्चामरैर्धनै ।
मणिवरासनसत्कृति विना तवा पदाब्जयो. शोभयन्ति किम्
तव जगद्वपु· सुन्दरस्मित मुखमनिन्दित सुन्दरारवम् ।
यदि नमे प्रिय वल्गुचेष्टिते परिकरोत्यहो मृत्युरस्त्विह ॥१०॥

हे देव ! पृथिवी, जल, तेज, वायु और आकाश तत्व से युक्त यह पच भूतात्मक शरीर इन्द्रियो के आश्रित रहते हैं। अपनी त्रिगुणात्मिका माया से अपने भक्तो पर कृपा कीजिये ।६। हे प्रभो ! आपके नाम गुण-कीर्तन से कलियुग के सभी पाप नष्ट हो जाते हैं। आपका वह नाम अनन्त गुणो से युक्त और भवभय का नाश करने वाला है, जो ससार ताप से पीडित प्राणी उसका स्मरण करते हैं, उनका जन्म-मरण रूप बधन कट जाता है ।७। आपका यह अवतार साधुओ का मान बर्द्धक, कलिकुल नाशक, देवताओ का पालक, धर्म पूरक तथा सत्युग का पुनः स्थापक है। आपके इस अवतार से हमारा कल्याण हो ।८। मेरे घर मे पति, पुत्र, पौत्र, गज, रथ, ध्वज, चमर, धन और मणि जटित श्रेष्ठ आसनादि सब कुछ वर्तमान हैं। परन्तु आपके

चरणारविन्दो के पूजन किये बिना उनकी शोभा नही हो सकती ।६। हे जगद्रूप ! सुन्दर मुस्कान से सुशोभित, मधुर वाणी से विभूषित, सुरम्य चेष्टा से युक्त आपका यह मुख यदि हमारा प्रिय नही करना चहेगा तो हमारी तत्काल मृत्यु ही हो जायगी ।१०।

हयचरभयहरकरहरशरणखरतरवरदशबलमदन ।
जयहतपरभरभववरनशनशशधरशतसमरसभरवदन ।।११।।
इति तस्या: सुशान्ताया गीतेन परितोषित ।
उत्तस्थौ रणशय्याया. कल्किर्युद्धस्थवीरवत् ।।१२।।
सुशान्ता पुरतो दृष्ट्वा कृत वामे तु दक्षिणे ।
धर्म शशिध्वज पश्चात्प्राहो ति व्रीडितानन ।।१३।।
का त्व पद्मपलाशाक्षि ! मम सेवार्थमुद्यता ।
कान्ते शशिध्वज. शूरो मम पश्चादुपस्थित ।।१४।।
हे धर्म्म ! हे कृतयग ! कथमत्रागता वयम् ।
रणाङ्गण विहायास्या: शत्रोरन्त पुरे वद ।।१५।।

आप आश्वारोही सब को अभय देते हुए विचरते हैं ? आपके तीक्ष्ण बाणो के प्रहार से जो वीर पुरुष युद्ध मे मृत्यु को प्राप्त होते हैं, उनका आप ही प्रतिपालन करते हैं । आपके मुख मण्डल पर सैंकडो चन्द्रमाओ की आभा चमकती है । शिव और ब्रह्मा भी सदा आपके आश्रय की याचना करते रहते है ।११। सुशान्ता द्वारा किये गये इस प्रकार के विनय-गान से सन्तुष्ट होकर कल्किजी उसी प्रकार उठ पडे, जिस प्रकार रणक्षेत्र मे मूर्च्छित वीर उठ जाता है ।१२। उन्होने अपने सामने रानी शान्ता को, वाम पार्श्व मे सत्युग और दक्षिण पार्श्व मैं धर्म को और अपने पीछे राजा शशिध्वज को खडे देखा तो लज्जा से मुख नीचा करके बोले ।१३। हे कमलपत्र जैसे नेत्र वाली ! तुम कौन हो और मेरी सेवा में क्यों तत्पर हुई हो ? यह बलवान् राजा शशिध्वज मेरे पीछे क्यो उपस्थित है ? ।१४। हे धर्म ! हे सत्युग ! हम युद्ध क्षेत्र

को छोड कर शत्रु के अन्तःपुर मे क्यो आ गये यह ? सब मुझे बताओ ।१५।

शत्रुपत्न्य कथं साधु सेवन्ते मामरि मुदा ।
शशिध्वज. शूरमानी मूर्च्छितं हन्ति नो कथम् ॥१६॥
पाताले दिवि भूमौवा नरनागसुराऽसुरा· ।
नारायणस्य ते कल्के केवा सेवा न कुर्वते ॥१७॥
यत्सेवकाना जगता मित्राणा दर्शनादपि ।
निवर्तन्ते शत्रुभावस्तस्य साक्षात्कुतो रिपुः ॥१८
त्वया सार्द्ध मम पतिः शत्रुभावेन सयुगे ।
यदि योग्यस्तदानेतुं कि समर्थो निजाजयम् ॥१०॥
तत दासो मम स्वामी अह दासी निजा तव ।
आवयो. सप्रसादाय आगतोऽसि महाभुज ॥२०॥

मुझे शत्रु की यह शत्रु–पत्नियाँ प्रसन्न होती हुई क्यो परिचर्या कर रही हैं ? जब मैं मूर्च्छित हो गया था, तब इन शूर एव मानी राजा शशिध्वज ने मेरा सहार क्यो नही कर दिया ? ।१६। रानी बोली—पाताल, स्वर्ग अथवा पृथिवी पर, नाग, सुर और असुर मे ऐसा कौन है जो भगवान् कल्कि की सेवा नही करता ? ।१७। संसार जिनका सेवक और मित्र है तथा जिनके दर्शन मात्र से शत्रु भाव नष्ट हो जाता है, क्या उनका कोई प्रत्यक्ष रूप से कभी शत्रु हो सकता है ? ।१८। मेरे पति यदि आपके प्रति शत्रु-भाव रख कर आपसे युद्ध करते तो क्या वह आपको अपने घर मे इस प्रकार ले आते ? ।१९। हे महाभुज ! मेरे पति आपके दास हैं, इसलिए मैं भी आपकी दासी हूँ । इस प्रकार हम पर प्रसन्न होकर ही आप स्वय यहाँ पधारे हैं ।२०।

अह तवैतयोर्भक्तया नामरूपानुकीर्तनात् ।
कृतार्थोऽस्मि कृतार्थोऽस्मि कलिक्षव ॥२१॥
अधुनाह कृतयुग तव दासस्य दर्शनात् ।
त्वमोश्वरो जगत्पूज्यसेवकस्यास्य तेजसा ॥२२॥

दण्डय मा दण्डय विभो योद्धृ-न्वादुद्यतायुधम् ।
येन कामादिरागेणत्वयात्मन्यपि वैरिता ॥२३॥
इति कल्किर्वचस्तेषा निशम्य हसितानन ।
त्वया जितोऽस्मीति नृप पुन पुनरुवाच ह ॥२४॥
तत· शशिध्वजो राज युद्धादाहूय पुत्रकान् ।
सुशान्ताया मति बुद्धा रमा प्रादात्सकल्कये ॥२५॥

धर्म ने कहा—हे कलि का नाश करने वाले कल्किजी ! यह राजा–रानी दम्पति जिस प्रकार आपकी भक्ति करते हुए आपका नाम-सकीर्त्तन एव स्तोत्र करते है, उसे देख कर मैं कृतार्थ हो गया—कृतार्थ हो गया ।२१। सत्युग बोला—हे प्रभो ! आज आपके इस सेवक का दर्शन पाकर तो आवश्य ही मेरा सत्युग नाम यथार्थ हो गया । इस सेवक ने अपने तेज से आपको भी जगत्पूज्यत्व और ईश्वरत्व से परिपूर्ण कर दिया ।२२। राजा शशिध्वज बोले—हे जगदीश्वर ! मैंने काम क्रोध आदि विषयो के वशीभूत होकर ही आप ईश्वर एव साक्षात् अपने आत्मा के प्रति शत्रुता करके आपके देह पर अस्त्र प्रहार किया है ।२३। राजा के वचन सुन कर कल्किजी ने मुसकराते हुए बारम्बार कहा—हे राजन् ! आपने मुझे सब प्रकार जीत लिया है ।२४। इसके पश्चात् राजा शशिध्वज ने रणभूमि से अपने पुत्रो को वापिस बुला लिया और फिर रानी सुशान्ता की प्रेरणा से अपनी रमा नाम की कन्या कल्किजी को प्रदान कर दी ।२५।

तदैत्य मरुदेवापी शशिध्वजसमाहूतौ ।
विशाखयूपभूपश्च रुचिराश्वश्च संयुगात् ॥२६॥
शयाकर्णनृपेणापि भल्लाट पुरमायय् ।
सेनागणैरसख्यातै: सा पुरी मर्द्दिताभवत् ॥२७॥
गजाश्वरथसबाधै. पत्तिच्छत्ररथध्वजैः ।
कल्किनापि रमायाश्च विवाहोत्सवसम्पदाम् ॥२८॥

द्रष्टुं समीयुस्त्वरिता हर्षात्सबलवाहना. ।
शङ्खभेरी मृदङ्गाना वादित्राणाञ्च निस्वनै. ॥२६॥
नृत्यगीतविधानैश्च पुरस्त्रीकृतमङ्गलै. ।
विवाहो रमयाकल्केरभूदतिसुखावह· ।३०।

उस अवसर पर मरु, देवापि, विशाखयूपनरेश और रुधिराश्व आदि सभी कल्कि-पक्ष के राजागण शशिध्वज द्वारा आमन्त्रित किये गये। वे सब राजा शय्याकरण को साथ लेकर रणभूमि से भल्लाट नगरी मे आ पहुँचे। उस समय असख्य कल्कि-सेना के पाँवो से वह नगरी मर्दिता हो गई।२६-२७। गज, अश्व, रथ, पदाति, छत्र और रथ की ध्वजाएँ आदि सभी से सुशोभित विवाह मण्डप मे कल्किजी और रमा का विवाहोत्सव सम्पन्न हुआ।२८। हर्ष से प्रफुल्लित हुए सभी व्यक्ति अपने दल बल और वाहनो के सहित उस उत्सव को देखने के लिए वहाँ आये। राजकुमारी रमा का विवाह शख, भेरी, मृदग आदि वाद्यो की सुमधुर ध्वनि और पुर-नारियो के श्रेष्ठ मङ्गलाचारो तथा नृत्य-गीतादि के सानन्द सम्पन्न हुआ ।२९-३०।

नृपा नानाविधैर्भोज्यै पूजिता विविशु सभाम् ।
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्या शूद्राश्चावरजातय· ॥३११।
विचित्रभोगाभरणाः कल्किं द्रष्टुमुपाविशन् ।
तस्या सभाया शुशुभे कल्कि कमललोचनः ॥३२॥
नक्षत्रगणमध्यस्थ पूर्ण शशधरो यथा ।
रेजे राजगणाधीशो लोकान्सर्वान्विमोहयन् ।६६।
रमापति कल्किमवेक्ष्य भूप सभागत पद्मदलायतेक्षणम् ।
जामातर भक्तियुतेन कर्मणा विबुध्य मध्ये निषसाद तत्रह ।३४

विविध प्रकार भोज्य एव पान-पदार्थों से सत्कार प्राप्त करते हुए राजागण सभा मे प्रविष्ट हुए। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्रादि

सभो वर्ण के लोग अद्भुत आभूषणो और विविध प्रकार की भोग—सामग्रियो को प्राप्त करके उस सभा मे सुशोभित कल्किजी के सब ओर बैठ कर शोभा को प्राप्त होने लगे ।३१-३२। जैसे तारागण के मध्य पूर्ण चन्द्र की अत्यन्त शोभा होती है, वैसे ही सब लोगो के मध्य मे सुशोभित राजाओ के भी स्वामी कल्किजी सब लोको को मोहित करने लगे ।३३। पद्म पलाश जैसे नेत्र वाले कल्किजी ने सभा मे उपस्थित राजाओ आदि के समक्ष रमा का पाणिग्रहण किया। उस समय राजा शशिध्वज भी कल्किजी को जामाता-भाव से देखते हुए भक्ति-युक्त हृदय से सभा मे अत्यन्त शोभा को प्राप्त हुए ।३४।

एकादश अध्याय

तत्राहुस्ते सभामध्ये वैष्णव त शशिध्वजम् ।
मुनिभि कथिताशेष-भक्तिव्यासक्तविग्रहम् ॥१॥
सुशान्ताञ्च कृतेनापि धर्मंण विधिद्युताम् । २॥
युंवा नारायणास्यास्य कल्के: श्वशुरता गतौ ।
वय नृपा इमे लोका ऋषयो ब्राह्मणाश्च ये ॥३॥
प्रेक्ष्य भक्तिवितान वा हरौ विस्मितमानसा. ।
पृच्छामस्त्वामिय भक्ति क्व लब्धा परमात्मन: ॥४॥
कस्य वा शिक्षिता राजन्! किवा नैसर्गिकी तव ।
श्रोतुमिच्छामहे राजन्! त्रिजगज्जनपावनीम् ।
कथा भागवती त्वत्त: ससाराश्रमनाशिनीम् ॥५॥

सूतजी ने कहा—मुनियो के द्वारा अशेष कहे गए भक्तिमय देह वाले, विष्णु भक्त, धर्म और सत्युग के साथ स्थित एव रानी सुशान्ता के सहित शोभायमान् राजा शशिध्वज की ओर देखते हुए आगत राजा आदि व्यक्तियो ने कहा। १-२। राजागण बोले—अब आप साक्षात् नारायण के अवतार भगवान् कल्कि के श्वसुर-पद को प्राप्त हुए हैं। परन्तु हम सब राजागण, ऋषिगण और विप्रगण तथा अन्यान्य सभी उपस्थितजन आपकी भक्ति को ऐसे विस्तृत रूप मे देख कर अत्यन्त आश्चर्य को प्राप्त हुए हैं। हम आपसे यह पूछते है कि परमात्मा की

यह शक्ति आपको किस प्रकार उपलब्ध हो सकी ? ।३४। हे राजन् ! इस भक्ति की क्या आपने किसी से शिक्षा प्राप्त की है ? अथवा यह भक्ति आप मे स्वाभाविक रूप से ही उत्पन्न हो गई है ? हे राजन् ! आपकी इस भगद्भक्ति का कारण सुनने की हमे जिज्ञासा है। क्योकि भगवद्भक्ति की यह कथा ससार के आवागमन को नाश करने वाली है ।५।

स्त्रीपु सोवयोएस्तत्तच्छ्रुतामोघविक्रमा ।
वृत्त यज्जन्मकर्मादि स्मृति तद्भक्तिलक्षणम् ॥६॥
पुरा युगसहस्रान्ते गृध्रोऽह पूतिमासभुक् ।
गृध्रीय मे प्रियारण्ये कृतनीडो वनस्पतौ ॥७॥
चचार काम सर्वत्र वनोपवनसकुले ।
मृताना पूतिमांसौघै प्राणिना वृत्तिकलकौ ॥८॥
एकादा लुब्धक क्रूरो लुलोभ पिशिनाशिनौ ।
आवा वीक्ष्य गृहे पुष्ट गृध्र तत्राप्ययोजयत् ॥९॥
त वीक्ष्य जातविश्रम्भौ क्षुधया परिपोडितौ ।
स्त्रीपु सौ पतितौ तत्र मासलोभितचेतसौ ॥१०॥

इस पर राजा शशिध्वज बोले—हे राजाओ ! हम दोनो पति-पत्नी के जो जन्म, कर्म आदि हैं तथा जिस प्रकार हम को भगवद्भक्ति का स्मरण हुआ, वह सब आप सुनिये ।६। एक सहस्र युग पहले की बात है—मैं मांसाहारी गृद्ध था और मेरी यह प्रिया सुशान्ता मेरी पत्नी गृद्धिनी थी। हम दोनो एक विशाल वृक्ष पर नीड बना कर उसमे रहते थे ।७। वन-उपवन आदि स्थानो मे हमारी इच्छानुसार अबाध गति थी। उस समय हम मरे हुए प्राणियो के दुर्गंधित माँस से अपना जीवन-निर्वाह किया करते थे ।८। एक दिन एक क्रूर व्याध ने हमे देख लिया और लोभवश हमे पकडने के लिए उसने अपने पालित गृद्ध को हमारे समक्ष छोड दिया ।९। मैं क्षुधा से व्याकुल था, तभी मैंने उसे देखा मांस के लोभ से हम स्त्री-पुरुष दोनो ही उस पर झपट पडे ।१०।

बद्धावावां वीक्ष्य तदा हर्षादागत्य लुब्धक. ।
जग्राह कण्ठे तरसा चञ्च्वाग्राघातपीडित ॥११॥

आवां गृहीत्वा गण्डक्याः शिलायां सलिलान्ति के ।
मस्तिष्क चूर्णयामास लुब्धक पिशिताशन ॥१२॥
चक्राङ्कितशिलागङ्गामरणादपि तत्क्षणात् ।
ज्योतिर्मयविमानेन सद्यो भूत्वा चतुर्भुजौ ॥१३
प्राप्तौ वैकुण्ठनिलय सर्वलोकनमस्कृतम् ।
तत्र स्थित्वा युगशतं ब्रह्मणो लोकमागतौ ।१४॥
ब्रह्मलोके पञ्चशतं युगानामुपभुज्य वै ।
देवलोके कालवशाद्गत युगचतु.शतम् ॥१५॥

व्याध ने हम दोनो को अपने जाल मे बँधा हुआ देखा तो वह प्रसन्न होता हुआ शीघ्रता से हमारे पास आया और उसने हमारे कण्ठ पकड लिये। तब हम भी उस पर अपनी चोचो से आघात करने लगे ।११ तदनन्तर माँस के लोभी उस व्याध ने हम दोनो को पकड कर गडकी में स्थिति एक शिला पर पछाड-पछाड कर हमारे मस्तको को चूर्ण कर डाला।१२। गङ्गा का किनारा और चक्राकित शिला—मरण काल मे इन दोनो क ।सान्निध्यता के प्रभाव से हम उसी समय चतुर्भुज रूप हो गये और तेजस्वी विमान मे चढ कर सब लोको के द्वारा नमस्कृत बैकुण्ठ लोक मे जा पहुँचे। वहाँ सौ युगो तक निवास करने के पश्चात् हमको ब्रह्मलोक की प्राप्ति हुई ।१३-१४। उस ब्रह्मलोक मे पाँच सौ युगो तक सुख भोगने के पश्चात् काल के वश में पड कर देवलोक में गये और चार सौ युगों तक वहाँ सुख भोगते रहे ।१५।

ततो भुवि नृपास्तावद्बद्धसूनुरह स्मरन् ।
हरेनुग्रह लोक शालग्रामशिलाश्रमम् ।।१६॥
जातिस्मरत्व गण्डक्या. किं तस्याः कथयाम्यहम् ।
यज्जलस्पर्शमात्रेण महात्म्य महदभुद्तम् ॥१७॥
चक्राकितशिलास्पर्शमरणस्येदृश फलम् ।
न जाने वासुदेवस्य सेवया किं भविष्यति ॥१८॥
इत्यावाहरिपूजासु सर्षविह्वलचेतसौ ।

नृत्यन्तावगायन्तौ विलुठन्तौ स्थिताविह ॥१९॥
कल्केर्नारायणांशस्य अवतार, कलिक्षयः ।
पुरा विदितवीर्यस्य पृष्टो ब्रह्ममुखाच्छ्रुत ॥२०॥

हे राजागण ! फिर अब हम इस मर्त्यलोक मे उत्पन्न हुए हैं। परन्तु हमें शालग्राम शिला का वह स्थान और भगवान् विष्णु की कृपा का अभी तक स्मरण है ।१६। क्योंकि गण्डकी नदी के तट पर मरण होने पर जन्मो की स्मृति कभी नष्ट नही होती । यह अद्भुत माहात्म्य उस नदी के जल-स्पर्श का ही है ।१७। यदि उस चक्रांकित शिला के स्पर्श मात्र से मृत्यु के पश्चात् ऐसा शुभ फल होता है, तो भगवान् वासु-देव की सेवा के फल का तो कहना ही क्या है ? ।१८। यही सोचते हुए हम कभी हरि-पूजन मे अपने चित्त को एकाग्र करते हैं, कभी हर्ष से विह्वल होकर नृत्य करने लगते हैं, कभी उनका गुण-गान करते और भक्ति भाव मे मग्न हो ज ते हैं ।१९। यह समाचार हमे श्री ब्रह्माजी द्वारा पहिले ही मिल गया था कि कलियुग का क्षय करने के लिए भगवान् नारायण का अंशावतार होगा । इस प्रकार हम इनके पराक्रम को भले प्रकार जानते हैं ।२०।

इति राजसभायां स. श्रावयित्वा निजा कथाः ।
ददौ गजानामयुतमश्वाना लक्षमादरात् ॥२१
रथानां षट्सहस्रन्तु ददौ पूर्णस्य भक्तित ।
दासीनां युवतीनाञ्च रमानाथाय षट्शतम् ॥२२॥
रत्नानि च महार्घाणि दत्त्वा राजा शशिध्वजः ।
मेने कृतार्थमात्मान स्वजनैर्बान्धवैः सह ॥२३॥
सभासद इतिश्रुत्वा पूर्वजन्मोदिताः कथाः ।
विस्मयाविष्टमनसः पूर्णं त मेनिरे नृपम् ।२४।
कल्कि स्तुवन्तो ध्यायन्तो प्रशसन्त जगज्जना ।
पुनस्तमाहूराजान लक्षण भक्तिभक्तयोः ।२५।

इस प्रकार उस सभा में अपना पूर्व प्रसंग कह कर राजा शशि-ध्वज ने भक्ति-भाव पूर्वक कल्किजी को दस सहस्र गज, एक लाख अश्व,

छ सहस्र रथ, छः सौ युवती दासियाँ तथा असंख्य रत्नादि प्रदान करके अपने स्वजनो और बाधवो के सहित अपने को धन्य माना।२१-२३। राजा शशिध्वज के मुख से उनके पूर्व जन्म का वृत्तान्त सुन कर सभी सभासद् आश्चर्य चकित होकर उन्हे पूर्ण समझने लगे २४। फिर वहाँ उपस्थित सभी जन कल्किजी का भक्तिपूर्वक ध्यान करने लगे। फिर उन्होने भक्तो के लक्षण विषयक प्रश्न राजा शशिध्वज से किया।२५।

भक्तिकाम्यद्भगवत: को वा भक्तो विधानवित्।
कि करोति किमश्नाति क्वा वसति वक्ति किम्।२६।
एतान्वर्णय राजेन्द्र ! सर्व त्व वेत्सि सादरात्।
जातिस्मरत्वात्कृष्णस्य जगता पावनेच्छया।२७।
इति तेषा वच. श्रुत्वा प्रफुल्लवदनो नृप।
साधुवादं समामन्त्र्य तानाह ब्रह्मणोदितम्।२८।
पुरा ब्रह्मसभामध्ये महर्षिगणसकुले।
सनकोनारद प्राह भवद्भिर्यास्त्विहोदिता:।२०।
तेषामनुग्रहेणाह तत्रोषित्वा श्रुता: कथा:।
यास्ता सकथयामीह श्रृणुध्व पापनाशना.।३०।

राजागण बोले—भगवद्भक्ति क्या है ? विधान के जानने वाला भक्त कौन कहा जाता है ? भक्त का कार्य क्या है ? वह क्या खाता, क्या वार्तालाप करता और कहाँ रहता है ?।२६। हे राजेन्द्र ! आपको सब कुछ विदित है, इस लिए आप कृपया आदरपूर्वक सब बात हमे बतावे। उनकी बात सुन कर राजा शशिध्वज ने हर्षित मुख से उन्हे साधुवाद दिया। फिर जाति स्मरण होने के कारण श्री कृष्ण चरित्र द्वारा ससार को पवित्र करने के उद्देश्य से उन्होने वह सब कहना आरम्भ किया, जो उन्होने ब्रह्माजी के मुख से सुना था।२७-२८। शशिध्वज बोले पुराकाल की बात है—ब्रह्माजी की सभा के मध्य महर्षिगण विराजमान थे, उसी अवसर पर जो कुछ सनकादि ने नारदजी से पूछा था, वही आपको बताता हूँ।२६। उस समय मैं भी वहाँ उपस्थित था, इसलिए

उनकी कृपा से मैंने उस सब प्रसग को सुना था। हे पापनाशन उपस्थित सज्जनो ! जो बात मैंने सुनी थी। वही कहता हूँ, आप लोग सुनिये ।३०।

का भक्ति संसृतिहरा हरौ लोकनमस्कृता ।
तामादौ वर्णय मुने नारद।वहिता वयम् ।३१।
मन षष्ठानीन्द्रियाणि सयम्य परया धिया ।
गुरावपि न्यसेद्देह लोकतन्त्रविचक्षण. ।३२।
गुरौ प्रसन्ने भगवान्प्रसीदति हरि. स्वयम् ।
प्रणबाग्निप्रियामध्ये मवण तन्निदेशत ।३३।
स्मरेदनन्यया बुध्या देशिक. सुसमाहित ।
पाद्यार्घ्याचमनीयाद्यै. स्नानवासोविभूषणैः ।३४।
पूजयित्वा वासुदेवपादपद्मं समाहित ।
सर्वाङ्गसुन्दर रम्य स्मद्धृत्पद्मामध्यगम् ।३५।

सनक ने कहा—हे मुने ! हे नारद ! किस प्रकार की हरि-भक्ति से जन्म नही लेना होता तथा कौन सी भक्ति प्रशसा के योग्य है। आप उसी को पहले कहिये। हम सुनने के इच्छुक हैं ।३१। नारद बोले—लोकतन्त्र के ज्ञाता साधक को श्रेष्ठ बुद्धि के द्वारा पांचो ज्ञानेन्द्रिय और छठवे मन का निग्रह करते हुए ज्ञाना-श्रय पूर्वक गुरु के चरणो मे अपना शरीर अर्पण कर देना चाहिये ।३२। क्योकि गुरु के प्रसन्न होने पर भगवान् श्रीहरि भी प्रसन्न होते हैं। प्रथम प्रणवाग्नि प्रिया के मध्य मे ॐ, का अनन्य हृदय से स्मरण करे। फिर पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय आदि तथा स्नान और वस्त्राभूषणो से युक्त होकर सावधान चित्त से नारायण के चरणारविन्दो का पूजन करे। तदनन्तर हृत्पद्म के मध्य में प्रतिष्ठित सुरम्य और सर्वांग सुन्दर श्रीहरि के स्वरूप का चिन्तन करे ।३३-३५।

एव ध्यात्वा वाक्यनोबुीन्द्रियगणै. सह ।
आत्मानमर्पयेद्विद्वान्हरावेकान्तभाववित् ।३६।

अङ्गानि देवास्त्वेपानु नामानि विदितान्युत ।
विष्णो कल्केरनन्तस्य तान्येवान्यन्न विद्यते ।३७।
सेव्य. कृष्ण सेवकोऽहमन्ये तस्यात्ममूर्त्तय ।
अविद्योपाधयो ज्ञानद्वदन्ति प्रभावदय: ।३८।
भक्तस्यापि हरौ द्वैत सेव्यसेवकवत्तदा ।
नान्याद्विना तमित्येव क्वच किञ्चन विद्यते ।३९।
भक्त. स्मरति त विष्णु तन्नामानि च गायति ।
तत्कर्माणि करोत्येव तदानन्दसुखोदय ।४०।

इस प्रकार ध्यान करने के पश्चात् वाणी, मन, बुद्धि और इन्द्रियो के सहित स्वय को श्रीहरि मे समर्पित कर दे ।३६। भगवान् कल्कि परमदेव एव अनन्त स्वरूप भगवान् विष्णु के अग हैं । जो सब नाम आपको विदित है, वह भगवान् श्रीहरि के अतिरिक्त और कुछ भी नही हैं ।३७। भगवान् श्री कृष्ण सेव्य और मैं उनका सेवक हूँ तथा ससार भर के सभी प्राणी उन्ही के मूर्त्त रूप हैं । ज्ञानियो का कहना है कि अविद्यारूपी उपाधि के वश मे पड कर ही यह सब उत्पन्न होते हैं ।३८। भक्तो के निमित्त सेव्य-सेवक भाव रूप द्वैत का आविर्भाव होता है। इस प्रकार श्रीहरि के अतिरिक्त अन्य कुछ भी नही है ।३९। उन्ही भगवान् विष्णु का भक्त सदा स्मरण करता, नाम-गुण कीर्त्तन करता तथा सभी कर्म उनके ही निमित्त किया करता है । इसी कारण उसके लिए आनन्द और सुख की उत्पत्ति होती है ।४०।

नृत्यत्युद्धतवद्रौति हसति प्रैति तन्मना ।
विलुठत्यात्मविस्मृत्या न वेत्ति कियदन्तरम् ।४१।
एवविधा भगवतो भक्तिरव्यभिचारिणी ।
पुनाति सहसा लोकान्सदेवासुरमानुषान् ।४२।
भक्तिः सा प्रकृतिर्नित्या ब्रह्मसम्पत्प्रकाशिता ।
शिवविष्णुब्रह्मरूपा वेदाद्याना वरापि वा ।४३।
भक्ताः सत्वगुणाध्यासाद्रजसेन्द्रियलालसा. ।

तमसा घोरसकल्पा भजन्ति द्ववैतद्दृग्जना ।४४।
सत्वान्निर्गुणतोमति रजसा विषयस्पृहा ।
तमसा नरक यान्ति ससाराद्वैतधर्मिणि ।४५।

वह विह्वल होकर नाचता, रोता हँसता और तन्मयतापूर्वक विचरण करता है । वह स्वय को भूल कर भक्ति-भाव मे ही डूब जाता है और हरि के अतिरिक्त कही कुछ नही जानता ।४१। यही भगवान् की अव्यभिचारिणी भक्ति है, इसी के प्रभाव से देवता, दैत्य और मनुष्य आदि की सम्पूर्ण सृष्टि सहसा पवित्रता को प्राप्त होती है ।४२। नित्या प्रकृति अथवा ब्रह्म की सम्पदा ही भक्ति रूप मे प्रकट होती है । वही भक्ति वेदादि मे श्रेष्ठ एव शिव, विष्णु और ब्रह्मा स्वरूपिणी हैं ।४३। सत्वगुण के अभ्यास से युक्त द्वैत के जानने वाले मनुष्य इन्द्रिय व्यापार की इच्छा वाले होते हैं और जो तमोगुण से युक्त हैं वे घोर कार्यों का सकल्प किया करते हैं ।४४। द्वैत ज्ञान से युक्त ज्ञानीजन सत्वगुण के व्याप्त होने पर निर्गुणता को प्राप्त होते हैं तथा रजोगुण के व्याप्त होने पर विषयो मे लग जाते हैं और यदि तमोगुण की अधिकता होती है तो वे पुरुष नरक को प्राप्त होते हैं ।४५।

उच्छिष्टमवशिष्ट वा पथ्य पूतमभीप्सितम् ।
भक्ताना भोजनं विष्णोर्नैवेद्यं सात्विक मतम् ।४६।
इन्द्रियप्रीतिजनन शुक्रशोणितवर्द्धनम् ।
भोजनं राजस शुद्धमायुरारोग्यवर्द्धनम् ।४७
अत· परं तामसानां कट्वम्लोष्णविदाहिकम् ।
पूतिपर्युषित ज्ञेय भोजनं तामसप्रियम् ।।४८।।
सात्विकानां वनें वासो ग्रामे वासस्तु राजसः ।
तामसं द्यूतमद्यादिसदनं परिकीर्तितम् ।।४९।।
न दाता स हरि· किञ्चित्सवेकस्तु न याचक ।
तथापि परमा प्रीतिस्तयोः किमिति शाश्वती ।।५०।।

इत्येयद्भगवत ईश्वरस्य विष्णोर्गुणकथन सनको विबुध्य भक्त्या
सविनयवचनैः सुरर्षिवर्य परिणुत्वेन्द्रपुर जगाम शुद्ध ॥५१॥

भगवान् का शेष बचा हुआ उच्छिष्ट (प्रसाद) तथा इच्छिन्न नैवेद्य ही पवित्र पथ्य स्वरूप है। भक्तो को इसी सात्विक आहार का भोजन करना चाहिये (अर्थात् भोज्य सामग्री भगवान् को अर्पण करके ही प्रसाद रूप मे सेवन करनी चाहिए) ।४६। जो भोजन इन्द्रियो को सन्तुष्ट करने वाला, वीर्य एव रक्त वर्द्धक तथा परमायु के देने वाला एव आरोग्यप्रद है, ऐसा शुद्ध भोजन राजसी कहा जाता है ।४७। कडुवा, खट्टा, जलन करने वाला, दुर्गन्व युक्त तथा वासी भोजन तामसी मनुष्यो को प्रिय है ।४८। सतोगुणी पुरुष वन में निवास करते हैं, रजोगुणी मनुष्य ग्राम मे और तमोगुणी द्यूत खेलने के अथवा मद्य पीने के स्थान मे रहते हैं ।४९। भगवान् स्वय अपना हाथ उठा कर किसी को कुछ प्रदान नही करते, और न सेवक ही उनसे कुछ याचना करता है। फिर भी उनमे परस्पर सदा ही परम प्रीति रहती है, यह कैसी विचित्र बात है ? ।५०। पवित्र मन वाले सनक भक्तिपूर्वक नारदजी के द्वारा भगवान् विष्णु का गुण-कथन सुन कर विनम्र वचनो से देवर्षिवर नारदजी की स्तुति और नमस्कार कर देवलोक को चले गये।५१।

द्वादश अध्याय

एतद्वः कथित भूपा. कथनीयोरुकर्मरणा ।
कथा भक्तस्य भक्तेश्च किमन्यत्कथयाम्यहम् ।१।
त्व राजन्वैष्णवश्रेष्ठः सर्वसत्वहिते रत ।
तवावेश. कथ युद्धरङ्गे हिसादिकर्मणि ॥२॥
प्रायशः साधवो लोके जीवाना हितकारिण. ।
प्राणबुद्धिधनैर्वाग्भि. सर्वेषा विषयात्मनाम् ॥३॥
द्वैतप्रकाशिनी या तु प्रकृतिः कामरूपिणी
सा सूते त्रिजगत्कृत्स्न वेदाश्च त्रिगुणात्मिका ॥४॥
ते वेदास्त्रिजगद्धर्मशासना धर्मनाशना ।
भक्तिप्रवर्तका लोके कामिना विषयैषिणाम ॥५॥
वात्स्यायनादिमुनयो मनवो वेदपारगा ।
वहन्ति बलिमीशस्य वेदवाक्यानुशासिता: ॥६॥
वय तदनुगा: कर्म धर्म निष्ठा रणप्रिया: ।
जिघासन्त जिघासामो वेदार्थकृतनिश्चया. ॥७॥

राजा शशिध्वर्ज बोले—हे राजाश्रो ! जिनके असाधारण कर्म कीर्तन के योग्य हैं, उन भक्तो और भक्ति का महात्म्य मैंने कह दिया है । अब और क्या कहूँ ? ।१। राजा बोले—हे राजन् ! आप सब जीवो के कल्याण करने मे तत्पर तथा वैष्णव श्रेष्ठ हैं । फिर आप हिंसादि दोषो से युक्त युद्ध करने में क्यो प्रवृत्त होगये थे ।२। प्रायः साधुजन

विषयासक्त जीवो का हित साधन करने के कार्य में अपने प्राण, बुद्धि, धन तथा वाणी आदि सब कुछ लगा देते हैं ।३। शशिध्वज बोले— त्रिगुणात्मिका प्रकृति ही द्वैतभाव को प्रकाशित करती है। सभी वेदो और तीनो लोको को उत्पन्न करने वाली यह प्रकृति कामरूपिणी है ।४। तीनो लोको मे वेद ही धर्म की व्यवस्था द्वारा अधर्म का नाश करते हुए विषयासक्त कामियो में भी भक्ति का प्रवर्त्तन करते हैं ।५। वेदो के ज्ञाता वात्स्यायन आदि मुनिगणो और मनुओ ने वेदाणी के शासन को मानते हुए परमात्मा के हेतु बलि प्रदान की थी ।६। हम भी उन्ही का अनुगमन करते धर्म पूर्वक युद्ध मे तत्पर होते और वैदिक शिक्षा के अनुसार ही युद्ध मे आततायियो का संहार कर डालते हैं ।७।

अवध्यस्य वधे यावास्तावान्वध्यस्य रक्षणे ।
इत्याह भगवान्व्यास. सर्ववेदार्थतत्पर: ॥८॥

प्रयाश्चित्त न तत्रास्ति तत्राधर्मः प्रवर्त्तते ।
अतोऽत्र वाहिनी हत्वा भवता युधि दुर्जयाम् ॥९॥

धर्म कृतश्च कल्किन्तु समानीयागता वयम् ।
एषा भक्तिर्मम मता तवाभिप्रेतमीरय ॥१०॥

अह तदनुवक्ष्यामि वेदावाक्यानुसारत. ।
यदि विष्णु. स सर्वत्र तदा क हन्ति को हतः ॥११॥

हन्ता विष्णुर्हतो विष्णुर्वध. कस्यास्ति तत्र चेत् ।
युद्धयज्ञादिषु वधे न वधो वेदशाशासमात् ।१२।
इति गायन्ति मुनयो मनवश्च चतुर्दश ।

इत्थं युद्धैश्च यज्ञैश्च भजामो विष्णुमीश्वरम् ।१३।
अतो भागवती मायामाश्रित्य विधिना यजन् ।
सेव्यसेवकभावेन सुखो भवति नान्यथा ।१४।

सर्व वेदार्थ के ज्ञानी भगवान् वेद व्यासजी का कथन है कि जो पाप-अवध्य के मारने में है वही वध योग्य का वध का न करने मे भी

है ।८। इस प्रकार का आचरण न करना अधर्म है । उसका कोई प्राय-श्चित्त भी नही है । इसीलिए मै रणभूमि मे दुर्जय सेना के वध मे तत्पर होकर धर्म, सत्युग और कल्किजी को यहाँ ले आया । मेरे मत मे यही वास्तविक भक्ति है । इस विषय मे आपका अभिप्राय जो हो, वह बताइये ।९-१०। इसके अतिरिक्त मैं वेद-वाणी के अनुसार ही कहता हूँ कि भगवान् विष्णु सर्व-व्यापी हैं । यदि यह यथार्थ है तो फिर कौन किसी को मारता है और कौन मरता है ? ।११। जब मारने वाले विष्णु है, और मरने वाले भी विष्णु ही हैं, तो किसका वध हो सकता हैं ? फिर वेद की ही व्यवस्था है कि युद्ध आदि कर्मो मे जो वध होता है, वह वध नही माना जाता ।१२। यही बात चौदह मनुओ और मुनियो ने भी कही है । हम भी इसी के अनुसार यज्ञो और युद्धो के द्वारा भगवान् विष्णु का पूजन किया करते है । १३। इस प्रकार भगवती माया के आश्रय मे स्थित हुआ साधक विधिवत् सेव्य-सेवक भाव से भगवान् का यजन करके सुखी होता है, अन्य कोई विधि सुख-प्राप्त करने की नही है ।१४।

निमेर्भूपस्य भूपाल ! गुरो शापान्मृतस्य च ।
तादृशे भोगायतने विराग. कथमुच्यताम् ।१५।

शिष्यशापाद्वशिष्ठस्य देहावाप्तिमृतस्य च ।
श्रूयते किल मुक्ताना जन्म भक्तविमुक्तता ।१६।

अतो भागवती माया दुर्बोध्याविजितात्मनाम् ।
विमोहयति ससारे नानात्वादिन्द्रजालवत् ।१७।

इति तेषा वचो भूय· श्रुत्वा राजा शशिध्वज.
प्रोवाच वदता श्रेष्ठो भक्तिप्रवणया धिया ।१८।

बहूना जन्मनामन्ते तीर्थक्षेत्रादियोगत.
दैवाद्भवेत्साधुसगस्तस्मादीश्वरदर्शनम् ।१९।

ततः सालोक्यताम्प्राप्य भजन्त्याहृतचेतसः ।
भक्त्वा भोगाननपमान्भक्तो भवति ससृतौ ।२०।

रजोजुष कर्मपरा, हरिपूजापरा· सदा ।
तन्नामानि प्रगायन्ति तद्रूपस्मरणोत्सुका ।२१।

राजा बोले—हे भूपते ! गुरु वसिष्ठ के शापवश राजा निमि ने देह छोडा था। परन्तु आपके इस भोगमय देह मे वैराग्य की उत्पत्ति किस प्रकार हुई ? जब यज्ञान्त मे देवताओ ने उनकी रक्षा करते हुए उस देह में प्रवेश करने की आज्ञा की, तब भी वे अपने छोडे हुए देह में प्रविष्ट होने मे सहमत न हुए, इसका क्या कारण था ? ।१५। सुना जाता है कि शिष्य के शाप से गुरु वसिष्ठ ने देह त्याग कर पुनः देह को प्राप्त कर लिया। परन्तु, भक्त तो मोक्ष को प्राप्त कर लेता है, तब वह उस विमुक्तता को छोड कर जन्म किस प्रकार धारण करे ? ।१६। इस प्रकार भगवद् माया के वर्णन मे ज्ञानीजन भी अपने को असमर्थ पाते हैं। क्योकि वह माया इन्द्रजाल के समान समस्त लोक मे विस्तीर्ण होती हुई जीवो को विमोहित करती रहती है।१७। वक्ता श्रेष्ठ राजा शशिध्वज उनके वचन सुन कर भक्तिपूर्वक प्रणाम करते हुए बोले।१८। उन्होने कहा—तीर्थ, क्षेत्रादि के योग को प्राप्त हुआ प्राणी जन्म जन्मान्तरो मे भगवत्कृपा से साधु सग को पाता है और उसी साधु सग के प्रभाव से उसे ईश्वर के दर्शन हो सकते हैं।१९। फिर वह सालोक्य पद को प्राप्त होकर हर्षित हृदय से हरि-भजन में तत्पर होता है। इस प्रकार भोग्य वस्तुओ का उपभोग करता हुआ वह मनुष्य लोक मे भक्त हो जाता है।२०। रजोगुणी पुरुष अपने कर्म द्वारा सदा हरिपूजा-परायण रहते तथा उनके नाम और रूपादि का स्मरण करने मे सदा उत्सुक रहते हैं।२१।

अवतारानुकरणपर्वव्रतमहोत्सवाः ।
भगवद्भक्तिपूजाढ्याः परमानन्दसम्प्लुताः ।२२।
अतो मोक्ष न वाँच्छन्ति दृष्टमुक्तिफलोदयाः ।
मुक्त्वालभन्ते जन्मानि हरिभावप्रकाशकाः ।२३।

हरिरूपाः क्षेत्रतीर्थंपावना धर्मतत्परा ।
सारासारविद सेव्यसेवका द्वैतविग्रहाः ।२४।

यथावतार कृष्णस्य तथा तत्सेविनामिह ।
एव निमेर्निमिषता लीला भक्तस्य लोचने ।२६।

मुक्तस्यापि वशिष्ठस्य शरीरभजनादरः ।
एतद्व कथित भूपा माहात्म्य भक्तिभक्तयोः ।२६।

सद्य पापहर पुंसा हरिभक्तिविवद्र्धनम् ।
सर्वेन्द्रियस्थदेवानामानन्दसुखसञ्चयम् ।
कामरागादिदोषघ्न मायामोहनिवारणम् ।२७।

नानाशास्त्रपुराणवेदविमलव्याख्यामृताम्भोनिधि
समथ्यातिचिर त्रिलोकमुनयो व्यासादयो भावुका. ।
कृष्णे भावमनन्नमेवममल हैयङ्गवन नव
लब्ध्वा समृतिनाशन त्रिभुवने श्रीकृष्णतुल्यायते ।२८।

वे श्रीहरि के अवतार का सदा अनुकरण करने वाले होते हैं। पर्वकाल मे व्रत, पूजन, भक्ति आदि मे तत्पर रहते हुए भी परमानन्द में लिप्त रहते हैं ।२२। वे सभी भक्तजन भोग फल को प्रत्यक्ष प्रकट होता देख कर मोक्ष की कामना नही करते और भोगो को भोगते हुए जन्म प्राप्त करके भी सदा हरिभाव को प्रकाशित करते रहते हैं ।२३। भक्त-जन हरिस्वरूप और क्षेत्र तथा तीर्थों के पवित्र करने वाले, सार और असार के ज्ञाता, धर्मानुष्ठान मे तत्पर रहते हुए सेव्य-सेवक रूप मे निवास करते हैं ।२४। भगवान श्रीकृष्ण के अवतार लेने के समान ही उनके सेवक भी समय-समय पर अवतार ग्रहण करते रहते हैं। इसी लिए तो निमि का भक्तो के नेत्रो पर निमेष रूप से निवास है, इसे भगवान की ही लीला समझना चाहिए ।२५। गुरु वसिष्ठ ने मुक्त होकर भी जो पुनः देह धारण किया, वह भी इसी कारण से किया था। हे राजाओ ! इस प्रकार भक्ति और भक्त का यह माहात्म्य मैंने आपके

प्रति कहा है ।२६। इसके सुनने से ही सब पाप नष्ट हो जाते हैं, मन मे हरि-भक्ति की वृद्धि होती और इन्द्रियो के अधिष्ठाता देवता भी सुखी होते है । काम और रागादि सभी दोष तथा माया-मोह का नाश होता है ।२७। तीनो लोको के ज्ञाता मुनियो ने वेद पुराणादि शास्त्रो के अमृत रूपी सार का मजन करके यह अत्यन्त पवित्र एव मगल रूप श्रीकृष्ण भक्ति को प्राप्त किया है । यह भव-बन्धन को नष्ट करने वाली है । उन मुनियो को इस प्रकार का फल पाते देख कर उनको भगवान श्रीकृष्ण के समान ही माना गया है ।२८।

त्रयोदश अध्याय

इति भूत सभाया स कथयित्वा निजाः कथाः।
शशिध्वज प्रीतमना प्राह कल्कि कृताञ्जलि ।१।
त्वहि नाथ त्रिलोकेश एतेभूपास्त्वदाश्रया.
मा तथा विद्धि राजन त्वन्निदेशकर हरे ।२।
तपस्तप्तु यामि काम हरिद्वार मुनिप्रियम् ।
एते मत्पुत्रपौत्राश्च पालनीयास्त्वदाश्रया. ।३।
ममापि काम जानासि पुरा जाम्बवतो यथा ।
निधन द्विविदस्यापि तदा सर्व सुरेश्वर ।४।
इत्युक्त्वा गन्तुमुद्युक्त भार्यया सहित नृपम् ।
लज्जयाधोमुख कल्कि प्राहुर्भूपा किमित्युत ।५।

सूतजी बोले—सभा मे उपस्थित सब जनो के समक्ष इस प्रकार अपना वृत्तान्त कहने के उपरान्त राजा शशिध्वज ने हाथ जोड कर कल्कि जी से कहा ।१। राजा बोले—हे हरे! हे त्रिलोकेश! यह सभी राजा-गण आपके आश्रय में स्थित हैं। आप इन सबको और मुझे भी अपनी आज्ञा के पालन मे तत्पर समझिये ।२। अब मैं ऋषियो के लिए प्रिय हरिद्वार के लिए तपस्या हेतु गमन करूँगा। मेरे यह पुत्र-पौत्रादि सब आपके ही आश्रित हैं और आपके द्वारा ही प्रतिपालन करने योग्य हैं ।३। हे सुरेश्वर! आप मेरे अभिप्राय को भले प्रकार जानते हैं। अपने पूर्व अवतार मे आपने जाम्बवन्त और द्विविद आदि जिन वानरोका वध किया

था वह भी आपको स्मरण है ।४। यह कह कर राजा शशिध्वज अपनी पत्नी सुशान्ता सहित प्रस्थान के लिए उद्यत हुए । उस समय कल्किजी ने अपना मुख लज्जा ले झुका लिया । यह देख कर राजागण उसे जानने की इच्छा से बोले ।५।

हे नाथ किमनेनोक्तं यच्छ्रुत्वा त्वमधोमुखः ।
कथं तद्ब्रूहि कामं नः किं न शाधि संशयात् ।६।
अमुं पृच्छत वो भूपा युष्माकं संशयच्छिदम्
शशिध्वजं महाप्राज्ञं मद्भक्तिकृतनिश्चयम् ।७।
इति कल्केर्वचः श्रुत्वा ते भूपाः प्रोक्तकारिणः ।
राजानं तं पुनः प्रहुः संशयापन्नमानसाः ।८।
किं त्वया कथितं राजञ्छशिध्वज महामते ।
कथं कल्किस्तद्वदिदं श्रुत्वैवाभूदधोमुखः ।९।
पुरा रामावतारेण लक्ष्मणादिन्द्रजिद्वधम्
लक्षश्चलक्ष्य द्विविदा राक्षसत्वात्सदारुणात्।१०।

राजाओं ने कहा—हे नाथ ! राजा शशिध्वज ने ऐसी क्या बात आपसे कही थी, जिसे सुन कर आपने लज्जा से अपना मुख नीचा कर लिया था । यह हमारे प्रति कह कर हमारा सन्देह दूर करिये ।६। कल्किजी बोले—हे राजाओ ! आप उन्हीं महाराज शशिध्वज से ही इस विषय मे प्रश्न करिये । क्योंकि वे परम ज्ञानी और मुझमे अनन्य भक्ति रखने वाले हैं । वे ही आपके सन्देह को नष्ट करेंगे ।७। यह सुनकर सभी राजागण संशययुक्त हृदय से राजा शशिध्वज से प्रश्न करने लगे । उन्होंने कहा—हे राजन् ! हे महामते ! हे महाराज शशिध्वज ! आपने अभी ऐसी कौन-सी बात कल्किजी के प्रति कही थी, जिसे सुन कर वे लज्जावनत मुख वाले हो गये थे ।८-९। शशिध्वज बोले—हे राजागण ! पुरा काल में जब रामावतार हुआ था, तब लक्ष्मणजी के द्वारा वध को प्राप्त हुए इन्द्रजीत मेघनाद की राक्षस भाव से मुक्ति हो गई थी ।१०।

अग्न्यागारे ब्रह्मवीरवधेनैकाह्निकोज्वर· ।
मोक्षमणस्य शरीरेण प्रविष्टो मोहकारक. ।११।
त व्याकुलमभिप्रेक्ष्य द्विविदो भिषजा वर. ।
अश्विवशेन सजात स्वापयामास लक्ष्मणम् ।१२।
लिखित्वा रामभद्रस्य सज्ञापत्रीमतन्द्रित ।
लक्ष्मण दर्शयामास ऊर्ध्वस्तिष्ठन्महाभुजः ।१३।
लक्ष्मणो वीक्ष्य ता पत्री विज्वरो बलवानभूत् ।
स ततो द्विविद प्राह वर वरय वानर ।१४।
द्विविदस्तच्च श्रुत्वा लक्ष्मण प्राह हृष्टवत्
त्वत्तो मरण प्रार्थ्य वानरत्वाच्च मोचनम् ।१५।

उस समय अग्निशाला मे ब्राह्मण की हत्या करने के पाप स्वरूप लक्ष्मणजी के शरीर मे एकाह्निक ज्वर घुस गया, जिससे उन्हे मोहादि उपद्रवो ने घेर लिया ।११। उस समय अश्विनीकुमार के वश मे उत्पन्न हुए भिषग्वर द्विविद वानर ने लक्ष्मणजी को ज्वर की पीडा से व्याकुल देख कर एक मन्त्र बतलाया ।१२। इस मन्त्र को लिख कर भगवान् श्रीराम के सामने ही एक ऊँचे स्थान पर टाक कर लक्ष्मणजी को दिखाया गया ।१३। इस मन्त्र को देखते ही लक्ष्मणजी का ज्वर नष्ट हो गया और उनमे शक्ति आ गई । फिर लक्ष्मणजी ने द्विविद नामक उस वानर से कहा—हे वानर ! आप वर माँगिये ।१४। तब द्विविद ने अत्यन्त हर्षित होकर कहा कि मेरी आपसे ही यही प्रार्थना है कि वानर भाव से मुक्त होने के उपाय स्वरूप मेरा मरण आपके ही द्वारा हो ।१५।

पुनस्तं लक्ष्मणः प्राह मम जन्मान्तरे तव ।
मोचन भविता कीश बलरामशरीरिणः ।१६।

समुद्रस्योत्तारे तीरे द्विविदो नाम वानरः ।
ऐकाह्निक ज्वर हन्ति लिखन' यस्तु पश्यति ।१७।

इति मन्त्राक्षर द्वारि लिखित्वा तालपत्रके ।
यस्तु पश्यति तस्यापि नश्यत्यैकाह्निकज्वरः ।१८।

इति तस्य वर लब्ध्वा चिरायु सुस्थवानरः ।
बलरामास्त्रभिन्नात्मा मोक्षमापाकुतोभयम् ।१६।
तथा क्षेत्रे सूतपुत्रो निहतो लोमहर्षण ।
बलरामास्त्रयुक्तात्मा नैमिषेऽभूत्स्वबाञ्छया ।२०।

तब लक्ष्मणजी ने उसे आश्वासन दिया कि अगले जन्म मे जब मैं बल्देवावतार लूँगा, तब तुम मेरे हाथ से मृत्यु को प्राप्त होकर वानर भाव से मुक्त हो जाओगे ।१६। "समुद्र स्योत्तरे तीरे द्विविदो नाम वानरः" यही वह मन्त्र है, जिसे लिखा हुआ देखने पर ऐकाहिक ज्वर नष्ट होजाता है ।१७। इस मन्त्र को द्वार पर अथवा ताल । पत्र पर लिख कर देखना चाहिये तब ऐकाहिक ज्वर का नाश होना सम्भव है ।१८। लक्ष्मणजी से इस प्रकार वर को प्राप्त हुआ वह द्विविद नामक वानर स्वस्थ शरीर से बहुत काल जीवित रहा और बलदेवजी का अवतार होने पर उनके अस्त्र से मृत्यु को प्राप्त होकर अभयात्मिका मुक्ति को प्राप्त हो गया ।१९। इसी प्रकार अपनी इच्छा से सूत पुत्र लोमहर्षण भी नैमिषारण्य मे बलदेव जी के अस्त्र से ही मारे गये ।२०।

जाम्बवाश्च पुरा भूपा वामनत्व गते हरौ :
तस्याप्यूद्र्ध्वगत पाद तत्र चक्रे प्रदक्षिणम् ।२१।
मनोजव त निरीक्ष्य वामनः प्राह विस्मित ।
मत्तो वृणु वर काममृक्षाधीश महाबल ।२२।
इति त हृष्टवदनो ब्रह्माशो जाम्बवान्मुदा ।
प्राह भो चक्रदहनान्मम मृत्युर्भविष्यति ।२३।
इत्युक्ते वामन प्राहकृष्णजन्मनि मे तव ।
मोक्षश्चक्रेण सभिन्नशिरसः सभविष्यति ।२४।
मम कृष्णावतारे तु सूर्यभक्तस्य भूपतेः ।
सत्रजितस्तु मण्यर्थे दुर्वाद समजायत ।२५।

हे राजाओ ! वामनावतार मे वामनजी ने जब तीन पग में ही तीनो लोकों को नाप लिया, तब उनके ऊर्ध्वलोक मे रखे हुए चरण की

जाम्ववत ने प्रदक्षिण की थी ।२१। उस समय उस जाम्बवान् को मन के समान द्रुत वेग वाला देख कर वामनजी अत्यन्त आश्चर्य चकित होकर बोले—हे ऋक्षाधीश ! तुम महाबली हो, मुझसे इच्छित वर माँगो ।२२। यह सुन कर हर्षित मन हुए ब्रह्मांश रूप जाम्बवान् ने कहा कि हे प्रभो ! मेरी मृत्यु आपके चक्र से हो, यही वर प्रदान कीजिये ।२३। जाम्बवान् के वचन सुन कर वामनजी ने कहा—कृष्णावतार मे मेरे चक्र से तुम्हारा शिर कटेगा और तुम मोक्ष को प्राप्त हो जाओगे ।२४। तदनन्तर कृष्णावतार हुआ । उस समय मैं सूर्य का भक्त सत्राजित् नामक एक राजा हुआ था । [तब एक मणि के कारण दुर्वाद उत्पन्न हो गया ।२५।

प्रसेनस्य मम भ्रातुर्वधस्तु मणिहेतुकः ।
सिंहात्तस्यापि मण्यर्थे वधो जाम्बवता कृतः । २६।
दुर्वादभयभीतस्य कृष्णस्यामिततेजस ।
मण्यन्वेषणचित्तस्य ऋक्षेणाभूद्रणो बिले ।२७।
स निजेशं परिज्ञाय बच्चक्रग्रस्तबन्धनम् ।
मुक्तो बभूव सहसा कृष्ण पश्यन्सलक्ष्मणाम् ।२७।
नवदूर्वादलश्याम दृष्ट्वा प्रादान्निजात्मजाम् ।
तदा जाम्बवती कन्या प्रगृह्य मणिना सह ।२६।
द्वारका पुरमागत्य सभाया मामुपाह्वयत् ।
आहूय मह्यं प्रददौ मणि मुनिगणार्च्चितम् ।३०।

प्रसेन नामक मेरा अनुज था । उसे एक सिंह ने मणि के लिए मार डाला । फिर वह सिंह भी उसी मणि के कारण जाम्बवान् के द्वारा वध को प्राप्त हुआ ।२६। उधर कलक के भय से अमित तेज वाले भगवान् श्रीकृष्ण उस मणि की खोज करने लगे, तभी एक गिरि-गुहा में जाम्बवान् के साथ उनका घोर युद्ध हुआ ।२७। तभी जाम्बवान् अपने स्वामी को पहचान गया । भगवान् के चक्र से उसका शिर कट

गया। लक्ष्मण सहित भगवान् का दर्शन करते हुए जाम्बवान् की मोक्ष की प्राप्ति हुई।२८। तब उस ऋक्षराज ने अपने प्रभु की श्यामल मूर्ति का दर्शन करते हुए उन्हे अपनी पुत्री जाम्बवती के सहित वह मणि भेंट कर दी।२९। फिर श्रीकृष्ण ने द्वारका की राज सभा मे आकर मुझे वहाँ बुलाया और महर्षियो के द्वारा पूजित वह मणि उन्होंने मुझे दे दी।३०।

सोऽहं तां लज्जया तेन मणिना कन्यकां स्वकाम् ।
विवाहेन ददावस्मै लावण्याज्जगृहे मणिम् ।३१।
तां सत्यभामामादाय मणिं मय्यर्प्य स प्रभुः ।
द्वारकामागत्य पुनर्गजाह्वयमगाद्विभु. ।३२।
गते कृष्णे मां निहत्य शतधन्वाग्रहीन्मणिम् ।
अतोऽहमिह जानामि पूर्वजन्मनि यत्कृतम् ।३३।
मिथ्याभिशापात्कृष्णस्य नैवाभून्मोचनं मम ।
अतोऽहं कल्किरूपाय कृष्णाय परमात्मने ।
दत्त्वा रमां सत्यभामारूपिणीं यामि सद्गतिम् ।३४।

यह देख कर मैं अत्यन्त लज्जित हुआ और मैंने अपनी सत्यभामा नाम की कन्या के सहित वह मणि श्रीकृष्ण को ही दे दी। उन दोनो के लावण्य से आकर्षित होकर उन्होने उन्हें ग्रहण कर लिया।३१। तदनन्तर श्रीकृष्ण ने मणि मेरे पास रख दी और स्वयं सत्यभामा को साथ लेकर द्वारका से हस्तिनापुर को चले गये।३२। श्रीकृष्ण के चले जाने पर शतधन्वा नामक एक राजा ने मणि के निमित्त मेरा वध कर दिया और मणि को ले लिया। इस प्रकार इन कल्किजी ने अपने पूर्वावतार में जो किया, उस सब को मैं भले प्रकार जानता हूँ।३३। श्रीकृष्ण को मैंने झूँठा कलंक लगाया था, इसी पाप से उस जन्म में मैं मोक्ष को प्राप्त नही हो सका। यही कारण हैं कि इस जन्म में अपनी रमा रूपिणी सत्यभामा को कल्कि रूप कृष्ण को देकर मैं सद्गति को प्राप्त करूँगा।३४।

सुदर्शनास्त्रघातेन मरण मम काक्षितम् ।
मरणोऽभूदिति ज्ञात्वा रणे वाञ्छामि मोचनम् ।३५।
इत्यसौ जगतामीश: कल्कि: श्वशुरघातनम् ।
श्रुत्वैवाधोमुखस्तस्थौ ह्रिया धर्मभिया प्रभु ।३६।
अत्याश्चर्यमपूर्वमुत्तममिद श्रुत्वा नृपा विस्मिता
लोका ससदि हर्षिता मुनिगणा कल्केर्गुणाकर्षिता: ।
आख्यान परमादरेण सुखद धन्य यशस्य पर
श्रीमद्भूपशशिध्वजेरितवजो मोक्षप्रद चाभवन् ।३७।

यह जान कर कि युद्धस्थल मे मरने से मोक्ष की प्राप्ति सभव है, मैंने यह अभिलाषा की थी कि कल्किजी के सुदर्शन चक्र-प्रहार से मेरा मरण हो जायगा ।३५। जगदीश्वर भगवान् कल्कि ने अपने श्वसुर का इस प्रकार मारा जाना स्मरण करके ही धर्मभय और लज्ज से अपना मुख झुका लिया था ।३५। इस अत्यन्त विस्मय युक्त, अपूर्व और श्रेष्ठ उपाख्यान को सुन कर राजागण विस्मित हो उठे तथा सभी सभासद् आनन्द विभोर हुए । कल्किजी के गुणो के प्रति मुनिगण भी आकर्षित हो रहे थे । राजा शशिध्वज के कहे हुए इस उपाख्यान को सुनने वाला प्राणी सुखी, धन्य और यशस्वी होकर अन्त मे मोक्ष को प्राप्त करता है, उसका कभी पुनर्जन्म नही होता ।३७।

चतुर्दश अध्याय

ततः कल्किर्महातेजाः श्वशुर त शशिध्वजम् ।
समामन्त्र्य वचश्चित्रै सह भूपैर्ययौ हरि. ।१।
शशिध्वजो वर लब्धा यथाकाम महेश्वरीम् ।
स्तुत्वा माया त्यक्तमाय सप्रिय· प्रययौ वनम् ।२।
कल्किः सेनागणै साद्धं प्रययौ काञ्चनी पुरीम् ।
गिरिदुर्गावृता गुप्ता भोगिभिर्विषवर्षिभि ।३।
विदार्य दुर्ग सगण कल्कि परपुरञ्जय· ।
छित्वा विषायुधान्बाणैस्ता पुरी ददृशोऽच्युतः।४।
मणिकाञ्चनचित्राढ्या नागकन्यागणावृताम् ।
हरिचन्दनवृक्षाढ्या मनुजै· परिवर्जिताम् ।५।

सूतजी बोले—फिर अत्यन्त तेज वाले कल्किजी ने अपने अद्भुत वचनो के द्वारा अपने श्वसुर राजा शशिध्वज को सन्तुष्ट किया और राजाओ के सहित उठ कर चले गये ।१। राजा शशिध्वज भी इच्छानुसार वर प्राप्त करके, महेश्वरी माया का स्तव करते हुए अपनी पत्नी सहित विषय–बन्धन से मुक्त होकर वन को गये ।२। इधर कल्किजी ने पर्वत रूपी दुर्ग से आवृत्त काञ्चनीपुरी को प्रस्थान किया इस पुरी की रक्षा विष-वर्षक सर्प करते हैं ।३। शत्रुओ के पुर के विजेता कल्किजी अपनी सेना सहित आगे बढ़े और उस कठिन दुर्ग को तोड कर तथा विष-वर्षक सर्पो को मार कर पुरी मे प्रविष्ट हुए ।४। वहाँ उन्होने देखा कि वह नगरी सर्वत्र मणियो और स्वर्ण से युक्त है तथा सब ओर नाग

कन्याएँ छाई हुई हैं। वह पुरी स्थान स्थान पर कल्पवृक्षों से सुशोभित हो रही है। वहाँ मनुष्य तो नाम को भी नहीं हैं।५।

विलोक्य कल्कि: प्रहसन्प्राह भूपान्किमित्यहो।
सर्पस्येय पुरी रम्या नराया भयदायिनी।
नागनारीगणाकीर्णा किं यास्यमो वदन्त्विह।६।

इति कर्तव्यताव्यग्र रमानाथ हरि प्रभुम्।
भूपास्तदनुरूपाश्च खे वागाहाशरीरिणि।७।

विलोक्य नेमां सेनाभि प्रवेष्टु भोस्त्वमर्हसि।
त्वा विनान्ये मरिष्यन्ति विषकन्यादृशादपि।८।

आकाशवाणीमकर्ण्य कल्कि: शुकसहायकृत्।
ययावेक: खड्गधरस्तुरगेण त्वरान्वित:।९।

गत्वा ता ददृशे वीरो धीरणा धैर्य्यनाशिनीम्।
रूपेणालक्ष्य लक्ष्मीश प्राह प्रहसितानना।१०।

यह देख कर हँसते हुए कल्किजी ने राजाओं से कहा—हे राजन् यह सर्पपुरी कैसी आश्चर्यमयी एवं मनुष्यों के लिए अत्यन्त भयावनी है। इसमें नागकन्याओं का ही निवास हैं। अब कहिए कि इसमें प्रवेश करें अथवा नहीं ?।६। रमानाथ कल्किजी और सब राजागण भी यह निश्चय नहीं कर पाये कि क्या करना चाहिये, इसलिए अत्यन्त चिंतित हुये। तब आकाशवाणी सुनाई दी।७। इस पुरी में सेना-सहित प्रविष्ट नहीं होना चाहिए। क्योंकि जैसे ही पुरी निवासिनी विष-कन्याओं की दृष्टि पड़ेगी, वैसे ही नष्ट हो जाओगे।८। आकाशवाणी का निर्देश सुन कर कल्किजी एकाकी ही खड्ग लेकर घोडे पर चढ़े और शुक को साथ लेकर चल दिये।९। कुछ आगे जाने पर उन्हें एक अपूर्व कन्या दिखाई दी, जिसे देखते ही ज्ञानी जन भी धैर्य छोड देते हैं। वह कन्या अपूर्व रूप वाले कल्किजी को देख कर हँसती हुई बोली।१०।

ससारेऽस्यिन्म नयनोर्वीक्षणक्षीणदेहा
लोका भूपा· कति कति गता मृत्युमत्युग्रवीर्या ।
साह् दीनासुरसुरन प्रेक्षण प्रेमहीना
ते नेत्राब्जद्वयरससुधाप्लाविता त्वां नमामि ।११।
क्वाह विषेक्षणादीना क्वामृतेक्षणसङ्गम ।
भवेऽस्मिन्भाग्यहीनाया: केनाहो तपसा कृत: ।१२।
कासि कन्यासि सुश्रोणि कस्मादेषा गतिस्तव ।
ब्रूहि मां कर्मणा केन विषनेत्र तवाभवत् ।१३।
चित्रग्रीवस्य भार्याहं गन्धर्वस्य महामते ।
सुलोचनेति विख्याता पत्युरत्यन्तकामदा ।१४।
ऐकदाह् विमानेन पत्या पीठेन सङ्गता ।
गन्धमादनकुञ्जेषु रेमे कामकलाकुला ।१५।

विषकन्या ने कहा—इस संसार मे ग्रत्यन्त पराक्रमी ग्रनेक राजागण तथा ग्रन्यान्य मनुष्य मृत्यु को प्राप्त हो चुके हैं। इस लिए मैं ग्रत्यन्त दु:खित हूँ। देवता, दैत्य ग्रौर मनुष्य किसी के साथ भी मेरा परिणय सभव नहीं है। मैं ग्रापके ग्रमृत के समान दृष्टि प्रवाह मे बहती हुई ग्रापको नमस्कार कर रही हूँ।११। मैं मन्द भाग्य वाली ग्रौर विष-दृष्टि से युक्त हूँ ग्रौर ग्रापकी दृष्टि ग्रमृतमयी है। मैं किस तपस्या के प्रभाव से ग्रापका दर्शन प्राप्त कर सकी हूँ।१२। कल्किजी ने कहा—हे सुश्रोणि! तुम कौन एव किका कन्या हो? तुम इस ग्रवस्था को किस प्रकार प्राप्त हुई हो? किस कर्म-दोष से तुम्हे यह विष दृष्टि मिली है।१३। विषकन्या ने कहा—हे महामते! चित्रग्रीव नामक जो गन्धर्व हैं मैं उनकी पत्नी सुलोचना हूँ। मेरे द्वारा मेरे पति का मन अत्यन्त ग्रनान्दित रहता था।१४। एक समय की बात है—जब मैं ग्रपने पति के साथ विमानारूढ़ होकर गन्धमादन पर्वत के एक कुञ्ज मे शिला पर बैठ कर विहार-रत हो गई।१५।

तत्र यक्षमुनिं दृष्ट्वा विकृताकारमातुरम्।१६।
रूपयौवनगर्वेण कटाक्षेणाहसं मदात् ।१६।

सोपालम्भ मुनिः श्रुत्वा वचन च ममाप्रियम् ।
शशाप मा क्रुधा तत्र तेनाहं विषदर्शना ।१७।
निक्षिप्ताहं सर्पपुरे काञ्चन्या नागिनीगणे ।
पतिहीना दैवहीना चरामि विषवर्षिणी ।१८।
न जाने केन तपसा भवद्दृष्टिपथ गता ।
त्यक्तशापामृताक्षाहं पतिलोक व्रजाम्यत ।१९।
अहो तेषामस्तु शाप प्रसादो मा सतामिह ।
पत्यु. शापदृषेर्मोक्षात्तव पादाब्जदशनम् ।२०।

उस समय मैं अपने रूप यौवन के गर्व से अत्यन्त मदोन्मत्त हो रही थी। वहाँ विकट शरीर वाले यक्षमुनि को देख कर मैं उन पर कटाक्ष करती हुई, उनकी हँसी उडाने लगी ।१६। मेरे मुख से अपने प्रति अपमानजनक वचन सुन कर मुनि क्रोधित हो उठे और उन्होने मुझे जो शाप दिया, उससे मैं तुरन्त विषदृष्टि को प्राप्त हो गई ।१७। तब मुझे इस कांचनीपुरी मे नागनियो के मध्य डाल दिया गया। तभी से मेरी दृष्टि विष की वर्षा किया करती है। इस प्रकार मै अभागी पति से हीन होकर यहाँ एकाकी विचरती हूँ ।१८। मुझे ज्ञात नही कि अपनी किस तपस्या के फल से मैं आपकी दृष्टि के सामने आ गई हूँ। आपके दर्शन से मैं शाप-मुक्त होकर अमृतवर्षिणी दृष्टि से सम्पन्न हो गई हूँ। अब मैं अपने पति के पास गमन करती हूँ ।१९। अहा ! साधुओ के प्रसन्न होने की अपेक्षा त शाप देना भी श्रेष्ठ है क्योकि शाप के कारण ही तो मोक्ष स्वरूप आपके चरणाम्बुज का दर्शन प्राप्त हो सका है ।२०।

इत्युक्त्वा सा ययौ स्वर्गं विमानेनार्कवर्च्चसा ।
कल्किस्तु तत्पुराधीश नृप चक्रे महामतिम् ।२१।
अमर्षस्तत्सुतो धीमान् सहस्रो नाम तत्सुत. ।
सहस्रत सुतश्चासीद्राजा विश्रुतवानसि ।२२।
बृहन्नलानां भूपानां सम्भूता यस्य वंशजा ।

त मनु भूपशार्दूल नानामुनिगणैर्वृत. ।२३।
अयोध्याया चाभिषिच्य मथुरामगमद्धरि· ।
तस्यां भूप सूर्यकेतुभिषिच्य महाप्रभम् ।२४।

यह कह कर वह विषकन्या सूर्य जैसे तेजस्वी विमान पर चढ कर स्वर्ग को गई । कल्किजी ने महामति नामक एक राजा को उस पुरी के राज्य पर अभिषिक्त किया ।२१। उस राजा महामति का पुत्र अमर्ष हुआ । अमर्ष का पुत्र धीमान् सहस्र और सहस्र का पुत्र अत्यन्त प्रसिद्ध राजा असि हुआ ।।२२। उसी राजा के वंश मे वृहन्नल राजाओ की उत्पत्ति हुई । नृपशार्दूल मनु को अयोध्या का राज्य देकर अनेक मुनियो के सहित कल्किजो मथुरा पहुचे और उन्होने अत्यन्त प्रभा से सम्पन्न सूर्यकेतु को मथुरा के राज्य पर विधिवत् अभिषिक्त किया ।२३-२४।

भप चक्रे ततो गत्वा देवापिं वारणावते ।
अरिस्थल वृकस्थल माकन्दञ्च गजाह्वयम् ।२५।
पञ्चदेशेश्वर कृत्वा हरिः शम्भलमाययौ ।
शौम्भ पौड्र पुलिन्दञ्च सुराष्ट्र मगधन्तथा ।
कविप्राज्ञसुमन्तेभ्यः प्रददौ भ्रातृवत्सलः ।२६।
कीकट मध्यकर्णाटध्रमोड्र कलिङ्गकम् ।
अङ्ग वङ्ग स्वगोत्रेभ्य· प्रददौ जगदोश्वरः ।२७।
स्वय शम्भलमध्यस्थ कङ्ककेन कलापकान् ।
देश विशाखयूपाय प्रादात्कल्किः प्रतापवान् ।२८।
चोलबर्बरकर्बाख्यान्द्वारकादेशमध्यगान् ।
पुत्रेभ्य, प्रददौ कल्किः कृतवर्म्मपुरस्कृतान् ।२९।

याधा करते हुए कल्किजी ने देवापि को राज्य देकर र अरिस्थल, वृकस्थल, माकन्द, हस्तिनापुर और वारणावत-इन पाँच देप्रशो का अविपति बनाया और फिर शम्भल ग्राम के लिए चल पडे।

फिर भ्रातृवत्सल कल्किजी ने कवि, प्राज्ञ और सुमन्त्र को शौम्भ, पौण्ड्र, पुलिन्द और मगध देशका राज्य दिया ।२५-२६। फिर जगदीश्वर कल्किजी ने अपने गोत्र बाधवो को कीकट, मध्यकर्णाटक, आन्ध, उड्र कलिंग, अङ्ग और बगादि देश प्रदान किये ।२७। फिर स्वय शम्भल में रह कर विशाखयूप-नरेश को ककक और कपाल प्रदेशो का राजा बनाया ।२८। तदनन्तर उन्होने कृतवर्म्म आदि पुत्रो को द्वारका देश के मध्य मे स्थित चोल, बर्बर तथा कर्ब आदि प्रदेशो का राज्य प्रदान किया ।२९।

पित्रे धनानि रत्नानि ददौ परमभक्तितः ।
प्रजा· समाश्वास्य हरिः शम्भलग्रामवासिन. ।३०।
पद्मया रमया कल्किगृंहस्थो मुमुदे भृशम् ।
धर्मश्चतुष्पादभवत्कृतपूर्णं जगत्रयम् ।३१।
देवा यथोक्तफलदाश्चरन्ति भुवि सर्वत. ।
सर्वशस्या वसुमती हृष्टपुष्टजनावृता ।
शाठ्याचौर्य्यानृतैर्हीना आधिव्याधिविवर्जिता ।३२।
विप्रा वेदविद· सुमङ्गलयुता नार्यस्तु चार्य्याव्रतैः ।
पूजाहोमपरा. पतिव्रतधरा यागोद्यता क्षत्रियाः ।
वैश्या वस्तुषु धर्मतो विनिमयैः श्रीविष्णुपूजापरा ।
शूद्रास्तु द्विजसेवनाद्धरिकथालापाः सपर्य्यापरा. ।३३।

फिर भगवान् कल्किजी अपने पिताको अत्यन्त भक्तिपूर्वक धन-रत्न आदि भेंट करके और शम्भल ग्राम के निवासियो को सन्तुष्ट करके रमा और पद्मा के साथ गृहस्थाश्रम के सुख भोगने लगे । तब तक धर्म के चारो चरणो सम्पन्न हुए तीनो लोको में सत्युग का आविर्भाव हो गया ।३०-३१। भक्तो को इच्छित फल प्रदान करते हुए देवगण सम्पूर्ण पृथिवी पर विचरण करने लगे । धरा के सब धान्यो से परिपूर्ण होने के कारण सभी प्राणी हृष्ट-पुष्ट हो गए । शाठ्य, चौर्य अनृत, आधि,

व्याधि आदि सभी दुःख भूमण्डल से अदृश्य हो गये।३२। ब्राह्मण वेदपाठी हुए, स्त्रियाँ पतिव्रत धर्म के पालन पूर्वक धर्मानुष्ठान मे लगी। सर्वत्र पूजन और होम होने लगे। क्षत्रिय भी यज्ञादि शुभ कर्मो मे उद्यत हुए। विष्णु-पूजन मे रत रहते हुए वैश्य गण भी वस्तु विनिमय का धर्म पूर्वक व्यापार करने लगे। शूद्रगण द्विज सेवा-परायण हुए। सभी प्राणी भगवान् का गुण कीर्तन, श्रवण और उपासना मे तत्पर रहते हुए जीवनचर्या चलाने लगे।३३।

तृतीयांश—

पंचदश अध्याय

शशिध्वजो महाराज स्पुतत्वा माया गत कुत ।
का वा मायास्तुतिः सूत वद तत्वविदा वर ।
या त्वत्कथा विष्णुकथ वक्तव्या सा विशुद्धये ।१।
शृणुध्व मुनय· सर्वे मार्कण्डेयाय पृच्छते ।
शुक प्राह विशुद्धात्मा मायास्तवमनुत्तमम् ।२।
तच्छृणुष्व प्रवक्ष्यामि यथाधीत यथाश्रुतम् ।
सर्वकामप्रद नृणा पापतापविनाशनम् ।६।
भल्लाटनगर त्यक्त्वा विष्णुभक्तः शशिध्वजः ।
आत्मससारमोक्षाय मायास्तवमल जगौ ।४।
ओ ह्लीकारा सत्वसारा विशुद्धा ब्रह्मादीना मातर वेदबोध्याम्
तन्वी स्वाहा भूततन्मात्रकक्षाँ वन्देवन्द्या देवगन्धर्वसिद्धै. ।५।

शौनक जी बोले—हे सूतजी ! भगवती माया की स्तुति करके महाराज शशिध्वज कहाँ गये ? हे तत्त्वज्ञानियो मे श्रेष्ठ ! माया की स्तुति के विषय मे बताइये। माया और विष्णु की कथा मे कोई भेद नही होने से पुनीत होने के उद्देश्य से उस स्तव को हमारे प्रति कहिये ।१। सूत जी न कहा—हे ऋषियो ! मार्कण्डेयजी, के पूछने पर शुकदेव जी ने जो श्रेष्ठ माया-स्तोत्र कहा था, वही तुम्हारे प्रति कहता हूँ, सुनिये ।२। जिस माया-स्तव को मैंने सुना और पढा है, जो सुनने से सब की कामनाएँ पूर्ण करने वाला और पाप-ताप का नाशक है, उस

माया स्तव को सुनो ।३। शुकदेव जी बोले—विष्णु भक्त महाराज शशिध्वज ने जब अपने भल्लाटनगर को छोड कर ससार से विमुख होने के उद्देश्य से माया-स्तव किया ।४। शशिध्वज बोले—हे, ह्रीकार मयी, सत्यसार रूपिणी, विशुद्धा मायादेवी ! आप ब्रह्मादि देवताओ की जननी हैं। वेद भी आपकी महिमा का वखान करते हैं। समस्त भूतगण और तन्मात्राए आपकी कोख मे स्थित रहते है। आप देव, गंधर्व और सिद्धगणो से वन्दित, सूक्ष्म स्वरूप तथा स्वाहा रूपिणी हैं, मैं आपकी वन्दना करता हूँ ।५।

लोकातीतां द्वैतभूतां समीडे भूतैर्भव्या व्यासमासासिकाद्यैः
विद्वद्गीता कालकल्लोललोला लीलापाङ्गक्षिप्तससारदुर्गाम् ।३।
पूर्णा प्राप्या द्वैतलभ्या शरण्यामाद्ये शेषे मध्यतो या विभाति
नानारूपैर्देवतिर्य्यङ्मनुष्यैस्तामाधारा ब्रह्मरूपा नमामि ।७।
यस्या भासा त्रिजगद्भाति भूतैर्न भात्येतत्तदभावे विधातुः ।
कालोदैवकर्म चोपाधयो ये तस्या भाषा ताँ विशिष्टां नमामि
.भूमौ गन्धो रसताप्सु प्रतिष्ठा रूप तेजस्येव वायौ स्पृशत्वम् ।
खे शब्दो वा यच्चिदाभास्ति नाना
मताभ्येताविश्वरूपा नमामि ।६।
सावित्री त्व ब्रह्मरूपा भवानी भूतेशस्य श्रीपतेः श्रीस्वरूपा ।
शचीशक्रस्यापि नाकेश्वरस्य पत्नी श्रेष्ठा भासि माये जगत्सु

माप लोको से परे, द्वैतभूता, भव्या तथा व्यासादि ऋषियों के द्वारा वन्दिता हैं। भगवान् विष्णु भी आपका स्तोत्र करते हैं। आप काल की लहरो में लहराती रहती हैं। सभी जीव आपकी विलास लीला में पडते हैं। ऐसी आप ससार दुर्ग से तारने वाली को नमस्कार करता हूँ ।६। सृष्टि के आदि, मध्य और लय काल मे आप ही स्थित रहती हो। आप सब की आश्रयदाता को पूर्ण भाव या द्वैतभाव से ही पाया जा सकता है। देवता, तिर्यक् और मनुष्यादि योनियो मे आप ही वभक्त होकर प्रकाशित है। आप संसार की आश्रयभूता एव ब्रह्म-

स्वरूपिणी को नमस्कार है ।७। आपकी महिमा से ही यह त्रिलोकी पचभूतात्मिका रूप से प्रकाशित है। काल, दैव, कर्म, उपाधि आदि कोई भी विधाता द्वारा निश्चित भाव आपके प्रकाश के बिना प्रकाशित नही हो सकता। ऐसी आप प्रभावती को मेरा नमस्कार है ।८। आप ही पृथिवी में गन्ध, जल मे रस, तेज मे रूप, वायु में स्पर्श और आकाश मे शब्द रूप से विविध रूपो मे प्रतिष्ठित रहती हैं। आप जगत् मे व्याप्त विश्वरूपिणी को नमस्कार है ।९। आप ही ब्रह्मरूपा सावित्री है, भगवान् विष्णु की लक्ष्मी, शकर की भवानी तथा देवराज इन्द्र की शची हैं। हे माये ! सम्पूर्ण विश्व मे आप इसी प्रकार व्याप्त हो रही हैं ।१०।

बाल्ये बाला युवती यौवने त्वत्राधक्ये या स्थविरा कालकल्या
नानाकारैर्यागयोगैरुपास्या ज्ञानातीता कामरूपा विभासि ।११
वरेण्या त्व वरदा लोकसिद्धचासाध्वीधन्या लोकमान्या सुकन्या
चण्डी दुर्गा कालिका कालिकाख्या, नानदेशे
रूपवेशैर्विभासि ।१२।
तव चरणसरोज देवि ! देवादिवन्द्य यदि हृदयसरोजे ।
भावयन्तीह भक्त श्रुतियुगकुहरे वा सश्रुत
धर्म्मसम्पज्जनयति जगदाद्ये सर्वसिद्धश्च तेषाम् ।१३।
मायास्तवमिद पुण्य शुकदेवेन भाषितम् ।
मार्कण्डेयादवाप्यापि सिद्ध लेभे शशिध्वज. ।१४।
कोकामुखे तपस्तप्त्वा हरिं ध्यात्वा वनान्तरे ।
सुदर्शनेन निहतो वैकुण्ठं शरण ययौ ।१५।

आप शैशवावस्था मे बाला, यौवनावस्था मे युवती और वृद्धावस्था में वृद्धा रूप वाली रहती हैं। आप ही काल से कल्पित, ज्ञानातीता और कामरूपा है। आप विभिन्न रूपो में प्रकाशित होने वाली ईश्वरी का यज्ञ और योग के द्वारा पूजन किया जाता है। मैं आपकी वन्दना करती हूँ।११। हे वरेण्या ! आप ही उपासको को वरदात्री और सिद्धि के देने वाली हैं। आप लोकों के द्वारा मान्या, साध्वी, एव सब प्रकार से धन्या हैं। आप ही श्रेष्ठ कन्या, चण्डी, दुर्गा, कालिका आदि विभिन्न

रूपो से अनेक देशो मे प्रकाशित रहती हैं ।१२। हे ससार की आदि रूपा देवि ! यदि कोई अपने हृदय मे देवताओ आदि से वन्दित आपके चरणारविन्दो का भक्ति भाव पूर्वक ध्यान और आपका नाम-श्रवण करता है, तो उसे धर्म रूपी ऐश्वर्य और सम्पूर्ण सिद्धियो की प्राप्ति होती है ।१३। यह पवित्र माया-स्तव शुकदेव जी द्वारा कहा गया था। राजा शशिध्वज ने इसे मार्कण्डेयजी से प्राप्त करके सिद्धि-लाभ किया ।१४। वन मे स्थित कोकामुख नामक स्थान में तपस्या करते हुए राजा शशिध्वज सुदर्शन चक्र से निहत होकर वैकुण्ठ को प्राप्त हुए ।१५।



षोडश अध्याय

एतद्व कथित विप्रा· शशिध्वजविमोक्षणम् ।
कल्केः कथामप्रतिमा शृण्वन्तु विबुधर्षभो ।१।
वेदो धर्म्म कृतयुग देवलोकश्चराचरा ।
हृष्ट पुष्टा· सुसतुष्टा कल्कौ राजनि चाभवन् ।२।
नानादेवादिलिङ्गेषु भूषणैर्भूषितेषु च ।
इन्द्रजालिकवद्वृत्तिकल्पका· पूजका जना ।३।
न सन्ति मायामोहाढ्या पाखण्डा. साधुवञ्चकाः ।
तिलकाचितसर्वाङ्गा कल्कौ राजनि कुत्रचित् ।४।
शम्भले वसतस्तस्य पद्मया रमया सह ।
प्राह विष्णुयशा. पुत्र देवान्यष्टु जगद्धितान् ।५।

सूतजी बोले—हे ब्राह्मणो! इस प्रकार राजा शशिध्वज को मोक्ष प्राप्ति का प्रसग मैंने आपको सुनाया। अब कल्किजी के विचित्र आख्यान को पुन कहता हूँ, इसे सुनिये ।१। जब भगवान् कल्किजी राज्य सिंहासन पर प्रतिष्ठित हुए, तब वेद, धर्म, सत्युग, देवगण और चराचर युक्त विश्व हृष्ट, एव सतुष्ट हो गया ।२। पूर्व युग मे पूजा करने वाले मनुष्य देव मूर्तियों को विभिन्न प्रकार के वस्त्रालकारो से अलकृत करके इन्द्रजाल के समान रहस्य-कल्पना किया करते थे ।३। अब वह माया मोह से आवृत्त साधु वचक पाखण्ड समाप्त हो गया। कल्किजी के

राज्य मे सभी मनुष्य सर्वांग मे तिलक लगाने लगे ।४। पद्म और रमा के साथ जब कल्किजी शम्भल ग्राम में सुख पूर्वक निवास कर रहे थे, तभी एक दिन उनके पिता विष्णुयशजी ने अपने पुत्र से देवताओ को सन्तुष्ट करने वाले यज्ञ का अनुष्ठान करने को कहा ।५।

तच्छ्रुत्वा प्राह पितरं कल्किः परमहर्षितः ।
विनयावनतो भूत्वा धर्मकामार्थसिद्धये ।६।
राजसूयैर्वाजपेयैरश्वमेधैर्महामखैः ।
नानायागैं कर्मतन्त्रैरीजे क्रतुपति हरिम् ।७।
गगायमुनयोर्मध्ये स्नात्वावभृथमादरात् ।
कृपरामवसिष्ठाद्यै र्व्यास धौम्यकृतव्रणैः ।
अश्वत्थाममधुच्छन्दोमन्दपालैर्महात्मनः ।८।
दक्षिणाभि. समभ्यर्च्य ब्राह्मणान्वेदपारगान् ।९।
चर्व्यैश्चोष्यैश्च पेयैश्च पूगशण्कुलियावकैः ।
भोजयामास विधिवत्सर्वकर्मसमृद्धिभि ।१०।

पिता के वचन सुन कर हर्षित हुए कल्किजी ने विनय पूर्वक कहा—धर्म, अर्थ और काम की सिद्धि के प्रयोजन से मैं कर्म तन्त्र विहित राजसूय, वाजपेय और अश्वमेधादि महायज्ञो के अनुष्ठान द्वारा भगवान् विष्णु को प्रसन्न करूँगा ।६-७। फिर कल्किजी ने कृपाचार्य, परशुराम, वसिष्ठ, व्यास, धौम्य, अकृतव्रण अश्वत्थामा, मधुच्छन्द तथा मन्दपाल आदि महात्मा महर्षियो और वेदज्ञानियो को आमन्त्रित कर उनका पूजन किया । तदनन्तर गङ्गा-यमुना के मध्य मे स्थित यज्ञ मे दीक्षित होकर उन्होने स्नान किया और दक्षिणा दी ।८-९। फिर उन्होने अनेक प्रकार के चर्व्य, चोष्य, पेय, पूग, शष्कुलि और यावक आदि भोज्य पदार्थों के द्वारा उन ब्राह्मणो को श्रेष्ठ भोजन कराया ।१०।

यत्र वह्निर्भृत पाके वरुणो जलदो मरुत् ।११।
परिवेष्टा द्विजान्कामैः सन्नाद्यै रतोषयत् ।

वाद्यैर्नृत्यैश्च गीतैश्च पितृयज्ञमहोत्सवै १२।
कल्कि कमलपत्राक्ष प्रहृष्ट प्रददौ वसु ।
स्त्रीबालस्थविरादिभ्य· सर्वेभ्यश्च यथोचितम् ।१३।
रम्भा तालधरा नन्दी हूहूर्गायति नृत्यति ।
दत्त्वा दानानि पात्रेभ्योब्राह्मणेभ्य स ईश्वर. ।१४।
उवास तीरे गगाया पितृवाक्यानुमोदित ।
सभाया विष्णुयशस: पूर्वराजकथा प्रिया ।१५।
कथयन्तो हसन्तश्च हर्षयन्तो द्विजा बुधा ।
तत्रागतस्तुम्बुरुणानारद. सुरपूजित ।१६।

यज्ञ का भले प्रकार परिपाक हुआ । अग्नि ने पाक किया, वरुण ने जल प्रदान किया और वायु परोसने लगा । पद्माक्ष कल्किजी ने इस प्रकार श्रेष्ठ अन्नादि, नृत्य, वाद्य, गीतादि से उत्सव करते हुए सब के आनन्द की वृद्धि की । बालक, स्त्री, वृद्ध आदि सब को धन से यथोचित सत्कृत किया ।११-१३। रम्भादि नाचने लगी, नन्दी ताल देने लगे, हुई गन्धर्व ने गीत गाया, उस समय ब्राह्मणो और सत्पात्रो को धन प्रदान करने के पश्चात् कल्किजी अपने पिता की अनुमति से गङ्गा-त पर रहने लगे । विष्णुयश की विद्वत्सभा मे विद्वान् विप्रगण राजाओ को सन्तोष देने वाली कथाएं कहने लगे । इस प्रकार जब सभी ज्ञानी-जन एव द्विजजन आनन्द मे निमग्न थे, तभी राजा तुम्बरु और देवताओ द्वारा पूजित नारदजी वहाँ आये ।१४-१६ ।

त पूजयामास मुदा पित्रा सह यथाविधि ।
तौ सपूज्य विष्णुयशा प्रोवाच विनयान्वित: ।
नारद वैष्णवं प्रीत्या वीणापाणि महामुनिम् ।१७।
अहो भाग्यमहो भाग्य मम जन्मशतार्जितम् ।
भवद्विधाना पूर्णानां यन्मे मोक्षाय दर्शनम् ।१८।
अद्याग्नयश्च सुहुतास्तृप्ताश्च पितर. परम् ।

देवाश्च परिसन्तुष्टास्तवावेक्षणपूजनात् ।१९।
यत्पूजाया भवेत्पूज्यो विष्णुर्यन्मम दर्शनम् ।
पापसघ स्पर्शनाच्च किमहो साधुसङ्गत ।२०।
साधूना हृदय धर्मो वाचो देवा सनातना: ।
कर्मक्षयाणि कर्माणि यतः साधुर्हरि. स्वयम् ।२१।

उस अवसर पर प्रफुल्लित हृदय वाले विष्णुयश जी ने उन दोनो का विधिवत् पूजन किया और फिर उन्होने वीणायाणि विष्णु भक्त नारदजी से विनय पूर्वक कहा ।१७। विष्णुयश बोले—मेरा अहो-भाग्य है । सौ जन्मो से संचित पुन्य के प्रभाव से ही आर परम पूर्ण पुरुषो के दर्शन मेरे मोक्ष के उद्देश्य से ही प्राप्त हुए हैं ।१८। आपके दर्शन और पूजन के होने से हमारे पितरो की भी तृप्ति हो गई तथा अग्नि मे दी हुई आहुत के सफल होने से देवगण भी सन्तुष्ट हो गए हैं ।१९। जिनके पूजन मे भगवान् विष्णु का पूजन निहित है, उनके दर्शन मात्र से ही पुनर्जन्म का नाश हो जाता है । उनके स्पर्श मात्र से पापो के पुन्ज भी समूल मिट जाते हैं । ऐसे साधुओ का सग भी अद्भुत ही है ।२०। साधुओ का हृदय धर्म, वाणी सनातनदेव और कर्म ही कर्म को क्षीण करते हैं । इस प्रकार साधु ही साक्षात् हरि हैं ।२१।

मन्ये न भौतिको देहो वैष्णवस्य जगत्त्रये ।
यथावतारे कृष्णस्य सतो दुष्टविनिग्रहे ।२२।
पृच्छामि त्वामतो ब्रह्मन्मायासंसारवारिधौ ।
नौकाया विष्णुभक्त्या च कर्णधारोऽसि पारकृत् ।२३।
केनाहं यातनागारान्निर्वाणपदमुत्तमम् ।
लप्स्यामीह जगद्बन्धो कर्मणा शर्म तद्वद ।२४।
अहो बलवती माया सर्वाश्चर्यमयी शुभा
पितर मातर विष्णुर्नैव मुञ्चति कर्हिचित् ।२५।
पूर्णो नारायणो यस्य सुत. कल्किर्जगत्पतिः

त विहाय विष्णुयशा मत्तो मुक्तिमभीप्सति ।२६।

दुष्टो को दण्ड देने वाला श्रीकृष्णावतार जिस प्रकार भौतिक देह से युक्त नही है, वैसे ही तीनो लोको मे विष्णु भक्तो के शरीर भी पचभूत से युक्त प्रतीत नही होते ।२२। हे ब्रह्मन् ! इस माया मय ससार सागर मे आप ही विष्णुभक्ति रूपिणी नौका के द्वारा पार कराने वाले हैं। इसी लिये मैं आपसे कुछ पूछना चाहता हूँ ।२३। हे विश्ववन्धो ! आप मुझे यह बताने की कृपा करिये कि मै इस ससार रूपी यातनागार से मुक्त होकर श्रेष्ठ निर्वाणपद को किस कर्म के द्वारा प्राप्त कर सकता हूँ ? ।२४, नारदजी ने कहा—अहो ! यह माया कैसी आश्चर्यमयी, उज्वला और बलवती है, जिसके प्रभाव से स्वय भगवान् भी अपने पिता माता को मुक्त नही करा पाते ।२५। जिन विष्णुयशजी के पुत्र साक्षात् भगवान् जगत्पति कल्कि हैं,वे मुझसे मोक्ष की कामना व्यक्त करतेहैं।२६।

विविच्येत्थ ब्रह्ममुत. प्राह ब्रह्मयश' सुतम् ।
विविक्ते विष्णुयशस ब्रह्मसम्पद्विवर्द्धनम् ।२७।
देहावसाने जीव सा दृष्ट्वा देहावम्बनम् ।
मायाह कर्तुमिच्छन्त यन्मे तच्छृणु मोक्षदम् ।२८।
विन्ध्याद्रौ रमणी भूत्वा मायोवाच यथेच्छया ।२
अह माया मया त्यक्त कथजीवतुमिच्छसि ।३०।
नाह जीवाम्यह माये कायेऽस्मिञ्जीवनाश्रये
अहमित्यन्यथाबुद्धिर्विना देह कथ भवेत् ।३१।
देहबन्धे यथाश्लेषास्तथ बुद्धि कथ तव ।
मायाधीनां विना चेष्टा ते कुतो वद ।३२।

ब्रह्मसुवन नारदजी ने यह सोच कर ब्रह्मज्ञान देने के विचार से विष्णुयशजी से कहा ।२७। नारदजी बोले—जब देह के नष्ट होने पर पुनः देह का आश्रय प्राप्त करने की जीव ने कामना की तब माया ने जो कुछ कहा था, उसे सुनो ! इसके सुनने से ही मोक्ष मिल जाता है ।२८। उन भगवती माया ने विंध्याचल पर स्वेच्छा से नारी रूप धारण करके

कहा ।२९। माया बोली—मै माया हूँ। जब मैंने तुम्हारा त्याग कर दिया है, तब तुम पुनर्जीवन प्राप्त करने की इच्छा क्यो करते हो ? ।३०। इस पर जीव ने कहा—हे माये ! मैं तो जीवन की इच्छा नही करता, परन्तु जीवन का आश्रय शरीर ही है। अह रूपी अभिमान के बिना देह धारण ही किस प्रकार सभव है ? ।३१। माया बोली देह धारण पर पर जो भेद ज्ञान होता है, तब तुम्हारी बुद्धि उस प्रकार की क्यो होती है ? जब चेष्टा माया के बिना सम्भव नही, तब माया रहित तुम्हारी चेष्टा किस प्रकार होती है ? ।३२।

मां विना प्राज्ञता माये प्रकाशविषयस्पृहा
मायया जीवति मरश्चेष्ठते हतचेतनः ।
नि.सार· सारवद्भाति गजभुक्तकपित्थवत् ।३४।
मम ससर्गजाता त्व नानानामस्वरूपिणी ।
मा विनिन्दसि कि मूढे स्वैरिणी स्वामिन यथा ।३५।
ममाभावे तवाभाव प्रोद्यत्सूर्ये तमो यथा ।
मामावर्य विभासि त्व रविनवघनो यथा ।३६।
लीलाबीजकुशूलासि मम माये जगन्मये :
नाद्यन्ते मध्यतो भासि नानात्वादिन्द्रिजालवत् ।३७।

जीव ने कहा—हे माये ! तुम्हारी प्राज्ञता मेरे बिना प्रकाशित नही हो सकती और न फिर विषय मे स्पृहा ही सम्भव है ।३३। माया बोली—जीव का जीवन धारण माया से ही हो सकता है। माया से रहित जीव हाथी द्वारा भक्षित कपित्थ फल के समान सारहीन होता है ।३४। जीव बोला—हे मूढ़े ! तूने हमारे ही ससर्ग से उत्पन्न होकर नाना प्रकार के नाम और रूप धारण कर लिये हैं। स्वामी की निन्दा करने वाली स्वैरिणी नारी के समान तू हमारी निन्दा क्यो कर रही है ? ।३५। जैसे सूर्योदय होने पर अन्धकार का अभाव हो जाता है, वैसे ही मेरे अभाव मे तेरा भी अभाव निहित है। जैसे सूर्य को आवृत्त करता

हुआ मेघ शोभा पाता ।, वैसे ही तुम भी मुझे ढक कर शोभा को प्राप्त होती हो ।३६। हे माये ! तुम लीला रूपी बीज की भुसी के समान हो । अनेकत्व की कारण रूपा भी तुम्ही हो तथा ससार के आदि, अन्त और लय मे इन्द्रजाल की भाति सुशोभित होती हो ।३७।

एव निविषय नित्य मनोव्यापारवर्जितम् ।
अभौतिकमजीवञ्च शरीर वीक्ष्य सा त्यजत् ।३८।
त्यक्त्वा मा सा ददौ शापमिति लोके तवाप्रिय
न स्थितिर्भवता काष्ठकुड्योपम कथञ्चन ।३९।
सा माया तव पुत्रस्य कल्केर्विश्वात्मनः प्रभोः ।
ता विज्ञाय यथाकाम चर गा हरिभावन ।४०।
निराशो निर्मम. शान्त. सर्वभोगेषु निस्पृहः ।
विष्णौ जगदिद ज्ञात्वा विष्णुर्जगति वासकृत् ।
आत्मनात्मानमावेश्य सर्वतो विरतो भव ।४१।
एव त विष्णुयशसमामन्त्र्य च मुनीश्वरौ ।
कल्कि प्रदक्षिणीकृत्य जग्मतुः कपिलाश्रमम् ।४२।

इस प्रकार निर्विषय, मानसिक व्यापार और अभौतिक जीवन से परे उस शरीरधारी को देख कर माया ने उसका त्याग कर दिया ।३८। उस समय माया ने मेरा त्याग करते हुए यह शाप दिया कि हे जीव ! तू अप्रिय है . तू काठ की भीत के समान निश्चेष्ट एव लोक मे सर्वथा स्थिति-हीन होगा ।३९। नारदजी बोले—हे प्रभो ! तुम्हारे पुत्र विश्वात्म कल्किजी ने ही इस माया को उत्पन्न किया था । तुम उस माया के तत्व को जानते हुए भगवान् विष्णु के ध्यान मे रत रहते हुए स्वेच्छापूर्वक भ्रमण करो ।४०। जब तुम आशा और ममता को त्याग कर और सभी भोगो से परे होकर शान्त चित्त हो जाओगे, तब तुम्हे इसका ज्ञान होगा कि यह विश्व भगवान् विष्णु के विराट् प्रभाव मे प्रतिष्ठित है तथा भगवान् विष्णु इस लक्षित जगत् में व्याप्त हैं। इस प्रकार के ज्ञान से जीवात्मा और परमात्मा मे अभेद मानते हुए सभी

कामनाओं से मुक्त हो जाओ।४१। इस प्रकार विष्णुयशजी को ज्ञान देकर और कल्किजी की प्रदक्षिणा कर दोनो मुनीश्वरो ने कपिलाश्रम के लिए प्रस्थान किया।४२।

नारदेरितमाकर्ण्य कल्कि सुतमनुत्तमम् ।
नारायणं जगन्नाथं वन विष्णुयशा ययौ ।४३।
गत्वा बदरिकारण्य तपस्तप्त्वा सुदारुणम् ।
जीव बृहति सयोज्य पूर्णस्तत्याजय भौतिकम् ।४४।
मृत स्वामिनमालिङ्ग्य सुमतिः स्नेहविक्लवा ।
विवेश दहन साध्वी सुवेशैर्दिवि संस्तुता ।।४५।।
कल्किः श्रुत्वा मुनिमुखात्पित्रोर्निर्वाणमीश्वरः ।
सवाष्पनयन स्नेहात्तयोः समकरोत्क्रियाम् ।।४६।।
पद्मया रमया कल्किः शम्भले सुरवाञ्छिते ।
चकार राज्य धर्मात्मा लोकवेदपुरस्कृत ।४७।
महेन्द्रशिखराप्रामस्तीर्थपर्यटनादृत. ।
प्रायात्कल्केर्दर्शनार्थ शम्भल तीर्थकृत् ।४८।

विष्णुयशजी ने देवर्षि नारद के मुख से यह सुन कर और जान कर कि मेरे पुत्र ही भगवान् नारायण जगदीश्वर हैं, स्वय वन के लिए प्रस्थान किया।४३। वह वहाँ से चल कर बदरिकाश्रम पहुँचे और वहाँ घोर तप करके अपने आत्मा को ब्रह्म मे सयुक्त कर दिया तथा पञ्च-भूतात्मक देह को छोड कर पूर्ण स्वरूप हो गए ।४४। अपने पति की मृत्यु हुई सुन कर सुमति स्नेह से विह्वल होकर अपने पति के साथ चिता में प्रविष्ट हो गई। उस समय श्रेष्ठ वस्त्र भूषण को धारण किये हुए देवलोक स्थित देवगण उनकी स्तुति करने लगे ।४५। कल्किजी ने मुनियों के मुख से अपने माता-पिता का महाप्रयाण सुन कर स्नेह-जल से परिपूर्ण नेत्रो के सहित उनका श्राद्धादि कर्म किया ।४६। फिर लोकाचार और धर्माचार में स्थित कल्किजी देवताओं द्वारा कामना किये हुए शम्भल ग्राम मे रमा और पद्मा के सहित राज्य करने लगे।४७। तीर्था-

टन मे सलग्न परशुरामजी महेंन्द्र पर्वत के शिखर से उतरते हुए कल्कि जी के दर्शनार्थ शम्भल ग्राम मे पधारे ।४८।

त दृष्ट्वा सहसोत्थाय पद्मया रमया सह ।
कल्किः प्रहर्षो विधिवत्पूजाञ्चक्रे विधानवित् ।४९।
नानारसैर्गुणमयैर्भोजायित्वा विचित्रिते ।
पर्यङ्केऽनर्कवस्त्राढ्ये शाययित्वा मुद ययौ ५०।
त भुक्तवन्त विश्रान्त पादसवाहनैर्गुरुम् ।
सतोष्य विनयापन्न कल्किर्मधरमब्रवीत ।५१।
तव प्रसादात्सिद्ध मे गुरौ त्रैवर्गिकश्च यत् ।
शशिध्वजतनायास्तु शृणु राम निवेदितम् ।५२।
इति पतिवचन निशम्य राम निजहृदयेप्सितपुत्रलाभमिष्टम् ।
व्रतजपनियमैर्यमैश्च कैर्वा मम भवतीह मुदाह जामदग्न्यम् ५३

उन्हे देखते ही पद्मा और रमा के सहित कल्किजी अपने सिंह-सन से उठ पडे और विधि विधान सहित हर्षित मन से उनका पूजन करने लगे ।४९। विभिन्न रसो से युक्त अन्नादि का उन्हे भोजन कराके सुन्दर वस्त्रो से ढकी हुई अद्भुत शय्या पर उन्हे शयन कराया ।५०। जिस समय गुरुवर परशुरामजी विश्राम कर रहे थे, उसी समय कल्किजी उनके चरण दाबते हुए विनय पूर्वक मधुर वाणी से कहने लगे ।५१। हे गुरो ! आपकी कृपा से मेरे धर्म, अर्थ और काम-इन तीनो वर्ग की सिद्धि हो चुकी है । इस समय राजा शशिध्वज को पुत्री रमा आपसे एक निवेदन करना चाहती है, उसे सुनने की कृपा करे ।५२। पति के वचन सुन कर हर्षित हृदय से रमा ने परशुरामजी से प्रश्न किया—व्रत, जप, नियम आदि मे ऐसा कौन-सा अनुष्ठान है, जिसके द्वारा मुझे इच्छित पुत्र की प्राप्ति हो सकती है ? ।५३।

●●●

सप्तदश अध्याय

जामदग्न्यः समाकर्ण्य रमांता पुत्रगर्द्धिजीम् ।
कल्केरभिमनं बुद्ध्वाकारयद्रुक्मिणीव्रतम ।१।
व्रतेन तेन च रमा पुत्राढ्या सुभगा सती ।
सर्वभोगेन सयुक्ता बभूव स्थिरयौवना ।२।
विधान ब्रूहि मे सूत व्रतस्यास्य च यत्फलम्
पुरा केन कृत धर्म्यं रेक्मिणीव्रतमुत्तमम् ।३।
श्रृणु ब्रह्मन्राजपुत्री शर्म्मिष्ठा वार्षपर्वणी ।
अवगाह्य सरोनीर सोम हरमपश्यत ।४।
सा सखोभिः परिवृता देवयान्या च सगता ।
शम्भुभीतया समुत्थाय पर्यधुर्वसन द्रुतम् ।५।

सूतजी बोले—हे ऋषियो ! रमा को पुत्र की अभिलाषिणी जान कर और कल्किजी के अभिप्राय को समझ कर परशुरामजी ने उसे रुक्मिणी व्रत का उपदेश किया ।१। उस व्रत के प्रभाव से शशिध्वज पुत्री रमा पुत्रवती, सौभाग्य सम्पन्ना, सर्व भोगों से परिपूर्ण एव स्थिर यौवन हो गई ।२। शौनकजी ने कहा—हे सूतजी ! उस रुक्मिणी व्रत का विधान और फल मुझे बताइये और साथ ही यह भी कहिये कि इस अत्यन्त उत्तम व्रत को पहिले किस ने किया था ? ।३। सूतजी ने कहा—हे ब्रह्मन् ! आपने जो पूछा है, वही कहता हूं, सुनिये । दैत्यपति वृषपर्वा की पुत्री शर्मिष्ठा थी । एक दिन वह सरोवर के जल में घुस कर विहार रत हुई थी, तभी उसने पार्वती सहित भगवान् शंकर को वहाँ देखा

।४। तब शर्मिष्ठा, देवयानी और अन्यान्य सखियाँ सभी भयभीत होकर सरोवर से निकल कर तट पर आ गई और अपने-अपने वस्त्रो को धारण करने लगी ।५।

तत्र शुक्रस्य कन्याया वस्त्रवत्ययमात्मन: ।
सालक्ष्य कुपिता प्राह वसन त्यज भिक्षुकि ।६।
इति दानवकन्या सा दासीभि परिवारिता ।
तां तस्या वाससा बद्ध्वा कूपे क्षिप्त्वा गता गृहम् ।७।
ता मग्ना रुदती कूपे जलार्थी नहुषात्मजः ।
करे स्पृश्य समुद्धृत्य प्राह का त्वा वरानने ।८।
सा शुक्रपुत्री वसन परिधाय ह्रिया भिया ।
शर्म्मिष्ठायाः कृत सर्व प्राह राजानमीक्षती ।९।
ययातिस्तदभिप्राय ज्ञात्वानुव्रज्य शोभनम् ।
आश्वास्य ता ययो गेह तस्या. परिणयादृत: ।१०।

तभी शीघ्रता और विह्वलता के कारण दैत्यगुरु शुक्राचार्य की पुत्री देवयानी ने भूल से शर्मिष्ठा के वस्त्र धारण कर लिये । यह देख कर शर्मिष्ठा क्रोधित होकर बोली—अरी भिक्षुकी ! तू मेरे वस्त्रो को उतार दे ।३। इसके पश्चात उस दैत्यराज पुत्री शमिष्ठा ने देवयानी को वस्त्रो से बाँध कर एक कुए मे डाल दिया और दासियो के सहित घर चली गई ।७। कूप मे गिरी हुई देवानी रुदन करने लगी, तभी नहुष-पुत्र राजा ययाति जल पीनेकी इच्छासे उस कूप पर पहुँचे । उन्होंने देव-यानी का हाथ पकड कर कूपसे निकला और बोले—हे वरानने ! तुम कौन हो-यह बताओ ।८। शुक्रपुत्री देवयानी ने राजा की ओर लज्जा और भय से देखते हुए शीघ्रता पूर्वक वस्त्र पहिने और शर्मिष्ठा ने जो कुछ किया था वह सब उन्हे कह सुनाया ।९। देवयानी के अभिप्राय को जान कर राजा ययाति ने उसका पाणिग्रहण करने की अभिलाषा प्रकट की और फिर कुछ दूर तक उसके साथ-साथ चलते हुए, उसे हर प्रकारका आश्वा-सन देकर अपने घर को चले गये ।१०।

सा गत्वा भवनं शुक्र प्राह शर्म्मिष्ठया कृतम् ।
तच्छ्रुत्वा कुपित विप्र वृषपर्वाह सान्त्वयन् ।११।
दण्डचं मां दण्डय विभो कोपो यद्यस्ति ते मयि ।
शर्म्मिष्ठां वाप्यपकृतां कुरु यन्मनसेप्सितम् ।१२।
राजानं प्रणतं पादे पितुर्दृष्ट्वा रुषाब्रवीत् ।
देवयानी त्विय कन्या मम दासी भवत्विति ।१३।
समानीय तदा राजा दास्ये तां विनियुज्य सः ।
ययौ निजगृहं ज्ञानी दैवं परमकं स्मरन् ।१४।
तत शुक्रस्तमानीय ययाति प्रतिलोमकम् ।
तस्मै ददौ तां विधिवद्देवयानी तया सह ।१५।

इधर देवयानी ने अपने घर पहुँच कर शुक्राचार्यजी को शर्मिष्ठा की सब करतून सुनाई, जिससे वे अत्यत क्रोधित हुए । तब दैत्यराज वृषपर्वा ने उन्हे सान्त्वना दी ।११। वह बोला—हे विभो ! यदि आप मुझ पर कुपित हो तो मुझे दड दीजिए अथवा अपकार करने वाली शर्मिष्ठा को दण्ड देना चाहे तो उसे दडित करिये ।१२। दैत्यपति वृषपर्वा को अपने पिता के चरणो मे पडा हुआ देख कर देवयानी ने उससे कहा—हे राजन् आपकी पुत्री शर्मिष्ठा मेरी दासी बने ।१३। यह सुन कर दैवगति को प्रबल मानते हुए दैत्यराज ने शर्मिष्ठा को बुला कर उसे देवयानी की दासी बना दिया और फिर अपने घर को चला गया ।१४। फिर शुक्राचार्य ने राजा ययाति को विधि विधान सहित अपनी पुत्री देवयानी का कन्यादान कर दिया । उसके साथ उसकी दासी शर्मिष्ठा भी प्रदान कर दी गई ।१५।

दत्वा प्राह नृप विप्रोऽप्येना राजसुतां यदि ।
शयने ह्वयसे सद्यो जरा त्वामुपभोक्ष्यति ।१६।
शुक्रस्यैतद्वचः श्रुत्वा राजा तां वरवर्णिनीम् ।
अदृश्या स्थापयामास देवयान्यनुगा भिया १७।
सा शर्म्मिष्ठा राजपुत्री दुःखशोकभयाकुला ।

नित्य दासीशताकीर्णा देवयानीन्तु सेवते ।१८।
एकादा सा वनगता रुदती जाह्नवीतटे ।
विश्वामित्रं मुनि सा त ददृशे स्त्रीभिरावृतम् ।१६।
व्रतिनि पुण्यगन्धाभि सुरूपाभि' सुवासितम् ।
कारयन्तो व्रतं माल्यधूपदीपोपहारकैः ।२०।

राजसुता शर्मिष्ठा को देते हुए शुक्राचार्य ने राजा ययाति से कहा कि हे राजन् ! यदि इसे कभी अपने शयनागार मे बुलाएँगे तो उसी समय वृद्ध हो जाएँगे ।१६। शुक्राचार्य के वचनो से भय को प्राप्त हुए राजा ययाति ने अत्यन्त रूपवती शर्मिष्ठा को ले जाकर ऐसे स्थान मे रख दिया, जहाँ पर उनकी दृष्टि भी न पड सके ।१७। अत्यन्त ही दुःखिता, शोक और भय से व्याकुला राजपुत्री शर्मिष्ठा सैकडो दासियो के साथ देवयानी की सेवा मे तत्पर रहती थी ।१८। एक दिन वह शर्मिष्ठा जाह्नवी के तीर पर बैठी हुई रो रही थी, तभी उसकी दृष्टि स्त्रियो से घिरे हुए विश्वामित्र पर पडी ।१६। वे व्रती महर्षि विश्वामित्र सुगन्धित द्रव्यो से सुवासित हो रहे थे । अनेक सुन्दर नारियाँ उनके चारो ओर बैठी हुई थी । धूप, दीप, माला तथा अनेक प्रकार के उपहारो के द्वारा विश्वामित्र उन स्त्रियो से व्रत-अनुष्ठान करा रहे थे ।२०।

निर्मायाष्टदलं पद्म वेदिकाया सुचिन्हितम् ।
रम्भापोतैश्चतुर्भिस्तु चतुष्कोणं विराजितम् ।२१।
वाससा निर्मितगृहे स्वर्णपट्टै र्विचित्रिते ।
निर्मितं श्रीवासुदेवं नानारत्नविघट्टितम् ।२२।
पौरुषेण च सूक्तेन नानागन्धोदकै शुभैः ।
पञ्चमृतै. पञ्चगव्यैर्यथामन्त्रैर्द्विजेरितै. ।२३।
स्नापयित्वा भद्रपीठे कर्णिकायां प्रपूजयेत् ।
स्नामयित्वा भद्रपीठे कर्णिकाया प्रपूजयेत् ।
पञ्चभिर्दशभिर्वापि षोडशैरुपचारकैः ।२४।

पाद्यमध्वश्रमहर शीतल सुमनोहरम् ।
परमानन्दजनक गृहाण परमेश्वर ।२५।

उन्होने वेदी पर अष्टदल कमल बनाया और वेदी के चार कोणो मे कदली वृक्ष स्थापित किये ।२१। वस्त्रो से बने हुए मण्डप में एक स्वर्ण निर्मित आसन पर भगवान् वसुदेवकी विविध रत्नालङ्कारोसे अलकृत प्रतिमा प्रतिष्ठित थी ।२२। उन्होने पुरुष सूक्त का पाठ करते हुए विभिन्न सुगन्धो से युक्त जल, पञ्चामृत, पञ्चगव्य आदि सिद्ध किया और ब्राह्मणो के द्वारा उच्चारण किये हुए मन्त्र से भद्रपीठा स्थित कर्णिका पर भगवान् श्रीवासुदेव को विराजमान किया । फिर सोलह पन्द्रह अथवा दश उपचारो से उनका पूजन किया ।२३ २४। हे परमेश्वर । आपका श्रम दूर करने के निमित्त यह परमानन्द का देने वाला सुन्दर पाद्य निवेदित है । इसे स्वीकार कीजिये ।२५।

दूर्वाचन्दनगन्धाढचमर्घ्य युक्त प्रयत्नत. ।
गृहाण रुक्मिणीनाथ प्रसन्नस्य मम प्रभो।२६।
नानातीर्थोद्भव वारि सुगन्धि सुमनोहरम् ।
गृहाणाचमनीय त्व श्रीनिवास श्रिया सह ।२७।
नानाकुसुमगन्धाढच सूत्रग्रथितमुत्तमम् ।
वक्ष शोभाकर चारु माल्य नय सुरेश्वर ।२८।
तन्तुसन्तानसन्धाग्चित बन्धन हरे ।
गृहाणावरण शुद्ध निरावरण सप्रिय ।२९
यज्ञसूत्रमिद देव ! प्रजापतिविनिर्मितम् ।
गृहाण वासुदेव स्व रुक्मिण्या रमया सह ।३०।

हे रुक्मिणी नाथ ? हे वासुदेव प्रभो ! दूर्वा से युक्त यह चन्दन-चर्चित अर्घ्य यत्न पूर्वक स्थापित किया है, इसे प्रसन्न होकर स्वीकार कीजिये ।२३। हे श्रीनिवास ! यह अनेक तीर्थों का पवित्र जल सग्रहीत है । आप इस सुरम्य जलको आच मनीय द्वारा लक्ष्मीजी के सहित ग्रहण कीजिये ।२७। हे सुरेश्वर ! यह माला अनेक प्रकार के पुष्पो से निर्मित

हुई है इसके द्वारा आपके वक्षस्थल की शोभावृद्धि होगी । इस श्रेष्ठ माला को आप ग्रहण कीजिये ।२८। हे हरे ! आपको आवृत्त करने मे कोई भी समर्थ नही है । आप अपनी प्रिया लक्ष्मी जी के सहित इस सूत्र-सधान द्वारा निर्मित शुद्ध वस्त्रावरण को स्वीकार कीजिये ।२९। हे देव ! यह सूत्र प्रजापति द्वरा निर्मित हुआ है इसे आप अपनी पत्नी रुक्मिणीजो के सहित ग्रहण कीजिये ३०।

नानारत्नसमायुक्त स्वर्णमुक्ताविघट्टितम्
प्रियया सह देवेश गृहाणाभरण मम ।३१।
दधिक्षीरगुडान्नादिपूपलड्डुकखण्डकान् ।
गृहाण रुक्मिणीनाथ सनाथ कुरु मा प्रभो ।३२।
कर्पूरागुरुगन्धाढ्य परमानन्ददायकम् ।
धूप गृहाण वरद वैदर्भ्या प्रियया सह ।३३।
भक्ताना गेहशक्ताना ससारध्वान्तानाशनम् ।
दीपमालोकय विभो ! जगदालोकनादर ।३४।
श्यामसुन्दर ! पद्माक्ष ! पीताम्बर ! चतुर्भुज ! ।
प्रपन्न पाहि देवेश रुक्मिण्या सहिताच्युत ।३५।

हे देवेश ! हे प्रभो ! विभिन्न प्रकार के रत्नो से युक्त एव स्वर्ण द्वारा निर्मित इन आभूषणो को आप अपनी प्रिया लक्ष्मीजी के सहित ग्रहण कीजिये ।३१। हे रुक्मिणीनाथ ! यह दधि,दुग्ध,गुड, अन्न, पुआ लड्डू एव शर्करादि को ग्रहण करके मुझे सनाथ कीजिये ।३२। हे वरद ! परमानन्द के देने वाली इस कर्पूर और अगर युक्त गन्ध को आप अपनी प्रिया के सहित स्वीकार* कीजिये ।३३। हे विभो ! आप सस-कामी भक्तो के अन्धकार को नष्ट करने वाले हैं और आदर सहित जगत् को अपने प्रकाश से आलोकित कर रहे हैं, इस दीपक का अवलोकन कीजिये ।३४। हे श्यामसुन्दर ! हे कमलाक्ष ! हे पीताम्बरधारी चतुर्भुज ! हे देवेश ! आप रुक्मिणीजी के सहित प्रसन्न होते हुए हमारी रक्षा कीजिये ।३५।

इति तासा व्रत दृष्ट्वा मुनि नत्वा सुदु.खिता ।
शर्म्मिष्ठा मिष्ठवचना कृताञ्जलिरुवाच ता ।३६।
राजपुत्री दुर्भगा मां स्वामिना परिवर्ज्जिताम्
त्रातुमर्हथ हे देव्यो व्रतेनानेन कर्मणा ।३७।
श्रुत्वा तु ता वचस्तस्या. कारुण्याच्च कियत्कियत् ।
पूजोपकरण दत्वा कारयामासुरादरात् ।३८।
व्रत कृत्वा तु शर्मिष्ठा लब्ध्वा स्वामिनमीश्वरम् ।
सूत्वा पुत्रान्सुसन्तुष्टा समभूत्स्थिरयौवना ।३६।
सीता चाशोकवनिकामध्ये सरमया सह।
व्रत कृत्वा पतिं लेभेराम राक्षसनाशनम् ।४०।

स्त्रियो को इस प्रकार व्रत करते हुए देख कर शर्मिष्ठा ने मुनि को प्रणाम किया और हाथ जोड कर बोली ।३३। शर्ष्ठिा ने कहा—हे देवियो ! मैं अत्यत अभागी राज पुत्री हूँ । भाग्य के दोष से ही पति सग-हीना हूँ । यह व्रत किस प्रकार किया जाता है, मुझे यह बता कर मेरी रक्षा करिये ।३७। शर्मिष्ठा के वचन सुन कर उन स्त्रियो को दया आ गई और उन्होने कुछ पूजन सामग्री उसे देकर उससे आदर पूर्वक व्रत कराया ।३८। इस व्रत को करके शर्मिष्ठा भी अपने प्रिय पति को प्राप्त होकर पुत्रवती और स्थिर यौवना होकर सतुष्ट हो गई ।३६। सीता और सरमा ने भी अशोक वाटिका मे इस व्रत का अनुष्ठान किया था उसी के पुण्य-फल से सीताजी राक्षस-सहारक भगवान् राम से मिल सकी थी ।४०।

वृहदश्वप्रसादेन कृत्वेम द्रौपदी व्रतम् ।
पतियुक्ता दु खमुक्ता वभूव स्थिर यौवना ।४१।
तथा रमा सिते पक्षे वैशाखे द्वादशीदिने ।
जामदग्न्याद्व्रतं चक्रे पूर्ण वर्षचतुष्टयम् ।४२।
पट्टसूत्र करे वद्ध्वा भोजयित्व द्विजान्व ।
भुक्त्वा हविष्य क्षीराक्तं सुमृष्टं स्वामिना सह ।४३।

बुभुजे पृथिवी सर्वामपूर्वा स्वजनेर्वृता ।
सा पुत्रौसुषुवे साध्वी मेघमालबलाहकौ ।४४।
देवानामुपकर्त्तारौ यज्ञदानतपोव्रतैः ।
महोत्साहौ महावीर्यौ सुभगौ कल्किसम्मतौ ।४५।
व्रतवरमिति कृत्वा सर्वसम्पत्समृद्धया भवति विदि-
तनत्त्वा पूजिता पूर्णकामा । हरिचरणसरोजद्व-द्वभ-
क्त्यैकताना व्रजति गतिमपूर्वां ब्रह्मविज्ञैरगम्याम् ।४६।

बृहदश्व की प्रेरणा से द्रौपदी ने इस व्रत को किया था और वह भी दुःख से मुक्त होती हुई पतिमुक्त और स्थिर यौवना हो गई ।४१। इसके पश्चात् रमा ने परशुरामजी के निर्देशन मे वैशाख शुक्ला द्वादशी के दिन इस रुक्मिणी व्रत का अनुष्ठान प्रारम्भ किया और चार वर्ष व्यतीत होने पर उसका समापन किया ।४१। रेशमी सूत्र हाथ मे बाँधते हुये रमाने ब्राह्मणो को भोजन कराया और क्षीरयुक्त श्रेष्ठ हविष्यान्न का अपने स्वामी सहित आहार किया । इससे वह स्वजनो से परिपूर्ण होकर पृथिवी का अखण्ड सुख भोगने लगी । उसके मेघमाल और बलाहक नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए ।४४। वे दोनो देवताओ के उपकारी, यज्ञ-दान और तपोव्रत मे निरत रहने वाले, अत्यत उत्साही, महापराक्रमी सौभाग्यवान् तथा कल्किजी की आज्ञा में चलने वाले थे ।४५। इस व्रत को करने वालो को सब प्रकार सुख, सम्पत्ति और समृद्धि की प्राप्ति होती है । उनकी सब कामनाएं पूर्ण होती हैं । ब्रह्मज्ञान और हरिचरणो में प्रीति उत्पन्न होती है, तथा वे श्रेष्ठ गति को प्राप्त होते हैं ।४६।

अष्टदश अध्याय

एतद्वा कथित विप्रा व्रत त्रैलोक्यविश्रुतम् ।
अतः पर कल्किकृत कर्म्म यच्छृणुत द्विजा ।१।
शम्भले वसतस्तस्य सहस्रपरिवत्सरा ।
व्यतीता भ्रातृपुत्रस्वज्ञातिसम्बन्धिभि सह ।२।
शंभले शुशुभे श्रेणी सभापणकचत्वरैं ।
पताकाध्वजचित्राढ्यैं यथेन्द्रस्यामरावती ।३।
यत्राष्टषष्टितीर्थाना सम्भव. शम्भलेऽभवत् ।
मृत्योर्मोक्ष क्षितौ कल्केरकल्करय पदाश्रयात् ।४।
वनोपवनसन्ताननाना कुसुम सकुलैः ।
शोभित शम्भल ग्राम मन्ये मोक्षपद भुवि ।५।

सूतजी बोले—हे ब्राह्मणो ! तीनो लोक मे प्रसिद्ध इस रुक्मिणी व्रत को मैंने आपके प्रति कहा है । इसके पश्चात् कल्किजी ने जो कार्य किये थे, उन्हे कहता हूँ, सुनिये ।१। इस प्रकार कल्किजी अपने भाई, पुत्र, बाधव और स्वजनो के साथ एक हजार वर्ष तक शम्भल ग्राम में निवास करते रहे ।२। उस समय वह शम्भल पुरी ध्वजा-पताकादि से विभूषित हुई सब प्रकार इन्द्र की अमरावती के समान शोभामयी प्रतीत होती थी ।३। शम्भल ग्राम मे उस काल अढसठ तीर्थ एकत्रित हो गए थे निष्कलक कल्किजी की महिमा से शम्भल ग्राम मे मृत्यु होने पर मोक्ष की प्राप्ति होती थी ।४। वहाँ के वन-उपवन आदि अनेक प्रकारके सुन्दर पुष्पो

से परिपूर्ण और रमणीय हो रहे थे। तथा शम्भल ग्राम ससार मे मोक्ष के देने वाला माना जाने लगा था ।५।

तत्र कल्किः पूरस्त्रीणा नयनानन्दवद्र्धन ।
पद्मया रमया काम रराम जगतीपति. ।६।
सुराधिपप्रदत्तेन कामगेन रथेन वै ।
नदीप्रवंतकुञ्जेषु द्वीपेषु परया मुदा ।७।
रममाणो विशन्पद्मारमाद्याभीरमापति ८
पद्मामुखामोदसरोजशोधुवासोपभोगी सुविलासवास. ।
प्रभूतनीलेन्द्रमणिप्रकाशे गहाविशे प्रविवेवेश कल्कि: ।६।
पद्मा तु पद्माशतरूतरूपा रमा च पीयूषलकाविलासा ।
प्रति प्रविष्ट गिरिगह्वरे ते नारीसहस्तकुलिते त्वगाताम् १०
पद्मा पति प्रेक्ष्यगु हानिविष्टं रन्तुं मनोज्ञा प्रविवेश पश्चात्
रमाबलायूथसमन्विता तत्पश्चाद्गता कल्किमहोग्रकामा

नगर निवासिनी नारियो के नयनो की आनन्द-वृद्धि करने वाले कल्किजी पद्मा औररमा के साथ शभल ग्राम मे निवास करते हुए विहार करने लगे ।३। वे मुदित मन से इन्द्र द्वारा दिये हुए रथ पर आरूढ होकर नदी, पर्वत, कुन्ज और द्वीप में पद्मा और रमा प्रभृति नारियो के साथ विहार करते रहे ।७-८। एक समय की बात है—पद्मा के मुख मोद के पद्म-गन्ध का उपभोग करने वाले कल्किजी पर्वत की एक गुफा मे प्रविष्ट हुए जो कि अनेक नीलेन्द मणियों की आभा से प्रकाशित हो रही थी ।६। उनके साथ सहस्र सखियो के सहित पद्म और पीयूषकला जैसी विलासिनी रमा भी उस गुफा मे गई ।१०। अपने स्वामी कल्किजी को उस गिरिगुहा में घुसते हुए देख कर मनोहारिणी पद्मा भी उनके पीछे-पीछे गई तथा रमा ने भी विहार की इच्छा से स्त्री यूथो के सहित पीछे से प्रवेश किया ।११।

तत्रेन्द्रनीलोत्पलगह्वरान्ले कान्ताभिरात्म प्रतिमाभिरीशम् ।
कल्किश्च दृष्ट्वा नवनीरदाभ ततः स्थितं प्रस्तरवन्मुमोह ।१२

रमा सखीभिः प्रमदाभिरार्त्ता विलोकयन्ती दिशमाकुलाक्षी
पद्माति पद्माशतशोभमाना विषण्णचित्ता न बसौस्म चार्त्ता
भूमौ लिखन्ती निजकज्जलेन कल्कि शुक त कुचकु कुमेन ।
कस्तूरिकाभिस्तु तदग्रमग्रे निर्म्माय चालिङ्ग्य ननाम भावात्
रमा कलालापपरा स्तुवन्ती कामार्द्दिता तं हृदये निधाये
ध्यात्वा निजालङ्करणैः प्रपूज्य तस्थौ विषण्णा करुणावसन्ना
क्षणात्सचाय परोद रामा कलापिनः कण्ठनिभ ३वनाथम् ।
हृदोपगूढ न पुनः प्रलम्भ कामार्द्दितेत्याह हरे प्रसीद ।१६।

नीलेन्द्र मणिमय उस गिरिगुहा मे पहुँच कर पद्मा ने देखा कि मेघ के समान कान्ति वाले कल्किजी अपने जैसे सुन्दर रूप वाली नारियो के साथ गुफा के मध्य बैठे हुए हैं । यह देख कर पद्मा अत्यत आश्चर्य के साथ मोहित होकर निश्चेष्ट पाषाण के समान पृथ्वी पर बैठ गई ।१२। सखियो के सहित रमा भी उस दृश्य को देख कर विस्मय से सब ओर देखने लगी । शत पद्माओ के समान रूप वाली नारियो को देख कर पद्मा तो दु.ख और शोकित हो ही रही थी ।१३। वह अपने नेत्र के काजल से पृथिवी को रँगने लगी । वह कुंकुम और कस्तूरी से भूमि को सुगधित करती हुई, उस पर गिर गई ।१४। कामवती रमा भी अपने हृदय मे कल्किजी का ध्यान करने लगी और हृदय-पुष्पो के द्वारा उनका पूजन करके शोक और दुःख से व्याकुल होकर पृथ्वी पर गिर गई ।१५। क्षण भर के उपरान्त सचेत हुई रमा रोने लगी और अपने हृदय को कल्किजी के आलिंगन से रहित पाकर कह उठी—हे हरे ! प्रसन्न होइये ।१६।

पद्मापि निम्मुंच्य निजाङ्गभूषाश्चकार धूलीपटले विलासम्
कण्टञ्च कस्तूरिनयापि नीलं काम निहन्तु शिवतामुपेत्य १७
कलावतीना कलयाकलय क्षीणात्मां हरिरार्त्तबन्धुः ।
ताः सादरेणात्मपति मनोज्ञाः करेणवो यूथपति यदेयुः ।
सोनन्दभावा विपदाननुवृत्ता वनेषु रामाः परिपूर्णकामा ।१९

वैभ्राजके चैत्ररये सुपुष्पे सुनन्दने मन्दरकन्दरान्ते ।
रेमे स रामाभिरुदारतेजा रथेन भास्वत्खगमेन कल्कि: २०

पद्मा ने भी सब श्रृंगार त्याग दिया और धूल मे लेट गई । उस समय उसका कस्तूरी युक्त नील वर्ण हुआ कण्ठ कामदेव को भस्म करने वाले शिवजी के समान लगने लगा ।१७। तभी उन कातर नेत्र वाली विलासिनी प्रियाओ की इच्छा पूर्ण करने के लिए आर्तजनो के बधु कल्किजी उनके मध्य मे प्रकट हुए ।१८। यूथपति हाथी के पास जिस प्रकार हथनिया जाती हैं, वैसे ही कल्किजी के समीप वे सभी नारियाँ हर्षित हृदय होकर आगई । वे हृदय के सन्ताप को छोड कर पूर्ण कामा हो गई ।१६। फिर उदार चरित्र वाले एव तेजस्वी कल्किजी श्रेष्ठ गगनगामी रथ पर पद्मा, रमा आदि नारियो के साथ आरूढ होकर पुष्पो से परिपूर्ण वैभ्राजक, चैत्ररथ और नन्दन वन में जाकर विहार-रत हुए ।२०।

तत. सरोवर त्वरा स्त्रियो ययु क्लमज्वरा: ।
प्रियेण तेन कल्किना वनान्तरे विहारिणा ।२१।
सर. प्रविश्य पद्मया विमोह रूपया तथा ।
जल ददुर्वराङ्गना: करेणवो यथा गजम् ।२२।
इति ह युवतिलीला लोकनाथ: स कल्कि: ।
प्रिययुवतिपरीत पद्मया रामयाद्य: ।२३।
निजरमणविनोदं शिक्षयँल्लोकवर्गान्
जयति विबुधभर्त्ता शम्भले वासुदेव ।२४।
ये शृण्वन्ति वदन्ति भावचतुरा ध्यायन्ति सन्त: सदा
कल्के: श्रीपुरुषोत्तमस्य चरित कर्णामृत सादरा. ।
तेषा नो सुखयत्ययं मुररिपोर्दास्यभिलाषं विना
ससार: परिमोचनञ्च परमानन्दामृताम्भोनिधे: ।२५।

फिर वे श्रमासक्त नारियाँ विहार करने वाले कल्किजी के साथ सरोवर के तीर पर जा पहुँची । जैसे हथिनियाँ यूथपति हाथी के शरीर

पर जल डालनी हैं, वैसे ही वे सब स्त्रिया अद्भुत रूप वाली पद्मा के सहित कल्किजी के देह पर जल की वर्षा करने लगी ।२१-२२। जो कल्किजी युवतियो के साथ लीला करने मे निपुण तथा अपनी प्रिया रमा आदि नारियो के साथ विनोद युक्त विहार करने वाले हैं एव जो कल्किजी देवताओ के भी ईश्वर, आदि पुरुष और जगदीश्वर हैं, उन शम्भल ग्राम निवासी भगवान् वासुदेव की जय हो ।२३-२४। पुरुषोत्तम कल्किजी के इस कानो को अमृत के समान प्रिय लगने वाले चरित्र को जो कोई आदर पूर्वक सुनेंगे, कीर्तन या ध्यान करेंगे, उन दास्य भाव की कामना वाले सत्पुरुषो के हृदय में भगवान् की प्रीति के अतिरिक्त अन्य किसी की प्रीति या कामना उत्पन्न नहीं होगी । वे यही अनुभव करेगे कि ससार मोक्ष के अतिरिक्त अन्य कोई परमानन्द नही ।२५।

तृतीयांश—

ऊनविंश अध्याय

ततो देवगणा सर्वे ब्रह्मणा सहिता रथैः ।
स्वैः स्वैर्गणैः परिवृता कल्कि द्रष्टुमुपाययुः ।१।
महर्षयः सगन्धर्वाः किन्नराश्चाप्सरोगणा ।
समाजग्मुः प्रमुदिता. शम्भलं सुरपूजितम् ।२।
तत्र गत्वा सभामध्ये कल्कि कमललोचनम् ।
तेजोनिधि प्रपन्नाना जनानामभयप्रदम् ।३।
नीलजीमूतसंकाश दीर्घपीवरबाहुकम् ।
किरीटेनार्कवर्णेन स्थिरविद्युन्निभेन तम् ।४।
शोभमान द्युमणिना कुण्डलेनाभिशोभिना ।
सहर्षालापविकसद्वदन स्मितशोभिनम् ।५।

सूतजी बोले—इसके अनन्तर एक समय सब देवता और ब्रह्मा सयुक्त होकर अपने अपने गणो के सहित रथो पर चढ कर कल्किजी के दर्शनार्थ आये ।१। महर्षिगण, गन्धर्वगण, किन्नरगण तथा अप्सरागण सभी अत्यंत मुदित हृदय से उस सुरपूजित शभल ग्राम मे एकत्र हुए ।२। फिर सब कल्किजी की सभा में गये और वहाँ पहुँच कर उन्होने देखा कि कमललोचन भगवान् कल्किजी शरणागतो को अभयदाता रूप से विराजमान हैं ।३। उनकी कान्ति नील मेघ समान थी, दीर्घ और सुपुष्ट भुजाएँ हैं, उनका मस्तक स्थिर विद्युत अथवा सूर्य के समान तेजोमय किरीट से सुशोभित है ।४। उनका मुख मंडल सूर्य के समान प्रकाश करने वाले

कुडलो से सुशोभित है उनका मुखारविन्द मधुर मुसकान और हर्षालाप से अत्यत शोभा को प्राप्त हो रहा है ।५।

कृपाकटाक्षविक्षेपपरिक्षिप्तविपक्षकम् ।
तारहारोल्लसद्वक्षश्चन्द्रकान्तमणिश्रिया ।६।
कुमुद्वतीमोदवह स्फुरच्छक्रायुधाम्बरम् ।
सर्वदानन्दसन्दोहरसोल्लसितविग्रहम् ।७।
नानामणिगणोद्योतदीपित रूपमद्भुतम् ।
ददृशुर्देवगन्र्वा ये चान्ये समुपागता ।८।
भक्त्या परमया युक्ता. परमानन्दविग्रहम् ।
कल्कि कमलपत्राक्ष तुष्टुवुः परमादरात् ।९।
जयाशेषसक्लेशकक्षप्रकीर्णानलोद्दाममकीर्णहीश
देवेश विश्वेश भूतेश भावः । त्वानन्त चान्त-स्थितोऽङ्घ्रास्तरत्न
प्रभाभातपादाजितानन्तशक्ते ।१०।

शत्रु भी उनके कृपा-कटाक्ष-विक्षेप से अनुग्रह को प्राप्त होते हैं । वक्षस्थल पर चन्द्रकान्त मणि की कुमुदिनी को प्रसन्न करने वाली ज्योति से सयुक्त हार सुशोभित है, वस्त्र इन्द्र-धनुष के समान विविध रगो में शोभा को बढा रहे हैं । आनन्द रस के कारण हृदय उल्लसित हो रहा है ।६-७। देवता गधर्वादि सभी आगन्तुकोको कल्किजी का अनेक मणियो से सशोभित एव तेजस्वी रूप इस प्रकार अत्यत अद्भुत दिखाई दिया ।८। तब वे सभी परम भक्ति भाव से आदर पूर्वक उन परमानन्द विग्रह कमल लोचन कल्किजी की स्तुति करने लगे ।९। देवताओ ने कहा—हे देवेश ! हे विश्वेश्वर ! हे भूतेश्वर ! हे प्रभो ! आप सभी भावो से युक्त एव अनन्त हैं । आपके प्रचण्ड अग्नि रूप के किंचित् स्पर्श से भी इस ससार भर के क्लेश-पुंज भस्म हो जाते हैं । कान्ति की राशि से सम्पन्न आपके चरणो से लोक प्रकाशित है । हे अनन्तशक्ते ! आपकी जय हो ।१०।

प्रकाशीकृताशेषलोकत्रयात्र वक्षः स्थले भास्वत्कभौस्तु
श्याम मेघौघराजच्छरीरद्विजाधीशतुङ्गनन त्राहि
विष्णो स दाराः वय त्वा प्रसन्ना सशेष ।११।
यद्यस्त्यनुगृहोऽस्याक व्रज वैकुण्ठमीश्वर ।
त्यक्त्वाशासितभूखण्ड सत्यधर्माविरोधत ।१२।
कल्किस्तेषामिति वच. श्रुत्वा परमहर्षित· ।
पात्रात्रैः परिवृतश्चकार गमने मतिम् ।१३।
पुत्रानाहूय चतुरो महाबलपराक्रमान् ।
राज्ये निक्षिप्य सहसा धर्मिष्ठाप्रकृतिप्रियान् ।१४।
तत· प्रजाः ममाहूय कथयित्व निजः कथाः ।
प्राह तान्त्रिजनिर्याण देवानामुषरोधत. ।१५।

हे प्रभो ! आपके श्याम वर्ण वाले वक्षस्थल मे अत्तन्त ज्योति सम्पन्ना कौस्तुभमाणी सुशोभित है। उस मणि के रश्मिजाल से तीनो लोक प्रकाशित हो रहे है इससे ऐमा प्रतीत होता है जैसे मेघमाल के मध्य पूर्ण चन्द्र प्रतिष्ठित हो। हे नाथ ! हम सब विपत्ति में पडे हुऐ हैं और अपने नारी, पुत्र, स्वजनादि के सहित आपकी शरण में आते हैं। हे प्रभो ! हम पर प्रसन्न होकर हमारी रक्षा कीजिये ।११। हे नाथ ! अब यह पृथ्वी सत्य और धर्म से अविरोध पूर्वक शासित है। यदि आपकी हम पर कृपा है तो अब इसे त्याग कर वैकुण्ठ के लिए प्रस्थान कीजिये ।१२। देवाताओं के इन वचनो को सुन कर कल्किजी अत्यत प्रसन्न हुए और वे अपने सुपात्र मित्रो के सहित वैकुण्ठ गमन की इच्छा करने लगे ।१३। तब उन्होंने प्रजा वत्सल, महाबली एवं धार्मिक अपने चारो पुत्रो को बुला कर तुरन्त ही राज्याभिषेक कर दिया ।१४। फिर उन्होंने सम्पूर्ण प्रजा को बुला कर अपना वृत्तान्त कहते हुए उसे सूचित कर दिया कि अब हमे देवताओ के अनुरोध पर वैकुण्ठ धाम के लिए जाना है ।१५।

तच्छ्रुत्वा ता प्रजा: सर्वा रुरुदुर्विस्महान्विता: ।
त प्राहु प्रणता पुत्रा यथा पितरमीश्वरम् ।१६।
भो नाथ मर्वधर्मज्ञ नास्मान्त्यक्तुमिहार्हसि
यत्र त्व तत्र तु वयं याम प्रणतवत्सल ।१७।
प्रिया गृहा धनान्यत्र पुत्रा प्राणास्तवानुगाः ।
परत्रेह विशोकाय ज्ञात्वा त्वा यज्ञपुरुषम् ।१८।
इति तद्वचन श्रुत्वा सान्त्वयित्वा सदुक्तिभि: ।
प्रययौ क्लिन्नहृदय: पत्नीभ्या सहितो वनम् ।१९।
हिमालय मुनिगणैराकीर्णं जान्हवीजलै: ।
परिपूर्णं देवगणै सेवित मनस प्रियम् ।२०।
गत्वा विष्णु: सुरगणैर्वृतश्चा चतुर्भुज ।
उषित्वा जान्हवीतीरे सस्मारात्मानमात्मना ।२१।

यह सुनकर सम्पूर्ण प्रजा अत्यन्त विस्मयमे पडकर रुदन करने लगी । जैसे पुत्र पिता से निवेदन करता है, वैसे वह प्रणाम करके उनसे बोली ।१६। प्रजा ने कहा—हे नाथ ! आप सभी धर्मों के जानने वाले हैं । आप प्रणतपाल को हम सब का परित्याग नही करना चाहिये । हे नाथ ! हम आपके साथ चलेगे ।१७। इस जगत् मे सभी को अपना धन, सन्तान और घर ही अत्यन्त प्रिय है । आप यज्ञ पुरुष सभी के दुख और शोक का शमन करने मे समर्थ हैं । यह जान कर हमारे प्राण भी आपका अनुगमन करने के लिए इच्छुक हैं ।१८। प्रजा के यह वचन सुन कर कल्किजी ने उन्हे श्रेष्ठ उपदेश देकर सान्त्वना प्रदान की और खेद-युक्त मन से अपनी दोनो पत्नियो को साथ लेकर वन के लिए चल दिये ।१९। वे गगाजल से सम्पन्न, देवताओं और मुनियो से उपासित हृदय को आनन्द देने वाले हिमालय पर्वत पर पहुँच कर देवताओ के मध्य विराजमान हुए और चतुर्भुज विष्णु स्वरूप धारण करके अपने रूप का स्मरण करने लगे ।२०-२१।

पूर्णज्योतिर्मय साक्षी परमात्मा पुरातनः ।
बभौ सूर्यसहस्राणां तेजोराशिसमद्युतिः ।२२।
शखचक्रगदापद्मशार्ङ्गाद्यै. समभिष्टुत ।
नानालङ्करणानाञ्च समलङ्करणाकृति. ।२३
ववृषुस्त सुरा: पुष्पै कौस्तुभामुक्तकन्धरम् ।
सुगन्धि कुसुमासारैर्देवदुन्दुभिनि स्वने ।२४।
तुष्टुवुर्मुर्मुहुः सर्वे लोका सस्थाणुजगमा ।
दृष्ट्वा रूपमरूपस्य निर्याणे वैष्णवं पदम् ।२५।
तद्दृष्ट्वा महदाश्चर्य पत्युः कल्केर्महात्मन. ।
रमा पद्मा च दहन प्रविश्य तमवापतुः ।२६।

तब वे पूर्ण ज्योनिमान् सर्वसाक्षी स्वरूप,सनातन पुरुष परमात्मा कल्किजी सहस्रो सूर्य के समान तेज से प्रकाशित हो रहे थे ।२२। विविध अलकारो से युक्त वे स्वय भी अलकार के समान प्रकाशित हो रहे थे । शख, चक्र, गदा, पद्म और शार्ङ्ग धनुष आदि समन्वित उनका वर्ण विग्रह पूजित होने लगा ।२३। उनके वक्षस्थल पर कौस्तुभमणि - सुशोभित थी । देवगण उन पर पुष्पवृष्टि कर रहे थे और सब ओर दुदुभिया बज रही थी ।२४। जब वे कल्किजी विष्णुपद में प्रविष्ट हुए, तब उन अरूप जगदीश्वर के रूप-दर्शन से सभी जीव मोह को प्राप्त हो गए ।२५। अपने पति कल्किजी के इस अद्भुत रूप को देख कर रमा और पद्मा अग्नि मे प्रविष्ट होकर उसमें लीन होगई ।२६।

धर्म कृतयुगं कल्केराज्ञया पृथिवीतले ।
नि.सपत्नौ सुसुखिनौ भूलोक चेरतुश्चिरम् २७।
देवापिश्च मरु· काम कल्केरादेशकारिणौ ।
प्रजाः सपालयन्तौ तु भुव जुगुपतु· प्रभू ।२८।
विशाखयूपभूपालः कल्केर्निर्याणमीदृशम् ।
श्रुत्वा स्वपुत्रं विषये नृप कृत्वा गतो वनम् ।२९।

अन्ये नृपतयो ये च कल्केर्विरहकर्षिता ।
तध्यायन्तो जजन्तश्च विरक्ताः स्युर्नृपासने ।३०।
इति कल्केरनन्तस्य कथा भुवनपावनीम् ।
कथयित्वा शुक प्रायान्नरनारायणाश्रमम् ।३१।
मार्कण्डेयादयो ये च मुनय. प्रशमायनाः ।
श्रुत्वानुभाव कल्केस्ते त ध्यायन्तो जगुर्यश. ।३२

भगवान् कल्किजी की आज्ञा के अनुसार धर्म और सत्युग भार्या-विहीन रह कर सुख पूर्वक भूमडल पर चिरकाल तक विचरण करते रहे।२७ देवापि और मरु—यह दोनो राजा कल्किजो के आदेशानुसार प्रजा-पालन एव प्रथिवी के रक्षण में तत्पर हुए ।२८। भगवान् कल्किजी का गमन सुन कर विशाखयूप नरेश भी अपने पुत्र को राज्य देकर वन मे चले गये ।२९। अन्यान्य राजागण भी कल्किजी के वियोग को सहन न कर सके। उन्होने अपने-अपने राज्य का त्याग कर दिया और कल्किजी के रूप का ध्यान करते हुए उन्ही का नाम जपने लगे ।३०। अनन्त प्रभु कल्किजी की इस लोक पावनी कथा का वर्णन करने के पश्चात शुकदेवजी ने नर-नारायण को प्रस्थान किया ।३१। शान्त चित्त वाले मार्कण्डेय आदि मुनिगण भगवान् कल्किजी के इस माहात्म्य को श्रवण कर उनका ध्यान करते हुए यशोगान मे तत्पर हुए ।३२।

यस्यानुशासनाद्भूमौ नाधर्मिष्ठाप्रजाजनाः ।
नाल्पायुषो दरिद्राश्च न पाखण्डा न हैतुका. ।३३
नाधयो व्याधयः क्लेशा देवभूतात्मसम्भवा. ।
निर्मत्सरा· सदानन्दा बभूवुर्जीवजातय ।३४।
इत्येतत्कथित कल्केरवतार महोदयम् ।
धन्य यशस्यमायुष्य स्वर्ग्य स्वस्त्ययन परम् ।३५।
शोकसन्तापपापघ्न कलिव्याकुलनाशनम् ।
सुखद मोक्षद लोके वाञ्छितार्थफलप्रदम् ।३६।

तावच्छस्त्रप्रदीपाना प्रकाशो भुवि रोचते ।
भाति भानु पुराणाख्यो यावल्लोकेऽस्ति कामधुक् ।३७।
श्रुत्वं तद्भृगुवशजो मुनिगणै· साक सहृषों वशी
ज्ञात्वा सूतममेषबोधविदित श्रीलोमहृर्षात्मजम् ।
श्रीकल्केरवतारवाक्यममल भक्तिप्रदे श्रीहरे:
शुश्रूषु पुनराह साधुवचसा गगास्तत्र सत्कृत ।३८।

जिनके शासनकाल मे इस पृथिवी पर कोई भी धर्म-हीन अल्पायुष्य, दरिद्री, पाखण्डी तथा कपट पूर्ण आचरण वाला व्यक्ति नही रहा और सभी प्राणी आधि-व्याधि से रहित, क्लेश-रहित और मात्सर्य-रहित होकर देवताओ के समान सुखी हो गए, उन्ही के अवतरण का का यह प्रसग कहा गया है । इसके श्रवण मात्र मे धन, यश और आयु की वृद्धि होती और परमानन्द की प्राप्ति होती है तथा अन्तकाल मे स्वर्ग की उपलब्धि हो जाती है ।३३-३५। यह कथा सुनने से शोक, सन्ताप और पाप को नष्ट करती है । कलियुग के उद्वेगो का शमन मोक्ष एव वाछित फल देने मे वह समर्थ हैं ।३६। इच्छित फल को दाता पुराण रूपी सूर्य को उदय जब तक ससार मे नही होता, तभी तक अन्यान्य-शास्त्र दीपक माला का प्रकाश टिक पाता है ।३७। भृगुवश मे उत्पन्न मुनिगण शौनकादि ऋषियो ने इस भक्ति रस से परिपूर्ण कल्कि कथा के श्रवण से अत्यन्त आनन्द प्राप्त किया । वे जान गये कि लोम-हर्षण के पुत्र सूतजी ज्ञान में इस प्रकार प्रवृत हैं । मुनियो के हृदय मे हरि कथा सुनने की इच्छा पुनः जागृत हुई और उन्होने आदर सहित गगास्तोत्र के विषय मे सूतजी से प्रश्न किया ।३८।

तृतीयांश—

विंश अध्याय

हे सूत ! सर्वधर्मज्ञ यत्वया कथित पुरा ।
गगा स्तुत्वा समायाता मुनय· कल्किसन्निधिम् ।१।
स्तव त वदा गगाया सर्वपापप्रणाशनम् ।
मोक्षद शुभद भक्त्या शृण्वता पठना मिह ।२।
शृणुध्वमृषयः सर्वे गगास्तव मनुत्तमम् ।
शोकमोहर पु सामृषिभि परिकीर्त्तितम् ।६।
इय सुरतरगिणी भवनवारिधेस्तारिणी ।
स्तुता हरिपदाम्बुजादुपगता जगत्ससदः ।
सुमेरुशिखरामरप्रियजला मलक्षालनी ।
प्रसन्नवदना शुभा भवभयस्य विद्राविणी ।४।
भगीरथमथानुगा सुरकरीद्रदर्पापहा
महेशमुकुटप्रभा गिरिशिर पताकासिता ।
सुरासुरनरोरगैजभवाच्युतै स स्तुता
विमुक्तिफलशालिनी कलुषनाशिनी राजते ।५।

शौनकजी बोले—हे सूतजी ! आप सभी धर्मों के जानने वाले हैं। आपने कहा था कि मुनिगण गङ्गा जी का स्तवन करके कल्किजी के पास पहुँचे थे, तो वह स्तव कौन-सा है, जिसके भक्ति-सहित पढने या सुनने से मोक्ष रूपी मङ्गल की प्राप्ति होती हैं और सभी पापो का नाश होता है। उसे हमारे प्रति कहिये ।१-२। है सूतजी ने कहा—हे मुनियो ! उस

ओर मोह के नाशक अत्यत श्रेष्ठ ऋषि प्रणति गगा-स्तोत्र को आपके प्रति कहता हूँ, सुनिये ।३। ऋषियो ने कहा—यह सुरतरगिणी ससार समुद्र से पार करने वाली भगवान् विष्णु के चरणा·विन्दो से उद्भुत होकर भूमडल पर प्रवाहित हुई । यह भवभय विनाशिनी, पाप नाशिनी, सुमेरु शिखर वासिनो, अमृत जल वाली, प्रसन्नवदना भगवती गगाजी शुभप्रदायिनी एव सर्व पूजिता है ।४ यह भगवती राजा भगीरथ के पीछे-पीछे पृथिवी पर चली । इन्होने ऐरावत का गर्व खडन किया । यह शिवजी के मस्तक मे मुकुट की प्रभा रूप से शोभामयी और हिमालय की श्वेत पताका के समान हैं । सभी देवता, दैत्य, मनुष्य और नाग आदि इनके यश का सदा गान करते रहते हैं । यह पापनाशिनी एव मोक्षदायिनी हैं ।५।

पितामहकमन्डलुप्रभवमुक्तिबीजालता
श्रुतिस्मृतिगणस्तुता द्विजकुलालवालावृता ।
सुमेरुशिखराभिदा निपतिता त्रिलोकावृता ।
सुधर्मफलशालिनो सुखपलाशिनी राजते ।६।
चरद्विहगमालिनी सगरवशमुक्तिप्रदा
मुनीद्रवरनन्दिनी दिवि मता च मन्दाकिनी ।
सदा दुरितनाशिनी विमलवारिसदर्शन-
प्रणामगुकोर्न्तनादिष जगत्सु सराजते ।७।
महाभिधसुताङ्गना हिमगिरीशकूटस्तनी
सफेनजलहासिनी सितमरालसचारिणी ।
चलल्लहरिसत्करा वरसरोजमालाधरा
रसोल्लसितगामिनी जलधिकामिनी राजते ।८।

इस मुक्ति रूपो बीजलताका प्रादुर्भाव ब्रह्म जी के कमण्डलुमे हुआ है । द्विजगण इसके आल-वाल रूप और सुधर्म इसको फल है । यह सुख रूप किसलयो से परिपूर्ण लता सुमेरु पर्वत का भेदन करके प्रगट हो गई । तीनो लोकी मे व्याप्त गगाजी का यह स्तोत्र श्रुति, स्मृति

आदि सभी धर्म शास्त्रो से सम्मत है ।६। सगरवश को मोक्ष देने वाली यह जान्हवी, देवताओ के लिए मन्दाकिनी स्वरूपा तथा सदैव मगल के देने वाली है । प्रणाम पूर्वक इनका गुणगान करने और इनके निर्मल जल का दर्शन करने से ही सन्सार मे सुख की प्राप्ति होती है ।७। हिमा-लय के शिखर रूपी वक्ष वाली यह भगवती महाराज शान्तनु की रानी हुई थी । इनका फेनो से युक्त जल ही हास है तथा श्वेत वर्ण वाले हस जिनकी गति, खिले हुए कमलोकीपक्ति जिनकी माला तथा तरगही जिनके हाथ हैं, ऐसी रसवती वह गगा प्रमुदित गति से समुद्र से मिलने के लिए बढी चली जा रही है ।८।

क्वाचित्कलक्लस्वना क्वचिदधीरयादोगणा॰
क्वचिन्मुनिगणैः स्तुता क्वचिदनन्तसपूजिता ।
क्वचिद्रविकरोज्वला क्वचिदुदग्रपाताकुला
क्वविज्जनविगाहिता जयति भीष्ममातासती ।६।
स एव कुशलो जन प्रणमतीह भागीरथी
स एव तपसा निधिर्जपति जाह्नवीमादरात् ।
स॰ एव पुरुषोत्तम. स्मरति साधु मन्दाकिनी
स एव विजयी प्रभु॰ सुरतरगिणी सेवते ।१०।
तवामल जलातित खगश्रृगालमीनक्षत
चलल्लहरि लोलित रुचिर तीर जम्बालितम् ।
कदानिजवपुर्मुदा सुरनरोरगैः सस्तुतोऽ-
प्यह त्रिपथगामिनि ! प्रियमतीव पश्याम्यदौ ।११।

जिनकी कही मुनिगण स्तुति करते हैं, तो कही अनन्त भगवान् द्वारा पूजी जाती है । जिनके जल मे कही विकराल जीव विचर रहे हैं, कही जिनका जल कल कल-गान कर रहा है, वही जल कही भीषण नाद करता हुआ पतित हो रहा है, उस पर कही सूर्य रश्मियाँ पड कर उसे प्रकाशमय कर रही हैं और कही उस जल मे मनुष्य स्नान कर रहे हैं । ऐसी इन भीष्म की माता सती गगाजी की जय हो ।६। इन भगवती

गंगा को प्रणाम करने वाले पुरुष कुशल हैं। इनके नाम का जप करने वाले मनुष्य ही वास्तव में तपस्वी है। इनका स्मरण करने वाले प्राणी ही श्रेष्ठ है। इनकी उपासना करने वाले जीव ही सब को जीतने मे समर्थ तथा सम्पूर्ण ऐश्वर्यो के स्वामी है।१०। हे देवि ! हे त्रिपथगे ! आपके निर्मल जल मे हमारा शरीर कब भासित होगा ? इस देह के मृत होने पर पक्षी और श्रृगाल आदि कब इसे नोचेंगे और फिर कब यह आपकी चचल तरगो मे उछलता हुआ तट पर स्थित शिवारो से कब सजेगा ? हे माता ! मै स्वर्ग लोक को कब प्राप्त कर सकूँगा और सुर, नर नाग कब मेरा स्तव करेंगे ? इस प्रकार का अपना सौभाग्य मे कब देख सकूँगा ? ११।

त्वत्तीरे वसति तवामलजलस्न न तव प्रेक्षण
त्वन्नामस्मरण तवोदयकथासलापन पावनम् ।
गंगे मे तव सेवनैकनिपुणोऽप्यानन्दितश्चादृत
स्तुत्वा त्वद्गतपातको भुवि कदा शान्तश्चरिष्याम्यहम् ।२१।
इत्येतदृषिभि प्रोक्त गतास्तवमनुत्तमम् ।
स्वर्ग्यं यशस्यमायुष्य पठनाच्छ्रवणादपि ।१३।
सर्वपापहर पुंसा बलमायुर्विवर्द्धनम् ।
प्रातर्मध्याह्नसायाह्ने गगासान्निध्यता भवेत् ।१४।
इत्येतद्भार्गवाख्यान शुकदेवान्मया श्रुतम् ।
पठित श्रावित चात्र पुण्य धन्य यशस्करम् ।१५।
अवतार महाविष्णोः कल्के परममद्भुतम् ।
पठता शृण्वता भक्त्या सर्वाशुभविनाशनम् ।१६।

हे गंगे ! आपके तट पर वास करता हुआ और आपके निर्मल जल में स्नान करता हुआ मैं कब आपके दर्शन करूँगा ? कब आपका नाम स्मरण करता हुआ आपके अवतरण की पुनीत गाथा का गान करूँगा ? आपकी सेवा करने के फल रूप मे मेरे हृदय मे आपकी भक्ति

का सञ्चार कब होगा ? मेरे द्वारा किये हुए पाप कब नष्ट होंगे ? कब मैं शान्त चित्त से पृथिवी पर विचरण करता हुआ आदर को प्राप्त हूँगा ? ।१२। इस ऋषि प्रोक्त गंगा-स्तव का इस प्रकार पाठ किया गया। इसके पढने और सुनने से यश-लाभ होना तथा आयु की वृद्धि होती है।१३। इस स्तोत्र का प्रातः मध्याह्न और सायं—तीनो काल पाठ करने से गंगा जी का सान्निध्य प्राप्त होकर सब पापो का क्षय तथा बल और आयु की वृद्धि होती है।१४। इस भार्गवाख्यान का मैंने शुकदेवजी से श्रवण किया था। यह पढन और सुनने से पुण्यप्रद तथा धन और यश के बढाने वाला है।१५। भगवान् कल्कि के अवतार विषयक अद्भुत् उपाख्यान का भक्ति सहित पाठ अथवा श्रवण करने पर सब प्रकार के अमगलो का का नाश हो जाता है।१६।

तृतीयांश—

एकविंश अध्याय

अत्रापि शुकसम्बादो मार्कण्डेयेन धीमता ।
अधर्मवंशकथन कलेर्विवरण तत ।१।
देवानाब्रह्मसदन प्रयाण गोभुवा सह ।
ब्रह्मणो वचनाद्विष्णोर्जन्म विष्णुयशोगृहे ।२।
सुमत्यास्वाशकैर्भ्रातृचतुर्भि: शम्भले पुरे ।
पितु· पुत्रेण सम्बादस्तथोपनयन हरे ।३।
पुत्रेण सह सवासो वेदाध्ययनमुत्तमम् ।
शस्त्रास्त्राणा परिज्ञान शिवसदर्शन तत ।४।
कल्के. स्तव शिवपुरो वरलाभ शुकापनम् ।
शम्भलागमन चक्रे ज्ञातिभ्यो वरकीननम् ।५।

सूतजी बोले—इस पुराण मे प्रथम मार्कण्डेयजी और शुकदेवजी का सम्वाद वर्णन हुआ है । फिर अधर्म के वन्श का वर्णन और कल्किजी का प्रसग आया है । इसके अनन्तर गोरूप धारिणी पृथिवी के देवताओ के साथ ब्रह्मलोक गमन और विष्णुयशजी के घर कल्किजी के जन्म लेने की कथा कही गई । तत्पश्चात् भगवान् विष्णु के अन्श से चारो भाइयो के शम्भल ग्राम मे अवतरित् होने का उपाख्यान, पिता-पुत्र-सवाद और कल्किजी के उपनयन संस्कार का विवरण है ।१ ३। फिर पिता पुत्री का साथ साथ रहना, कल्किजी का वेद शास्त्रो तथा शस्त्रास्त्र की शिक्षा पाने की और भगवान् शकर के दर्शन होने की कथा कही गई है ।४। तदनन्तर कल्किजी द्वारा शकर-स्ततव और वर प्राप्त करना और शिवजी

५०६+३२=५३८

द्वारा प्रदत्त शुक के सहित उनका शभल ग्राम को लौटना तथा जाति बन्धुओ से वर प्राप्ति का वर्णन किया गया है ।५।

वशाखयूपभूपेन निजसर्वात्मवर्णनम् ।
महाभाग्याद्ब्राह्मणाना शुकस्यागमन तत. ।६।
कल्किना शुकसम्वाद सिहलाख्यानमुत्तमम् ।
शिवदत्तवरा पद्मा तस्या भूपस्वय वरे ।७।
दर्शनाद्भूपसघाना स्त्रीभावपरिकीर्त्तनम् ।
तस्या विषाद, कल्केस्तु विवाहार्थ समुद्यमः ।८।
शुकप्रस्थापन दौत्ये तया तस्यापि दर्शनम् ।
शुकपद्मापरिचयः श्रीविष्णु· पूजनादिकम् ।९।
पादादिदेहध्यानञ्च केशान्त परिवर्णितम् ।
शुकभूषणदानञ्च पुन शुकसमागम ।१०।

फिर विशाखयूप नरेशके प्रति कल्किजी द्वाराअपने स्वरूपका और ब्राह्मण—माहात्य का वर्णन करना तथा शुक के आगमनकी कथा कही गई है ।३। फिर कल्कि-शुक सवाद, शुक द्वारा सिहल द्वीप वर्णन, शिव द्वारा पद्मा को वर प्राप्ति का प्रसग पद्मा के स्वयवर मे आये हुए राजाओ को स्त्रीत्व प्राप्ति का वर्णन तथा पद्मा के सताप की चर्चा और विवाह के लिए कल्किजी के उद्यम की कथा कही गई है ।७-८। शुक का दूत-भाव से प्रस्थान, पद्मा और शुक की भेट तथा दोनो के परिचय का प्रसग और विष्णु भगवान् के पूजन की कथा हैं ।९। तदुपरान्त चरण से केश पर्यन्त, भगवान् के ध्यान करने का प्रस ग, शुक को आभूषण-दान और शुक का कल्किजी के पास लौटना—यह कथा वर्णित हुई है ।१०।

कल्के. पद्माविवाहार्थ गमन दर्शन तयो ।
जलक्रीडाप्रसङ्गेन विवाहस्तदनन्तरम् ।११।
पु स्त्वप्राप्तिश्च भूपाना कल्केदर्शनमात्रत· ।
अनन्तागमन राज्ञा सम्वादस्तेन ससदि ।१२।

षण्डत्वादात्मनो जन्म कर्म चात्र शिवस्तवः।
मृते पितरि तद्विष्णोः क्षेत्रे माया प्रदर्शनम् ।१३।
अत्राख्यानमनन्तस्य ज्ञानवैराग्यवैभवम् ।
राज्ञा प्रयाण क केश्च पद्मया सह शम्भले ।१४।
विश्वकर्मविधानञ्च वसति पद्मया सह ।
ज्ञातिभ्रातृसुहृत्पुत्रैं सेनाभिर्बद्धनिग्रह ।१५।

तदनन्तर विवाह के उद्देश्य से कल्किजी का गमन, जल क्रीडा के प्रसग द्वारा कल्किजी और पद्मा का पारस्परिक परिचय और इनके विवाह का प्रसग कहा गया है ।११। फिर स्त्रीत्व को प्राप्त हुए राजा-गण का कल्कि-दर्शन से पुन. पुरुषत्व की प्राप्ति, अनन्त मुनि का सभा मे आगमन और राजाओ से सम्वाद की कथा का वर्णन है ।१२। षण्ड रूप से अनन्त मुनि के जन्म का वर्णन, शिवजी की स्तुति और अनन्त मुनि के पिता के परलोक-गमन के पश्चात् विष्णु क्षेत्र मे भगवती माया के दर्शन का प्रसग कहा गया है ।१३। तदनन्तर अनन्त का आख्यान, ज्ञान एवं वैराग्य रूप एश्वर्य का प्रसग, फिर राजाओ का प्रयाण और पद्मा सहित कल्किजी के शम्भल-गमन की कथा कही है ।१४। फिर विश्वकर्मा द्वारा शम्भलपुरी का निर्माण और उसमे पद्मा, जाति-बांधव, भ्रात गण, सुहृद्जन, पुत्रादि तथा सेना के सहित कल्किजी का निवास और बौद्धो के निग्रह की कथा वर्णन की गई है ।१५।

कथितश्चात्र तेषाञ्चा स्त्रीणां सयोधनाश्रयः ।
ततोऽत्रो बालखिल्यानां मुनीनां रवानिवेदनम् ।१६।
सपुत्राया. कुथोदर्या वधश्चात्र प्रकीर्त्तत: ।
हरिद्वारगतस्यापि कल्केर्मु निसमागम ।१७।
सूर्यवंशस्य कथन सोमस्य च विधानत. ।
श्रीरामचरित चात्रसूर्यवंशानुवर्णने ।१८।
देवापेश्च मरो सर्वो युद्धायात्र प्रकीर्तित. ।

महाघोरवनेकोक विकोकविनिपातनम् ।१९।
भल्लाटगमन तत्र शय्याकर्णादिभि सह ।
युद्ध शशिध्वजेनाथ सुशान्ता भक्तिकीर्तनम् ।२०।

तदुपरान्त बौद्धो की नारियो का रणक्षेत्र में युद्ध के उद्देश्य से आगमन, बालखिल्य मुनियो का आगमन और अपने वृत्तान्त का वर्णन ।१३। फिर कुथोदरी नाम की राक्षसी का अपने पुत्र के सहित मारा जाना तथा हरिद्वार मे कल्किजी से मुनियो का मिलना कहा गया है ।१७। फिर सूर्यवश और चद्रवश का वर्णन तथा सूर्यवश के प्रसग में भगवान् श्री राम का चरित्र-वर्णन हुआ है ।१८। फिर मरु और देवापि का युद्ध के लिए आगमन, अत्यन्त विकराल कोक-विकोक का वध, कल्किजी की भल्लाट नगर-यात्रा, शय्याकरण आदि से युद्ध, शशिध्वज-कल्किजी का सग्राम और सुशाता द्वारा भक्ति एवं कीर्तन की कथा कही गई है ।१९-२०।

युद्धे कल्केरानयन धर्मस्य च कृतस्य च ।
सुशान्ताया: स्तवस्तत्र रमोद्वाहस्तु कल्किना ।२१।
सभाया पूर्वकथन निजगृध्रत्वकारणम् ।
मोक्ष शशिध्वजस्यात्र भक्तिप्रार्थयितुर्विभो ।२२।
विषकन्यामोचनञ्च नृपाणामभिषेचनम् ।
मायास्तव. शम्भलेषु नानायज्ञादि साधनम् ।
नारदाद्विष्णुयशसो मोक्षश्चात्र प्रकीर्तित. ।
कृतधर्म प्रवृत्तिश्च रुक्मिणी व्रतकीर्तनम् ।२४।
ततो विहार: कल्केश्च पुत्रपौत्रादि सम्भव. ।
कथितो देवगन्धर्वगणागमनमत्रहि ।२५।

फिर युद्ध क्षेत्र से कल्किजी, धर्म और सत्युग का शशिध्वज द्वारा अपने घर लाना, रानी सुशान्ता द्वारा कल्किजी का स्तव और कल्कि-रमा विवाह का प्रसग कहा गया है ।२१। फिर राजा शशिध्वज

का अपने पूर्व-जन्मों का वृत्तान्त-कथन, गृद्ध देह प्राप्ति का प्रसंग, कल्किजी के प्रति भक्ति का निवेदन और और राजा शशिध्वज को मोक्ष की प्राप्ति का वर्णन हुआ है ।२२। विषकन्या का उद्धार, राजाओं का राज्याभिषेक, भगवती माया का स्तव तथा शम्भल ग्राम में विविध यज्ञों का अनुष्ठान ।२३। तदनन्तर विष्णुयशजी का नारदजी से मोक्ष-विषयक प्रश्न, लोक में सत्युग का स्थापन और रुक्मिणी व्रत का प्रसंग ।२४। फिर कल्किजी का विहार-वर्णन, पुत्र-पौत्रादि की उत्पत्ति और देवताओं तथा गंधर्वों के शम्भल ग्राम में आगमन की कथा कही गई है ।२५।

ततो वैकुण्ठगमनं विष्णोः कल्केरिहादितम् ।
शुकप्रस्थानमुचितं कथयित्वा कथाः शुभाः ।२६।
गंगास्तोत्रमिह प्रोक्तं पुराणे मुनिसम्मतम् ।
जगतामानन्दकरं पुराणं पंच लक्षणम् ।२७।
चतुर्वर्ग प्रदं कल्कि पुराणं परिकीर्तितम् ।
प्रलयान्ते हरिमुखान्निःसृतं लोक विस्तृतम् ।२८।
अहोव्यासेन कथितं द्विजरूपेणभूतले ।
विष्णोः कल्केर्भगवतः प्रभावं परमाद्भुतम् ।२९।
येभक्त्यात्र पुराणसारममलं श्रीविष्णु भावाप्लुतं ।
शृण्वन्तीह वदन्ति वदन्ति साधुसदसि क्षेत्रे सुतीर्थाश्रमे ।
दत्त्वागां तुरगं गजवरं स्वर्णं द्विजायादरात्
वस्त्रालङ्करणैं प्रपज्यविधिवन्मुक्तास्त एवोत्तमाः ।३०।

फिर कल्किजी के वैकुण्ठ-गमन का वर्णन करके शुकदेव जी का कथा समाप्त करके चले जाना कहा गया है ।२६। फिर इस पुराण में मुनियों द्वारा कथित गंगास्तोत्र का वर्णन हुआ है । संसार को आनन्द देने वाला यह पुराण पांच लक्षणों से सम्पन्न है ।२७। यह कल्कि-पुराण, कीर्तन करने से, चतुर्वर्ग के देने वाला है । प्रलय के अन्त

मे यह भगवान् श्रीहरि के मुख से निसृत होकर संसार मे विस्तार को को प्राप्त हुआ है ।२८।

फिर इस पुराण को ब्राह्मण रूप मे पृथिवी पर अवतरित होकर भगवान् वेदव्यासजी ने कहा । इसमे कल्कि स्वरूप भगवान् विष्णु के अत्यन्त अद्भुत प्रभाव का वर्णन किया गया हैं ।२९। सभी पुराणो के सार रूप इस कल्कि पुराण का जो साधुजन भगवान् विष्णु के भक्ति भाव मे मग्न होकर किसी आश्रम या पुण्यतीर्थ मे स्थिति होकर वस्त्रा भूषणो द्वारा ब्राह्मणो का सत्कार करते हुए तथा उन्हे गज, अश्व, गो, आदि धन दान देते हुए श्रवण अथवा कीर्तन करेंगे उनको अवश्य ही मोक्ष की प्राप्ति हो जायगी ।३०।

श्रुत्वा विधान विधिवद्ब्राह्मणो वेद पारग ।
क्षत्रियो भूपतिर्वैश्यो धनीशूद्रो महान्भवेत् ।३१।
पुत्रार्थी लभते पुत्र धनार्थी लभते धनम् ।
विद्यार्थी लभते विद्या पठनाच्छ्रवणादपि ।३२।
इत्येतत्पुण्यमाख्यान लोमहर्षण जो मुनि ।
श्रावयित्वामुनीन्भक्त्या ययौ तीर्थाटनादृत: ।३३।
शौनकौ मुनिभि: सार्द्ध सूतमामन्त्र्यधर्मवित् ।
पुण्यारण्ये हरि ध्यात्वा ब्रह्म प्राप सहर्षिभि ।३४।
लोमहर्षणज सवपुराणज्ञ यतव्रतम् ।
व्यासशिष्य मुनिवर त सूत प्रणमाम्यहम् ।३५।

इस पुराण के विधी पूर्वक श्रवण करने वाला ब्राह्मण वेद मे पारगत होता है, क्षत्रिय को राज्य की प्राप्ति होती है, वैश्य धनी और शुद्र महान् हो जाता हैं ।६१। यदि पुत्र की कामना से इसका श्रवण करे तो पुत्र-लाभ, धन की इच्छा बाले को धन लाभ और विद्या के अभिलाषियो को विद्या की प्राप्ति होती है ।३२। लोमहर्षणसुत मुनिवर सूतजी ने भक्ति भाव सहित यह पुण्य आख्यान शौनकादि मुनियो को सुनाया

और फिर तीर्थाटन को चले गये ।३३। इसके पश्चात् मंत्रवित् एवं धर्मज्ञाता मुनिवर शौनकजी अन्यान्य मुनियो के सहित भगवान् विष्णु का ध्यान करते हुए ब्रह्म को प्राप्त हो गये ।३४। सर्व पुराणो के ज्ञाता, व्यासजी के परम शिष्य, लोमहर्षणपुत्र उन मुनिश्रेष्ठ सूतजी को मैं प्रणाम करता हूँ ।६५।

आलोक्य सर्व शास्त्राणि विचार्य च पुनः पुनः ।
इममेव सुनिष्पन्न ध्येयो नारायणः सदा । ३६।
वेद रामायणे चैव पुराणे भारते तथा ।
आदावन्ते च मध्ये च हरिः सर्वत्र गीयते ।३७।
सजलजलददेहो वातवेगैकवाहः
करधृतकरवाल. सर्वलोकैकपालः ।
कलिकुल वनहन्ता सत्यधर्म प्रणेता ।
कलयतुकुशलवः कल्किरूपः सभूप. ।३८।

सभी शास्त्रो के अध्ययन और उन पर बारम्बार विचार करने से यही निष्कर्ष निकलता है कि सदैव भगवान् श्रीनारायण का ध्यान करना ही श्रेयस्कर है ।६३। क्योकि वेद, पुराण, रामायण और महाभारत आदि सभी शास्त्रो ने अपने आदि, मध्यादि मे सर्वत्र इन्ही भगवान् श्रीहरि का गुण-कीर्त्तन किया हैं ।३७। जलयुक्त मेघ जैसे वर्ण वाले वायु के समान वेग वाले अश्वारूढ होने वाले, हाथ मे तलवार धारण करने वाले, सत्य- धर्म के प्रणेता, राजाओ के सहित निवास करने वाले कलियुग के परिवार रूपी वन का हनन करने वाले भगवान् कल्किजी हमारा कल्याण करे ।३६।

श्री कल्कि पुराण सम्पूर्ण